ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

झारखंड राज्य एवं अन्य

cuke

डॉ॰ काशी नाथ राम एवं एक अन्य

L.P.A. No. 248 of 2007. Decided on 4th July, 2012.

सेवा विधि–विभागीय कार्यवाही–सेवा से बर्खास्तगी–विभागीय कार्यवाही में याची की उपस्थिति में गवाहों का परीक्षण नहीं किया गया था–गवाहों का प्रति परीक्षण करने का अवसर याची को नहीं दिया गया था–विभाग निष्पक्ष तरीके से जाँच संचालित करने में विफल रहा और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया–याची को सही प्रकार से पारिणामिक लाभ दिए गए थे–अपील खारिज। (पैराएँ 6 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. A. Allam, For the Appellants; Mr. Krishna Murari, For the Respondent.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गये।

2. यह लेटर्स पेटेन्ट अपील डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3802 वर्ष 2006 में पारित दिनांक 18.5.2007 के निर्णय के विरुद्ध है जिसके द्वारा याची–प्रत्यर्थी की याचिका अनुज्ञात की गयी थी और दिनांक 5.6.2006 की पत्र सं॰ 1160 द्वारा जारी आदेश, जिसके द्वारा याची को विभागीय कार्यवाही में विभाग द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, अभिखंडित कर दिया गया है।

3. याची को वर्ष 1972 में पशु पालन विभाग में वर्ग II पद पर नियुक्त किया गया था और तब वर्ष 1981 में याची को वर्ग I पद पर प्रोन्नत किया गया था। याची के अनुसार नियुक्ति के समय से उसने ईमानदारीपूर्वक काम किया और याची के विरुद्ध अभिकथन नहीं था किंतु कतिपय पूर्वाग्रहों के कारण जो इस कारण थे कि याची अपनी प्रोन्नति की आशा कर रहा था और उस समय पर सरकार के सचिव अन्य व्यक्तियों में दिलचस्पी रखते थे, इसलिए, उन्होंने कनिष्ठों को प्रोन्नत करने का प्रयास किया और इसलिए याची को रिट याचिका दाखिल करना पड़ा था, जिसके प्रति स्वयं आक्षेपित आदेश में निर्देश किया गया था जिसमें याची के अनुसार उसने अपने कनिष्ठों की प्रोन्नति के विरुद्ध स्थगन प्राप्त कर लिया था। रिट याचिका दाखिल करने और अंतरिम आदेश प्राप्त करने, जब सरकारी अधिकारीगण याची द्वारा रिट याचिका वापस लेने में विफल रहे, की याची की कार्रवाई से चिढ़कर याची को आरंभ में दिनांक 1.2.1997 के पत्र के तहत निलंबित कर दिया गया था और उस कार्यवाही में भी याची अपनी रिट याचिका सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2316 वर्ष 1997 में सफल हुआ था जिसमें पटना उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी राज्य को दिनांक 31.12.1997 तक जाँच समाप्त करने का निर्देश दिया था जिसमें विफल रहने यह निर्देश दिया गया था कि आरोप–पत्र और निलंबन आदेश दिनांक 1.1.1998 के प्रभाव से अभिखंडित माने जाएँगे और याची की रिट याचिका निपटायी गयी थी। चूँकि उस तिथि अर्थात् दिनांक 31.12.1997 तक जाँच समाप्त नहीं की गयी थी, याची का निलंबन आदेश और आरोप पत्र स्वयं अभिखंडित हो गया। प्रत्यर्थी राज्य ने समय बढ़ाने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन दिया किंतु उसे भी अस्वीकार कर दिया गया था और इसलिए सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2316 वर्ष 1997 में पारित उच्च न्यायालय के आदेश के आलोक में स्वयं आरोप पत्र को अभिखंडित करके अभिकथन, जो काफी पहले वर्ष 1997 में लगाए

गए थे को निश्चयात्मक रूप से विनिश्चित कर दिया गया था। उक्त के बावजूद, 27 आरोपों को अंतर्विष्ट करने वाला नया आरोप पत्र याची पर तामील किया गया था और आरोपों में से कुछ पहले भी विभागीय जाँच के आधार थे किंतु याची को जाँच के अध्यधीन किया गया था और कनिष्ठों की प्रोन्नति को चुनौती देते हुए याची द्वारा रिट याचिका दाखिल करने के बाद उच्च न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश पारित किया गया था। याची पर पुन: दिनांक 25.7.2005 के मेमो सं॰ 1688 के तहत तीन वस्तुओं/अनुच्छेदों को अंतर्विष्ट करने वाला एक अन्य पूरक आरोप-पत्र तामील किया गया था। आरंभिक प्रक्रिया में, एक आरोप को छोड़ कर याची को आरंभिक जाँच में दोषी नहीं पाया गया था, किंतु अनुशासनिक प्राधिकारी एक आरोप जिसे रिट याची के विरुद्ध सिद्ध पाया गया था, को छोड़कर कतिपय आरोपों के संबंध में जाँच अधिकारी द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से असहमत हुआ और दूसरा कारण-पृच्छा दिया। याची ने द्वितीय कारण पृच्छा को चुनौती दिया किंतु रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान याची को दिनांक 5.6.2006 के उक्त पत्र सं॰ 1160 के तहत सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। याची ने तब रिट याचिका को संशोधित किया और सेवा से याची की बर्खास्तगी को चुनौती दिया। याची की रिट याचिका अनुज्ञात की गयी थी और सेवा से याची की बर्खास्तगी अपास्त कर दी गयी थी, अत: राज्य द्वारा यह एल॰ पी॰ ए॰ दाखिल किया गया है।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आरंभ में याची के विरुद्ध 27 आरोप लगाए गए थे और 27 आरोपों में से एक वर्ग 4 में चार व्यक्तियों को अवैध नियुक्ति देने का आरोप सिद्ध किया गया था और उन अवैध नियुक्तियों के कारण सरकार को सतरह लाख रुपयों के राजस्व की हानि हुई जो इन कर्मकारों को भुगतान किए गए वेतन के तुल्य है। किंतु, यह स्वीकृत तथ्य है कि उन व्यक्तियों, जिन्हें याची द्वारा पहले नियुक्ति दी गयी थी, की सेवा को पहले ही नियमित कर दिया गया था और सेवा में रखा गया था, किंतु विभाग इन व्यक्तियों को भुगतान किए गए वेतन की राशि याची से वसूल करना चाहता है यद्यपि कर्मकार पहले से ही विभाग में कार्यरत है और सेवा में होने के नाते उन्हें वेतन का भुगतान किया जा रहा था।

5. चाहे जो भी हो, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार याची ने विभागीय कार्यवाही में सहयोग नहीं किया था और उस पर जाँच रिपोर्ट तामील करना इप्सित किया गया था किंतु उसने इसे स्वीकार नहीं किया था जब इसे रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा भेजा गया था। तब जाँच रिपोर्ट की अतिरिक्त प्रति कार्यालय के माध्यम से भेजी गयी थी, किंतु संबंधित कार्यालय से रिपोर्ट आया कि याची मुख्यालय से अनुपस्थित था और तब नोटिस दिनांक 1.8.2006 को समाचार पत्रों अर्थात् प्रभात खबर एवं हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित किया गया था। उक्त कारणों की दृष्टि में, उक्त तथ्य का प्रतिवाद कि याची को जाँच रिपोर्ट नहीं दिया गया था, बिल्कुल झूठा है और विद्वान एकल न्यायाधीश ने गलत रूप से याची के प्रतिवाद पर विश्वास किया और, इसलिए, आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया कि याची ने काम नहीं किया था, अत:, वह पिछली मजदूरी और सेवा के किसी लाभ का हकदार नहीं है।

6. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया है। अपीलार्थी ने विवाद नहीं किया है कि विभागीय कार्यवाही जो याची के अभिकथित अवचार के 15-20 वर्ष बाद आरंभ की गयी थी, में याची की उपस्थिति में गवाहों का परीक्षण नहीं किया गया था और उसे किसी गवाह का प्रतिपरीक्षण करने का अवसर नहीं दिया गया है, याची का असहयोग और विभागीय कार्यवाही में उसकी अनुपस्थिति विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष आधार नहीं थी और

कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि विभाग कब याची के विरुद्ध अभिकथनों से अवगत हुआ था और काफी पहले वर्ष 1997 में विभागीय जाँच शुरू किया जाना इप्सित किया गया था और याची को निलंबित किया गया था और किस प्रकार समरुप आरोपों के लिए दूसरी जाँच की जा सकती थी? सारत: उन्हीं आरोपों को वर्ष 2001 में विरचित किया गया था और पुन: वर्ष 2005 में याची के विरुद्ध अतिरिक्त आरोप विरचित करना इप्सित किया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा तथ्यों को पूरी तरह कथन करते हुए इन समस्त तथ्यों पर विचार किया गया है और तत्पश्चात अभिनिर्धारित किया कि विभागीय जाँच निष्पक्ष और युक्तियुक्त नहीं है और इसने पूर्णत: नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया है। इन परिस्थितियों में, हमारा सुविचारित मत है कि आक्षेपित निर्णय में अवैधता नहीं है।

7. जहाँ तक याची के पारिणामिक लाभों का संबंध है, उन्हें इन परिस्थितियों में सही प्रकार से याची को दिया गया है तब विभाग निष्पक्ष रूप से विभागीय जाँच संचालित करने में बुरी तरह विफल रहा और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि याची-अपीलार्थी की रिट याचिका दिनांक 18.5.2007 को अनुज्ञात की गयी थी और लेटर्स पेटेन्ट अपील द्वारा दिनांक 18.5.2007 के निर्णय के विरुद्ध दाखिल किया गया था जिसे व्यतिक्रम के लिए खारिज कर दिया गया था और तब याची ने अवमान याचिका अवमान मामला सं॰ 541 वर्ष 2007 दाखिल किया है तब याची को पुनर्बहाल किया गया था।

8. उक्त कारणों से, स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी राज्य को यह दर्शाने के लिए कोई कारण नहीं है कि याची की बर्खास्तगी आदेश को अपास्त किए जाने से परिणत पारिणामिक लाभों से याची को इनकार किया जा सकता है, अत: इस आधार पर भी एल॰ पी॰ ए॰ में गुणागुण नहीं है। अत:, एल॰ पी॰ ए॰ खारिज किया जाता है।

9. एल॰ पी॰ ए॰ की खारिजी की दृष्टि में, कोई भी पारिणामिक लाभ, यदि इसे याची-अपीलार्थी को नहीं दिया गया है, पेंशन लाभ सहित आज के दिन से तीन माह की अवधि के भीतर याची-अपीलार्थी को दिया जाए।

---

ekuuh; ,p lhm feJk] U;k;efr

डॉ॰ एस॰ आर॰ मालूसरे

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (Cr.) No. 372 of 2004. Decided on 2nd July, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 338—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 258 एवं 468 (2) (c)—चिकित्सीय उपेक्षा–दांडिक कार्यवाही रोकने से इनकार–दवा की प्रतिक्रिया के कारण परिवादी अंधापन से पीड़ित हुआ–वाद हेतु के साढ़े तीन वर्ष से अधिक समय के बाद परिवाद दाखिल किया गया–याची के विरुद्ध एकमात्र अभिकथन यह है कि जब परिवादी दाँत में दर्द की शिकायत के साथ याची के पास गया, उसे याची द्वारा मसूढ़े में सूई दी गयी थी और कुछ दवाएँ भी विहित की गयी थी किंतु याची द्वारा कौन सी सूई दी गयी थी अथवा किन दवाओं को विहित किया गया था, परिवाद याचिका में प्रकट नहीं किया गया है–उसकी अनुपस्थिति में यह अभिनिश्चित नहीं किया जा सकता है कि याची द्वारा किया गया इलाज ऐसा था कि इसे

परिवादी द्वारा परिवादित बीमारी में बिल्कुल नहीं किया जा सकता था–परिवाद याचिका पूर्णतः परिसीमा वर्जित है–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 12 से 15)

निर्णयज विधि.–(2004) 6 SCC 422—Applied; (2005)6 SCC 1; (2011)1 SCC 53—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s D. Jerath, Abhinash Kumar, Vineet Kr. Vasisth, V.V. Pradhan, For the Petitioner; J.C. to G.P.-II, For the State; Mr. K. Sarkhel, For the Respondent No.2.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.–यह रिट आवेदन परिवाद केस सं॰ 807 वर्ष 2001 में, तब श्री ए॰ के॰ तिवारी, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राँची के न्यायालय में लंबित, में याची के विरुद्ध संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित उसमें पारित दिनांक 7.9.2004 के आदेश, जिसके द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 258 के अधीन याची द्वारा दाखिल आवेदन अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था, के अभिखंडन के लिए समुचित रिट, आदेश अथवा निर्देश जारी करने के लिए दाखिल किया गया है।

2. याची पेशेवर दंत चिकित्सक है जिसके विरुद्ध प्रत्यर्थी सं॰ 2 बसंती देवी उर्फ बुधी देवी द्वारा उसमें यह अभिकथन करते हुए परिवाद याचिका दाखिल की गयी है कि दिनांक 18 मार्च, 1998 को परिवादी प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने टेलीफोन से याची के साथ संपर्क किया क्योंकि वह अपने ऊपरी बाएँ बगल के दाँत में दर्द महसूस कर रही थी और याची ने सलाह दिया कि उसका दाँत निकालने की आवश्यकता है जिसके लिए वह सहमत हो गई। परिवाद याचिका में अभिकथित किया गया है कि याची ने उसके बायीं ओर के ऊपरी मसूढ़े में सूई दिया और कुछ दवा भी लिखा और उसे कुछ दिनों बाद आने को कहा। अभिकथित किया गया है कि कुछ घंटे बाद परिवादी का चेहरा सूजने लगा और वह अपने माथे में दर्द महसूस करने लगी जिस पर, वह पुनः याची के पास गयी और उसने उसको आश्वासन दिया था कि उसको कुछ नहीं हुआ था और सब कुछ सामान्य हो जाएगा। किंतु, परिवादी के माथे का दर्द और चेहरे की सूजन बढ़ती गयी जिस पर वह अगले दिन एच॰ ई॰ सी॰ अस्पताल गयी और उसे बताया गया था कि याची द्वारा दी गयी सूई से प्रतिक्रिया हुई थी। अभिकथित किया गया है कि तत्पश्चात परिवादी अपनी दोनों आँखों में दृष्टि खोने लगी और उसके माथे में भी गंभीर दर्द होना शुरू हो गया। अंततः याची (परिवादी) नवंबर, 1998 में शंकर नेत्रालय, चेन्नई गयी जहाँ वर्ष 2000 तक उसका इलाज होता रहा और तत्पश्चात उसकी दायीं आँख में कुछ सुधार हुआ था किंतु वह बायीं आँख से बिल्कुल अंधी हो गयी थी।

3. कि परिवादी दिनांक 8 जुलाई, 2000 को पुनः अभियुक्त याची के पास गयी जिस पर उसे उसके द्वारा दिए गए नुस्खे सहित इलाज के तमाम कागजातों को लाने के लिए कहा गया था। परिवादी अगले अपने इलाज का कागजात लायी, जिसे याची द्वारा लिया गया था और उसे एक सप्ताह बाद आने के लिए कहा गया था जिस दौरान याची ने उसे कागजात का परिशीलन और अन्य डॉक्टरों से सलाह करने का आश्वासन दिया। एक सप्ताह बाद, जब परिवादी याची से मिली, याची ने उससे कहा कि उसकी आँखों के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता था और उसके कागजात उसे लौटा दिए गए थे, किंतु नुस्खा जो याची द्वारा उसे दिया गया था, याची ने अपने पास रख लिया था। यह अभिकथित करते हुए कि याची के लापरवाह और उपेक्षापूर्ण कृत्य के कारण वह अपनी दृष्टि खो बैठी थी, विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के न्यायालय में परिवाद याचिका दाखिल की गयी थी जिसे परिवाद केस सं॰ 807 वर्ष 2001 के रूप में दर्ज किया गया था।

4. यह प्रतीत होता है कि सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर परिवादी का बयान दर्ज किया गया था और जाँच करने पर दिनांक 7.9.2002 के आदेश द्वारा भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 338 के अधीन अपराध के लिए

याची के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला पाया गया था। आगे प्रतीत होता है कि याची ने दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 916 वर्ष 2003 में इस न्यायालय में उक्त आदेश को चुनौती दिया था जिसे दिनांक 29 अप्रैल, 2004 के आदेश द्वारा याची द्वारा उठाए गए बिंदुओं को दर्ज किए बिना निपटाया गया था और उसे दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 258 के अधीन याचिका दाखिल करके परिसीमा के बिंदुओं और अन्य बिंदुओं को उठाने की स्वतंत्रता दी गयी थी जिसे आरंभिक विवाद्यक के रूप में न्याय निर्णीत करने का निर्देश दिया गया था। तद्नुसार, याची ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 258 के अधीन याचिका दाखिल किया जिसे अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित करते हुए कि यह परिवाद मामले में पोषणीय नहीं था, उक्त परिवाद मामला सं॰ 807 वर्ष 2001 में पारित दिनांक 7.9.2004 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। तत्पश्चात याची ने अपने विरुद्ध संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस आवेदन को दाखिल किया है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि याची के विरुद्ध दांडिक मामले का संस्थापन और उसमें पारित आदेश पूर्णत: अवैध हैं, क्योंकि याची पेशे से दंत चिकित्सक है और जब परिवादी अपने दाँत में समस्या लेकर पहली बार याची के पास आयी, याची ने उसे दवा दिया था। आगे निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका में बिल्कुल उल्लेख नहीं है कि वह कौन सी दवा थी जिसे याची द्वारा परिवादी को दिया गया था और इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि याची द्वारा उसको उक्त दवा विहित करने में कोई उपेक्षा की गयी थी जिसका परिणाम परिवादी की बीमारियों में हुआ जैसा परिवाद याचिका में अभिकथित किया गया है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि ऐसी कोई सूई नहीं है जिसका परिणाम परिवादी के अंधेपन में हो सकता था और तद्नुसार, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 338 के अधीन अपराध के लिए याची के विरुद्ध मामला नहीं बनाया जा सकता है।

6. अपने तर्क के समर्थन में, याची के विद्वान अधिवक्ता ने **2004(6) SCC 422** में प्रकाशित **डॉ॰ सुरेश गुप्ता बनाम दिल्ली की राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की सरकार एवं एक अन्य** में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा व्यक्त किया है, जिसमें एक डॉक्टर या शल्य चिकित्सक की दायिता नियत करने हेतु प्रमाणित करने को अपेक्षित अपेक्षा के स्तर पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था। उक्त मामले में, मरीज का नाक की विरूपता हटाने के लिए ऑपरेशन किया गया था एवं ऑपरेशन इतना छोटा था कि मरीज के साथ कोई भी नहीं आया था, यहाँ तक कि उसकी पत्नी भी नहीं, परन्तु मरीज की मृत्यु हो गयी थी। मरीज के पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट से, यह प्रकट था कि नेजल सेप्टम के सर्जनी से कटे भाग निकले जमे हुए रक्त से श्वास गमन में बाधा उत्पन्न होने से दम घुटने के कारण मृत्यु हई थी, जो इंगित करता था कि श्वास गमन मार्ग में रक्त जमने से रोकने के लिए पर्याप्त सावधानी नहीं बरती गई थी, जो दम घुटने में परिणत हुई। इस पृष्ठभूमि में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि निम्नवत अधिकथित की गयी है:–

> *"21. bl çdkj] tc ejht fpfdRlh; bykt vFkok 'kY; fpfdRlk d fy, lger gkrk g] fpfdRlkdeh d çR;d vlkoèkkuh Hkj ÑR; dk ^^nkfMd** ugh dgk tk ldrk gA bl ^^vkijkfèkd** doy rc rd dgk tk ldrk g tc fpfdRlkdeh viu ejht dh lj{kk d çfr d'kyrk dh ?kkj deh vFkok fuf"Ø;rk vkj ?kkj mnklhurk çnf'kr djrk g vkj ftl ?kkj vufHkKrk vFkok ?kkj mi{kk l mnHkkr gkrk ik;k x;k gA tc ejht dh eR; ek= fu.k; dh xyrh vFkok n?kVuk dk ifj.kke gkrh g] dkb nkfMd nkf;Ro bld lkFk lc) ugh fd;k tkuk pkfg,A vuoèkkuh ek= vFkok i;kIr n[kHkky vkj lrdrk dh deh dh dN fMxh flfoy nkf;Ro lftr dj ldrh Fkh fdr ml nkfMd :i l nk;h vfHkfuèkkfjr dju d fy, i;kIr ugh gkxhA*

x x x x x x x x

23. fpfdRlh; bykt d nkjku çR;d n?kVuk vFkok eR; d fy, nM nu d fy, fpfdRlkdeh d fo#) vxlj ugh gvk tk ldrk gA mud nk"k dh vkj bfxr dju oky i;kIr fpfdRlh; er d fcuk MkDVjk dk nkfMd vfHk;ktu bl 0;kid lenk; dh xyr lok dju tlk gkxk D;kfd ;fn U;k;ky; çR;d ml pht d fy, tk xyr gk tkrh g vLirkyk vkj MkDVjk ij nkfMd nkf;Ro vfèkjkfir dju yx rk MkDVj viu ejht dk lokfèkd lokÙke bykt dju d ctk, Lo; viuh lj{kk d ckj e vfèkd fpfrr jgxA ;g MkDVj vkj ejht d chp ijLij fo'okl dk Mxexku dh vkj y tk,xkA lg&vkijkfèkd mi{kk d vijkèk d fy, mldk fopkj.k dju d fy, vLirky e vFkok MkDVj d fDyfud e çR;d n?kVuk vFkok nHkkX; mi{kk dk ?kkj ÑR; ugh gA

xx xx xx

25. viu ejht dh eR; dkfjr dju oky MkDVj d flfoy vkj nkfMd nkf;Ro d chp] U;k;ky; d ikl MkDVj dh vkj l vfHkdfFkr vlkoèkkuh vkj mi{kk dh fMxh dk rkyu dk ef'dy VkLd gA vfHkdfFkr nkfMd vijkèk d fy,] MkDVj dh nk"kflf) d fy, ekud n%lkgl vkj tkuc> dj xyrh vFkkr ufrd :i l nk"kkjki.kh; vkpj.k dh mPprj fMxh gkuk pkfg,A

xx xx xx xx xx

*26. vr%] MkDVj dk nk"kfl) dju d fy, MkDVj dh vkj l mi{kk d mPp fMxh d ekey d lkFk vfHk;ktu dk vkuk gkxkA lefpr n[kHkky] lkoèkkuh vkj è;ku dh deh vFkok vukoèkkuh ek= flfoy nkf;Ro lftr dj ldrh g fdr nkfMd nkf;Ro ughA vr%] bykt d nkjku viu ejht dh eR; dkfjr dju oky MkDVj d fo#) vfHkdfFkr nkfMd vijkèk d ekey e U;k;ky;k u lno tkj fn;k g fd MkDVj d fo#) ifjokfnr ÑR; dk ,lh mPprj fMxh dh mi{kk vFkok mrkoykiu n'kkuk gkxk tk ml ekufld voLFkk dk minf'kr dj ftl doy ejht dh vkj i.k mnklhurk d :i e of.kr fd;k tk ldrk gA doy ,lh ?kkj mi{kk nMuh; gA** (tkj fn;k x;k)*

7. यह प्रश्न एक अन्य मामले में भी, **जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य एवं एक अन्य, 2005 (6) SCC 1** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुनः विनिश्चित किया गया था जिसमें भी उपेक्षा के कारण मरीज की मृत्यु के मामले में इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर सर्वोच्च न्यायालय के पास था। इस मामले में, चूँकि **सुरेश गुप्ता के मामले (ऊपर)** में अधिकथित विधि की शुद्धता पर संदेह किया गया था, मामला विचारार्थ तीन न्यायाधीशों की वृहतपीठ के पास निर्दिष्ट किया गया था। उपेक्षा के विभिन्न पहलूओं अर्थात् अपकृत्य के रूप में उपेक्षा; अपकृत्य के रूप में और अपराध के रूप में उपेक्षा; पेशेवरों द्वारा उपेक्षा, और दांडिक विधि में मेडिकल पेशेवर को विचार में लेते हुए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुनः विस्तारपूर्वक मामले पर विचार किया गया था और विभिन्न कोणों से विस्तारपूर्वक मामले पर चर्चा की गयी थी और उक्त निर्णय के पैराग्राफ 48 में निष्कर्ष वर्णित किए गए थे जो निम्नलिखित है:–

"48. ge viu fu"d"kZ dk fuEufyf[kr :i l l{kfir djr g%&

1. .....

2. fpfdRlk i'kk d lnHk e mi{kk vko';dr% fHkUurk d lkFk fopkj dju d fy, dgrh gA i'koj] fo'k"kr% MkDVj dh vkj l mrkoykiu vFkok mi{kk fu"df"kr dju d fy, vfrfjDr vufpru ykx gkxA vkthfodktU; mi{kk dk

ekeyk i'koj mi{kk d ekey l fHkUu gA n[kHkky dh deh ek=] fu.k; vFkok n?kVuk dh xyrh fpfdRlh; i'koj d vkj l mi{kk dk çek.k ugh gA tc rd MkDVj efMdy i'kk dk Lohdk; ml le; çpfyr çFkk dk vulj.k djrk g] ml ek= blfy, mi{kk dk nk;h vfHkfuèkkfjr ugh fd;k tk ldrk g fd cgrj fodYi vFkok bykt dk rjhdk miyCèk Fkk vFkok ek= blfy, fd ,d vfèkd n{k MkDVj u ml çFkk vFkok çfØ;k dk vulj.k djuk vFkok lgkjk yuk ugh puk gkrk ft ldk vulj.k@lgkjk vfHk;Dr u fy;k Fkk-------

3. i'koj dk nk fu"d"kk e l fdlh ,d ij mi{kk d fy, nk;h vfHkfuèkkfjr fd;k tk ldrk g] ;k rk mld ikl vè;if{kr n{krk ugh Fkk ft ld gku dk og nkok djrk Fkk vFkok mlu fn, x, ekey e ;fDr;Dr d'kyrk d lkFk ml n{krk dk ç;kx ugh fd;k Fkk tk og j[krk FkkA ;g fu.k; dju d fy, fd D;k vkjkfir 0;fDr mi{kkoku g ;k ugh] ykx fd;k tku okyk ekud ml i'kk e lkekU; n{krk dk ç;kx dju okyk lkèkkj.k n{k 0;fDr dh n{krk gkxhA çR;d i'koj d fy, ml 'kk[kk e ft le og i'kk djrk g d fy, mPpre Lrj dh fo'k"kKrk vFkok n{krk j[kuk lHko ugh gA ,d vR;Ur n{k i'koj d ikl cgrj x.k gk ldr g fdr ml mi{kk d vH;kjki.k ij vfHk;kftr fd, tk jg i'koj d dk;ikyu dk ij[ku dk vkèkkj vFkok ekinM ugh cuk;k tk ldrk gA

4. ... ...

5. mi{kk dh fofèk'kkL=h; voèkkj.kk flfoy vkj nkfMd fofèk e fHkUu gA tk flfoy fofèk e mi{kk gk ldrh g] og nkfMd fofèk e vko';dr mi{kk ugh gk ldrh gA vijkèk dh dkfV e mi{kk dk yku d fy, vkijkfèkd euklFkfr d rRo dk n'kkuk gh gkxkA fdlh dR; dk nkfMd mi{kk d rY; gku d fy, mi{kk dh fMxh dk T;knk mPprj vFkkr ?kkj vFkok vR;Ur mPp fMxh dk gkuk pkfg,A mi{kk tk u rk ?kkj g vkj u gh mPprj fMxh dh] flfoy fofèk e dkjokb dk vkèkkj çnku dj ldrh g fdr vfHk;ktu dk vkèkkj fufer ugh dj ldrh gA

*6. HkkO n0 l0 dh èkkjk 304A e 'kCn ^^?kkj** ç;Dr ugh fd;k x;k g] fQj Hkh ;g lfuf'pr g fd nkfMd fofèk e] mi{kk vFkok ykijokgh] ,k vfHkfuèkkfjr fd, tku d fy,] ,h mPp fMxh dh gkuh pkfg, tk ^?kkj* gkA HkkO n0 l0 dh èkkjk 304A e vku okyh vfHkO;fDr ^^ykijokg vFkok mi{kk i.k Ñ R;** dk 'kCn ^^?kkj :i l** }kjk vfgr fd, x, d :i e i<uk gkxkA*

*7. nkfMd fofèk d vèkhu mi{kk d fy, fpfdRlh; i'koj dk vfHk;kftr dju d fy, ;g n'kkuk gh gkxk fd vfHk;Dr u dN fd;k Fkk vFkok dN dju e foQy jgk Fkk ft l nh x;h rF;k vkj ifjfLFkfr;k e dkb fpfdRlh; i'koj viu lkekU; ckèk vkj food e ugh fd;k gkrk vFkok dju e foQy jgk gkrkA vfHk;Dr MkDVj }kjk fy;k x;k tkf[ke ,h çÑfr dk gkuk pkfg, fd migfr] tk ifj.kkfer gb] d gku dh çcy lHkkouk FkhA** (tkj fn;k x;k)*

इस प्रकार, **जैकब मैथ्यू के मामले (ऊपर)** में **सुरेश गुप्ता के मामले (ऊपर)** का निर्णयाधार सर्वोच्च न्यायालय की वृहत पीठ द्वारा मान्य ठहराया गया था।

8. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि परिवाद याचिका से प्रकट है कि दिनांक 18 मार्च, 1998 को याची द्वारा परिवादी को सूई दी गयी थी जबकि परिवाद याचिका दिनांक 5.12.2001 को अर्थात् वाद हेतु के साढ़े तीन वर्ष से अधिक के बाद दाखिल की गयी थी। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 338 के अधीन अपराध उस अवधि जो दो वर्षों तक बढ़ायी जा सकती

है के कारावास अथवा जुर्माना अथवा दोनों के साथ दंडनीय है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 468 (2) (c) ऐसे मामलों में संज्ञान लेने के लिए तीन वर्षों की परिसीमा विहित करती है और तद्नुसार परिसीमा की अवधि के बाद संज्ञान बिल्कुल वर्जित है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि परिवाद याचिका में अभिकथित किया गया है कि परिवादी याची द्वारा सूई लगाए जाने के तुरन्त बाद पीड़ित हो गयी और वह अपने माथे और चेहरे पर सूजन के साथ भयंकर दर्द से पीड़ित हुई और अंतत: वह अपनी दोनों आँखों में रोशनी खोने लगीं किंतु यह प्रकट है कि परिवादी ने वर्ष 2000 के मध्य तक शंकर नेत्रालय, चेन्नई में अपना इलाज जारी रखा। तत्पश्चात, अभिकथित किया गया है कि परिवादी दिनांक 8 जुलाई, 2000 को याची के पास गयी जब याची द्वारा अभिकथित रूप से कागजातों की मांग की गयी थी और उसे एक सप्ताह बाद आने को कहा गया था और जब वह एक सप्ताह बाद गयी, उसे याची द्वारा कहा गया था कि उसकी आँखों के लिए कुछ नहीं किया जा सकता था और याची ने अपने द्वारा उसको दिए गए नुस्खा को अपने पास रखकर उसके चिकित्सीय दस्तावेजों को उसे लौटा दिया। निवेदन किया गया है कि तत्पश्चात भी परिवादी ने अत्यन्त विलंब के बाद और तीन वर्ष की विहित अवधि के काफी परे दिसंबर, 2001 में परिवाद मामला दाखिल किया। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची के विरुद्ध संज्ञान लेने वाला आदेश दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 468(2)(c) द्वारा स्पष्टत: बाधित होता है और तत्पश्चात संपूर्ण कार्यवाही दूषित हो गयी है और इसे विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

9. इस संबंध में विद्वान अधिवक्ता ने **वी॰ एन॰ श्रीखंडे (डॉ॰) बनाम अनिता सेना फर्नांडीस, (2011)1 SCC 53,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है। उक्त मामले में, अनिता सेना फर्नांडीस जो नर्स थी ने डॉ॰ बी॰ एन॰ श्रीखंडे से अपना पित्ताशय हटाने के लिए शल्य चिकित्सा करवाया था। ऑपरेशन के बाद, वह अपने पेट में दर्द महसूस करती थी जो लगभग 9 वर्षों तक बना रहा और जब दर्द असहाय हो गया, उसने दिनांक 25.10.2002 को अपना दूसरा ऑपरेशन करवाया था जिसमें उसके पेट से गॉज का टुकड़ा हटाया गया था। तत्पश्चात, उसे डॉ॰ वी॰ एन॰ श्रीखंडे की दांडिक उपेक्षा के लिए 50 लाख रुपयों के मुआवजा का दावा करते हुए उपभोक्ता विवाद प्रतितोष फोरम के समक्ष अपना परिवाद दाखिल किया और मामला अंत में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया। उक्त मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उपभोक्ता फोरम में अनिता सेना फर्नांडीस द्वारा लाया गया हेतुक स्पष्टत: परिसीमा द्वारा वर्जित था। सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में लिया कि दिनांक 26.11.1993 को प्रत्यर्थी को वाद हेतुक प्रोद्भूत हुआ था अर्थात् उस तिथि पर जब अपीलार्थी ने ''कॉलिसिस्टेकटॉमी'' किया था जब उसके पेट में गॉज का टुकड़ा छोड़ दिया गया था अथवा नवंबर, 2002 में जब उसने लीलावती अस्पताल में हिस्टोपैथॉलाजी रिपोर्ट प्राप्त किया था। यदि प्रत्यर्थी सितंबर, 2002 तक दर्द, बेचैनी अथवा किसी अन्य असुविधा से पीड़ित नहीं हुई थी, तब युक्तियुक्त रूप से कहा जा सकता था कि केवल गॉज के टुकड़े का पता चलने पर जो दिनांक 25.10.2002 को की गयी शल्य चिकित्सा के परिणामस्वरुप उसके पेट में पाया गया था, उसको वाद हेतुक प्रोद्भूत हुआ था। उस मामले में, दिनांक 19.10.2004 को उसके द्वारा दाखिल परिवाद परिसीमा के भीतर हो सकता था किंतु चूँकि प्रत्यर्थी ने दर्द और वेदना के बावजूद नौ वर्षों तक मौन रखा, प्रत्यर्थी द्वारा लाया गया हेतुक स्पष्टत: परिसीमा वर्जित अभिनिर्धारित किया गया था।

10. इन निर्णयों पर विश्वास करते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उक्त परिवाद केस सं॰ 807 वर्ष 2001 में विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 7.9.2004 के आदेश सहित संपूर्ण

दांडिक कार्यवाही बिल्कुल अवैध है, क्योंकि मामले के तथ्यों में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 338 के अधीन याची के विरुद्ध अपराध नहीं बनता है और किसी स्थिति में संज्ञान बिल्कुल परिसीमा द्वारा वर्जित था और यह सुयोग्य मामला है जिसमें याची के विरुद्ध संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित कर दी जानी चाहिए।

11. परिवादी प्रत्यर्थी सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि याची के विरुद्ध किए गए अभिकथन की दृष्टि में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 338 के अधीन अपराध स्पष्टत: बनता है क्योंकि याची के उपेक्षापूर्ण कृत्य के कारण परिवादी गंभीर उपहति से पीड़ित हुई थी जो उसकी दृष्टि खोने की ओर ले गयी। आगे निवेदन किया गया है कि परिवादी की वेदना अभी भी जारी है और तद्नुसार, याची द्वारा किया गया अपराध चालू अपराध है और इस प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 468(2) (c) के अधीन विहित परिसीमा अपराध संज्ञान लेने के रास्ते में नहीं आएगी। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 258 के अधीन दाखिल आवेदन सही प्रकार से अवर न्यायालय द्वारा पोषणीय नहीं होने के कारण अस्वीकार कर दिया गया था। चूँकि इस याची द्वारा पहले दाखिल की गयी दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 916 वर्ष 2003 इस न्यायालय द्वारा दिनांक 29 अप्रिल, 2004 के आदेश द्वारा निपटा दी गयी थी, वर्तमान आवेदन पोषित नहीं किया जा सकता है।

12. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने पर मैं पाता हूँ कि याची द्वारा दाखिल पहला आवेदन याची को कतिपय निर्देश देते हुए निपटाया गया था। जिसका याची ने अनुसरण किया और अवर न्यायालय द्वारा उसके आवेदन की अस्वीकृति के बाद याची रिट अधिकारिता में पुन: इस न्यायालय के पास आया है जो बिल्कुल पोषणीय है। मैं परिवाद याचिका से आगे पाता हूँ कि याची के विरुद्ध एकमात्र अभिकथन यह है कि जब परिवादी अपने दाँत में दर्द की शिकायत लेकर याची के पास गयी, याची द्वारा उसके मसूढ़े में सूई दिया गया था और कुछ दवाओं को भी विहित किया गया था किंतु याची द्वारा कौन सी सूई दी गयी थी अथवा दवा विहित की गयी थी, परिवाद याचिका में इसे प्रकट नहीं किया गया है। उसकी अनुपस्थिति में, यह अभिनिश्चित नहीं किया जा सकता है कि याची द्वारा किया गया इलाज ऐसा था कि इसे परिवादी द्वारा परिवादित बीमारी में बिल्कुल नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार, क्या याची की कार्रवाई को 'घोर' उपेक्षा अथवा लापरवाही के रूप में वर्णित किया जा सकता था, परिवाद याचिका में किए गए अभिकथनों के आधार पर विनिश्चित नहीं किया जा सकता है। यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि याची द्वारा अपनाया गया इलाज का रास्ता ऐसा रास्ता था जिसे किसी चिकित्सा पेशेवर ने नहीं अपनाया होता यदि वह सामान्य सावधानी से काम कर रहा होता और न ही यह दर्शाने के लिए कुछ है कि इस याची ने कुछ किया था अथवा कुछ करने में विफल रहा था जो दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में कोई चिकित्सा पेशेवर अपने सामान्य बोध और विवेक में नहीं किया होता अथवा करने में विफल रहता।

13. मेरे सुविचारित मत में, याची का मामला **डॉ॰ सुरेश गुप्ता के मामले (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा पूर्णत: आच्छादित है, जो स्पष्टत: अधिकथित करता है कि डॉक्टर के विरुद्ध परिवादित कृत्य को ऐसी उच्चतर डिग्री की उपेक्षा अथवा लापरवाही दर्शाना होगा जो उस मानसिक अवस्था को उपदर्शित करे जिसे केवल मरीज की ओर बिल्कुल उदासीन रुख की तरह वर्णित किया जा सकता है और केवल ऐसी 'घोर' उपेक्षा दंडनीय है जिसके निर्णयाधार को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **जैकब मैथ्यू के मामले (ऊपर)** में पूर्णत: अनुमोदित किया गया है। तद्नुसार, याची के विरुद्ध दाखिल परिवाद मामला सहित उसमें पश्चातवर्ती आदेश विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किए जा सकते हैं और अभिखंडित किए जाने योग्य है।

14. मैं याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में आगे बल पाता हूँ कि परिवाद याचिका परिसीमा द्वारा पूर्णत: वर्जित है क्योंकि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 338 के अधीन अपराध दो वर्षों के महत्तम दंड द्वारा दंडनीय है और उक्त अपराध के लिए संज्ञान लेने के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 468 (2) (c) के अधीन विहित परिसीमा केवल तीन वर्ष है। परिवाद याचिका से प्रकट है कि सूई लेने के तुरन्त बाद परिवादी सूजन के साथ दर्द महसूस करने लगी जो परिवादी को लगभग अंधेपन की ओर ले गया और यद्यपि दिनांक 18.3.1998 को याची द्वारा इलाज किया गया था, परिवाद केवल दिसंबर, 2001 में साढ़े तीन वर्ष के अत्यधिक विलंब के बाद दाखिल किया गया था और तद्नुसार, संज्ञान स्पष्टत: दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 468 (2) (c) के अधीन वर्जित था।

15. पूर्वोक्त कारणों से, श्री ए॰ के॰ तिवारी, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राँची के समक्ष तब लंबित परिवाद केस सं॰ 807 वर्ष 2001 में याची के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही सहित दिनांक 7.9.2002 का आदेश जिसके द्वारा याची के विरुद्ध संज्ञान लिया गया था और उसमें पारित दिनांक 7.9.2004 के आदेश को भी एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjs vkjs çlkn] U;k;efr

प्रशांत बोथरा

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 617 of 2010. Decided on 22nd August, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 406 एवं 323—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—न्यास का दांडिक भंग, छल एवं उपहति–संज्ञान–मासिक किश्तों के गैर भुगतान के कारण वित्तदाता द्वारा क्रेनों की जब्ती–कंपनी के लिए क्रेनों को इस्तेमाल करने के लिए याची ने अभिकथित रूप से परिवादी को कपटपूर्वक और गैर ईमानदार रूप से प्रवंचित नहीं किया था–धाराओं 420 एवं 460 के अधीन संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित किया गया–किंतु, मुक्कों-थप्पड़ों से प्रहार करने के संबंध में परिवाद याचिका में किए गए अभिकथन की दृष्टि में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन संज्ञान लेने वाला आदेश अभिपुष्ट किया गया।

(पैराएँ 10 से 15)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Das, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mrs. Gauri Devi, For the O.P. No.2.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और विरोधी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह आवेदन सी॰/1 केस सं॰ 1160 वर्ष 2007 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित तत्कालीन न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 19.8.2008 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 406, 323 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए संज्ञान लिया गया है, के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है।

3. पक्षों की ओर से किए गए निवेदनों पर विचार करने के पहले परिवादी के मामले पर गौर करने की आवश्यकता है।

4. परिवादी का मामला यह है कि परिवादी ने मेसर्स कोहिनूर स्टील प्रा॰ लि॰, जिसका याची निदेशक है, को भाड़े पर दो मोबाइल क्रेनों की आपूर्ति किया था। बाद में, भाड़े पर मेसर्स कोहिनूर स्टील प्रा॰ लि॰ की सेवा में एक अन्य क्रेन प्रस्तुत किया गया था। काम पूरा होने के बाद परिवादी ने भुगतान के लिए 1,52,892/- रुपयों का बिल दिया किंतु भुगतान करने के लिए अनेक रिमाइंडरों के बावजूद इसका भुगतान नहीं किया गया था।

5. आगे कथन किया गया है कि उक्त बिलों के गैर भुगतान के कारण परिवादी वित्तदाता को मासिक किश्त जमा नहीं कर सका था, जिसके परिणामस्वरुप वित्तदाता ने दोनों क्रेनों को जब्त कर लिया था।

6. आगे अभिकथन यह है कि 16.7.2007 को जब परिवादी अभियुक्त के कार्यालय गया, इस याची ने अन्य अभियुक्त को परिवादी को गेट के अंदर नहीं घुसने देने का निर्देश दिया और तब यह अभिकथन भी किया गया है कि अभियुक्तगण ने मुक्कों-थप्पड़ों से परिवादी पर प्रहार किया था।

7. किंतु, दिनांक 16.7.2007 को हुई घटना के संबंध में प्रतीत होता है कि परिवादी द्वारा सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर दिए गए बयान के परिशीलन से प्रतीत होता है कि अभियुक्तगण याची के अनुदेश पर परिवादी को उसका कॉलर पकड़ कर कार्यालय के गेट के बाहर ले आए। उक्त अभिकथन पर, परिवाद मामला सी॰/1 केस सं॰ 1160 वर्ष 2007 दर्ज किया गया था जिस पर याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406, 420 और 323 के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया गया था जो चुनौती के अधीन है।

8. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवाद में किए गए संपूर्ण अभिकथन को सत्य मानने पर भी भारतीय दंड संहिता की धारा 406 अथवा 420 के अधीन अपराध नहीं बनता है क्योंकि याची ने भाड़े पर क्रेन की सेवा देने के लिए परिवादी को अभिकथित रूप से कपटपूर्वक और गैरइमानदार रूप से अंतर्ग्रस्त नहीं किया है।

9. आगे इंगित किया गया था कि इसी वाद हेतुक के लिए परिवादी परिवाद में किए गए दावा को सामने रखते हुए स्थायी लोक अदालत के पास गया था किंतु परिवादी द्वारा किया गया दावा मान्य नहीं पाया गया था और इसलिए उस आवेदन को खारिज कर दिया गया था। स्थायी लोक अदालत के समक्ष मामला दाखिल किए जाने से संबंधित इस तथ्य का दमन परिवादी द्वारा किया गया था।

10. इसके विरूद्ध, विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवादी द्वारा आपूर्ति की गयी क्रेन की सेवा लेने पर याची ने भुगतान नहीं किया था और तद्द्वारा याची ने निश्चय ही भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन अपराध किया है और कि यह सत्य है कि परिवादी पर किए गए प्रहार के संबंध में अपने सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर परिवादी द्वारा दिए गए बयान में कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है किंतु परिवाद में इसके बारे में कहा गया है कि अभियुक्तगण ने मुक्कों-थप्पड़ों से परिवादी पर प्रहार किया था और तद्द्वारा परिवादी भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन अपराध किए जाने के बारे में वस्तुतः प्रकट करता है।

11. जहाँ तक धाराओं 406 और 420 के अधीन अपराध का संबंध है, इसे कभी भी निर्मित हुआ प्रतीत नहीं होता है भले ही परिवाद में किए गए संपूर्ण अभिकथन को सत्य माना जाता है क्योंकि याची ने कभी भी अभिकथित रूप से कंपनी के लिए क्रेनों की सेवा पाने के लिए परिवादी को कपटपूर्वक और गैर-इमानदार रूप से प्रवंचित नहीं किया है और इसलिए, न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लेने में निश्चय ही अवैधता किया है।

12. जहाँ तक धारा 323 के अधीन अपराध का संबंध है, यह सत्य है कि परिवादी द्वारा सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर दिए गए बयान में कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है कि समस्त अभियुक्तगण ने मुक्कों-थप्पड़ों से परिवादी पर प्रहार किया था किंतु परिवाद याचिका में इस संबंध में अभिकथन निश्चय ही है कि अभियुक्तगण ने मुक्कों-थप्पड़ों से परिवादी पर प्रहार किया था।

13. ऐसी स्थिति में, न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन अपराध का संज्ञान लेने में अवैधता करता प्रतीत नहीं होता है।

14. अत:, केवल आदेश का वही बिंदु जिसके द्वारा याची के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन संज्ञान लिया गया है, एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

15. इन परिस्थितियों के अधीन, यह आवेदन अंशत: अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh;k t ;k jk;] U;k;efr

सुरेश प्रसाद सिंह

cuke

केंद्रीय जाँच ब्यूरो, धनबाद

Criminal Appeal (S.J.) No. 512 of 2006. Decided on 14th August, 2012.

आर॰ सी॰ सं॰ 16A/01D में विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰-सह-अपर सत्र न्यायाधीश, XIII, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 5.4.2006 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश के विरुद्ध।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 7 एवं 13(2) सह-पठित धारा 13(1)(d)—अवैध परितोषण–दोषसिद्धि–ट्रैप कार्यवाही के संबंध में विरोधाभासी बयान–इस तरह के मामलों में संपुष्टिकरण अत्यन्त आवश्यक है कि वस्तुत: अभिकथित घटना के समय पर क्या हुआ था और स्वतंत्र गवाहों के साक्ष्य और भी महत्वपूर्ण हैं–स्वतंत्र गवाह के साक्ष्य में अपीलार्थी से कलंकित करेंसी नोटों की बरामदगी के संबंध में विरोधाभास हैं–अभियोजन ने अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा मांग और स्वीकार्यता को सिद्ध नहीं किया है–अपीलार्थी को संदेह का लाभ देकर दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त किया गया–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 13 से 15)

अधिवक्तागण.–M/s. Indrajit Sinha, Vimal Kumar, For the Appellant; Mr. Md. Mokhtar Khan, For the C.B.I.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थी ने यह अपील आर॰ सी॰ सं॰ 16A/01D में विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰-सह-अपर सत्र न्यायाधीश XIII, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 5.4.2006 के दोषसिद्धि के

निर्णय और दंडादेश को अपास्त करने के लिए दाखिल किया है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 7 और 13(2) सह-पठित 13(1)(A) और 13(1) (d) के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया है और उसको भ्र॰ नि॰ अधिनियम की धारा 7 के अधीन छह माह का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया है और आगे भ्र॰ नि॰ अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन एक वर्ष का कारावास भुगतने का दंडादेश दिया है। दोनों दंडादेश साथ-साथ चलेंगे।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि अलीजान मियाँ और राम प्रसाद शर्मा ने आरक्षी अधीक्षक, सी॰ बी॰ आई॰, धनबाद के समक्ष दिनांक 6.11.2001 को दो पृथक परिवाद याचिकाओं को उसमें यह अभिकथन करते हुए दाखिल किया कि अभियुक्त अपीलार्थी सुरेश प्रसाद सिंह ने वर्ष 2000-2001 के लिए बोनस के भुगतान की ओर उनके पक्ष में जारी चेक देने के लिए अवैध परितोषण के रूप में उनमें से प्रत्येक से 100/- रुपया मांगा था। तत्पश्चात् उक्त परिवाद याचिका सत्यापन के लिए एस॰ आई॰, सी॰ बी॰ आई॰ (अ॰ सा॰ 8) को निर्दिष्ट की गयी थी। सत्यापन के बाद उसने सत्यापन रिपोर्ट (प्रदर्श 13) दाखिल किया और परिवादों को वास्तविक और सही पाया गया था। तत्पश्चात्, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 7 और 13(2) सह-पठित 13(1) (A) और 13(1)(d) के अधीन अपीलार्थी के विरुद्ध मामला संस्थापित किया गया था। अन्वेषण आरंभ करने पर, अ॰ सा॰ 9 ने पूर्वोक्त अभियुक्त पर जाल बिछाने का प्रबंध किया। कोयला नगर, नगर प्रशासन, बी॰ सी॰ सी॰ एल॰, धनबाद के कार्यालय के साथ संपर्क किया गया था और दिनांक 6.11.2001 को स्वतंत्र गवाहों के रूप में कृत्य करने के लिए दो अधिकारियों/पदधारियों को एस॰ पी॰, सी॰ बी॰ आई॰, धनबाद के कार्यालय भेजने का अनुरोध किया गया था। कार्मिक प्रबंधक, के॰ एन॰ टी॰ ए॰, बी॰ सी॰ सी॰ एल॰, धनबाद ने इस प्रयोजन से नरेन्द्र कुमार सिन्हा, वरीय टेक्निकल पर्यवेक्षक और विरेन्द्र कुमार लल्ला, राजस्व निरीक्षक को प्रतिनियुक्त किया। सी॰ बी॰ आई॰ पदधारियों की टीम गठित की गयी थी और पूर्वोक्त स्वतंत्र गवाहों सहित समस्तों के साथ परिवादियों अली जान मियाँ और राम प्रसाद शर्मा का परिचय कराया गया था। प्रायोगिक प्रदर्शन द्वारा जाल बिछाने और रासायनिक पाउडर का उपयोग करने की प्रक्रिया टीम के सदस्यों को स्पष्ट की गयी थी। दोनों परिवादियों में से प्रत्येक को 100/- रुपया देने के लिए कहा गया था क्योंकि अभियुक्त सुरेश प्रसाद सिंह को अवैध परितोषण के रूप में इसका भुगतान करने के लिए उनके द्वारा उक्त राशि को लाया गया था। आरंभिक ज्ञापन में जी॰ सी॰ नोटों की संख्या नोट की गयी थी और उक्त नोटों पर फेनोल्पथेलिन पाउडर लगाया गया था और तत्पश्चात बनायी गयी योजना के अनुसार अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा इनकी मांग करने पर देने के लिए इन्हें परिवादीगण-अलीजान मियाँ और रामप्रसाद शर्मा को दिया गया था। तत्पश्चात्, समस्त टीम सदस्य अभियुक्त अपीलार्थी के कार्यालय गए थे किंतु चूँकि उस समय पर काउंटर बंद था, उन सबों ने प्लैटफॉर्म के माध्यम से प्रवेश किया। दोनों परिवादीगण अली जान मियाँ और राम प्रसाद शर्मा सी॰ बी॰ आई॰ अधिकारियों के साथ कार्यालय में गए। तत्पश्चात, राम प्रसाद शर्मा ने अभियुक्त अपीलार्थी से चेक मांगा जिस पर अभियुक्त अपीलार्थी ने उनसे पूछा कि क्या वे 100/- रुपया लाए हैं। इस पर, दोनों परिवादीगण ने सौ रुपयों के दो नोटों को सौंपा जिसके बाद अभियुक्त अपीलार्थी ने भुगतानशीट पर परिवादीगण का हस्ताक्षर लिया और उनको चेक दिया। अभियुक्त अपीलार्थी ने पूर्वोक्त नोटों को अपनी कमीज की जेब में रखा और संकेत किए जाने पर सी॰ बी॰ आई॰ अधिकारियों ने तुरन्त अपीलार्थी को पकड़ लिया और उसकी जेब से पूर्वोक्त दो करेंसी नोटों को बरामद किया। सम्यक औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद ट्रैप पार्टी ने अभियुक्त अपीलार्थी को गिरफ्तार किया और उसके विरुद्ध मामला दर्ज किया गया था। अन्वेषण पूरा करने के बाद भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1998 की पूर्वोक्त धाराओं के अधीन उसके विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था।

3. अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए दस गवाहों का परीक्षण किया है। वे हैं: अ॰ सा॰ 1 अलीजान मियाँ (परिवादी), अ॰ सा॰ 2 राम प्रसाद शर्मा (परिवादी), अ॰ सा॰ 3 बिरेन्द्र कुमार लाला छाया गवाह, अ॰ सा॰ 4 नरेन्द्र कुमार सिन्हा (छाया गवाह), अ॰ सा॰ 5 नीरज वर्मा (मंजूरी देनेवाले प्राधिकारी), अ॰ सा॰ 6 पुरकैत (सी॰ एफ॰ एस॰ एल॰ के विशेषज्ञ), अ॰ सा॰ 7 कुमार अबू बकर (सीनियर डिविजनल कैशियर), अ॰ सा॰ 8 राजेश कुमार प्रसाद (सत्यापन अधिकारी), अ॰ सा॰ 9 उमेश कुमार (आई॰ ओ॰), अ॰ सा॰ 10 रामाधार महतो और बचाव पक्ष ने दो गवाहों अर्थात् ब॰ सा॰ 1 राधा प्रसाद वर्मा और ब॰ सा॰ 2 कौशल किशोर सिंह का परीक्षण किया है।

4. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री इंद्रजीत सिन्हा ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय यह विचार करने में विफल रहा कि अ॰ सा॰ 5 ने अपने समक्ष मौजूद किसी सामग्री के बिना अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान किया है। अत:, मंजूरी किसी आधार के बिना दी गयी और केवल इस आधार पर अपीलार्थी-अभियुक्त को दोषमुक्त कर देना चाहिए था।

5. श्री सिन्हा ने आगे निवेदन किया कि अ॰ सा॰ 3 और अ॰ सा॰ 4 स्वतंत्र चश्मदीद गवाह (छाया गवाह) हैं। अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा धन की मांग, स्वीकार्यता और उससे वसूली के संबंध में उनके साक्ष्य में मुख्य विरोधाभास है। अ॰ सा॰ 3 ने अपने साक्ष्य के पैरा 29 में कथन किया है कि वह पहले अभियुक्त अपीलार्थी के कमरे में नहीं गया था। जब परिवादी द्वारा संकेत किया गया था और अभियुक्त अपीलार्थी को पहले ही धन दिया जा चुका था और दोनों परिवादीगण ने कहा कि धन स्वीकार कर लिया गया है, केवल तब वह अभियुक्त अपीलार्थी के कमरे में घुसा। उसने आगे कथन किया है कि उसने धन स्वीकार किए जाते देखा है। श्री सिन्हा ने प्रतिवाद किया है कि जब यह गवाह धन स्वीकार किए जाने के बाद अपीलार्थी के कमरे/काउंटर में घुसा, उसके लिए यह कहना संभव नहीं है कि क्या उसने अपीलार्थी को परिवादी से धन मांगते हुए अथवा परिवादी से इसे स्वीकार करते हुए सुना है और उसकी ओर से धन स्वीकार किए जाने को देखना संभव भी नहीं है। आगे प्रतिवाद किया गया है कि इस गवाह (अ॰ सा॰ 3) ने वसूली के संबंध में कथन किया है कि उसने अभियुक्त अपीलार्थी की जेब से दो कलंकित करेंसी नोटों को निकाला था। तत्पश्चात्, उसने करेंसी नोटों की संख्या को ट्रैप पूर्व ज्ञापन में उल्लिखित नोटों के नंबर के साथ मिलान किया। उक्त वसूली के बाद, उसने उक्त दो करेंसी नोटों को दो लिफाफों में रखा और उनको मुहरबंद किया।

6. श्री सिन्हा ने आगे प्रतिवाद किया है कि अन्य चश्मदीद गवाह ने भी पैरा 6 में कथन किया है कि उसे अभियुक्त अपीलार्थी की जेब से धन निकालने के लिए कहा गया था और उसने ऐसा किया। तत्पश्चात्, उक्त करेंसी नोटों के नंबरों को ट्रैप-पूर्व ज्ञापन में लिखे नंबरों के साथ मिलान किया गया था और नंबरों को एक ही पाया गया था। तत्पश्चात्, उक्त करेंसी नोटों को दो लिफाफों में रखा गया था जिसे बाद में मुहरबंद किया गया था। इस प्रकार, गवाह सं॰ 3 और 4 दोनों ने दावा किया है कि उन्होंने अपीलार्थी से करेंसी नोटों को निकाला है किंतु अभियोजन का मामला यह है कि केवल बिरेन्द्र कुमार लाला (अ॰ सा॰ 3) ने अभियुक्त अपीलार्थी की जेब से राशि बरामद किया है। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 3 और अ॰ सा॰ 4 का साक्ष्य अभियुक्त अपीलार्थी से राशि की वसूली के संबंध में अत्यन्त संदेह उत्पन्न करता है और अभियोजन के संपूर्ण मामले को झूठा ठहराता है।

7. यह प्रतिवाद भी किया गया है कि अ॰ सा॰ 4 अलीजान से संकेत पाने के बाद कमरे में घुसा और वह अभियुक्त अपीलार्थी के कमरे में पिछले दरवाजे से आया। उसके बयान से स्पष्ट है कि वह अभिकथित घटना होने के बाद घुसा था और उसने यह कथन नहीं किया है कि वह ऐसी अवस्था में था

जहाँ से वह अभियुक्त अपीलार्थी को देख-सुन सकता था। अत:, मांग और स्वीकार किए जाने के संबंध में उसका साक्ष्य संदेहास्पद है।

8. श्री सिन्हा ने आगे प्रतिवाद किया है कि ट्रैप मेमो में और अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 3 के साक्ष्य में भी ट्रैप कार्यवाही के समय के संबंध में विरोधाभासी बयान हैं क्योंकि सी॰ बी॰ आई॰ पदधारियों ने ट्रैप मेमो के मुताबिक सायं 4.30 बजे अपीलार्थी के कार्यालय में छापा मारा था जबकि अ॰ सा॰ 1 ने प्रतिपरीक्षण के पैरा 5 में विनिर्दिष्टत: कथन किया है कि वह दोपहर 3.45 बजे अ॰ सा॰ 2 और अन्य के साथ अपीलार्थी के कार्यालय गया और अ॰ सा॰ 3 ने अपने प्रति परीक्षण में पैरा 7 पर कथन किया है कि वे दोपहर लगभग 3.30 बजे स्टेशन पहुँचे। इस प्रकार, अभिकथित घटना का समय भी निश्चित नहीं है।

9. श्री सिन्हा ने इंगित किया है कि घटना स्थल के संबंध में भी सुस्पष्ट विरोधाभास हैं क्योंकि अभियोजन ने इसे काउंटर सं॰ 7 अभिकथित किया है, जबकि अ॰ सा॰ 7 ने अपने अभिसाक्ष्य के पैरा 2 पर कथन किया है कि वह और अपीलार्थी काउंटर सं॰ 11 पर, और न कि काउंटर सं॰ 7 पर, कार्यरत थे जैसा अभिकथित किया गया है।

10. श्री सिन्हा ने आगे इंगित किया कि अ॰ सा॰ 1 अर्थात् अलीजान मियाँ (परिवादी) ने अपने साक्ष्य के पैरा 22 पर कथन किया है कि उसने सी॰ बी॰ आई॰ को लिखित परिवाद दिया था और एक अन्य परिवादी अ॰ सा॰ 2 अर्थात् राम प्रसाद शर्मा (परिवादी) ने भी परिवाद किया है किंतु उन दोनों ने एक परिवाद याचिका पर संयुक्त रूप से हस्ताक्षर किया किंतु आश्चर्यजनक रूप से, सी॰ बी॰ आई॰ ने अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 2 के दो पृथक परिवादों को प्रस्तुत किया है जो अभियोजन मामले पर गंभीर संदेह उत्पन्न करता है।

11. सी॰ बी॰ आई॰ के विद्वान अधिवक्ता श्री मोख्तार खान ने कथन किया है कि अभियोजन को केवल ट्रैप कार्यवाही सिद्ध करना है और इस मामले में अभियोजन ने इसे सिद्ध किया है। यह निवेदन भी किया गया है कि ट्रैप-पूर्व, ट्रैप और ट्रैप-पश्चात संबंध में समस्त औपचारिकताएँ समुचित रूप से पूरी की गयी है और अभियोजन ने अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध किया है। अत:, आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप की जरूरत नहीं है।

12. मैंने अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों और प्रदर्श के रूप में चिन्हित दस्तावेज और गवाहों के साक्ष्य का परिशीलन किया है। मंजूरी आदेश, जो प्रदर्श 4 है, स्पष्टत: दर्शाता है कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी ने सामग्रियों का परीक्षण करने के बाद मंजूरी आदेश दिया है। इस प्रकार, मंजूरी आदेश में अवैधता नहीं है।

13. अभियुक्त अपीलार्थी की जेब से कलंकित करेंसी नोटों की बरामदगी के संबंध में अ॰ सा॰ 3 और अ॰ सा॰ 4 के साक्ष्य स्वीकृत रूप से एक'दूसरे के विरोधाभासी हैं, जैसा श्री सिन्हा द्वारा इंगित किया गया है। मैं आगे पाती हूँ कि छाया गवाहों में से किसी ने कथन नहीं किया है कि वे ऐसी अवस्था में थे कि वे अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा अवैध परितोषण की मांग और इसको स्वीकार किए जाने को देख सकते थे। दूसरी ओर, उन्होंने अत्यन्त विनिर्दिष्ट रूप से कथन किया है कि वे अलीजान (परिवादियों में से एक) से संकेत पाने के बाद कमरे में घुसे और उक्त संकेत कलंकित करेंसी नोटों को स्वीकार किए जाने के बाद दिया गया था। अत:, यह अभियोजन मामले पर संदेह उत्पन्न करता है। यह सुनिश्चित सिद्धांत है कि इस तरह के मामले में संपुष्टिकरण अत्यन्त आवश्यक है कि वस्तुत: अभिकथित घटना के समय पर क्या हुआ था और स्वतंत्र गवाहों का साक्ष्य और भी महत्वपूर्ण है। जैसी चर्चा ऊपर की गयी है, पूर्वोक्त स्वतंत्र गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 3 और अ॰ सा॰ 4 के साक्ष्य में अभियुक्त अपीलार्थी से कलंकित करेंसी नोटों की बरामदगी के संबंध में विरोधाभास हैं। इसके अतिरिक्त, दोनों परिवादियों के साक्ष्य के सिवाए मांग

और स्वीकृति के संबंध में स्वतंत्र गवाहों में से किसी ने इसके बारे में विनिर्दिष्टत: कथन नहीं किया है। अत:, यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियोजन ने अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा मांग और स्वीकृति को सिद्ध किया है जो अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए पूर्वोक्त आरोप के प्रमाण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, बरामदगी के संबंध में स्वतंत्र गवाहों के बयानों में विरोधाभास है।

14. प्रदर्श के रूप में चिन्हित दस्तावेजों से मैं पाती हूँ कि परिवाद याचिकाएँ (प्रदर्श 1 और 3) दोनों परिवादियों द्वारा दिनांक 6.11.2001 को दाखिल की गयी थी और सत्यापन रिपोर्ट (प्रदर्श 10) दर्शाता है कि सत्यापन दिनांक 6.11.2001 को किया गया था और ट्रैपपूर्व ज्ञापन (प्रदर्श 14) और बरामदगी ज्ञापन (प्रदर्श 11) दोनों को दिनांक 6.11.2001 के हैं। दोनों परिवादीगण ने अपनी परिवाद याचिका में कथन किया है कि वे अपनी बकाया बोनस राशि मांगने के लिए दिनांक 6.11.2001 को अभियुक्त अपीलार्थी के पास गए और तत्पश्चात उन्होंने उसी दिन संयुक्त परिवाद याचिका दाखिल किया। यह तथ्य स्पष्टत: सिद्ध करता है कि सी॰ बी॰ आई॰ प्राधिकारियों के समक्ष परिवाद दाखिल करने से ट्रैप कार्यवाही में राशि की बरामदगी तक का संपूर्ण प्रसंग एक दिन अर्थात् दिनांक 6.11.2001 को ही पूरा कर लिया गया था और वह अभियुक्त अपीलार्थी का रेलवे काउंटर खुलने के बाद और उसी दिन सायं 4.30 बजे तक। यह भी अभियोजन मामले पर संदेह उत्पन्न करता है। अत:, जैसा साक्ष्य और अभिलेख पर मौजूद सामग्री से स्पष्ट है, जैसी चर्चा पहले की गयी है, की अभियोजन मामला संदेहमुक्त नहीं है।

15. इन समस्त पहलूओं पर विचार करते हुए मैं पाती हूँ कि अभियोजन अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपों को समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में विफल रहा है। अत:, मैं संदेह का लाभ देते हुए इस अपील को अनुज्ञात करती हूँ और आर॰ सी॰ सं॰ 16A/01D में विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰-सह-अपर सत्र न्यायाधीश XIII, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 5.4.2006 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त करती हूँ और चूँकि अपीलार्थी जमानत पर है, उसे उसके जमानत बंध पत्र के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

पांडू डिग्गी

cuke

झारखंड राज्य

Criminal (Jail) Appeal (DB) No. 1506 of 2003. Decided on 2nd August, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 5 वर्ष 2003/एस॰ टी॰ आर॰ सं॰ 2 वर्ष 2003 में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट-III, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 4 अगस्त, 2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या-आजीवन कारावास-घटना के पहले मृतक और अपीलार्थी के बीच झगड़ा हुआ था-सूचक घटना का चश्मदीद गवाह है-चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामला संपुष्ट-झूठा आलिप्त करने का कारण नहीं है-केवल इसलिए कि अभियोजन साक्षियों ने अपीलार्थी और मृतक के बीच विवाद का भिन्न कारण बताया, अभियोजन पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी ने मृतक की हत्या की थी-अपील खारिज। (पैराएँ 9 से 13)

निर्णयज विधि.–AIR 1987 SC 1151—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Krishna Shankar, *Amicus Curiae,* For the Appellant; Mr. T.N. Verma, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 5 वर्ष 2003/एस॰ टी॰ आर॰ सं॰ 2 वर्ष 2003 में अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध करने के लिए दोषसिद्ध करते हुए और उसको आजीवन कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट-III, चाईबासा द्वारा दिनांक 4 अगस्त, 2003 को पारित दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि सीले समद (अ॰ सा॰ 3) ने दिनांक 8.11.2002 को रात्रि लगभग 10.35 बजे पुलिस के समक्ष इस प्रभाव का बयान दर्ज किया कि सायं लगभग 4 बजे उस दिन अपीलार्थी आया और उसके पिता बीर सिंह समद (मृतक) को घर से बुलाया और जब वह घर से बाहर आया, अपीलार्थी ने उसके पेट में छूरा मारा जिस कारण वह गंभीर रूप से घायल हो गया और जमीन पर गिर गया। शोर मचाने पर, उसकी माता अ॰ सा॰ 1 घर से बाहर आयी और पिता को जमीन पर पड़ा देखा। अपीलार्थी यह कहते हुए भाग गया कि उसने सूचक के पिता को छूरा मारा है। सूचक ने आगे कहा कि अपीलार्थी ने उसके पिता की हत्या करने के आशय से ऐसी उपहति को कारित किया। उसने आगे कहा कि मृतक मदिरा सेवन करने अपीलार्थी के घर जाता था जहाँ लगभग 15 दिन पहले उन दोनों के बीच झगड़ा हुआ था जिस पर अपीलार्थी ने उसको गंभीर परिणामों की धमकी दी थी।

3. न्याय मित्र के रूप में अपीलार्थी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण शंकर ने **AIR 1987 SC 1151 (गुरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास करते हुए निवेदन किया कि प्राथमिकी में और गवाहों के साक्ष्यों में अभिकथित घटना के लिए भिन्न-भिन्न हेतु आए हैं और, इसलिए, हेतु संदेहास्पद है और अधिकाधिक धारा 304 भाग II के अधीन दोषसिद्धि अधिनिर्णीत की जा सकती थी। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अभियोजन मामले में अनेक असंगतियाँ हैं। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि यह एकल वार का मामला है और वार दोबारा नहीं किया गया था। अंत में उन्होंने निवेदन किया कि अपीलार्थी की आयु 75 वर्ष है और वह लगभग नौ वर्षों से अब तक कारा अभिरक्षा में है।

4. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. अभियोजन ने नौ गवाहों का परीक्षण किया। अ॰ सा॰ 1 मृतक की पत्नी है जो घटना के बारे में हल्ला सुनने पर घर से बाहर आयी। अ॰ सा॰ 2 सूचक की पत्नी है जो मृतक के साथ घर से बाहर आयी और वह चश्मदीद गवाह है। अ॰ सा॰ 3 सूचक है और घटना का चश्मदीद गवाह भी है। अ॰ सा॰ 4 डॉक्टर है। अ॰ सा॰ 5 मृतक का भाई है अ॰ सा॰ 6 उसका पड़ोसी है। अ॰ सा॰ 7, अनुश्रुत गवाह है। अ॰ सा॰ 8 अन्वेषण अधिकारी है और अ॰ सा॰ 9 पक्षद्रोही गवाह है।

6. अ॰ सा॰ 1 ने अभियोजन मामले का समर्थन किया है। उसने अन्य बातों के साथ कहा कि उसकी बहू (अ॰ सा॰ 2) द्वारा अपीलार्थी के हाथ से 'भुजाली' छीन ली गयी थी। उसने आगे कहा कि अपीलार्थी ने मृतक के पेट में भुजाली से एक उपहति कारित किया था। उसने आगे कहा कि भुजाली उसके आंगन में रखी गयी थी और तब इसे पुलिस को सौंपा गया था।

अपने प्रति परीक्षण में उसने कहा कि घटना की तिथि पर दोपहर लगभग 3 बजे अपीलार्थी और

मृतक के बीच झगड़ा हुआ था और कि अपीलार्थी मृतक से कह रहा था कि तुमने गाँव में दाह-संस्कार के लिए चावल या पैसा नहीं दिया था।

7. अ॰ सा॰ 2 मृतक की बहू है जो मृतक के साथ घर के बाहर आयी। वह चश्मदीद गवाह है। उसने अन्य बातों के साथ कहा कि ज्योंही मृतक घर से बाहर आया, उनके बीच कोई बातचीत हुए बिना अपीलार्थी ने मृतक के पेट में भुजाली का वार किया। खून नहीं बह रहा था। ससुर (मृतक) जमीन पर गिर गया। उसे अस्पताल ले जाया गया था जहाँ प्रातः लगभग 5 बजे उसकी मृत्यु हो गयी। उसके द्वारा भुजाली छीनी गयी थी और इसे पुलिस को दिया गया था।

8. सूचक अ॰ सा॰ 3 भी चश्मदीद गवाह है। उसने अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है।

9. अ॰ सा॰ 4 डॉक्टर है जिसने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण संचालित किया और पेट के बाएं हिस्से पर भेदता हुआ जख्म पाया। डॉक्टर के मुताबिक मृत्यु का कारण लंबे भेदने वाले वस्तु द्वारा कारित पेरिटोनाइटिस, हेमरेज और आघात था।

10. अ॰ सा॰ 5 मृतक का भाई है, जिसने अभियोजन मामले का समर्थन किया। उसने अन्य बातों के साथ कथन किया कि अपीलार्थी शराब बनाता था और उसके एवं मृतक के बीच धन के संबंध में विवाद था। अ॰ सा॰ 6, मृतक के पड़ोसी ने भी अभियोजन मामले का समर्थन किया।

11. अ॰ सा॰ 8 अन्वेषण अधिकारी ने अन्य बातों के साथ कहा कि उसने घटनास्थल से रक्तरंजित छूरा (भुजाली) जब्त किया था।

12. पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद हम पाते हैं कि यद्यपि यह एकल वार का मामला है किंतु प्रतीत होता है कि अपीलार्थी तेज भेदने वाले हथियार से लैस होकर आया और किसी उकसावे और झगड़ा के बिना इसके द्वारा मृतक के पेट में उपहति कारित किया। वार को दोहराने का मौका नहीं था क्योंकि अ॰ सा॰ 2 द्वारा इसे अपीलार्थी के हाथ से छीन लिया गया था। झूठा आलिप्त करने का कारण प्रतीत नहीं होता है। केवल इसलिए कि अ॰ सा॰ 1 और 5 ने अपीलार्थी और मृतक के बीच विवाद के लिए भिन्न कारण बताया है, अभियोजन मामले पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी ने उनके बीच विवाद के कारण मृतक की हत्या की थी।

13. हमारे मत में, अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपीलार्थी के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम हुआ है। उसके विरुद्ध पारित दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय और दंडादेश में इस न्यायालय के हस्तक्षेप के लिए आधार नहीं बनाया गया है। तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; vkjs vkjs çlkn] U;k;efr

नंद किशोर लाल एवं अन्य (1679 में)

रामजी प्रसाद गुप्ता एवं एक अन्य (42 में)

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य (दोनों में)

Cr. M. Nos. 1679 of 2011 with 42 of 2012. Decided on 23rd August, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 467, 468, 471 एवं 120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल, कूटरचना एवं षडयंत्र–संज्ञान–याचीगण अंचलाधिकारी, कार्यालय सहायक एवं हल्का कर्मचारी हैं–जमाबंदी में छल साधन करने का अभिकथन–याचीगण जो वर्ष 2007 अथवा 2009 से पदस्थापित थे, को कूटरचना का कृत्य करता हुआ नहीं माना गया है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 7 से 13)

अधिवक्तागण.–M/s S.K. Keshri, Ashutosh Kumar Singh, Rashmi Kumar, For the Petitioners; A.P.P., For the State; Mr. Nirmal Kishore Prasad, For the Complainant.

आदेश

दोनों मामले चूँकि एक ही मामले से उद्‌भूत होते हैं, साथ सुने गए हैं और इसे एक ही आदेश द्वारा निपटाए गए हैं।

2. परिवादी का मामला यह है कि थाना सं॰ 2 के अधीन भूखंड सं॰ 1246, खाता सं॰ 1 से संबंधित मौजा मोरियावाँ के 4.15 एकड़ भूमि में से परिवादी के माता–पिता ने वर्ष 1966 में रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के माध्यम से भूमि का 2.78 तथा 1/2 एकड़ खरीदा। तब से, परिवादी और उसके पूर्वज इसके ऊपर अपना खेती का कब्जा बनाए हुए हैं। बाद में, परिवादी ने रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के माध्यम से भूमि का 1.02 एकड़ भी अर्जित किया किंतु अभियुक्तगण ने भू–माफिया के साथ मिलकर गलत जमाबंदी सृजित किया। जब परिवादी को इसका पता चला, उसने आर॰ टी॰ आई॰ अधिनियम के अधीन आवेदन दाखिल किया जिसके द्वारा दिनांक 26.3.2009 को सूचना दी गयी थी कि खाता सं॰ 1 की भूमि का 2 एकड़ का क्षेत्र रजिस्टर II में पृष्ठ सं॰ 70/7 में मोसमात खेदनी कुम्हैन के नाम में प्रविष्ट किया गया है और दिनांक 5.11.1990 से वर्ष 2007-08 तक की अवधि के लिए लगान रसीद भी उसके नाम में जारी की गयी है। यह भी सूचित किया गया था कि रजिस्टर II के टिप्पणी कॉलम में दर्ज किया गया है कि इसे पृष्ठ 194/F से लाया गया है किंतु सक्षम अधिकारी का हस्ताक्षर नहीं है और कि उक्त: पृष्ठ गायब है।

3. आगे मामला यह है कि जब भूमि माफिया ने परिवादी की भूमि पर बाड़ लगाना शुरू किया, परिवादी ने इसके बारे में समस्त वरीय अधिकारियों को सूचना दिया किंतु परिवादी के साथ दुर्व्यवहार किया गया था और संबंधित अधिकारियों द्वारा धमकी दी गयी थी।

4. उक्त अभिकथन पर, परिवाद मामला सं॰ 285 वर्ष 2010 दर्ज किया गया था जिस पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 467, 468, 471 और 120B के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए याचीगण के विरुद्ध संज्ञान यह दर्ज करने के बाद लिया गया था कि खाता सं॰ 1, भूखंड सं॰ 1246 की भूमि का कुल क्षेत्र 4.15 एकड़ है जिसमें से चितो कुम्हार और मोस्मात खेदनी कुम्हैन के विधिक उत्तराधिकारियों ने पहले ही भूमि का 4 एकड़ बेच दिया था, फिर भी भूखंड सं॰ 1246 के 4.15 एकड़ के संबंध में जमाबंदी चितो कुम्हार के नाम में चली आ रही है और 2 एकड़ भूमि के संबंध में जमाबंदी मोस्मात खेदनी कुम्हैन के नाम में सृजित की गयी है जब भूमि का कुल क्षेत्र 4.15 एकड़ है।

5. दांडिक विविध याचिका सं॰ 1679 वर्ष 2011 के याचीगण द्वारा और दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 42 वर्ष 2012 के याचीगण, जिन्हें अंचलाधिकारी और राजस्व कर्मचारी के रूप में प्रतिनियुक्ति किया गया है, द्वारा भी संज्ञान लेने वाले आदेश का अभिखंडन इप्सित किया गया है जो समय के प्रासंगिक बिंदु पर अंचलाधिकारी, अंचलाधिकारी के कार्यालय में सहायक और हल्का कर्मचारी का पद धारण कर रहे थे।

6. दां० वि० या० सं० 1679 वर्ष 2011 के याचीगण की ओर से निवेदन किया गया था कि याची सं० 1 दिनांक 17.7.2007 से दिनांक 2.8.2010 तक अंचलाधिकारी, कोडरमा के रूप में पदस्थापित था जबकि याची सं० 2 दिनांक 22.2.2007 से दिनांक 5.9.2010 तक अंचलाधिकारी के कार्यालय में कार्यालय सहायक के रूप में पदस्थापित था और याची सं० 3 कोडरमा अंचल में हल्का कर्मचारी के रूप में पदस्थापित था और कि याची सं० 1 ने परिवादी द्वारा आवेदन दाखिल किए जाने पर विविध केस सं० 29 वर्ष 2008-09 में दिनांक 5.2.2009 के अपने आदेश के तहत जमाबंदी को चुनौती देने के लिए कार्यवाही आरंभ किया जब उसको प्रतीत हुआ कि जमाबंदी संदेहास्पद है। बाद में, जब हल्का कर्मचारी/अंचल निरीक्षक द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत किया गया था और पक्षों ने अपना दस्तावेज दाखिल किया था, प्रश्नगत भूमि को सर्वे खतियान में गैर मजरुआ खास दर्ज किया गया पाया गया था, फिर भी रजिस्टर–II में 2 एकड़ भूमि मोस्मात खेदनी कुम्हैन, पत्नी चितो कुम्हार, के नाम में प्रविष्ट की गयी थी जिसके नाम में वर्ष 1990-91 से वर्ष 2007-08 तक किराया रसीद जारी की गयी है।

7. आगे पाया गया था कि उक्त प्रविष्टि पृष्ठ 194/1 से लायी गयी थी किंतु उक्त पृष्ठ रजिस्टर II में उपलब्ध नहीं था। इन परिस्थितियों के अधीन, याची सं० 1 द्वारा दिनांक 24.4.2005 के तहत संप्रेक्षित किया गया था कि जमाबंदी संदेहास्पद प्रतीत होती है और, इसलिए, अभिलेख उप–कलक्टर, भूमि सुधार, कोडरमा के कार्यालय को भेजा गया था। उक्त रिपोर्ट पर उप–कलक्टर, भूमि सुधार, कोडरमा द्वारा दिनांक 7.7.2009 के अपने आदेश के तहत कार्यवाही आरंभ की गयी थी जहाँ मामला अभी भी लंबित हैं। ऐसी स्थिति में, जब जमाबंदी जिसे याची सं० 1 द्वारा संदेहास्पद पाया गया था, के आधार पर वर्ष 1990-91 से किराया रसीदों को जारी किया गया था और इस प्रकार जमाबंदी के रद्दकरण के लिए मामला उच्चतर अधिकारी को निर्दिष्ट किया गया था, जमाबंदी में छल साधन करने का याचीगण के विरुद्ध अभिकथन बेतुका और अनधिसंभाव्य प्रतीत होता है।

8. दां० वि० या० सं० 42 वर्ष 2012 में याचीगण द्वारा यही अभिवचन किया गया है।

9. इसके विरुद्ध, परिवादी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय ने मामले के तथ्यों पर यह पाने के बाद कि जमाबंदी में की गयी प्रविष्टि के संबंध में कुछ कूटरचना की गयी थी और इसलिए, संज्ञान लेने वाले आदेश का अभिखंडन अपेक्षणीय नहीं है, अपराधों का संज्ञान लिया था।

10. इस प्रकार, ऊपर कथित तथ्यों से और निवेदनों से भी यह प्रतीत होता है कि दां० वि० या० सं० 1679 वर्ष 2011 के याची ने ही, जिसे मोस्मात खेदनी कुम्हैन के नाम पर सृजित जमाबंदी के ऊपर संदेह हुआ, मामला परिवाद दर्ज किए जाने के पहले जमाबंदी के रद्दकरण के लिए उप–कलक्टर, भूमि सुधार को निर्दिष्ट किया था। रद्दकरण के मामला को निर्दिष्ट करते हुए, यह भी गौर किया गया था कि जमाबंदी के आधार पर स्वयं वर्ष 1990-91 से मोस्मात खेदनी कुम्हैन के नाम में लगान रसीदों को जारी किया गया था।

11. ऐसी स्थिति में, यह बिल्कुल अनधिसंभाव्य प्रतीत होता है कि याचीगण, जो वर्ष 2007 अथवा 2009 से पदस्थापित थे, ने कूट रचना का कृत्य किया था।

12. परिस्थितियों के अधीन, दिनांक 22.9.2011 का संज्ञान लेने वाला आदेश एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है जहाँ तक याचीगण का संबंध है।

13. परिणामस्वरुप, दोनों आवेदन अनुज्ञात किए जाते हैं।

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

इंदु देवी

cuke

हेमंद कुमार पोद्दार

W.P. (C) No. 719 of 2011. Decided on 24th July, 2012.

बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धारा 15—किराया के बकाया का भुगतान करने का निर्देश–धारा 15 में अंतर्विष्ट प्रावधान परिसीमा विधि के अध्यधीन है–अवर न्यायालय ने जून, 1999 से किराया की वसूली का आदेश पारित किया यद्यपि वाद वर्ष 2008 में दाखिल किया गया था–आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया गया और विवाद्यक को नए सिरे से विनिश्चित करने के लिए मामला अवर न्यायालय को वापस भेजा गया। (पैराएँ 4, 8 एवं 9)

निर्णयज विधि.–1989 PLJR 1141 (FB); 2001 (3) JCR 222; 2001 (3) JCR 401; 2007 (1) JCR 206; 2001 (2) JLJR 340—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Sahani, For the Petitioner; M/s. Alok Lal, Santosh Kumar, For the Respondent.

आदेश

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान याचिका बेदखली वाद सं॰ 13 वर्ष 2008 में विद्वान नवम उप न्यायाधीश, राँची द्वारा पारित दिनांक 24.1.2011 के आदेश (परिशिष्ट-5) को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए समुचित रिट/आदेश/निर्देश जारी करने के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा बिहार मकान (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम की धारा 15 के अधीन प्रत्यर्थी (मूल वादी) की प्रार्थना अनुज्ञात की गयी है और याची को जून, 1999 से दिसंबर, 2011 तक अर्थात् कुल 139 माह के लिए किराया के बकाया के रूप में 8,34,000/- रुपयों की राशि का भुगतान करने और जनवरी, 2011 से मासिक किराया के रूप में 6000/- रुपया प्रतिमाह का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

3. अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश का परिशीलन किया गया।

4. आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने जून, 1999 से राशि की प्राप्ति तक किराया के बकाया की वसूली के लिए आदेश पारित किया है। प्रतीत होता है कि हक वाद दिनांक 17.12.2008 को दाखिल किया गया था। अतः, बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 की धारा 15 में अंतर्विष्ट प्रावधानों की दृष्टि में अवर न्यायालय ने उसमें अंतर्विष्ट प्रावधान पर समुचित रूप से विचार नहीं किया है जो प्रावधानित करता है कि उसमें अंतर्विष्ट प्रावधान परिसीमा विधि के अध्यधीन है। इस तथ्य के बावजूद, अवर न्यायालय ने जून, 1999 से किराया की वसूली के लिए आदेश पारित किया है यद्यपि, वाद वर्ष 2008 में दाखिल किया गया है। अतः, प्रकटतः यह प्रतीत होता है कि उक्त आदेश पारित करते हुए अवर न्यायालय ने गलती किया है। जहाँ तक मकान मालिक और किराएदार के संबंध और किराया के विनिश्चयकरण के संबंध में विवाद्यक का संबंध है, याची के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने विस्तारपूर्वक अपने तर्कों को प्रस्तुत किया है और अपने प्रतिवादों के समर्थन में अनेक निर्णयों को उद्धृत किया है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने अपना मामला प्रस्तुत करते हुए **डॉ॰ सच्चिदानंद सिन्हा बनाम कलक्टर, पटना एवं अन्य,** 1989 PLJR 1141 (FB), मामले में निर्णय को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है।

6. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रतिवादों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों को उद्धृत किया है:–

(i) ***ed'k dekj flg cuke Jherh ikorh noh ,o vU;] (2001)3 JCR 222.***

(ii) ***fc".k dekj pkc cuke Jherh 'kkfr noh ,o ,d vU;] 2001 (3) JCR 401***

(iii) ***txukFk çlkn cuke lrk"k dekj lkg]*** *2007 (1) JCR 206 vkj*

(iv) ***fc".k dekj pkc cuke Jherh 'kkfr noh ,o ,d vU;]*** *2001 (2) JLJR 340.*

7. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश को न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया और निवेदन किया कि मासिक किराया 6000/- रुपयों पर नियत किया गया था और जून, 1999 से अगस्त, 1999 तक के किराया के बकाया के संबंध में प्रतिवादी द्वारा 18000/- रुपयों का चेक जारी किया गया है और उक्त चेक का अनादर किया गया था और उसके संबंध में दांडिक मामला भी दाखिल किया गया है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि अवर न्यायालय ने अपने आदेश में यह भी संप्रेक्षित किया है कि किराया की राशि के विरुद्ध अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है और न ही किराया की राशि के संबंध में प्रतिवादी द्वारा किसी आपत्ति को लाया गया है और इसलिए, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार अवर न्यायालय ने किराया विनिश्चित करते हुए उक्त कारकों को विचार में लिया है और तद्द्वारा कोई गलती अथवा अवैधता नहीं किया है और इसलिए प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार किराया के निर्धारण में अवर न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चयकरण के संबंध में इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

8. पूर्वोक्त परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर मौजूद सामग्री के परिशीलन पर प्रतीत होता है कि प्रतिवादी द्वारा दाखिल लिखित कथन में, पैराग्राफ 10 पर प्रतिवादी ने मासिक किराया के नियतिकरण के बारे में विनिर्दिष्टत: इनकार किया है। इससे भी इनकार किया गया है कि आरंभ में इसे 3000/- रुपया पर नियत किया गया था और बाद में इसे 6000/- रुपयों तक बढ़ा दिया गया था। प्रतिवादी ने इस अभिकथन से भी इनकार किया है कि प्रतिवादी ने जून, 1999 से अगस्त, 1999 तक किराया के बकाया के संबंध में 18000/- रुपयों का चेक जारी किया था। इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि जहाँ तक किराया के बकाया की राशि का संबंध है, तथ्य के विवादित प्रश्न हैं और जैसा बिहार मकान (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 की धारा 15 के अधीन अनुध्यात किया गया है, अवर न्यायालय को किराया के विनिश्चयकरण के संबंध में आदेश पारित करने के पहले समुचित जाँच करने की आवश्यकता है। आदेश के परिशीलन पर प्रतीत होता है कि किराया के विनिश्चयकरण के लिए अवर न्यायालय द्वारा ऐसी कोई जाँच नहीं की गयी है और इसलिए, इस प्रयोजन से मामले को अवर न्यायालय के पास वापस भेजने की आवश्यकता है।

9. इन परिस्थितियों के अधीन, बेदखली हक वाद सं॰ 13 वर्ष 2008 में विद्वान नवम उप–न्यायाधीश, राँची द्वारा पारित दिनांक 24.1.2011 का आदेश एतद् द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है और पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद नए सिरे से वाद में अंतर्ग्रस्त विवाद्यकों को विनिश्चित करने के लिए मामला अवर न्यायालय के पास वापस भेजा जाता है। पक्षों के विद्वान अधिवक्ता अपने द्वारा उद्धृत निर्णयों को विद्वान अवर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र

हैं ताकि अवर न्यायालय को उन उद्धरणों का अधिमूल्यन करने का अवसर मिल सके और विधि के अनुरुप समुचित आदेश पारित किया जाए। अवर न्यायालय इस आदेश में किए गए संप्रेक्षणों में से किसी से प्रभावित हुए बिना स्वयं इसके गुणागुण पर नए सिरे से मामला विनिश्चित करेगा।

10. पूर्वोक्त संप्रेक्षणों के साथ यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

विश्वमोहन सिंह

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (Cr.) No. 67 of 2010. Decided on 24th August, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 409—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—लोक सेवक द्वारा न्यास का दांडिक भंग–संज्ञान–निर्माण कार्य के लिए दी गयी राशि को अपने पास रख लेने का अभिकथन–याची संपत्ति पर प्रभुत्व बनाए हुए था जिसे उसके द्वारा लगभग चार वर्षों तक अपने पास रखा गया था और किसी प्राधिकारी को कारण नहीं बताया गया था–याची द्वारा इस प्रकार निकाली गयी राशि न केवल मामले के संस्थापन की तिथि तक बल्कि उसके बाद भी अपने पास रख ली गयी थी–रिट याचिका खारिज। (पैराएँ 7 से 9)

निर्णयज विधि.–(2009) 14 SCC 696; (2006) 6 SCC 736—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. K.M. Verma, For the Petitioner; J.C. to G.P.-III, For the State; Mr. Krishna Murari, For the Res. No. 2.

आदेश

यह दांडिक रिट याचिका याची के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन दर्ज दिनांक 12.8.2009 के सरायकेला पी॰ एस॰ केस सं॰ 75 वर्ष 2009 के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है।

2. लिखित रिपोर्ट में दिए गए संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि याची को चांडिल पुलिस थाना के अंतर्गत पथ निर्माण के लिए अग्रिम दिया गया था और अग्रिम राशि 1,36,396/- रुपया और 2,00,000/- रुपया यानी कुल 3,36,396/- रुपया थी और दिनांक 9.11.2004 के चेक सं॰ 243317 के माध्यम से दी गयी थी।

3. अभिकथित किया गया है कि याची ने बैंक से राशि निकाल लिया था और इसे संदूक में रखा गया था। जब निर्माण कार्य जिसके लिए राशि दी गयी थी को पूरा नहीं किया गया था, याची को राशि वापस लौटाने के लिए कहा गया था किंतु उसने दिनांक 12.8.2009 तक अर्थात् मामला संस्थापित किए जाने तक मौन रखा।

4. निवेदन किया गया है कि याची ने अग्रिम राशि निकाल लिया था और इसे कार्यालय के संदूक में रखा था। स्वयं लिखित रिपोर्ट में इसे स्वीकार किया गया है। तत्पश्चात, उसे स्थानांतरित कर दिया गया था और उस कार्यालय में काम करने की अनुमति नहीं दी गयी थी और यही कारण था कि उसके द्वारा भुनाई गयी राशि का उपयोग उस प्रयोजन से नहीं किया गया था जिसके लिए इसे उसको दिया गया था। इसके अतिरिक्त, विभिन्न शीर्षों जैसे मजदूरों को मजदूरी के भुगतान आदि के लिए विभिन्न अवसर पर राशि खर्च करने के लिए उच्चतर अधिकारीगण निर्देश दे रहे थे। अभियोजन का स्वीकृत मामला है कि मामले के संस्थापन के बाद प्रत्यर्थी द्वारा राशि जमा नहीं की गयी है।

5. विद्वान अधिवक्ता ने **2009 (14) SCC 696** पैरा 6 से 10 और **2006 (6) SCC पृष्ठ 736** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया है और निवेदन किया है कि अग्रिम में प्राप्त की गयी राशि को रखना भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन मामला संस्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है और यह केवल संविदा का भंग मात्र है न कि न्यास का भंग। मामले के उस दृष्टिकोण में, सरायकेला पी॰ एस॰ केस सं॰ 75 वर्ष 2009 के तहत याची के विरुद्ध आरंभ किया गया दांडिक अभियोजन अभिखंडित किए जाने का दायी है।

6. दूसरी ओर, सूचक प्रत्यर्थी सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि सरकार के निर्देश के मुताबिक मामला गलती कर रहे अभियंताओं के विरुद्ध संस्थापित किया गया था जो अग्रिम का उपयोग किए बिना अथवा इसको लौटाए बिना इसे अपने पास रखे हुए थे।

7. मैंने लिखित रिपोर्ट और उद्धृत निर्णय का परिशीलन किया है। यह पक्षों का स्वीकृत मामला है कि याची द्वारा दिनांक 31.3.2005 को राशि निकाली गयी थी और संदूक में रखी गयी थी और किसी प्राधिकारी द्वारा इसे संदूक से बरामद नहीं किया गया था। यह भी विवादित नहीं है कि याची ने राशि को संदूक जिसमें राशि रखी गयी थी की चाभी याची ने अपने उच्चतर अधिकारी अथवा अपने पद में उत्तरवर्ती को नहीं सौंपा था। यह भी विवादित नहीं है कि याची द्वारा इस प्रकार निकाला गया सरकारी धन उसके द्वारा अपने पास न केवल मामले के संस्थापन की तिथि तक बल्कि उसके बाद भी रख लिया गया था।

8. यह भी विवादित नहीं है कि याची सरकारी सेवक है और वह उस संपत्ति पर प्रभाव रखे था जो उसके द्वारा लगभग चार वर्षों तक किसी प्राधिकारी को कोई कारण दिए बिना अपने पास रख ली गयी थी।

9. इन समस्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मैं इस रिट याचिका में गुणागुण नहीं पाता हूँ और इसे खारिज करता हूँ।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

उपेन्द्र ठाकुर

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 775 of 2008. Decided on 22nd August, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 341 एवं 323 सह-पठित अ॰ जा॰ एवं अ॰ ज॰ जा॰ (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(1) (x)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—दोषपूर्ण अवरोध एवं उपहति–संज्ञान–इससे पहले याची ने पहले ही मामला दर्ज कर चुका था जब परिवादी द्वारा उस पर प्रहार किया गया था–उस घटना के एक माह बाद परिवादी द्वारा वर्तमान मामला दर्ज किया गया था–याची के विरुद्ध किया गया अभिकथन बाद में आया विचार लगता है और असद्भावपूर्ण आशय के साथ किया गया है–दांडिक कार्यवाही एवं संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित। (पैराएँ 6 से 11)

निर्णयज विधि.–1991 Supp. (1) SCC 335—Relied; (2008) 5 SCC 248; 2012 (1) JLJR 206(SC)—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. R.S. Mazumdar, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. R.C. Khatri, For the O.P. No. 2.

आदेश

याची के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और विरोधी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. वर्तमान आवेदन परिवाद केस सं॰ 18 वर्ष 2005 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित दिनांक 20.7.2006 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा और जिसके अधीन याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341 तथा 323 के अधीन और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जन जाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन भी दंडनीय अपराध का संज्ञान लिया गया है।

3. संज्ञान लेने वाले आदेश सहित संपूर्ण दांडिक कार्यवाही का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित किया गया है कि विरोधी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा आरंभ किया गया अभियोजन द्वेषपूर्ण है और परिवादी के विरुद्ध याची द्वारा दर्ज मामले को विरोध में प्रति मामला है।

4. इस संबंध में निवेदन किया गया था कि मंजीत सिंह सुंडी और उसके भाई तूरी सुंडी (परिवादी) को योजना के अधीन काम पर लगाया गया था जिसे तीन माह के भीतर पूरा किया जाना था किंतु अग्रिम धन लेने के बावजूद जब वे समय के भीतर काम पूरा करने के लिए अग्रसर नहीं हो रहे थे, उनको समय पर काम पूरा करने के लिए नोटिस दिया गया था। नोटिस देने के बाद, जब अगले दिन याची काम का पर्यवेक्षण करने आया, उसने काम को पूरा किया गया नहीं पाया था और इसलिए, उसने परिवादी और उसके भाई को समय के भीतर काम पूरा करने का निर्देश दिया किंतु अभियुक्तगण काफी क्रोधित हो गए और उन्होंने याची पर प्रहार किया और याची की हत्या करने का प्रयास किया किंतु मजदूरों के मध्यक्षेप से याची इन दोनों व्यक्तियों के चंगुल से निकल गया। उक्त घटना के लिए, प्राथमिकी दर्ज की गयी थी जिसे दिनांक 20.3.2005 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341, 323, 353/34 के अधीन चाईबासा (मुफस्सिल) पी॰ एस॰ केस सं॰ 42 वर्ष 2005 के रूप में दर्ज किया गया था। बाद में, दुश्मनी के कारण परिवाद दर्ज किया गया था जिसमें अभिकथित किया गया था कि काम पूरा किए जाने के बाद जब माप पुस्तिका में प्रविष्टि करने का अनुरोध इस याची से किया गया था, वह परिवादी से अवैध रूप से 5000/- पाने के प्रयोजन से प्रविष्टि करने से बचता रहा जो परिवादी देने के लिए कभी भी सहमत नहीं हुआ और इसलिए, जब परिवादी दिनांक 19.3.2005 को जिला समाहरणालय, चाईबासा के सामने इस याची से मिला, परिवादी ने पुनः माप करने का अनुरोध किया जिससे याची चिढ़ गया और क्रोधित हो गया और खुलेआम परिवादी पर लातों मुक्कों से प्रहार किया और उसको गाली दिया। ऐसे अभिकथन पर, दिनांक 26.4.2005 को एक परिवाद दर्ज किया गया था जिस पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341 तथा 323 के अधीन और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन भी संज्ञान लिया गया था जो चुनौती के अधीन है।

5. याची के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री मजूमदार ने निवेदन किया कि याची ने अपने पदधारिक हैसियत में परिवादी और उसके भाई को काम पूरा करने के लिए नोटिस दिया था जो उन्हें योजना के अधीन दिया गया था। जब वह यह सत्यापित करने आया कि क्या योजना पूरी हो गयी है या नहीं, याची पर प्रहार किया गया था, जिसके लिए मामला दर्ज किया गया था। एक माह से अधिक समय के बाद परिवादी द्वारा परिवाद उसमें यह अभिकथन करते हुए दर्ज किया गया था कि याची ने ही जिला समाहरणालय के निकट उस पर प्रहार किया था और परिवादी को अपमानित करने

के लिए उसको गाली भी दिया था जो अभिकथन बाद में सोचा विचारा प्रतीत होता है और इस प्रकार अभियोजन को द्वेषपूर्ण अभियोजन कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में, **अंजनी कुमार बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, (2008)5 SCC 248,** जिसका हाल में **देव लखन पासवान बनाम झारखंड राज्य एवं एक अन्य,** (2012 (1) JLJR 206 (SC) में अनुसरण किया गया है, में दिए गए निर्णय की दृष्टि में, संपूर्ण दांडिक कार्यवाही का अभिखंडन किया जाना अपेक्षणीय है।

6. इसके विरुद्ध, विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि ऐसा नहीं है कि काम पूरा नहीं किया गया था, बल्कि काम पूरा किया जा चुका था और, इसलिए, परिवादी ने माप पुस्तिका में आवश्यक प्रविष्टि करने के लिए कहा था किंतु उसने माप पुस्तिका में आवश्यक प्रविष्टि इस कारण से नहीं किया था कि वह कुछ अवैध धन चाहता था जिसका भुगतान कभी नहीं किया गया था और, इसलिए, जब परिवादी घटना के दिन उससे मिला और माप पुस्तिका में आवश्यक प्रविष्टि करने को कहा, परिवादी पर न केवल प्रहार किया गया बल्कि उसको अपमानित करने के लिए गाली भी दिया गया जिसने अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3 (1) (x) के अधीन अपराध आकृष्ट किया। इस स्थिति के अधीन, संज्ञान लेने वाले आदेश का अभिखंडन अपेक्षणीय नहीं है।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर यह प्रतीत होता है कि एक ओर याची का दृष्टिकोण यह है कि याची के विरुद्ध अभियोजन द्वेष से कलंकित है और इसलिए संपूर्ण दांडिक अभियोजन अभिखंडित किए जाने की जरूरत है जबकि विरोधी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण यह है कि अभिकथन वस्तुतः अपराध गठित करता है जिसके लिए संज्ञान लिया गया है और, इसलिए, यह अभिखंडित नहीं किया जाना चाहिए।

8. इस चरण पर, मैं **हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य, 1992 Supp (1) SCC 335,** मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें माननीय न्यायाधीशों ने उस आधार का पहचान किया है जिस पर दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जा सकती है। ऐसे आधारों में से एक निम्नलिखित है:–

> *^^tgk nkfMd dk;okgh Li"V :i l vlnHkkoi.k g vkj@vFkok tgk dk;okgh vfHk;Dr d lkFk çfr'kksèk yu d fy, vFkok futh n'euh d dkj.k mldk vieku dju dh nf"V l vrjLFk gr d lkFk }"kiod LFkkfir dh x;h gA***

9. वर्तमान मामले में, जैसा मैंने ऊपर गौर किया है, याची ने पहले ही दिनांक 20.3.2005 को मामला दर्ज किया था जब परिवादी द्वारा उस पर प्रहार किया गया था। एक माह से अधिक समय के बाद परिवादी द्वारा परिवाद उसमें यह कथन करते हुए दर्ज किया गया था कि परिवादी पर न केवल प्रहार किया गया था बल्कि उसका अपमान करने की दृष्टि से उसे गाली भी दी गयी थी। याची के विरुद्ध परिवादी द्वारा किया गया अभिकथन, उपर कथित तथ्यों और परिस्थितियों में, न केवल बाद में आया विचार प्रतीत होता है बल्कि असद्भावपूर्ण आशय के साथ किया गया भी प्रतीत होता है।

10. तद्नुसार, परिवाद केस सं॰ 18 वर्ष 2005 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित दिनांक 20.7.2006 का संज्ञान लेने वाला आदेश, जहाँ तक याची का संबंध है, एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

11. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

भोला मोदी (648 में)

विजय यादव एवं एक अन्य (850 में)

विद्यानंद सिंह उर्फ पिंकू सिंह उर्फ पिंकू एवं एक अन्य (851 में)

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (D.B.) Nos. 648, 850 with 851 of 2007. Decided on 14th August, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 123 वर्ष 2006 में अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, कोडरमा द्वारा पारित दिनांक 22.5.2007 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 23.5.2007 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 364A—फिरौती के लिए अपहरण–दोषसिद्धि–पीड़ित द्वारा अपीलार्थीगण को पहचाना नहीं गया–अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध नहीं कर सका था–अपीलार्थीगण संदेह के लाभ के हकदार हैं–अपीलें अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s B.M. Tripathy, Nutan Sharma (in 648); M/s V.P. Singh, Rashmi Kumar (in 850); Mr. Kripa Shankar Nanda (in 851), For the Appellant; Mr. Shekhar Singh, For the State.

न्यायालय द्वारा.–ये समस्त अपीलें सत्र विचारण सं॰ 123 वर्ष 2006 में अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 364A के अधीन दोषसिद्ध करते और उनको कठोर आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, कोडरमा द्वारा पारित दिनांक 22.5.2007 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 23.5.2007 के दंडादेश से उद्भूत होती हैं।

2. समस्त तीनों अपीलों में अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अभियोजन अपीलार्थीगण के विरुद्ध अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है।

3. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

4. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक यमुना राना (अ॰ सा॰ 1) ने दिनांक 25.2.2006 को प्रातः लगभग 11.30 बजे लिखित रिपोर्ट दर्ज किया कि पिछले दिन अर्थात् दिनांक 24.2.2006 को रात्रि लगभग 8.30 बजे जब उसका पिता भातू राना (अ॰ सा॰ 4) स्कूटर पर आ रहा था, दुष्टों द्वारा पुल के निकट उसका अपहरण कर लिया गया था। सूचक ने दिनांक 25.2.2006 को प्रातः 7.30 बजे गाँववालों से इस सूचना को पाया। सूचक घटनास्थल पर गया और झाड़ी में स्कूटर पड़ा पाया। जब सूचक ने अपने पिता से उसके मोबाइल पर संपर्क किया, किसी अज्ञात व्यक्ति जो दूसरी ओर था ने उसको कहा कि उसके पिता का अपहरण कर लिया गया है। जब सूचक ने उससे पूछा कि वह कौन है और कहाँ से बोल रहा है, उसे कहा गया कि प्रश्न उसका काम नहीं है।

5. अभियोजन ने छह गवाहों का परीक्षण किया। अ॰ सा॰ 1 सूचक है। अ॰ सा॰ 2 अनुश्रुत गवाह है। अ॰ सा॰ 3 को प्रति परीक्षण के लिए निविदत्त किया गया है। अ॰ सा॰ 4 स्वयं पीड़ित है। अ॰ सा॰ 5 इस मामले का अन्वेषण अधिकारी है और अ॰ सा॰ 6 अपीलार्थीगण में से कुछ के कब्जा से मोटरसाइकिल और खाना के डब्बों के अधिग्रहण का गवाह हैं।

6. अ॰ सा॰ 1, 4 और 5 ने अभियोजन के मामले का पूरा समर्थन किया है, किंतु पीड़ित (अ॰ सा॰ 4) ने अपीलार्थीगण में से किसी को नहीं पहचाना है। अभियोजन मामले के अनुसार, अपीलार्थीगण भोला मोदी, भोला सिंह और विद्यानंद सिंह अपहरणकर्ताओं के लिए खाना ले जा रहे थे। अतः, उन्हें इस आधार पर दोषसिद्ध किया गया है कि वे अपराध में सहयोगी हैं। अपीलार्थीगण विजय यादव और कैला सिंह के विरुद्ध कहा गया है कि वे उस जगह से भाग गए जहाँ पीड़ित को बरामद किया गया था, किंतु उन्हें भी पीड़ित द्वारा नहीं पहचाना गया है।

7. अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने और पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद हम अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ देने के इच्छुक हैं क्योंकि हमारे मत में, अभियोजन अपीलार्थीगण के विरुद्ध अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है।

8. परिणामस्वरुप, ये अपीलें अनुज्ञात की जाती हैं। अपीलार्थीगण के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण भोला मोदी, विजय यादव, कैला सिंह, विद्यानंद सिंह उर्फ पिंकू सिंह उर्फ पिंकू और भोला सिंह उर्फ बच्चा उर्फ होठकटवा कारा में है। उन्हें तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि अन्य मामले में उनकी आवश्यकता नहीं है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

अमरेश रमन (123 में)

बी॰ सहाय एवं एक अन्य (5207 में)

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य (123 में)

कल्पना रॉय चौधरी (5207 में)

W.P. (Cr.) Nos. 123 of 2010 with 5207 of 2007. Decided on 23rd August, 2012.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—अभिधृति विवाद–परिसर से जबरन बेदखली–सि॰ प्र॰ सं॰ के अनुसार जबरन बेदखली से सम्बन्धित बिंदु पर प्रतितोष दिया जा सकता है–याची और प्रत्यर्थी के बीच विवाद को रिट याचिका में विनिश्चित नहीं किया जा सकता है–रिट याचिका खारिज। (पैरा 5)

अधिवक्तागण.–Mr. M.K. Dey, For the Petitioners; Mr. B.K. Jha, For the Respondents.

आदेश

यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 ने मुंसिफ के न्यायालय, धनबाद में श्री बी॰ सहाय और वर्तमान याची के विरुद्ध हक बेदखली वाद सं॰ 11 वर्ष 2005 दाखिल किया है।

2. यह अभिकथित किया गया है कि याची, जो परिसर पर शांतिपूर्ण रूप से काबिज था, को डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5207 वर्ष 2007 में पारित स्थगन आदेश के बावजूद पुलिस की मदद से जबरन बेदखल कर दिया गया था। प्रत्यर्थी सं॰ 6 ने पुलिस और अपने गुर्गों की मदद से परिसर में ताला लगा दिया था।

3. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि याची और उसके चाचा द्वारा वाद परिसर काफी पहले ही वर्ष 2007 में खाली कर दिया गया था। यह कहना गलत है कि याची को परिसर से जबरन बेदखल किया गया था और प्रत्यर्थी द्वारा ताला लगाया गया था। वस्तुतः, विवादित परिसर को किसी विश्वनाथ को अब किराया पर दिया गया है और वह उक्त परिसर के अधिभोग में है।

4. पक्षों को सुनने के बाद, डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5207 वर्ष 2007 के केस रिकॉर्ड को मंगवाया गया था और इस अभिलेख पर रखा गया था।

5. मैंने दिनांक 31.10.2007 के आदेश का परिशीलन किया है जो उपदर्शित करता है कि ग्रहण मामले में प्रत्यर्थी के विरुद्ध नोटिस जारी किया गया था और हक बेदखली वाद सं॰ 11 वर्ष 2005 में अवर न्यायालय की कार्यवाही को स्थगित रखने का निर्देश दिया गया था। प्रत्यर्थी सं॰ 6 द्वारा जिस किसी विकास को प्रभाव दिया गया था, वह डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5207 वर्ष 2007 में पारित दिनांक 31.10.2007 के आदेश की आत्मा के विरुद्ध प्रतीत होता है और इसलिए, याची उपयुक्त तथ्यों के साथ अवमान कार्यवाही आरंभ करने के लिए सक्षम न्यायालय के समक्ष उक्त तथ्य को लाने के लिए स्वतंत्र है। अगला बिंदु कि याची को परिसर से जबरन बेदखल किया गया है, सिविल प्रक्रिया संहिता के अनुसार प्रतितोषित किया जा सकता है। याची और प्रत्यर्थी सं॰ 6 के बीच विवाद को इस रिट याचिका में विनिश्चित नहीं किया जा सकता है और इसलिए, मैं कोई सकारण आदेश पारित करने का इच्छुक नहीं हूँ और याची को पूर्वोक्तानुसार स्वतंत्रता देकर इस रिट याचिका को खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

संदीप कुमार उर्फ सुदीप कुमार उर्फ संदीप कुमार पांडे उर्फ सुनील कुमार पांडे

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1892 of 2011. Decided on 23rd August, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 406, 420 एवं 379—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 320 एवं 482—न्यास का दांडिक भंग, छल एवं चोरी–संज्ञान–अपराध का शमन–विवाद व्यक्तिगत प्रकृति का है और किसी लोक नीति को अंतर्ग्रस्त नहीं करता है–याची को विचारण की कठिनाई का सामना करने की अनुमति देने से कोई लाभदायी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा क्योंकि याची को दोषसिद्ध करने का अवसर नहीं है–सुलह याचिका स्वीकार की गयी और संज्ञान लेने वाले आदेश को अभिखंडित किया गया। (पैराएँ 3 से 7)

निर्णयज विधि.–2008(2) Supreme 750—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. P.D. Agrawal, For the Petitioner; Mr. R. Mukhopadhyay, For the State; Mr. Devesh Krishna, For the O.P. No.2.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता और विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. बरियातू पी॰ एस॰ केस सं॰ 26 वर्ष 2009 के संबंध में पारित दिनांक 12.2.2009 के आदेश, जिसके अधीन भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406, 420 और 379 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए याची के विरुद्ध संज्ञान लिया गया है, का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित किया जा रहा है कि पक्षों ने मामले में सुलह कर लिया है।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 तथा 420 के अधीन अपराध को उद्भूत करने वाले विवाद व्यक्तिगत प्रकृति का है और किसी लोक नीति को अंतर्ग्रस्त नहीं करता है और इसलिए **मदन मोहन एबट बनाम पंजाब राज्य, (2008)2 Supreme 750,** में दिए गए निर्णय की दृष्टि में इन्हें शमनित करने की अनुमति दी जा सकती है और जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन अपराध का सम्बन्ध है, यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 में अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में शमनीय है।

4. अत:, दाखिल की गयी सुलह याचिका स्वीकार किया जाए और संज्ञान लेने वाले आदेश को अभिखंडित किया जाए क्योंकि याची को विचारण की कठिनाई का सामना करने की अनुमति देकर कोई लाभदायी प्रयोजन सिद्ध नहीं किया जा सकता है क्योंकि याची की दोषसिद्धि का अवसर नहीं होगा।

5. सूचक के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि पक्षों के बीच मामले में सुलह कर लिया गया है।

6. ऊपर कथित तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए और **मदन मोहन एबट बनाम पंजाब राज्य (ऊपर)** में दिए गए निर्णय की दृष्टि में, इस मामले में दाखिल सुलह याचिका को एतद् द्वारा स्वीकार किया जाता है और संज्ञान लेने वाले आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

7. तद्नुसार, इस आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjï dï ejkfB;k ,o Mhï ,uï mikè;k;] U;k;efrx.k

समीरन बीबी

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

Acquittal Appeal No. 11 of 2012. Decided on 14th August, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 201/34—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 370—हत्या एवं साक्ष्य को छुपाना–दोषमुक्ति–अभियुक्तगण के दोष को सिद्ध करने के लिए अभियोजन द्वारा न तो किसी चश्मदीद गवाह को और न ही किसी परिस्थिति को अभिलेख पर लाया गया–विचारण न्यायालय ने सही प्रकार से दोषमुक्ति का निष्कर्ष दर्ज करते हुए पक्षों के परस्पर मामलों और उनके द्वारा अभिलेख पर लायी गयी सामग्री पर विचार किया–दोषमुक्ति का आक्षेपित निर्णय अभिपुष्ट किया गया–दोषमुक्ति अपील खारिज किया गया।

(पैराएँ 2 से 4)

अधिवक्तागण.–Mr. Ishteyaque Ahmed, For the Appellant; A.P.P., For the State.

आदेश

यह अपील सत्र केस सं॰ 79/2009 में प्रत्यर्थी सं॰ 2 और 3 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302, 201/34 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त करते हुए विद्वान सत्र न्यायाधीश-I, पाकुड़ द्वारा पारित दिनांक 17.2.2012 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपील के मेमो के साथ संलग्न अ॰ सा॰ 3, 4, 5, 6 और 7 के साक्ष्यों को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि दोषमुक्ति का निर्णय दर्ज नहीं किया जा सकता था।

3. मेमोरेंडम ऑफ अपील के साथ संलग्न साक्ष्य और निर्णय का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के बाद, यह प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने सही प्रकार से पक्षों के परस्पर मामलों और उनके द्वारा अभिलेख पर लायी गयी सामग्रियों पर दोषमुक्ति का निष्कर्ष दर्ज करते हुए विश्वास किया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अन्य बातों के साथ अभिनिर्धारित किया कि दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को अभियुक्तगण द्वारा उसके पति को ले जाने के संबंध में अ॰ सा॰ 5 का बयान स्पष्टीकरण के बिना जोड़ा गया है और यह बिल्कुल विश्वसनीय नहीं है। न तो कोई चश्मदीद गवाह था और न ही अभियुक्तगण के दोष को स्पष्टत: उपदर्शित करते हुए अभियोजन द्वारा अभिलेख पर किसी परिस्थिति को लाया गया है।

4. हमारे मत में, दोषमुक्ति के आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए कोई आधार नहीं बनाया गया है। तद्नुसार, यह दोषमुक्ति अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

सरोज कुमार दास

cuke

मेसर्स टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी एवं एक अन्य

W.P. (C) No. 1381 of 2012. Decided on 10th July, 2012.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VI, नियम 17 सह-पठित धारा 151—बेदखली वाद–लिखित कथन के संशोधन के लिए आवेदन की अस्वीकृति–विलंबित चरण पर लिखित कथन में संशोधन इप्सित किया गया है जब पक्षों के साक्ष्य को बंद कर दिया गया है और तर्क के लिए मामला रखा गया है–अभिव्यक्ति ''सम्यक तत्परता'' विनिर्दिष्ट रूप से सि॰ प्र॰ सं॰ में प्रयुक्त की गयी है ताकि यह विनिश्चित करने के लिए परीक्षा प्रावधानित की जा सके कि क्या विचारण आरंभ होने के बाद अनुरोधित संशोधनों की स्थितियों में स्वविवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए–दावा से उद्भूत होने वाले अनुतोष का अनुरोध करने वाले पक्ष को सम्यक तत्परता का प्रयोग करना चाहिए और यह ऐसी आवश्यकता है जिसे अभिमोचित नहीं किया जा सकता है–लिखित कथन में संशोधन के लिए आवेदन अस्वीकार करते हुए अवर न्यायालय ने कोई गलती नहीं किया है–रिट याचिका खारिज। (पैराएँ 7, 8, 9 एवं 19)

निर्णयज विधि.–(2012)2 BLJ & JLJ 215 (SC); (2012) 2 SCC 300—Relied; (2006) 4 SCC 385; (2006)6 SCC 498—Distinguished.

अधिवक्तागण.–Mr. P.A.S. Pati, For the Petitioner; M/s. G.M. Mishra, Umesh Mishra, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका बेदखली वाद सं॰ 31 वर्ष 2005 में विद्वान सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिविजन) II, जमशेदपुर के न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 9.2.2012 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI नियम 17 सह-पठित धारा 151 के अधीन दाखिल याचिका विद्वान अवर न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गयी है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने निजी आवश्यकता के आधार पर संपत्ति जो उसकी है की बेदखली के लिए वाद दाखिल किया है। याची को वाद परिसर के अधिभोग में होने के नाते आवश्यक पक्ष होने के बावजूद आरंभ में पक्ष के

रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया है। तत्पश्चात, उसके द्वारा दाखिल आवेदन पर माननीय न्यायालयों के आदेश के फलस्वरुप प्रतिवादी पक्ष के रूप में याची को पक्षकार बनाया गया था। आगे निवेदन किया गया है कि याची का लिखित कथन दाखिल किए जाने के बाद प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने दस्तावेज दाखिल किया है जिसे प्रदर्श 2 के रूप में चिन्हित किया गया है। उक्त दस्तावेज मेसर्स टाटा स्टील द्वारा जारी किया गया था और यह आंतरिक संसूचना का रूप है और कंपनियों के रजिस्ट्रार द्वारा अभिप्रमाणित नहीं करवाया गया है और उक्त दस्तावेज प्रबंधक, संपदा/आवंटन द्वारा जारी किया गया है। आगे निवेदन किया गया है कि चूँकि लिखित कथन दाखिल किए जाने के समय पूर्वोक्त दस्तावेज अभिलेख पर उपलब्ध नहीं था, अत: याची उक्त दस्तावेज के विरुद्ध अपनी टिप्पणी नहीं कर सका था। उक्त दस्तावेज वाद परिसर से याची की बेदखली के लिए डिक्री पाने के स्वयं अपने लाभ के लिए वादी/प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा कूटरचित, मनगढ़ंत और निर्मित दस्तावेज है। आगे निवेदन किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI नियम 17 सह-पठित धारा 151 के अधीन ऐसी याचिका दिनांक 14.12.2011 को विद्वान अवर न्यायालय में दाखिल की गयी थी। आगे निवेदन किया गया है कि दिनांक 9.2.2012 का आदेश विधि की दृष्टि में पूर्णत: असंपोषणीय है। आगे निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय यह अधिमूल्यन करने में विफल रहा कि यदि संशोधन, जैसा याची द्वारा इप्सित किया गया है, की अनुमति नहीं दी जाती है, यह याची पर प्रतिकूलता कारित करेगा और सुनवाई के निष्पक्ष अवसर से इनकार करने के तुल्य होगा। आगे निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय यह अधिमूल्यन करने में विफल रहा कि क्या संशोधन, जैसा इप्सित किया गया है, वाद में अंतर्ग्रस्त वास्तविक विवाद्यक/विवाद के विनिश्चयकरण के लिए आवश्यक है। आगे निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने वर्तमान याची द्वारा दाखिल याचिका को मात्र विलंब के आधार पर अस्वीकार कर दिया है और इसलिए आक्षेपित आदेश को अपास्त करने की आवश्यकता है। अपने तर्क के समर्थन में, याची के विद्वान अधिवक्ता ने **राजेश कुमार अग्रवाल एवं अन्य बनाम के॰ के॰ मोदी एवं अन्य, (2006)4 SCC SCC 385,** और **बलदेव सिंह एवं अन्य बनाम मनोहर सिंह एवं एक अन्य, (2006) 6 SCC 498** के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को निर्दिष्ट किया है और उन पर विश्वास किया है।

3. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश को न्यायोचित ठहराते हुए और समर्थन करते हुए निवेदन किया कि उक्त आदेश को पारित करते हुए अवर न्यायालय ने कोई अवैधता अथवा अनियमितता नहीं किया है। आगे निवेदन किया गया है कि ऐसा आवेदन दाखिल करने के लिए प्रतिवादी को पर्याप्त अवसर उपलब्ध था। अपने तर्क के समर्थन में, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने **जे॰ सैमुअल एवं अन्य बनाम गट्टू महेश एवं अन्य, (2012)2 SCC 300 [: (2012)2 BLJ & JLJ 215 (SC)]** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है। आगे निवेदन किया गया है कि यह इस बिन्दु पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय का नवीनतम निर्णय है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 12 और इसके आगे संप्रेक्षित किया है कि संशोधन इप्सित करने वाले पक्ष द्वारा सम्यक तत्परता दर्शाने की आवश्यकता है। आगे निवेदन किया गया है कि अवर न्यायालय ने आवेदन के तथ्यों और परिस्थितियों पर समुचित रूप से विचार किया है और विधि के अनुरूप इसे विनिश्चित किया है, अत:, यह नहीं कहा जा सकता है कि अवर न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करते हुए अवैधता अथवा अनियमितता किया है।

4. पूर्वोक्त परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश के परिशीलन करने पर, यह प्रतीत होता है कि दिनांक 14.12.2011 को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI नियम 17 सह-पठित धारा 151 के अधीन वर्तमान याची (प्रतिवादी सं॰ 2) द्वारा वादी द्वारा प्रस्तुत

दस्तावेज के संबंध में लिखित कथन में संशोधन इप्सित करते हुए आवेदन दाखिल किया गया था। उक्त दस्तावेज मेसर्स टाटा स्टील द्वारा जारी किया गया था, जो आंतरिक संसूचना है, जिसे प्रदर्श 2 के रूप में चिन्हित किया गया है। याची के अनुसार, उक्त दस्तावेज वादग्रस्त क्वार्टर से प्रतिवादी की बेदखली का डिक्री पाने के स्वयं अपने लाभ के लिए वादी कंपनी द्वारा कूटरचित, मनगढ़ंत और निर्मित दस्तावेज है और पूर्वोक्त दस्तावेज प्रतिवादी पर बाध्यकारी नहीं है। इन तथ्यों और परिस्थितियों में, याची (प्रतिवादी सं॰ 2) के अनुसार, पूर्वोक्त संशोधन अंत: स्थापित करके लिखित कथन का संशोधन करना आवश्यक है क्योंकि पक्षों के बीच वास्तविक विवाद विनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक था। आदेश के परिशीलन पर, पता चलता है कि वादग्रस्त क्वार्टर से बेदखली के लिए वादी कंपनी द्वारा दिनांक 26.7.2006 को संस्थापित/दाखिल किया गया था क्योंकि वादी कंपनी को अपने कर्मचारियों को उनकी वास सुविधा के लिए इसे देने के लिए वाद परिसर की आवश्यकता है। यह प्रतीत होता है कि वाद दाखिल किए जाने के समय, कतिपय दस्तावेजों को प्रस्तुत किया गया था जो प्रदर्श 2 भी सम्मिलित करते हैं। प्रतीत होता है कि इस मामले में दिनांक 30.5.2008 को अर्थात प्रदर्श 2 दाखिल करने के लगभग दो वर्ष वाद प्रतिवादी सं॰ 2 का लिखित कथन दाखिल किया गया है। इस प्रकार, याची (प्रतिवादी सं॰ 2) के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किया गया प्रतिवाद कि वह अपने लिखित कथन प्रदर्श 2 के संबंध में समुचित रूप से टिप्पणी नहीं कर सका था क्योंकि इसे लिखित कथन दाखिल करने के बाद वादी द्वारा दाखिल किया गया था, ताथ्यिक रूप से गलत प्रतीत होता है। आदेश के परिशीलन से, यह भी पता चलता है कि प्रतिवादी सं॰ 2 ने तत्पश्चात वादी–गवाहों का प्रतिपरीक्षण करने का अवसर पाया और इसलिए अवर न्यायालय ने अपने आदेश में सही प्रकार से संप्रेक्षित किया है कि प्रतिवादी सं॰ 2 को अपनी टिप्पणी अथवा आपत्ति करने के लिए पर्याप्त अवसर थे। पहली बार लिखित कथन दाखिल करते समय; दूसरी बार प्रदर्श 2 को चिन्हित किए जाते समय; और तीसरी बार जब उसने अ॰ सा॰ 1 का प्रतिपरीक्षण किया था। इस प्रकार, प्रतीत होता है कि प्रदर्श 2 के विरुद्ध आपत्ति करने के लिए याची (प्रतिवादी सं॰ 2) ने पर्याप्त अवसर पाया है। इसके अतिरिक्त, यह भी प्रतीत होता है कि लिखित कथन में संशोधन के लिए आवेदन याची (प्रतिवादी सं॰ 2) द्वारा तब दाखिल किया गया है जब अंतिम तर्क प्रगति में थे और इसलिए अवर न्यायालय ने सही प्रकार से यह संप्रेक्षित करते हुए कि याची (प्रतिवादी सं॰ 2) का प्रयास विलंबकारी युक्ति के अलावा कुछ नहीं है जो अत्यन्त निंदनीय है, उक्त आवेदन अस्वीकार कर दिया। आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने मामले में अंतर्ग्रस्त तथ्यों, परिस्थितियों और विधि पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद लिखित कथन में संशोधन इप्सित कर रहे याची (प्रतिवादी सं॰ 2) द्वारा दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया है।

5. मैंने याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट और विश्वास किए गए मामलों, **(2006)4 SCC 385** और **(2006)6 SCC 498,** में प्रकाशित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का परिशीलन किया है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय इस विवाद्यक पर नवीनतम निर्णय प्रतीत होता है जिसे **(2012)2 SCC 300** में प्रकाशित किया गया है। निर्णय के प्रासंगिक उद्धरणों को यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

"11. mPp U;k;ky; d rd dh xkg;rk ;k vU;Fkk ij fopkj dju d igy fl0 i0 l0 d vkn'k 6, fu;e 17 dk fufn"V djuk ykHkin g%&

*"17. **vfHkopu dk l'kkeku-**&U;k;ky; nkuk e l fdlh Hkh i{kdkj dk dk;okfg;k d fdlh Hkh çØe e vuKk n ldxk fd og viu vfHkopuk dk ,lh jhfr l vkj ,l fucèkuk ij] tk U;k; lxr gk] ifjofrr dj ;k l'kkfèkr dj vkj*

lHkh ,l l'kkèku fd, tk,x tk i{kdkjk d chp e fooknxLr okLrfod ç'uk d voèkkj.k d ç;ktu d fy, vko';d gk%

ijUr fopkj.k d çkjEHk gku d mijkUr l'kkèku d fy, çkFkuk dh vuefr rc rd ugh nh tk,xh tc rd fd U;k;ky; bl fu.k; ij u igp fd mfpr rRijrk d mijkUr Hkh i{k fopkj.k çkjEHk gku l io ekeyk ugh mBk ik;kA**

सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1999 द्वारा उक्त प्रावधान विलोपित कर दिया गया था।

12. l'kkèku vfèkfu;e dh èkkjk 16 dk iBu fuEufyf[kr g%&

"16. **vkn'k 6 dk l'kkèku-**&çFke vulph e] vkn'k 6 e(&

(i) – (ii) ***

(iii) fu;ek 17 vkj 18 dk foykfir fd;k tk,xkA**

13. okndkjk vkj vfèkoDrkvk }kjk rxM fojkèk d ckn vkn'k VI fu;e 17 mle lyXu ijUrd d lkFk iu% LFkkfir dh x;h FkhA mDr ijUrd d erkfcd] fopkj.k vkjHk gk tku d ckn l'kkèku d fy, vkonu vuKkr ugh fd;k tk,xk fdr] mDr fu;e dk viokn g vFkkr ;fn U;k;ky; bl fu"d"k ij vkrk g fd lE;d rRijrk d ckotn i{k fopkj.k vkjHk gku d igy ekeyk ugh mBk ldk Fkk] l'kkèku d fy, ,l vkonu dk vuKkr fd;k tk ldrk gA

15. bl fofèkd i"BHkfe e] ge ,d ckj fQj rkfF;d fooj.kk dk nkgjkuk gkxkA oreku ekey e] okn vk0 ,l0 l0 9 o"k 2004 nh?kdkfyd fopkj.k d ckn flrcj] 2010 dk lekIr gvkA lh0 ih0 lh0 d vkn'k VI fu;e 17 d vèhu l'kkèku d fy, vkonu fnukd 24.9.2010 dk vFkkr fnukd 22.9.2010 dk rd lekIr dj fn, tku d ckn vkj ekey d fu.k; d fy, fnukd 4.10.2010 fu;r dj fn, tku d ckn nkf[ky fd;k x;k FkkA geu igy gh mfYyf[kr fd;k g fd fofufn"V vurk"k vfèkfu;e dh èkkjk 16 (c) vuè;kr djrh g fd okni= e fofufn"V çdFku djuk gkxk fd mlu vfèkfu;e d vko';d fucèkuk ftldk ikyu ml djuk g] dk ikyu fd;k g vkj budk ikyu dju d fy, lno bPNd jgk gA ;g èkkjk 16 (c) dk vko';d vo;o g vkj Qke lE;d ikyu fofgr djrk gA fu;e 17 e vr%LFkkfir ijUrd Li"Vr% dFku djrk g fd flok, rc tc U;k;ky; bl fu"d"k ij vkrk g fd lE;d rRijrk d ckotn i{kdkj fopkj.k vkjHk gku d igy ekeyk ugh mBk ldrk Fkk] fopkj.k vkjHk gk tku d ckn l'kkèku dh vuefr ugh nh tk,xhA

16. tlk igy dgk x;k g] oreku ekey e Lo; l'kkèku vkonu rdk dk fnukd 24.9.2010 rd ijk dju d ckn vkj fu.k; d fy, ekeyk fnukd 4.10.2010 dk fu;r dj nu d ckn nkf[ky fd;k x;k FkkA vkn'k VI d fu;e 17 d ijUrd dh lefpr 0;k[;k ij i{k dk U;k;ky; dk lr"V djuk gkxk fd og lE;d rRijrk d ckotn ml vkèkkj dk irk ugh yxk ldk Fkk ftl l'kkèku }kjk vfHkopfur fd;k x;k FkkA fu%lng fu;e 17 dk;okgh d fdlh pj.k ij vfHkopuk dk l'kkfèkr dju d fy, U;k;ky; dk 'kfDr çnku djrk gA fdr] ijUrd ,d ckj fopkj.k vkjHk gk tku ij ml 'kfDr dk fucfèkr djrk gA tc rd U;k;ky; lr"V ugh g fd l'kkèku dh vuefr nu d fy, ;fDr;Dr dkj.k g] lkekU;r% U;k;ky; ,l vujkèk dk vLohdkj djxkA

18. U;k;ky; dk çe[k y{; x.kkx.kk ij ekey dk fopkj.k djuk g vkj ;g lfuf'pr djuk g fd U;k; dk ç'kklu cuk jgA bld fy, ;g vko';d g fd U;k;ky; d le{k ekey d lgh rF;k dk çLrr fd;k tk, rkfd viu fu.k; ij vku d fy, U;k;ky; dh igp leLr çkIfxd lpuk rd gkA vr%] dHkh&dHkh bl i{kk dk viuk okni= l'kkfêkr dju dh vuefr nu dh vko';drk gkrh gA viu vfHkopuk dk l'kkfêkr dju dh i{kk dk vuefr nu dk U;k;ky; dk Lofood nk 'krk ij vkèkkfjr g] çFker% nlj i{k d lkFk dkb vU;k; u gk vkj f}rh;r%] i{kk d chp fooknxLr okLrfod ç'u dk voèkkfjr dju d ç;ktu l l'kkèku vko';d gkA fdr] U;k; dju e i{kk d fgr dk lrfyr j[ku d fy, ijUrd tkMk x;k g tk Li"Vr% dFku djrk g fd %

^^--------- fopkj.k vkjHk gk tku d ckn l'kkèku d fy, vkonu dh vuefr rc rd ugh nh tk,xh tcrd U;k;ky; bl fu"d"k ij ugh vkrk g fd lE;d rRijrk d ckotn i{kdkj fopkj.k vkjHk gku d igy ekeyk ugh mBk ldk FkkA** ¼tkj Mkyk x;k½

19. lE;d rRijrk dk vFk g fd dfri; çdkj d vurk"k dk vujkèk dju d igy ;fDr;Dr vUo"k.k vko';d gA çR;kf'kr vurk"k çkIr dju d fy, U;k;fu.kk;d edfuTe dk mi;kx bfIlr dju oky i{kdkj d fy, lE;d rRij ç;kl djuk vko';d gA fdlh dk çfrufèkRo dju oky vfèkoDrk dk ;g voèkkfjr dju d fy, fd;k x;k 0;in'ku rkfF;d :i l lgh vkj i;kIr g] lE;d :i l rRij gkuk gkxkA 'kCn ^lE;d rRijrk* dk ç;kx fofufn"Vr% lfgrk e fd;k x;k g rkfd ;g voèkkfjr dju d fy, ijh{kk çkoèkkfur dh tk ld fd fopkj.k vkjHk gku d ckn l'kkèku dk vujkèk fd, tku dh fLFkfr;k e Lofood dk ç;kx fd;k tk, ;k ughA

20. fdlh nkok l mnHkr gku oky vurk"k dk vujkèk dj jg i{kdkj dk lE;d rRijrk dk ç;kx dju dh vko';drk gkrh g vkj ;g ,lh vko';drk g ftl vfHkekfpr ugh fd;k tk ldrk gA 'kCn ^^lE;d rRijrk** i{kdkj d vFkkUo;u Kku vkj nkok dh xtkb'k voèkkfjr djrk g vkj okn d ifj.kke d fy, vfr egRoi.k gA

21. fn, x, rF;k e] ^lE;d rRijrk* dh Li"V deh g vkj dh x;h xyrh fu'p; gh Vd.k xyrh d dk;{k= d vèkhu ugh vkrh gA 'kCn Vd.k xyrh dk en.k@Vd.k çfØ;k d nkjku efnr@Vfdr lkexh e dh x;h xyrh d :i e ifjHkkf"kr fd;k x;k gA 'kCn edfudy foQyrk vFkok gkFk ;k mxyh dh pd d dkj.k gb xyfr;k dk lfEefyr djrk g fdr lkekU;r% vKkurk dh xyfr;k dk vioftr djrk gA vr%] fdlh dkjokb] tk dkb dju d fy, ckè; g] dk ikyu dju dh mi{kk dk ÑR; Vd.k xyrh ugh dgk tk ldrk gA ifj.kkeLo#i] bl lcèk e Vd.k xyrh dk vfHkopu xg.k ugh fd;k tk ldrk g D;kfd fLFkfr lE;d rRijrk dh deh d dkj.k g ftle ,lk l'kkèku lfgrk d vèkhu foof{kr :i l oftr fd;k x;k gA

22. Vd.k xyrh dk nkok vkèkkjghu g vkj Lohdkj ugh fd;k tk ldrk gA oLrr%] ;fn 0;fDr] ftlu okni= r;kj fd;k] gLrk{kfjr fd;k vkj okni= dk lR;kfir fd;k] u dN è;ku fn;k gkrk] bl yki dk ogh ij è;ku e fy;k vkj ifj'k) fd;k tk ldrk FkkA ,lh ifjfLFkfr;k e ;g vFk ugh yxk;k tk ldrk g fd lE;d rRijrk fn[kk;h x;h Fkh vkj fdlh Hkh fLFkfr e] rhu&pkj okD;k e tkjh jgu oky vkKkid vko';drk dk yki Vd.k xyrh ugh gk ldrh g tlk oknhx.k }kjk nkok fd;k x;k gA fopkj.k U;k;ky; }kjk bu leLr igyvk ij lgh çdkj l fopkj fd;k x;k g vkj fu"df"kr fd;k x;k g vkj mPp U;k;ky; u ;g

Li"Vhdj.k Lohdkj dju e =fV dh g fd ;g Vd.k xyrh Fkh vkj ;g vdLekr gb xyrh FkhA

23. ;|fi vihykFkhx.k d vfèkoDrk u vud fu.k;k dk m)r fd;k g] ij mudk ifj'khyu dju ij gekjk nf"Vdk.k g fd mu ekeyk e l dN dk vkn'k vI fu;e 17 d ijUrd d vr%LFkkiu d igy vFkok ml ekey d fofp= rF;k ij fofuf'pr fd;k x;k FkkA bl U;k;ky; u vud fu.k;k e bl 'kfDr dk ekU; Bgjk;k fd l;kX; ekeyk e U;k;ky; nlj i{k dk 0;; vfèkfu.khr djd {kfrifr djd foyfcr l'kkèku dk vuKkr dj ldrk gA vkn'k vI fu;e 17 d l'kkèku] tlk o"k 2002 e ij%LFkkfir fd;k x;k g] dk li.k mí'; fopkj.k vkjHk gku d ckn vfHkopu dk l'kkfèkr dju d fy, vkonu nkf[ky dju l jkduk] vk'p;k l cpuk g vkj ;g g fd i{kk dk nlj i{k d ekey dh i;kIr tkudkjh FkhA ;g vkonuk dk nkf[ky dju e foyc dk jkdu e Hkh lgk;rk djrk gA [n[k% ,uhXyt ;kgkuu cuke jkeyFkk ,o vU;] vtUnçlknth ,u0 ikM ,o ,d vU; cuke Lokeh d'koçdk'knkl th ,u0 pnj dkrk cly cuke jkftUnj flg vkuUn] jktdekj xjkokjk cuke ,l0 d0 lkjoxh ,.M diuh çkboV fyfeVM] fo|kckb cuke ineyFkk] eu dkj cuke gjrkj flg l?kk.]

*24. mDr ppk d vkykd e] ge fopkj.k U;k;ky; }kjk igp x, fu"d"k d lkFk ijh rjg lger g vkj mPp U;k;ky; dk rd Lohdkj dju e v{ke gA rnulkj] flfoy iujh{k.k ;kfpdk l0 5162 e ikfjr fnukd 8.2.2011 dk vkn'k vikLr fd;k tkrk gA***

6. उक्त निर्णय के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और अपने समक्ष दिए गए तर्कों का अधिमूल्यन करने और इस निष्कर्ष कि याची (प्रतिवादी) द्वारा दाखिल संशोधन के लिए आवेदन में गुणागुण नहीं है, पर आने में कोई गलती नहीं की है। आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने समुचित रूप से तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किया है और तद्द्वारा संप्रेक्षित किया है कि दस्तावेज प्रदर्श 2 पर टिप्पणी करने के लिए प्रतिवादी के पास पर्याप्त अवसर उपलब्ध था। लिखित कथन में संशोधन विलंबित चरण पर इप्सित किया गया है जब पक्षों का साक्ष्य बन्द कर दिया गया है और मामला तर्कों के लिए रखा गया है। संहिता में अभिव्यक्ति ''सम्यक तत्परता'' का उपयोग विनिर्दिष्टत: किया गया है ताकि यह विनिश्चित करने के लिए परीक्षा प्रावधानित की जा सके कि क्या विचारण आरंभ होने के बाद अनुरोधित संशोधन की स्थितियों में स्वविवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए। दावा से उद्भूत होने वाले अनुतोष का अनुरोध करने वाले पक्ष को सम्यक तत्परता का प्रयोग करने की आवश्यकता है और यह ऐसी आवश्यकता है जिसे अभिमोचित नहीं किया जा सकता है जैसा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **(2012)2 SCC 300** में अभिनिर्धारित किया गया है। अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश वैध और विधिक प्रतीत होता है क्योंकि दिए गए तथ्यों में ''सम्यक तत्परता'' का अभाव है। उक्त चर्चा की दृष्टि में, यह न्यायालय पूर्णत: अवर न्यायालय द्वारा पहुँचे गए निष्कर्षों के साथ सहमत है और याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए निवेदनों को स्वीकार करने में अक्षम है। जहाँ तक याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों का संबंध है वे वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर प्रयोज्य नहीं है और याची के मामले की मदद नहीं करते हैं। उक्त चर्चा की दृष्टि में, इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि अवर न्यायालय ने लिखित कथन में संशोधन के लिए आवेदन अस्वीकार करने में कोई गलती नहीं की है और इसलिए, इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

7. तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि॰

cuke

बिनोद सिंह एवं अन्य

M.A. No. 270 of 2008. Decided on 13th July, 2012.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धारा 140—दुर्घटना–अंतरिम मुआवजे का अधिनिर्णय–इस आधार पर अधिनिर्णय को चुनौती दी गयी कि वाहन केवल कृषि प्रयोजन के लिए था किंतु दुर्घटना के समय इसका उपयोग यात्रियों को ढोने के लिए किया जा रहा था–दुर्घटना लापरवाह और उपेक्षापूर्ण चालन के कारण हुई–अधिकरण ने सही प्रकार से अपीलार्थी को दायी अभिनिर्धारित किया–अपील खारिज। (पैराएँ 2 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. D.C. Ghosh, For the Appellant; Mr. V. Kr. Sharma, For the Respondent No.5.

आदेश

यह अपील दावा केस सं॰ 27 वर्ष 2006 में विद्वान मोटर वाहन दुर्घटना दावा अधिकरण, चतरा द्वारा पारित दिनांक 23.5.2008 के आदेश और अधिनिर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है। उक्त अधिनिर्णय द्वारा, विद्वान अधिकरण ने अपीलार्थी नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि॰ को दावेदारों को मोटर यान अधिनियम की धारा 140 के अधीन अंतरिम मुआवजा का भुगतान करने का निर्देश दिया है।

2. अधिनियम को मुख्यत: इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि विद्वान अधिकरण ने बीमा कंपनी के दायित्व से इनकार पर विचार नहीं किया है। निवेदन किया गया है कि वाहन इस स्पष्ट शर्त के साथ अपीलार्थी द्वारा बीमाकृत किया गया था कि वाहन का उपयोग केवल कृषि प्रयोजन से किया जाएगा। दुर्भाग्यग्रस्त ट्रैक्टर की दुर्घटना के समय पर, इसका उपयोग यात्रियों को ढोने के लिए किया जा रहा था। वाहन ऐसे प्रयोजन के लिए रजिस्टर्ड नहीं किया गया था और इसलिए बीमा कंपनी को मुआवजा का भुगतान करने के लिए दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। विद्वान अधिकरण ने बीमा कंपनी की उक्त आपत्ति को विचार में नहीं लिया है और मनमाने रूप से आक्षेपित अधिनिर्णय दिया है।

3. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि ट्रैक्टर अपीलार्थी द्वारा बीमाकृत किया गया था और दुर्भाग्यपूर्ण दिन पर दावेदारगण, जो फल-सब्जी विक्रेता थे, भी अपने सामानों अर्थात् सब्जी की 6 टोकरी और फल की चार टोकरी के साथ प्रतापपुर से माहूगाँव जा रहे थे। वे यात्री नहीं थे जैसा अपीलार्थी द्वारा अभिकथित किया गया है। अपीलार्थी द्वारा किया गया अभिवाक् आधारहीन है और अभिलेख पर मौजूद सामग्री और प्रासंगिक पहलूओं पर विचार करने के बाद अधिकरण द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।

4. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, मैं प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में सार पाता हूँ। विद्वान अधिकरण ने अभिलेख पर सामग्री और प्रासंगिक पहलूओं पर विचार किया है और पाया है कि वाहन अपीलार्थी के पास बीमित था तथा चालक योगेन्द्र साव द्वारा तेज एवं उपेक्षापूर्वक चलाये जाने के कारण वाहन दुर्घटनाग्रस्त हुआ। दुर्घटना ने पीड़िताओं आशा देवी और रजिया देवी को गंभीर उपहतियाँ कारित किया जो घातक सिद्ध हुई और उनकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार, विद्वान अधिकरण ने सही प्रकार से अपीलार्थी को दायी अभिनिर्धारित किया है और मोटर यान अधिनियम की धारा 140 के अधीन उक्त अंतरिम अधिनिर्णय दिया है।

5. मैं आक्षेपित निर्णय में अवैधता अथवा दुर्बलता नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

6. विधि के अनुरुप इस पर विचार करने के लिए इस न्यायालय में जमा की गयी सांविधिक राशि विद्वान अधिकरण को भेजी जाए।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

मो॰ आशिक अहमद (689 में)

उपेन्द्र नाथ महतो (1657 में)

कर्नल लाल ज्योतिंद्र देव (2984 में)

cuke

भारत संघ एवं अन्य (सभी में)

W.P. (PIL) Nos. 689, 1657 with 2984 of 2010. Decided on 17th July, 2012.

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971—धारा 12—गलत शपथ पत्र प्रस्तुत करना न्यायालय के अवमान के तुल्य होगा–अवमान कार्यवाही आरंभ की जा सकती है यदि उत्तर दाखिल नहीं किया जाता है और मामले उत्तर दाखिल किए जाने के लिए लंबित हैं। (पैराएँ 3 से 5)

अधिवक्तागण.–M/s Rajeev Kumar, Arshad Hussain, Sardhu Mahto, For the Petitioner; M/s Anil Kumar Sinha, A. Allam, Md. M. Khan, For the Respondents.

आदेश

इस न्यायालय के बारंबार निर्देशों के बावजूद और इस न्यायालय की अनेक पीठों द्वारा वेदना दर्शाने पर भी समस्त मामलों में उत्तर दाखिल नहीं किए जा रहे हैं। इन मामलों में भी, जहाँ रिट याचीगण द्वारा गंभीर विवाद्यक उठाए गए हैं, जुलाई, 2010 के मामले में उत्तर दाखिल नहीं किया गया है।

2. इस प्रकार, इस न्यायालय के आदेश के उल्लंघन/अवहेलना की दृष्टि में, जिसकी प्रति सरकार के पास है, हम मुख्य सचिव, झारखंड सरकार और सचिव, कल्याण विभाग, प्रोजेक्ट बिल्डिंग, धुर्वा के विरुद्ध इस न्यायालय के अवमान कार्यवाही को आरंभ करना समुचित समझते हैं।

3. किंतु, इन मामलों में प्रभारी अधिकारी से वसूल किए जाने योग्य प्रत्येक के लिए 10,000/- रुपयों के भुगतान पर इन मामलों में प्रतिशपथ पत्र दाखिल करने का अंतिम अवसर प्रदान किया जाता है।

4 विद्वान महाधिवक्ता इस चरण पर उपस्थित हुए हैं और विद्वान महाधिवक्ता के निवेदन की दृष्टि में हम मुख्य सचिव, झारखंड सरकार और सचिव, कल्याण विभाग, प्रोजेक्ट बिल्डिंग, धुर्वा के विरुद्ध अवमान कार्यवाही आरंभ नहीं कर रहे हैं। किंतु, स्वयं इस मामले में हम महाधिवक्ता को मामलों की सूची प्रस्तुत करने का निर्देश दे रहे हैं जिनमें विगत दो वर्षों से उत्तर दाखिल नहीं किया जा रहा है और उत्तर दाखिल करने के लिए मामले विगत दो वर्षों से लंबित हैं। हम स्पष्ट कर रहे हैं कि गलत शपथ पत्र प्रस्तुत करना इस न्यायालय के अवमान के तुल्य होगा, जो इन मामलों में उत्तर नहीं दाखिल करने के मामले से पृथक रूप से दर्ज किया जाएगा और यह न्यायालय ब्लैंकेट आदेश भी पारित करेगा यदि इस न्यायालय द्वारा नियत युक्तियुक्त समय के भीतर उत्तर नहीं दाखिल किया जाता है, न्यायालय केवल

व्यय अधिरोपित करने के बाद मामला स्थगित करेगा जो विभागीय कार्रवाई, जो विभाग द्वारा की जाएगी, के साथ संबंधित अधिकारी से वसूल करने योग्य होगा।

5. इस आदेश की प्रति मुख्य सचिव, झारखंड सरकार, को दी जाए, जो इसे झारखंड सरकार के समस्त विभागों के प्रमुख सचिवों, सचिवों और अन्य अधिकारियों को यह सुनिश्चित करने के लिए प्रसारित करेंगे कि समय पर इन समस्त मामलों में उत्तर दाखिल किया जाए और मामलों का 'रजिस्टर' मेनटेन करने का निर्देश देंगे, जिनमें उत्तर दाखिल नहीं किया गया है ताकि भविष्य में किसी विलंब के बिना वे ताथ्यिक विवरण प्राप्त कर सकते हैं।

6. इन मामलों में यदि दिनांक 24 जुलाई, 2012 तक उत्तर नहीं दाखिल किया जाता है, मामला दिनांक 26 जुलाई, 2012 को सुना जाएगा।

7. इस मामले को दिनांक 26 जुलाई, 2012 को रखा जाए।

8. इस आदेश की प्रति विद्वान महाधिवक्ता, राज्य के विद्वान अधिवक्ता, भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता और याचीगण के विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

माता प्रसाद मिश्रा

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

A.C. (S.B.) No. 8 of 2008. Decided on 4th July, 2012.

केस सं॰ 13 वर्ष 2007 (JET) में झारखंड शैक्षणिक अधिकरण के अध्यक्ष और झारखंड शैक्षणिक अधिकरण के प्रशासनिक सदस्य द्वारा पारित दिनांक 22.11.2007 के आदेश के विरुद्ध।

सेवा विधि–सेवा समाप्ति–सी॰ बी॰ एस॰ ई॰ उपविधि का नियम 47—सहायक शिक्षक के पद से संपुष्ट सेवा की समाप्ति–यह प्रकट करते हुए कि सेवा समाप्ति सीधे तौर पर नहीं हुई थी, प्रबंधन द्वारा नोटिस दिया गया–सेवा समाप्ति दांडिक प्रकृति की है–सेवा समाप्ति का आदेश पारित करने के पहले नियमित विभागीय जाँच करना आवश्यक होगा–अधिकरण द्वारा पारित आदेश अपास्त–पिछली मजदूरी के बिना याची को पुनर्बहाल किया जाए। (पैराएँ 9 से 13)

अधिवक्तागण.–Mr. Atanu Banerjee, For the Appellant; M/s A.K. Sahani, P.S. Ghosh, For the Respondents.

पी॰ पी॰ भट्ट, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. वर्तमान अपील केस सं॰ 13 वर्ष 2007 (जेट) में झारखंड शैक्षणिक अधिकरण के विद्वान अध्यक्ष और झारखंड शैक्षणिक अधिकरण के विद्वान प्रशासनिक सदस्य द्वारा पारित दिनांक 22.11.2007 के आदेश, जिसके द्वारा विद्वान अधिकरण ने व्यय के साथ अपीलार्थी का आवेदन अस्वीकार कर दिया है, को अभिखंडित करने के लिए समुचित रिट, आदेश अथवा निर्देश जारी करने के लिए झारखंड शैक्षणिक अधिकरण अधिनियम की धारा 15 के अधीन दाखिल की गयी है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य निम्नलिखित हैं:–

अपीलार्थी इसाई अल्पसंख्यक गोमिया विद्यालय सोसाइटी, जो केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नयी दिल्ली के साथ स्थायी रूप से संबद्ध है, द्वारा चलाये जा रहे पी॰ आई॰ आई॰ टी॰ एस॰ मॉडर्न स्कूल में दिनांक 14.5.1990 के पत्र सं॰ PMS/A/3141 के तहत अस्थायी शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था और तद्नुसार, उसने सेवा ग्रहण किया और परिवीक्षा अवधि पूरा करने के बाद उसकी सेवा दिनांक 29.4.1992 के पत्र सं॰ PMS/A/3142 के तहत दिनांक 1.4.1992 के प्रभाव से सहायक शिक्षक के पद के विरुद्ध संपुष्ट की गयी थी। तत्पश्चात, अचानक अपीलार्थी को ज्ञात हुआ कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा उसकी सेवाएँ दिनांक 26.6.2004 के प्रभाव से समाप्त कर दी गयी हैं। अपीलार्थी ने क्वार्टर खाली करने के लिए, क्योंकि विद्यालय द्वारा उसके सेवा समाप्त कर दी गयी है, दिनांक 15.7.2004 का पत्र सं॰ PMS/A/3069 प्राप्त किया। तत्पश्चात, अपीलार्थी ने सेवा में पुनर्बहाल किए जाने के लिए प्रत्यर्थीगण को अपने अधिवक्ता के माध्यम से दिनांक 25.8.2004 का नोटिस भेजा। प्रत्यर्थी ने दिनांक 3.9.2004 के उत्तर के तहत अधिवक्ता के माध्यम से उक्त नोटिस का जवाब दिया। तत्पश्चात, अपीलार्थी अपनी शिकायत को दूर करवाने के लिए सहायक श्रम आयुक्त, बोकारो के समक्ष गया, किंतु, अपीलार्थी के अनुसार उसकी शिकायत दूर नहीं की गयी थी। तत्पश्चात, दिनांक 15.7.2004 का पत्र सं॰ PMS/A/3069, जिसके द्वारा अपीलार्थी की सेवा समाप्त कर दी गयी थी और उसे क्वार्टर छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था, को अभिखंडित करवाने के अपीलार्थी इस न्यायालय के समक्ष आया, किंतु इस न्यायालय द्वारा इसे भी खारिज कर दिया गया था। इसके पश्चात अपीलार्थी ने दिनांक 13.4.2007 को झारखंड शैक्षणिक अधिकरण के समक्ष आवेदन केस सं॰ 13 वर्ष 2007 दाखिल किया किंतु इसे भी दिनांक 22.11.2007 को खारिज कर दिया गया था।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि जे॰ ई॰ टी॰ के आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर अपीलार्थी ने झारखंड उच्च न्यायालय के समक्ष इस आधार पर अपील दाखिल किया कि याची की सेवा समाप्त करने के पहले कोई भी विभागीय कार्यवाही कभी नहीं आरंभ की गयी थी अथवा संचालित की गयी थी जो दांडिक प्रकृति की थी और, इसलिए, सेवा समाप्ति का आदेश और परिणामत: अपीलार्थी को क्वार्टर खाली करने के लिए कहना नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का स्पष्ट उल्लंघन है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि सेवा समाप्ति से पहले अपीलार्थी पर नोटिस तामील नहीं की गयी थी। सेवा समाप्ति के पहले अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर भी नहीं दिया गया था। विद्वान जे॰ ई॰ टी॰ नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के पालन के संबंध में महत्वपूर्ण विवाद्यक पर विचार करने में विफल रहा है।

5. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि प्रत्यर्थीगण ने निष्पक्षत: कृत्य नहीं किया है। दूसरी ओर, वे निवेदन कर रहे हैं कि कक्षा घटने के कारण सी॰ बी॰ एस॰ ई॰ उप-विधियों की धारा 29 (2) के अधीन अपीलार्थी की सेवा समाप्त कर दी गयी है, किंतु इस अभिवचन/तर्क को सिद्ध करने के लिए प्रत्यर्थीगण ने अभिलेख पर कोई भी सामग्री नहीं लाया है। यहाँ तक कि प्रत्यर्थीगण यह दर्शाने में अक्षम रहे हैं कि इस आधार पर कुछ अन्य व्यक्तियों की सेवा भी समाप्त कर दी गयी है। यह स्पष्टत: दर्शाता है कि असद्भावपूर्ण आशय से अपीलार्थी की सेवा समाप्त की गयी है और केवल अपनी कार्रवाई को न्यायोचित ठहराने के लिए कक्षाओं के घटने का अभिवचन किया गया है। निवेदन किया गया है कि दांडिक कार्रवाई के रूप में अपीलार्थी की सेवा समाप्त की गयी है, अत: मुख्य दंड अधिरोपित करने के लिए प्रावधानित प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहिए था। विद्वान अधिवक्ता ने केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के उप विधियों के प्रावधान 47 को निर्दिष्ट किया है जो मुख्य दंड अधिरोपित करने की प्रक्रिया प्रावधानित करती है।

6. यह निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया है।

7. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि झारखंड शैक्षणिक अधिकरण के समक्ष अपीलार्थी ने सेवा समाप्ति को चुनौती कभी नहीं दिया था और उसकी प्रार्थना केवल क्वार्टर खाली करने के विरुद्ध सुरक्षा इप्सित करने की सीमा तक सीमित थी, अत: इस चरण पर सेवा समाप्ति के आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती है। आगे प्रतिवाद किया गया है कि अपीलार्थी ने किसी विरोध के बिना अंतिम सेटलमेंट के बदले दिनांक 6.8.2004 की चेक सं॰ 3648382 द्वारा 18,476/- रुपयों को स्वीकार कर लिया है, अत:, ऐसा धन स्वीकार करने के बाद, उसका दावा विवंध और अधित्यजन सिद्धांत द्वारा कायम नहीं बना रह सकता है। आगे प्रतिवाद किया गया है कि विद्यालय की सेवा शर्तों के मुताबिक जब अपीलार्थी विद्यालय की सेवा में नहीं है, उसे क्वार्टर अपने पास रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, अत:, अधिकरण ने सही प्रकार से अपीलार्थी का दावा अस्वीकार कर दिया है और अपीलार्थी द्वारा दाखिल प्रत्युत्तर शपथ पत्र के पैरा 9 पर विश्वास करते हुए प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि चूँकि अधिकरण के समक्ष आवेदन दाखिल करने के काफी पहले क्वार्टर खाली कर दिया गया था, उसे सारत: चुनौती देने का प्रश्न नहीं है। परिसीमा के बिंदु पर विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्ष 2007 में झारखंड शैक्षणिक अधिकरण के समक्ष अपीलार्थी द्वारा मामला संस्थापित किया गया था, अत: दावा समय वर्जित था।

8. प्रत्यर्थीगण द्वारा किए गए निवेदनों के उत्तर में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपील के मेमो के पैरा 12 में और आगे सेवा समाप्ति के आदेश को चुनौती दी गयी है। आगे निवेदन किया गया था कि अधिकरण तात्विक पहलू अर्थात् नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन के संबंध में विचार करने में विफल रहा है। जे॰ ई॰ टी॰ के विद्वान अध्यक्ष ने नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के बारे में निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है।

9. पूर्वोल्लिखित परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर सामग्री का परिशीलन करने पर तथा विशेषकर प्रबंधन द्वारा दिए गए कानूनी नोटिस के उत्तर से प्रकट होता है कि सेवा समाप्ति सीधे तौर पर नहीं हुई थी। सेवा समाप्ति दांडिक प्रकृति की प्रतीत होती है और, इसलिए, सेवा समाप्ति का आदेश जारी करने के पहले नियमित विभागीय जाँच करना आवश्यक होगा जैसा सी॰ बी॰ एस॰ ई॰ उपविधियों के नियम 47 में अंतर्विष्ट है। इसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:–

^^e[; nM vfèkjksfir dju d fy, çfØ;k

*"47. **e[; nM vfèkjksfir dju d fy, çfØ;k**&(1) tgk rd lHko gk] uhp fofufn"V rjhd l tkp dju d flok, fdlh depkjh ij dkbZ e[; nM vfèkjksfir dju okyk vkn'k ikfjr ugh fd;k tk,xk*

(a) vfHkdFku ftu ij tkp fd;k tkuk çLrkfor g d vkèkkj ij vu'kklfud çkfèkdkjh fuf'pr vkjksi fojfpr djxk vkj vkjksik dh çfr d lkFk vfHkdFkuk d fooj.k ftu ij o vkèkkfjr g] depkjh dk çLrr djxk vkj ml ,l le; d Hkhrj tlk vu'kklfud çkfèkdkjh }kjk fofufn"V fd;k tk ldrk g fdr nk llrkg l vfèkd u gk viu cpko dk fyf[kr dFku nkf[ky dju vkj ;g dFku dju fd D;k og 0;fDrxr #i l lu tku dk bPNd g] dh vko';drk gkxhA

(b) cpko d fyf[kr dFku dh çkfIr ij vFkok tgk ,lk dFku fofufn"V le; d Hkhrj çkIr fd;k tkrk g] vu'kklfud çkfèkdkjh Lo; ,l vkjksi dh tkp dj ldrk g ftUgs Lohdkj ugh fd;k x;k g vFkok ;fn og ,lk djuk vko';d le>rk g] bl ç;ktu l tkp vfèkdkjh fu;Dr dj ldrk g(

(c) tkp d lekiu ij] tkp vfèkdkjh vkjkik e l çf;d ij viu fu"d"kk dk mud dkj.kk d lkFk nt djr g, tkp dk fjikV r;kj djxkA

(d) vu'kklfud çkfèkdkjh tkp fjikV ij fopkj djxk vkj çf;d vkjki ij viuk fu"d"k nt djxk vkj ;fn vu'kklfud çkfèkdkjh dk er g fd e[; nMk e l dkb vfèkjkfir fd;k tkuk pkfg,] og

(i) tkp vfèkdkjh] tgk ,lh tkp ,l vfèkdkjh }kjk dh x;h g] d fjikV dh çfr depkjh dk nxk(

(ii) mld lcèk e dh tku okyh çLrkfod dkjokb dk dFku djr g, vkj fofufn"V le; d Hkhrj] tk nk llrkg l vfèkd dh ugh g] çLrkfor dkjokb d fo#) ,lk vH;konu tlk og nu dk bPNd gk ldrk g] nu d fy, mldk dgr g, mldk fyf[kr e ukfVl nxk]

(iii) depkjh d vH;konu] ;fn gk] dh çkfIr ij vu'kklfud çkfèkdkjh fofuf'pr djxk fd D;k nM] ;fn gk] depkjh ij vfèkjkfir fd;k tkuk pkfg, vkj bld iokueknu d fy, dfefV dk nM vfèkjkfir dju dk viuk vufre fu.k; llfpr djxkA

(iv) nM d fo#) depkjh }kjk fn, x, vH;konu ij fopkj dju d ckn vu'kklfud çkfèkdkjh nM] ftl ;g depkjh ij vfèkjkfir dju dh iLFkkiuk djrk g] d çfr viuk fu"d"k nt djxk vkj viu fu"d"k vkj fu.k; dk dfefV dk bld vueknu d fy, Hktxk vkj ,lk djr g, vu'kklfud çkfèkdkjh vfHkdFkuk] depkjh d fo#) fojfpr vkjkik] depkjh }kjk fn, x, vH;konu tkp fjikV dh çfr tgk ,lh tkp dh x;h Fkh vkj vu'kklfud çkfèkdkjh dh dk;okgh d fooj.k lfgr ekey d leLr çkIfxd vfHky[k dk depkjh dk çLrr djxkA

*(2) dfefV d vueknu dk çkIr dju d ckn gh e[; nM d vfèkjki.k d lcèk e vu'kklfud çkfèkdkjh }kjk vkn'k ikfjr fd;k tk,xkA***

10. स्वीकृत रूप से, वर्तमान मामले में सी॰ बी॰ एस॰ ई॰ नियमों के अधीन विहित प्रक्रिया का अनुसरण करने के बजाए संपुष्टिकरण पत्र के खंड 4 के अधीन आवश्यक नोटिस के बदले तीन माह के वेतन का भुगतान अपीलार्थी को किया गया था। मैं प्रत्यर्थीगण द्वारा दिए गए तर्क में सार नहीं पाता हूँ कि उन्होंने संपुष्टिकरण पत्र के खंड 4 में प्रावधानित अध्यपेक्षित प्रक्रिया का अनुसरण किया है और नोटिस के बदले तीन माह के वेतन का भुगतान किया है। वर्तमान मामले को विनिश्चित करने के लिए अनुशासनिक प्रक्रिया के संबंध में दंड के अधिरोपण के संबंध में सी॰ बी॰ एस॰ ई॰ नियमों में अंतर्विष्ट प्रासंगिक प्रावधान प्रासंगिक हैं, अत: इनका अनुसरण किया जाना चाहिए। किंतु प्रक्रियात्मक त्रुटि अथवा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन प्रतीत होता है।

11. मैं दांडिक कार्रवाई के रूप में सेवा समाप्ति और विभागीय जाँच नहीं करने, जैसा केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के उपविधियों के प्रावधान 47 के अधीन अनुध्यात किया गया है, के संबंध में अपीलार्थी द्वारा दिए गए तर्क में सार पाता हूँ। यह प्रतीत होता है कि कक्षा/सेक्शन के घटने के कारण सेवा सीधे तौर पर समाप्ति नहीं है।

12. मैंने अधिकरण द्वारा पारित आदेश का परिशीलन किया है। यह अभिनिर्धारित करते हुए कि यह विधि सम्मत तथा वैध है अधिकरण ने सेवा समाप्ति की कार्रवाई को संपुष्ट करके त्रुटि कारित किया है। विद्वान अधिकरण इसके समुचित परिप्रेक्ष्य में मामले के तथ्यों और महत्वपूर्ण विधिक विवाद्यकों पर विचार करने में विफल रहा है।

13. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि विद्वान झारखंड शैक्षणिक अधिकरण द्वारा पारित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है। अतः, इसे अपास्त किया जाता है। तद्नुसार, अपील अनुज्ञात की जाती है। काम नहीं वेतन नहीं के सिद्धांत के आधार पर किसी पिछली मजदूरी के बिना याची को सेवा में पुनर्बहाल किया जाए। प्रत्यर्थीगण नियम के अधीन अधिकथित अध्यपेक्षित प्रक्रिया का अनुसरण करके अनुशासनिक कार्यवाही आरंभ करने के लिए स्वतंत्र है यदि याची का आचरण इसकी अपेक्षा करता है।

---

ekuuh; vkykd flg] U;k;efr

सत्येन्द्र भुइयाँ

cuke

भारत कोकिंग कोल लि॰ एवं अन्य

W.P. (S) No. 5176 of 2006. Decided on 5th July, 2012.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–अनुकंपा पर नियुक्ति–आवेदन की अस्वीकृति–विधिक उत्तराधिकारी, जो मृतक कर्मचारी पर आश्रित नहीं है, अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए विचार नहीं किया जाएगा–केवल वैसे विधिक उत्तराधिकारियों पर अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए विचार किया जाएगा जो मृतक कर्मचारी पर आश्रित हैं–याची अपने पिता की असामयिक मृत्यु के कारण अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए विधितः हकदार है–अवयस्क आश्रित को केवल वयस्कता की आयु प्राप्त कर लेने पर ही अनुकंपा पर नियुक्ति दी जा सकती है–इसपर टेक्निकल आधार पर अनुकंपा पर नियुक्ति के अनुरोध को इनकार नहीं किया जाना चाहिए था–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 10, 11, 15 से 18)

निर्णयज विधि.–(2011) 4 SCC 209; 2005 (1) JCR 288 (Jhr); (2007)8 SCC 549—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Ratnesh Kumar, O.P. Prasad, A.K. Singh, For the Petitioner; Mr. Amit Kumar Sinha, For the BCCL.

आदेश

याची अनुकंपा पर नियुक्ति इप्सित करते हुए अपने आवेदन की अस्वीकृति करने वाले दिनांक 28.11.2005 के आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन चुनौती देते हुए इस न्यायालय के पास आया है।

2. अन्य बातों के साथ साथ वर्तमान मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि ''याची का पिता स्व॰ भुनवा भुइयाँ टाइम रेटेड वर्कर (टी॰ आर॰ डब्ल्यू॰) के रूप में कार्यरत था जिसका निधन अपने पीछे तीन पुत्रों, दो पुत्रियों और विधवा को छोड़कर दिनांक 24.3.2000 को हो गया। निर्विवादतः श्रीमती जसमतिया कामिन, स्व॰ भुनवा भुइयाँ की पत्नी और वर्तमान याची की माता, भारत कोकिंग कोल लि॰ के नियोजन में थी और अभी भी है। परिशिष्ट-5 के मुताबिक, दिनांक 21.12.2000 को याची की आयु 17 वर्ष थी, दूसरे शब्दों में, याची दिनांक 24.3.2000 को मुश्किल से 16 वर्ष का था जब उसके पिता भुनवा

भुइयाँ की मृत्यु काम के दौरान हो गयी। याची ने वयस्कता की आयु अर्थात् 18 वर्ष 2002 में पाने पर दिनांक 24.6.2003 को अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन दिया है। दिनांक 29.8.2004 के परिशिष्ट–7 के तहत याची को अन्य उम्मीदवारों के साथ साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था। दिनांक 27.12.2004 के पत्र (रिट याचिका का परिशिष्ट–8) के तहत भारत कोकिंग कोल लि॰ ने स्व॰ भुनवा भुइयाँ के मृत्यु प्रमाण पत्र की वास्तविकता सत्यापित करने के लिए प्रखंड विकास प्राधिकारी को लिखा है। तत्पश्चात्, दिनांक 28.11.2005 के पत्र (रिट याचिका का परिशिष्ट–11) के तहत प्रत्यर्थीगण द्वारा अनुकंपा पर नियुक्ति इप्सित करने वाले आवेदन को यह कथन करते हुए अस्वीकार कर दिया गया था कि विभाग के दिनांक 24.1.2004 के कार्यालय परिपत्र सं॰ 1195-1270 के मुताबिक याची को अपने पिता की मृत्यु की तिथि से 30 दिनों के भीतर अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन देना चाहिए था जबकि याची ने अपने पिता की मृत्यु की तिथि से लगभग तीन वर्षों बाद आवेदन दिया है।''

3. प्रत्यर्थीगण ने यह कथन करते हुए प्रति शपथ पत्र दाखिल किया है कि चूँकि याची के पिता की मृत्यु दिनांक 24.3.2000 को हुई है और याची ने दिनांक 24.6.2003 को लगभग 3 वर्ष 3 माह बाद अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन दिया है, अत: आवेदन समय सीमा के परे था जैसा प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 24.1.2004 के परिपत्र द्वारा नियत किया गया है।

4. प्रत्यर्थीगण द्वारा आगे प्राख्यान किया गया है कि दिनांक 24.1.2004 के परिपत्र के पहले भी अनुकंपा पर नियुक्ति इप्सित करते हुए आवेदन देने की समय सीमा डेढ़ वर्ष थी।

5. मैंने याची के विद्वान अधिवक्ता श्री रत्नेश कुमार और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री अमित कुमार सिन्हा को सुना है और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है।

6. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **भवानी प्रसाद सोनकार बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2011)4 SCC 209,** में पैरा 20 पर निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:–

"20. bl çdkj] vudik d vkèkkj ij fu;ktu d fy, nkok ij fopkj djr g, fuEufyf[kr dkjdk dk è;ku e j[kuk gkxkA

(i) vudik ij fu;fDr ljdkj vFkok ykd çkfèkdkjh }kjk tkjh fu;ek vkj fofu;euk dh vuifLFkfr e ugh dh tk ldrh gA vujkèk ij dBkjrkiod 'kkfl r ;ktuk d vu#i fopkj djuk gkxk vkj ;ktuk l vlc) vudik ij fu;fDr dju dk Lofood fdlh çkfèkdkjh dk ugh fn;k x;k gA

(ii) vudik ij fu;fDr d fy, vkonu vufpr foyc d fcuk nkf[ky djuk gkxk vkj le; dh ;fDr;Dr vofèk d Hkhrj bl ij fopkj djuk gkxkA

(iii) vudik d vkèkkj ij fu;fDr lok e jgr g, deku oky dh eR; vFkok efMdy vleFkrrk d dkj.k ifjokj e g, vpkud ldV dk lkeuk dju d fy, dh tkrh gA vr%] ;FkkfLFkfr mldh eR; vFkok vleFkrk d le; ij erd@vleFk depkjh d ifjokj dh foÙkh; n'kk dk è;ku e fy, fcuk migkj forj.k d :i e LokHkkfod :i l vudik ij fu;ktu çnku ugh fd;k tk ldrk gA

(iv) vudik ij fu;fDr erd@vleFk depkjh d vkfJrk vFkok ekrk&firk iRuh] i= vFkok i=h e l doy fdlh ,d dk vuK; g vkj u fd leLr

*lcfèk;k dk vkj ,lh fu;fDr;k doy fuEure dkfV vFkkr rrh; vkj prFkox ink ij dh tkuh pkfg,A***

7. दिनांक 23 दिसंबर, 2000 का राष्ट्रीय कोयला मजदूरी करार के करार ज्ञापन की प्रति इस न्यायालय को याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह बताने के लिए सौंपी गयी थी कि कर्मचारी के आश्रित को अनुकंपा पर नियुक्ति देने की योजना है।

8. कोई विवाद नहीं है कि मृतक का आश्रित खंड 9.3.3 के अधीन अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन दे सकता है। खंड 9.3.3 के मुताबिक आश्रित पत्नी/पति, अविवाहित पुत्री, पुत्र और वैध रूप से दत्तक पुत्र को सम्मिलित करता है और यदि ऐसा प्रत्यक्ष आश्रित उपलब्ध नहीं है, तब मृतक के साथ निवास करने वाले और मृतक की आय पर पूरी तरह से आश्रित भाई, विधवा पुत्री/विधवा बहु अथवा दामाद अनुकंपा पर नियुक्ति का हकदार है।

9. अध्याय IX का परिशीलन करने पर और **भवानी प्रसाद सोनकर (ऊपर)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के संप्रेक्षण को ध्यान में रखते हुए मुझे यह अभिनिर्धारित करने में हिचकिचाहट नहीं है कि विधिक उत्तराधिकारी, जो मृतक कर्मचारी पर आश्रित नहीं है, पर अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए विचार नहीं किया जाएगा और अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए केवल ऐसे विधिक उत्तराधिकारी पर विचार किया जाएगा जो मृतक कर्मचारी का आश्रित है।

10. वर्तमान मामले के तथ्यों पर आते हुए, परिशिष्ट–5 के मुताबिक याची दिनांक 21.12.2001 को 17 वर्ष का था और अपने पिता मृतक कर्मचारी की मृत्यु की तिथि पर दिनांक 24.3.2000 को लगभग 15-16 वर्ष का था। याची की आयु के प्रश्न पर विवाद नहीं है। तत्पश्चात् वर्ष 2002 में कभी वयस्कता की आयु अर्थात् 18 वर्ष प्राप्त कर लेने पर उसने दिनांक 24.6.2003 को अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन दिया है चूँकि याची दिनांक 24.3.2000 को जब उसकी पिता की मृत्यु सेवारत रहते हुए हो गयी थी, याची मुश्किल से 15-16 वर्ष का था, अतः उसे मृतक कर्मचारी का आश्रित मानना ही होगा। यह सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि वह अपने पिता पर आश्रित नहीं था। मात्र इसलिए कि उसकी माता भी मजदूर के रूप में कार्यरत थी, का अर्थ यह नहीं है कि अवयस्क पुत्र को अपने पिता पर आश्रित के रूप में नहीं माना जाएगा। अतः, मेरे सुविचारित मत में याची अपने पिता के असामयिक निधन के कारण अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए वैध रूप से हकदार है।

11. अब, अगला प्रश्न यह है कि क्या याची का आवेदन प्रत्यर्थीगण द्वारा यह कहते हुए कि इसे बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के कर्मचारी अपने पिता की मृत्यु की तिथि से 3 वर्ष 3 माह बाद दाखिल किया गया है, अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए था।

12. इस न्यायालय की खंडपीठ ने **सुशील कुमार वेंग्रा बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2005) (1) JCR 288 (Jhr.)** के मामले में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:–

*^^eueku :i lfdlh çkfèkdkjh dk ÑR; dju d fy, l{ke cukuk vkj le; d ij nkf[ky vkonu dk xg.k dju d fy, ml çkfèkdkjh dk vufpr Lofood nuk bl U;k;ky; dk dke ugh g tc Lo; ml çkfèkdkjh u ;g fopkj djr g, fd vudik ij fu;fDr fu;fer fu;fDr dh ;ktuk d fo#) g tlk Lo; lLFkku }kjk viuk;k x;k g vkj vFk e Hkkjr d lfoèkku d vuPNn 16 dk mYy?ku djrk g] Lo; viu Lofood dk lhfer dju dh lkoèkkuh cjrk gA***

13. सुशील कुमार वेंग्रा (ऊपर) के मामले में निर्णय की पंक्ति में इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने **एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 142 वर्ष 2004 (मेसर्स सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लि॰ एवं अन्य बनाम मोहन महतो),** दिनांक 20.2.2006 को विनिश्चित, में समरुप दृष्टिकोण अपनाया है।

14. सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लि॰ (ऊपर) के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय को **सिविल अपील सं॰ 4339 वर्ष 2007 (मोहन महतो बनाम सेंट्रल कोलफील्ड्स लि॰ एवं अन्य)** में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपील अनुज्ञात किया है और एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 142 वर्ष 2006 के निर्णय को अपास्त कर दिया है। **मोहन महतो बनाम सेंट्रल कोलफील्डस लि॰ एवं अन्य, (2007)8 SCC 549,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ सं॰ 10, 11, 12, 13, 16 और 18 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

"10. vk|kfxd fookn vfèkfu;e dh èkkjk 18 dh mi&èkkjk (3) d vFk d vrxr le>krk nkuk i{kk ij ckè;dkjh g vkj çHkko e cuk jgrk g tc rd bl ,d vU; le>kr }kjk ifjofrr] mikrfjr vFkok çfrLFkkfir ugh dj fn;k tkrk gA le>kr e ifjlhek dh vofèk çkoèkkfur ugh dh x;h FkhA ge mièkkfjr djx fd vudik d vkèkkj ij fu;fDr çnku dju d fy, vkonu nkf[ky dju d fy, ifjlhek dh vofèk fofgr dju oky ,l ifji= tkjh dju dh vfèkdkfjrk çR;Fkh d ikl FkhA fdr] ,l ifji= dk u doy dBkjrkiod ikyu dju dh vko';drk Fkh cfYd i{kk }kjk fd, x, vkj mud chp g, le>kr dk è;ku e j[kr g, bldk iBu dju dh Hkh vko';drk FkhA dedkj dh foLrr ifjHkk"kk] tks vk|kfxd fookn vfèkfu;e dh èkkjk 2(S) e vrfo"V g] vudik d vkèkkj ij fu;fDr çkIr dju dk vihykFkh dk vfèkdkj çnku djrh g tk fu'p; gh mle vrfo"V ijkHkk0; 'kr d vuikyu d vè;èkhu gA

11. vudik d vkèkkj ij fu;fDr çkIr dju dk vfèkdkj le>krk l mnHkr gkrk gA vk|kfxd fookn vfèkfu;e dh èkkjk 2(p) e le>kr dk vFk nu d fy, ifjHkkf"kr fd;k x;k gh

lyg dk;okgh d vuØe e fd;k x;k le>krk l vfHkir g] vkj bld vUrxr lyg dk;okgh d vuØe e fd, x, djkj l vU;Fkk fu;ktd vkj dedkj d chp gvk dkb ,lk fyf[kr djkj vkrk g ft lij mld i{kdkjk u ,lh jhfr l gLrk{kj fd, gk tlh fofgr dh tk, vkj ftldh ,d ifr lefpr ljdkj }kjk fufeUk ikfèkÑr vfèkdkjh dk vkj lyg vfèkdkjh dk Hkt nh xb gk(

12. ifjlhek dh vofèk d fofgrdj.k d lcèk e Hkh çR;Fkh dk mldh vkRek dk nf"V e j[kuk pkfg, FkkA

13. ge vutku ugh g fd vudik d vkèkkj ij fu;fDr fn;k tkuk Hkkjr d lfoèkku d vuPNn 16(1) d çfr viokn gA

16. fnukd 12.12.1995 d ifji= e fofgr ifjlhek dh Ng ekg dh vofèk lkfofèkd ugh FkhA ;g vfuok;; pfj= dh Hkh ugh gA Ng ekg dh vofèk d ij ,lk vkonu xg.k dju d fy, Hkh lVy dky QhYM l fy0 dk e[;ky; çR;d ekey d rF;k vkj ifjfLFkfr;k ij fopkj dju dk gdnkj gA

18. tlk geu ;gk mij minf'kr fd;k g fd gekj fy, bl ç'u ij fopkj djuk vko';d ugh g fd D;k ,u0 lh0 MCY;0 ,0 v d fojkèk e le; lhek fu;r dju vkj rn}kjk lcfèkr dedkj d vfèkdkj e dVkrh dju dh dkb 'kfDr çR;Fkh dk FkhA ge mièkkfjr djx fd ,l ekey e Hkh bl vfèkdkj FkkA fdr] mDr

*ç;ktu d fy, Hkh] bl rF; fd le>kr d vèkhu ykHknk;h çkoèkku cuk;k x;k g] dk nf"V e j[kr g, ^^jkT;** l ;fDr;Dr :i l ÑR; dju dh mEehn dh tkrh Fkh ----***

15. भवानी प्रसाद सोनकर (ऊपर) और **मोहन महतो (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की दृष्टि में यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि सरकार अथवा लोक प्राधिकारी द्वारा जारी नियमों और विनियमनों की अनुपस्थिति में स्वाभाविक रूप से अनुकंपा पर नियुक्ति प्रदान नहीं की जा सकती है। अनुकंपा पर नियुक्ति का आवेदन अनुचित विलंब के बिना दाखिल करना होगा और समय की युक्तियुक्त अवधि के भीतर इस पर विचार करना होगा। परिसीमा की अवधि के विहितकरण के संबंध में भी आवेदन पर विचार करने वाले प्राधिकारी को मृतक कर्मचारी के आश्रित को अनुकंपा पर नियुक्ति प्रदान करने के लिए बनाए गए लाभदायी प्रावधान की आत्मा को विचार में लेना होगा ताकि खतरनाक, जोखिम वाले कोयला खानों में कार्यरत मृतक कर्मचारी का परिवाद भूख की कगार पर न पहुँच जाए। आवेदन पर विचार करने वाला प्राधिकारी प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को परिसीमा के प्रश्न पर निर्णय करते हुए विचार में लेने के लिए बाध्य है।

16. यहाँ ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, यह स्पष्ट है कि याची वयस्कता की आयु प्राप्त करने के तुरन्त बाद एक वर्ष के भीतर दिनांक 24.6.2003 को अनुकंपा पर नियुक्ति करने के लिए आवेदन दिया है।

17. बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ से युक्तियुक्त रूप से कृत्य करने की उम्मीद की जाती है। वर्तमान मामले के विचित्र तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में कि याची के पिता की मृत्यु अपने पीछे अवयस्क आश्रित को छोड़कर सेवारत रहते हुए हो गयी और अवयस्क आश्रित को केवल वयस्कता की आयु प्राप्त करने के बाद ही अनुकंपा पर नियुक्ति दी जा सकती है, अति तकनीकी आधार पर अनुकंपा पर नियुक्ति के अनुरोध को इनकार नहीं किया जाना चाहिए था।

18. अत:, वर्तमान याचिका अनुज्ञात की जाती है। प्रत्यर्थीगण को आज के दिन से 60 दिनों के भीतर याची के आवेदन पर नए सिरे से निर्णय करने का निर्देश दिया जाता है और यदि याची अन्यथा अर्हित और पात्र है, उसे उसके अर्हता और पात्रता के अनुसार नियुक्ति दी जाएगी।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t;k jk;] U;k;efr

गोविन्द प्रसाद पंजियार

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 292 of 2011. Decided on 20th July, 2012.

संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949—धाराएँ 5 एवं 6—प्रधान के पद पर नियुक्ति–अपीलार्थी का पिता स्वयं ग्राम प्रधान के पद का अपना अधिकार गँवा बैठा और उसके पास अपनी मृत्यु के समय पर सेवा का अधिकार नहीं था जो उसके उत्तराधिकारी पर न्यागत हो सकता था–किसी व्यक्ति के पास अधिमानी अधिकार होता है जब वह आनुवंशिक अधिकार के रूप में ग्राम प्रधान के पद के अधिकार का दावा कर रहा है–ग्राम प्रधान, जिसे बर्खास्त कर

दिया गया है, के वंशज आनुवंशिक अधिकार के रूप में प्रधान के पद का दावा करने के अनर्हता के सिवाए कोई अनर्हता उपगत नहीं करता है–अपील अनुज्ञात किया गया।(पैराएँ 7, 11 एवं 12)

निर्णयज विधि.–2012 (2) JCR 1 (Jhr)—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Subodh Kr. Jha, Anand Kumar Sinha, Krishna Nand Sahay, For the Appellant; JC to G.A., For the State; Mr. Durga Charan Mishra, For the Respondent No.6.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह लेटर्स पेटेंट अपील डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6905 वर्ष 2006 में पारित दिनांक 29 जुलाई, 2011 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी राम लाल पंजियार के रिट याचिका को अनुज्ञात किया गया था और सब-डिविजनल अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 7 अगस्त, 1997 का आदेश; अनुमंडलाधिकारी अधिकारी के आदेश को मान्य ठहराते हुए अपील में उपायुक्त द्वारा पारित दिनांक 3 अप्रिल, 2002 का आदेश और आयुक्त द्वारा पारित दिनांक 14 अगस्त, 2006 का पुनरीक्षण आदेश, इन सभी को संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949 की धारा 5 के अधीन प्रधान के पद पर नियुक्ति से संबंधित विवाद में अपास्त कर दिया गया है और गाँव बाँसजोरा के प्रधान के पद पर अपीलार्थी की नियुक्ति को अपास्त कर दिया गया है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी का पिता बसंत पंजियार प्रधानी मौजा बाँसजोरा का प्रधान था। अपीलार्थी के पिता पर अपने कर्तव्य का निर्वहन करते हुए अवचार के कतिपय अभिकथन थे और इसलिए उसे वर्ष 1989 में हटा दिया गया था। अपीलार्थी के पिता ने अपील दाखिल करके प्रधान के रूप में उसको अनर्हित घोषित करने वाले आदेश को चुनौती दिया था कि अपील लंबित रहने के दौरान दिनांक 28 मार्च, 1996 को अपीलार्थी के पिता की मृत्यु हो गयी। किंतु, स्पष्टत: अपीलार्थी के पिता के विधिक प्रतिनिधि को अभिलेख पर लेने के बाद और स्पष्टत: स्वयं अपीलार्थी को पक्ष के रूप में पक्षकार बनाकर अपील जारी रही। दिनांक 14 अगस्त, 2006 को वह अपील खारिज कर दी गयी थी। अत:, अवचार के निष्कर्ष और प्रधान के पद से अपीलार्थी के पिता को हटाया जाना अंतिमता प्राप्त कर लिया था। किंतु, उस अपील के लंबित रहने के दौरान, खास गाँव के ग्राम प्रधान के पद पर नियुक्ति इप्सित करते हुए रिट याची प्रत्यर्थी/रामलाल पंजियार द्वारा वर्ष 1949 के अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन दाखिल किया गया था। किंतु, अपीलार्थी ने वर्ष 1949 के उसी अधिनियम की धारा 6 के अधीन आवेदन दाखिल किया। उक्त अधिनियम की धारा 6 के अधीन आवेदन ऐसे मामले में दाखिल किया जा सकता है जहाँ गाँव जो खास गाँव नहीं है का प्रधान और उसका उत्तराधिकारी ग्राम प्रधान के रूप में अपनी नियुक्ति का दावा करता है। किंतु, अनुमंडलाधिकारी ने दिनांक 7 अगस्त, 1997 के आदेश के तहत दोनों आवेदनों एक रिट याची-प्रत्यर्थी द्वारा धारा 5 के अधीन दाखिल और दूसरा अपीलार्थी द्वारा धारा 5 के अधीन दाखिल पर विचार किया और अभिनिर्धारित किया कि दोनों आवेदनों को वर्ष 1949 के अधिनियम की धारा 5 के अधीन दाखिल आवेदन माना जाए। अनेक तिथियों पर कार्यवाही करने के बाद उन्होंने दिनांक 7 अगस्त, 1997 के आदेश के तहत अंतत: अपीलार्थी को प्रधान इस आधार पर घोषित किया कि गाँव में कुल मतदाता अर्थात् जमाबंदी रैयतों की संख्या 63 है और दो ने प्रत्यर्थी-रिट याची के पक्ष में मत दिया था और 41 ने अपीलार्थी के पक्ष में मत दिया था। उक्त घोषणा को प्रत्यर्थी-याची द्वारा उप-आयुक्त के समक्ष अपील दाखिल करके चुनौती दी गयी थी। उपायुक्त ने दिनांक 3 अप्रिल, 2002 के आदेश के तहत रिट याची-प्रत्यर्थी की अपील खारिज कर दिया। अपील की खारिजी से असंतुष्ट होकर

रिट याची–प्रत्यर्थी ने आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दाखिल किया जिन्होंने भी दिनांक 14 अगस्त 2006 के आदेश के तहत रिट याची–प्रत्यर्थी की पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया। तब याची–प्रत्यर्थी रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6905 वर्ष 2006 दाखिल करके इस न्यायालय के पास आया जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अनुज्ञात किया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश का मत था कि अपीलार्थी जिसे निर्वाचित घोषित किया गया था ने वर्ष 1949 के अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन तक दाखिल नहीं किया था जबकि केवल प्रत्यर्थी–याची ने उक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन याचिका दाखिल किया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि धारा 6 के अधीन दाखिल अपीलार्थी का आवेदन अस्वीकार कर दिया गया समझा जाएगा क्योंकि ग्राम प्रधान के चुनाव के लिए कार्यवाही धारा 5 के अधीन जारी थी और विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि वर्ष 1949 के अधिनियम के प्रावधानों के अधीन विरचित संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली, 1950 की अनुसूची V के अधीन विनिर्दिष्ट प्रावधानों जो विनिर्दिष्टत: प्रावधानित करता है कि ''अवचार के लिए बर्खास्त प्रधान के उत्तराधिकारी का पद के लिए दावा नहीं होगा'' की दृष्टि में अपीलार्थी को प्रधान के पद पर चुनाव लड़ने से अनर्हित कर दिया गया था।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने विधि की गलती और तथ्य की गलती भी किया। तथ्य की गलती यह है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने वर्ष 1949 के अधिनियम की धारा 6 के अधीन दाखिल अपीलार्थी के आवेदन की विवक्षित अस्वीकृति के बारे में संप्रेक्षित किया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आगे यह अभिनिर्धारित करने में विधि की गंभीर गलती किया कि अपीलार्थी के पिता को ग्राम प्रधान का पद धारण करने से अनर्हित घोषित किया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने शब्दों की व्याख्या करने में विधि की गलती किया जो उपदर्शित करते हैं कि बर्खास्त ग्राम प्रधान का उत्तराधिकारी वर्ष 1949 के अधिनियम के अधीन विरचित नियमावली में संलग्न अनुसूची की दृष्टि में पात्र उम्मीदवार नहीं होगा।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **सोगेन मुर्मू बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, 2012 (2) JCR-1 (Jhr),** मामले में दिए गए इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय (हमारे द्वारा) पर विश्वास किया।

5. प्रत्यर्थी रिट याची के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि अपीलार्थी को सांविधिकत: अनर्हित घोषित किया गया था और, इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश यह अभिनिर्धारित करने में सही थे कि अपीलार्थी ने उक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन दाखिल नहीं किया था जो स्वीकृत तथ्य है और अब इस पर विवाद नहीं किया जा सकता है। अपीलार्थी का कुल दावा धारा 6 के अधीन आनुवंशिक अधिकार के आधार पर था न कि अन्यथा। रिट याची–प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि नियम 3 के उपनियम (5) के मुताबिक धारा 5 अथवा धारा 6 के अधीन प्रधान की नियुक्ति के लिए अनुसूची V में विहित प्रक्रिया के मुताबिक प्रधान की नियुक्ति के लिए कार्यवाही का अनुसरण करने की आवश्यकता है। अत:, नियमावली के साथ संलग्न अनुसूची के पास प्रक्रिया शासित करने और उम्मीदवारों में से किसी की अनर्हता विहित करने का सांविधिक प्राधिकार है।

6. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और अभिलेख और अभिलेख पर प्रस्तुत आदेशों का परिशीलन किया है।

7. दिनांक 7 अगस्त, 1997 के ऑर्डरशीट (परिशिष्ट 1) का कोरा परिशीलन स्पष्ट करता है कि अपीलार्थी ने ग्राम प्रधान के रूप में नियुक्ति के लिए धारा 6 के अधीन आवेदन दिया था और धारा 6 में आनुवंशिक अधिकार के आधार पर ग्राम प्रधान की नियुक्ति के लिए आवेदन देने का प्रावधान है। प्रत्यर्थी रिट याची ने स्पष्टत: अपीलार्थी के पिता द्वारा उपगत उसकी निजी अनर्हता के कारण प्रधान के पद से उसके पिता को हटाए जाने के कारण सृजित रिक्तता के कारण धारा 5 के अधीन आवेदन दिया। अपीलार्थी द्वारा दाखिल आवेदन दिनांक 3 मार्च, 1997 के आदेश के तहत धारा 5 के अधीन आवेदन में संपरिवर्तित कर दिया गया था और अनुमंडलाधिकारी द्वारा विनिर्दिष्टत: विनिश्चित किया गया है कि अब दोनों आवेदनों को वर्ष 1949 के अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन माना जाएगा। धारा 6 के अधीन अपीलार्थी का आवेदन नहीं ग्रहण करने का कारण स्पष्ट था क्योंकि अपीलार्थी के पिता ने स्वयं ग्राम प्रधान के पद का अपना अधिकार खो दिया था और अपनी मृत्यु के समय पर उसके पास सेवा का अधिकार नहीं था जो उसके उत्तराधिकारी पर न्यागत हो सकता था। अत:, विद्वान अनुमंडलाधिकारी उक्त कारण से धारा 6 के अधीन अपीलार्थी का आवेदन ग्रहण नहीं करने में सही थे जिसे 1950 नियमावली के साथ संलग्न अनुसूची-V में स्पष्ट किया गया है। उक्त अनर्हता का उद्‌गम केवल पंचम अनुसूची के प्रावधान के कारण नहीं है बल्कि पंचम अनुसूची ने पूर्वज का अधिकार खो जाने के कारण उत्तराधिकारी की पूर्व विद्यमान अनर्हता को मान्यता प्रदान किया।

8. धारा 5 के अधीन अपीलार्थी के आवेदन के संपरिवर्तन पर दिनांक 3 मार्च, 1997 के उक्त निर्णय के बाद कार्यवाही जारी रही और दिनांक 8 अप्रिल, 1997, 6 मई, 1997, 5 जून 1997, 5 जुलाई, 1997, 31 जुलाई, 1997 को सुनवाई की गयी थी और दिनांक 7 अगस्त, 1997 को परिणाम घोषित किया गया था। धारा 6 के अधीन अपीलार्थी के आवेदन का धारा 5 के अधीन संपरिवर्तन के उस आदेश पर आपत्ति और रिट याची-प्रत्यर्थी द्वारा चुनौती कभी नहीं दिया गया था।

9. चाहे जो भी हो, भले ही वर्ष 1949 के अधिनियम की धारा 5 के अधीन किसी रैयत द्वारा कोई आवेदन दाखिल किया जाता है, प्रक्रिया के अनुसार, सक्षम प्राधिकारी-अनुमंडलाधिकारी को 16 आना रैयतों (अर्थात् शत प्रतिशत रैयत के अधिकार रखने वालों) की बैठक आहूत करने की आवश्यकता है। उस अर्थ में, अनुमंडलाधिकारी को रैयतों का दृष्टिकोण अभिनिश्चित करने की आवश्यकता है और उस बैठक में जमाबंदी रैयत के रूप में दर्ज व्यक्तियों के कम से कम 2/3 की सहमति अभिनिश्चित करने की आवश्यकता है और जब जमाबंदी रैयत के रूप में दर्ज कम से कम 2/3 व्यक्ति ग्राम प्रधान की नियुक्ति के लिए अपनी सहमति देते हैं, तब सक्षम प्राधिकारी प्रधान की नियुक्ति करने के लिए अग्रसर होता है जैसा नियमावली, 1950 के नियम 3 के उपनियम (4) सहपठित नियम 3 का उपनियम (2) के अधीन प्रावधानित किया गया है। अत:, किसी भी स्थिति में, रिट याची-प्रत्यर्थी के आवेदन पर उक्त सक्षम प्राधिकारी को केवल ग्राम प्रधान का चुनाव करने के लिए बैठक आहूत करने का अधिकार था। उक्त बैठक में, जैसा कथन किया गया है, अपीलार्थी ने 43 उपस्थित जमाबंदी रैयतों में से 41 का मत पाया और दो मत रिट याची प्रत्यर्थी के पक्ष में गए। प्रश्न यह है कि क्या प्रधान के रूप में अपीलार्थी के पिता द्वारा उपगत अनर्हता और अवचार के कारण उसकी बर्खास्तगी की दृष्टि में अपीलार्थी ने ग्राम प्रधान का चुनाव लड़ने का अपना अधिकार खो दिया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि अवचार के लिए बर्खास्त प्रधान का उत्तराधिकारी किसी पद का दावा नहीं कर सकता था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पंचम अनुसूची के प्रावधानों पर विश्वास किया। पंचम अनुसूची के प्रासंगिक प्रावधान निम्नलिखित हैं:-

^^çèkku dh c[kkLrxh

c[kkLrxh dh 'kfDr mik;Dr d ikl g tk vk;Dr lFkky ijxuk d ikl vihy d vè;èkhu gA çèkku fuEufyf[kr dkj.kk l c[kkLr fd, tku d nk;h g vkj vopkj d fy, c[kkLr çèkku dk mÙkjkfèkdkjh dk in d çfr dkb nkok ugh gkxkA&

(1) vR;fèkd vk; d ekè;e l 0;fDrxr v;kX;rk@v leFkrk] =fVi.k cf) vFkok 'kkjhfjd ncyrk d dkj.k ijUr ;g fd bl çdkj d ekeyk e çèkku viu thoudky d nkjku mik;Dr d vueknu l viu fy, ÑR; dju d fy, viuk mÙkjkfèkdkjh fu;Dr dj ldrk gA mÙkjkfèkdkjh dh vkj l dkb vopkj ml çèkku ftld fy, og ÑR; djrk g] dh eR; ij vFkok R;kxi= nu ij mÙkjkfèkdkj d fy, viuk nkok [kk nu dk nk;h cuk nxkA

(2) fdlh fl) diV] fglk] U;k;ky; dk voeku vFkok vU; xHkhj vopkj vFkok j;rk d lkFk neudkjh vkj vufpr 0;ogkj vFkok mud fgr dh ?kkj mi{kk d dkj.k ftUg in d fy, ml v;kX; cuku d fy, fopkj e fy;k tk ldrk gA

(3) dkeu lifÙk vkj xko d vfHkfyf[kr vfèkdkjk dk fou"V dju d fy,] udlku igpku d fy, vFkok jf{kr dju e foQy gku ij vFkok 0;oLFkkiu njk d vkfèkD; e j;rk l vfèkd nj lxfgr dju d fy,A

(4) fdlh mfpr dkj.k d fcuk viu xko d fdjk;k dk le;iod Hkxrku e foQyrk vFkok vuefr d fcuk viuh tkr] tk fdjk;k d fy, çfrHkfr g] dk vU; lØkr dju vFkok vU; lØkr dju dk ç;kl dju d fy,A

(5) çèkku ek>h vFkok eLrfQj dk fgr foØ; vFkok vU;Fkk }kjk vrj.kh; ugh gA

fdr , l ekeyk e tgk U;k;ky;k d ekè;e l fgr cpk x;k g vkj tgk [kjhnnkj d vfèkdkj dk rc l dHkh ugh pukrh fn;k x;k g] [kjhnnkj dk ekU;rk nu l doy bl vkèkkj ij budkj ugh fd;k tkuk pkfg, fd , l foØ; dk ljdkj }kjk çfrf"k) dju d ckn fd;k x;k FkkA**

10. ''ग्राम प्रधान की बर्खास्तगी'' के उक्त प्रावधान, जैसा नियमावली 1950 की अनुसूची V के अधीन प्रावधानित किया गया है, का विश्लेषण करने के पहले यह पुनः याद करना समुचित होगा कि वर्ष 1949 के अधिनियम के अधीन अभी भी ग्राम प्रधान के उत्तराधिकारी में निहित आनुवंशिक अधिकार का प्रावधान है जो प्रक्रिया के अध्यधीन धारा 6 से स्पष्ट है जिस पर हमारे द्वारा **सोगेन मुर्मू (ऊपर)** के मामले में विचार किया गया है और जब ग्राम प्रधान नहीं है तब वर्ष 1949 की धारा 5 के अधीन आवेदन दाखिल किया जा सकता है। उस व्यक्ति के पास अधिमानी अधिकार है जब वह धारा 6 के अधीन आनुवंशिक अधिकार के रूप में ग्राम प्रधान के पद के प्रति अधिकार का दावा कर रहा है जिसे हमारे द्वारा **सोगेन मुर्मू के मामले (ऊपर)** में स्पष्ट किया गया है किंतु प्रश्न यह है कि अनर्हता उपगत करने पर प्रधान की पारिणामिक बर्खास्तगी अनर्हित प्रधान के वंशज की अनर्हता है?

11. ऊपर उद्धृत अनुसूची V के प्रासंगिक प्रावधानों का कोरा परिशीलन इसे स्पष्ट करेगा कि प्रधान को अवचार के लिए बर्खास्त किया जा सकता है जो ऊपर उद्धृत खंड (1) से (5) में संगणित अवचार हो सकता है। खंड (1) से (5) के परिशीलन से स्पष्ट होगा कि ये ग्राम प्रधान का पद धारित करने वाले व्यक्ति के निजी अवचार हैं। ऐसा कोई शास्ति/दांडिक प्रावधान नहीं हो सकता है जो किसी व्यक्ति के उत्तराधिकारी को दंडित करे और, इसलिए, मात्र इस सरल कारण से हम अभिनिर्धारित कर सकते हैं कि प्रधान, जिसे बर्खास्त किया गया है, का वंशज आनुवंशिक अधिकार के रूप में प्रधान पद का दावा करने

की अनर्हता के सिवाए कोई अनर्हता उपगत नहीं कर सकता है। यह प्रतीत होता है कि शब्दों ''अवचार के लिए बर्खास्त प्रधान के उत्तराधिकारी का पद के प्रति दावा करने का अधिकार नहीं होगा'' जैसा अनुसूची V में प्रयुक्त किए गए हैं और हमारे द्वारा उद्धृत किए गए हैं, का अर्थ गलत समझा जा सकता है कि यह अनर्हता आनुवंशिक है। यह व्याख्या केवल उक्त शब्दों की अपव्याख्या के कारण हो सकती है। आनुवंशिक अधिकार का दावा करने के लिए किसी को यह सिद्ध करने की आवश्यकता होती है कि अपने पूर्ववर्ती की मृत्यु के समय पर पूर्ववर्ती को अधिकार था। यदि उस व्यक्ति के जीवन काल में उस व्यक्ति की मृत्यु के पहले वह अधिकार निर्वापित हो जाता है, तब उस व्यक्ति में कोई भी अधिकार निहित नहीं है जो ऐसे व्यक्ति की मृत्यु पर उत्तराधिकारी पर न्यागत हो सके और केवल इस कारण से ये शब्द भी अनुसूची V में विनिर्दिष्टत: नहीं हो सकते थे (''अवचार के लिए बर्खास्त प्रधान के उत्तराधिकारी का पद के प्रति दावा नहीं होगा'') तब भी ऐसे प्रधान का वंशज, जिसके पूर्वज को पहले ही उसकी मृत्यु के पहले प्रधान के पद से बर्खास्त कर दिया गया है, न्यागमन द्वारा ऐसे अधिकार का दावा नहीं कर सकता है। ये शब्द केवल स्पष्ट चीजों को और भी स्पष्ट करने के प्रयोजन से हो सकते हैं और अनर्हता का कोई सारवान प्रावधान नहीं बना रहे हैं। अन्यथा व्याख्या कि ऐसे अनर्हित व्यक्ति का वंशज रैयत ग्रामीण के रूप में अपना अधिकार खो बैठेगा, लोक नीति के विरुद्ध हो सकता है क्योंकि कोई न्यायालय वैसे व्यक्ति को दंडित नहीं कर सकता है जिसने स्वयं कोई अवचार नहीं किया है। भले ही किसी व्यक्ति का पिता, जो हत्यारा अथवा डकैत है अथवा कहीं अधिक गंभीर अपराध को किया है, तब भी उत्तराधिकारी के नागरिक के रूप में अधिकार को अपने पिता की गलती, जिसका उत्तराधिकारी के अधिकार के साथ संबंध नहीं है और जो उस लाभ से पूरी तरह असंबंधित है जो उसके पिता ने अपने अवचार द्वारा लिया था, के कारण वापस नहीं लिया जा सकता है। रिट याची-प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सुझायी गयी यह व्याख्या इस प्रश्न को उद्भूत करती है कि क्या किसी प्रधान के अवचार के कारण उसके समस्त संततियों, सौंवी संतति को अनर्हित कर दिया जाएगा। विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि समस्तों को अनर्हित कर दिया जाएगा। विद्वान अधिवक्ता का दृष्टिकोण विधि की अपव्याख्या के कारण है और अनुसूची V का शाब्दिक अर्थ भी यह नहीं है क्योंकि ऐसी अनहर्ता का अर्थ केवल आनुवंशिक अधिकार के विरुद्ध है और न कि धारा 5 के अधीन अनर्हता प्रत्यर्थी रिट याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया एक अन्य तर्क यह है कि चूँकि प्रयुक्त किया गया शब्द ''उत्तराधिकारी'' है, अत: यह केवल एक पीढ़ी के लिए अर्हित हो सकता है। ऐसी व्याख्या भी बिल्कुल विचित्र व्याख्या है और यह सुझाता है कि एक व्यक्ति के जीवनकाल में उसका पुत्र अनर्हित कर दिया जाएगा किंतु पौत्र अर्हित होगा।

12. चाहे जो भी हो, तर्कों में से कोई भी किसी तर्क पर खरा नहीं उतरता है। अत: हमारा सुविचारित मत है कि वर्ष 1949 के अधिनियम की धारा 6 के अधीन दाखिल अपीलार्थी के आवेदन को वर्ष 1949 के अधिनियम की धारा 5 के अधीन संपरिवर्तित कर दिया गया था, जिसे धारा 5 के अधीन दाखिल रिट याची-प्रत्यर्थी के आवेदन के साथ प्रसंस्कृत किया गया था और तत्पश्चात संपूर्ण प्रक्रिया पूरी की गयी थी और उसमें के अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी-याची के दो मतों के विरुद्ध 41 मत पाया था और, इसलिए, उक्त उल्लिखित कारणों से विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है और यह अपास्त किए जाने का दायी है और इसलिए अपास्त किया जाता है और प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों को पोषित किया जाता है।

13. तद्नुसार, लेटर्स पेटेन्ट अपील को अनुज्ञात किया जाता है।

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

सजल चक्रवर्ती

cuke

झारखंड राज्य, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से

Cr. App. (S.J) No. 979 of 2008. Decided on 3rd August, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 409, 420, 467, 468, 471/465 एवं 477-A सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएँ 13(2) एवं 13(1) (c) (d)—चारा घोटाला–सरकारी खजाने से विपुल राशि की अवैध निकासी–दोषसिद्धि–अपीलार्थी उपायुक्त था–प्रचलित प्रणाली के अधीन ऐसा नहीं है कि आधिक निकासी को रोकने के लिए कार्यप्रणाली नहीं था बल्कि यह था किंतु यह विभागाध्यक्ष, महालेखाकार अथवा वित्त विभाग/लोक लेखा समिति के पास था–यह कभी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी ने अवैध निकासी की निश्चित जानकारी होते हुए दुर्विनियोग को रोकने के लिए नियंत्रण का प्रयोग नहीं किया था–अवैध रूप से धन निकालने के लिए अन्य अभियुक्तगण को सुकर बनाने के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध निष्कर्ष बिल्कुल अन्यायोचित है–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात।

(पैराएँ 30, 34, 35, 36, 39, 42, 43, 50 से 53)

अधिवक्तागण.–Mr. Abhay Kumar Singh, For the Appellant; M/s Rakesh Kumar Samrendra, Kripa Shankar Nanda, S.P. Singh, For the C.B.I.

आदेश

अपीलार्थी, जो समय के प्रासंगिक बिंदु पर उपायुक्त, चाईबासा, पश्चिमी सिंहभूम के रूप में पदस्थापित था, का 63 अन्य अभियुक्तगण के साथ भारतीय दंड संहिता की धाराओं 409, 420, 467, 468, 471/465 और 477A सह-पठित धारा 13(1) (c) (d) के अधीन भी इस अभिकथन कि अपीलार्थी ने अन्य अभियुक्तगण के साथ जुड़कर चाईबासा ट्रेजरी से 38, 94,29,433/- रुपयों की सीमा तक कपटपूर्वक लोक धन निकालना सुकर बनाया और इसके बदले में लैपटॉप/कंप्यूटर और दो प्रिंटर का उपहारस्वरूप पाया, पर आरोपों का सामना करने के लिए विचारण किया गया था।

2. अभियोजन का मामला यह है कि सूचक लाल श्याम चरण नाथ सहदेव (अ॰ सा॰ 103), तत्कालीन अपर आयुक्त, चाईबासा, पश्चिमी सिंहभूम ने दिनांक 22.2.1996 को लिखित रिपोर्ट उसमें यह अभिकथन करते हुए प्रस्तुत किया कि डॉ॰ बी॰ एन॰ शर्मा, तत्कालीन पशुपालन अधिकारी, चाईबासा ने दिनांक 1.4.1993 से दिनांक 31.3.1994 के दौरान खाद्य, चारा, उपकरण, मशीन और अन्य वस्तुओं को खरीदे बिना उनको विभाग के विभिन्न केंद्रों को भेजने का दावा किया और मोबाइल वेटेरिनरी अधिकारी, सहायक पॉल्ट्री अधिकारी, राज्य वेटेरिनरी इनसेमिनेशन क्षेत्र, सरायकेला से प्राप्त उन सामग्रियों की प्राप्ति से संबंधित प्रमाणपत्र पाया और कपटपूर्वक विशाल राशि निकाला और 54 की संख्या में विभिन्न आपूर्तिकर्ताओं को भुगतान करता हुआ दर्शाया।

3. आगे अभिकथित किया गया है कि पीले मक्के का 3.86 लाख क्विंटल और ग्राउंड नट केक (सी॰ एन॰ सी॰) का 94,500 क्विंटल को खरीदा गया दर्शाया गया था यद्यपि पूरे साल के लिए पीले मक्के के केवल 3650 क्लिंटल/बोरों और सी॰ एन॰ सी॰ के केवल 1800 बोरों/क्विंटल की आवश्यकता थी।

4. इसी प्रकार से, अन्य सामग्रियों जिन्हें खरीदा गया दर्शाया गया था, की वस्तुत: कोई आवश्यकता नहीं थी। रसीदों के झूठा प्रमाण पत्रों को प्राप्त करने पर बिलों को तैयार किया गया था जिसकी राशि को ट्रेजरी पदधारियों द्वारा निकाले जाने की अनुमति दी गयी थी जो पशुपालन विभाग के पदधारियों के साथ और आपूर्तिकर्ताओं जिनको राशि भुगतान की गयी दर्शायी गयी थी के साथ भी साँठ-गाँठ किए हुए थे।

5. इस प्रकार, यह अभिकथित किया गया है कि अवैध साधन अपनाकर चाईबासा ट्रेजरी से जिला पशुपालन अधिकारियों, चाईबासा द्वारा 38,94,79,433/- रुपयों की राशि कपटपूर्वक निकाली गयी थी।

6. ऐसे अभिकथन पर, अपीलार्थी सहित 64 अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 409, 420, 467, 468, 471/465 और 477A सह-पठित धारा 120(B) के अधीन चाईबासा सदर पी॰ एस॰ केस सं॰ 14 वर्ष 1996 दर्ज किया गया था।

7. बाद में, पटना उच्च न्यायालय/माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अधीन सी॰ बी॰ आई॰ ने अन्वेषण अपने हाथ में लिया।

8. अन्वेषण पूरा किए जाने पर, आरोप-पत्र इस अभियोग पर दाखिल किया गया था कि अभियुक्तगण ने सामग्रियों को उनके द्वारा दावा की गयी सीमा तक खरीदे बिना खाद्य, चारा, उपकरण, मशीन और अन्य वस्तुओं की खरीद दर्शाते हुए झूठे बिलों को तैयार कर जिला ट्रेजरी, चाईबासा से 38,94,29,433/- रुपयों की राशि निकालने का दांडिक षडयंत्र किया।

9. आगे आरोपित किया गया है कि इस अपीलार्थी, जो समय के प्रासंगिक बिंदु पर उपायुक्त, चाईबासा के रूप में पदस्थापित था, ने अन्य अभियुक्तगण के साथ दुरभिसंधि करके राशि निकालना उनको सुकर बनाया और इसके बदले में उसने लैपटॉप/कंप्यूटर और दो प्रिंटरों को उपहारस्वरुप पाया।

10. अपराधों का संज्ञान लिए जाने पर अभियुक्तगण का विचारण किया गया था।

11. अभियोजन ने अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने के लिए कुल मिलाकर 158 गवाहों का परीक्षण किया। उनमें से, अनेक गवाह विभिन्न बैंकों के पदधारीगण थे जिन्होंने खाता खोलने के फॉर्म, भुगतान पर्ची, ड्राफ्ट जिनके माध्यम से, भुगतान प्राप्त किया गया था, आदि को सिद्ध किया। गवाहों का अन्य संवर्ग स्वयं पशुपालन विभाग के पदधारीगण/कर्मचारीगण हैं जिन्होंने परिसाक्ष्य दिया कि उन्हें दबाव के अधीन सामग्रियों के रसीदों से संबंधित प्रमाणपत्रों को प्रदान करने के लिए मजबूर किया गया था यद्यपि सामग्रियाँ/उपकरण/खाद्य/चारा की आपूर्ति उस सीमा तक नहीं की गयी थी जिसके लिए रसीदों को लिया गया था।

12. इसके अतिरिक्त, क्षेत्रीय निदेशक के कार्यालय के कर्मचारियों में से कुछ का परीक्षण किया गया था जिन्होंने प्रकट किया कि आवंटन पत्रों को पटना के बजाए राँची में टंकित किया जाता था और यह डॉ॰ एस॰ बी॰ सिन्हा एवं डॉ॰ के॰ एम॰ प्रसाद की प्रेरणा पर किया जा रहा था।

13. अ॰ सा॰ 72 दिपेश चांडक, अ॰ सा॰ 104 शैलेश प्रसाद सिंह और अ॰ सा॰ 149 शिव कुमार सिंह जो डी॰ ए॰ एच॰ ओ॰ चाईबासा के कार्यालय का लेखाकार था, को क्षमा प्रदान किए जाने पर उनका इकबाली साक्षी के रूप में परीक्षण किया गया था। अ॰ सा॰ 104 शैलेश प्रसाद सिंह के अनुसार नकली बिलों को तैयार किया जा रहा था जिनके आधार पर राशियों को निकाला जा रहा था। राशियों, जिनको

निकाला जा रहा था, को डॉ॰ बी॰ एन॰ शर्मा को दिया जाना था। अ॰ सा॰ 149 शिव कुमार सिंह के अनुसार ट्रेजरी से प्रतिदिन 10 से 50 लाख रुपयों को निकाला जा रहा था।

14. अन्य इकबाली साक्षी अ॰ सा॰ 72 दिपेश चांडक अभियोजन का मुख्य गवाह है। उसके अनुसार, 80% राशि, जिसको सामग्रियों को उस सीमा तक जिस तक के बिलों को बनाया जा रहा था आपूर्ति किए बिना झूठे बिलों के आधार पर निकाला जाता था, को एस॰ बी॰ सिन्हा अथवा नौकरशाहों सहित अन्य पदधारियों, राजनेताओं को दिया जा रहा था। अनेक अन्वेषण अधिकारियों, जो अन्वेषण से संबंधित मामलों से जुड़े थे और व्यक्तियों जिन्होंने मंजूरी प्रदान किया, का भी परीक्षण किया गया था।

15. बचाव पक्ष ने भी अपने गवाहों का परीक्षण किया। जहाँ तक अपीलार्थी का संबंध है, उसने अपने बचाव में, आर॰ सी॰ सं॰ 20(A) वर्ष 1996 में तत्कालीन वित्त सचिव वी॰ एस॰ दूबे; आर॰ सी॰ सं॰ 22 (A) वर्ष 1996 में उपायुक्त, चाईबासा श्री अमित खरे और आर॰ सी॰ सं॰ 32(A) वर्ष 1996 में उपायुक्त, राँची श्री राजीव कुमार के साक्ष्यों की प्रतियों को दाखिल किया जो क्रमशः A/8, A/9 और A/10 हैं।

16. विचारण न्यायालय ने अभियुक्तगण को आरोपों का दोषी पाने पर दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश दर्ज किया।

17. जहाँ तक इस अपीलार्थी का संबंध है, विचारण न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धाराओं 409, 420, 467, 468, 471/465 और 477A के अधीन सिद्ध किए जाने वाले आरोपों को नहीं पाया था किंतु अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 120(B) सहपठित धाराएँ 409, 420, 467, 468, 471/465 और 477A के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) सह-पठित धारा 13(1)(c)(d) के अधीन भी अपराध के लिए उसके विरुद्ध अभिकथित रूप से सामने आने वाली निम्नलिखित परिस्थितियों पर दोषी पाया था और प्रत्येक गणना पर चार वर्ष छह माह का कारावास भुगतने का दंडादेश दिया था। उसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(c) 2(d) के अधीन अपराध के लिए 3.50/- लाख रुपयों के जुर्माना का भुगतान करने का भी दंडादेश दिया गया था जिसके व्यतिक्रम में उसे छह माह का कठोर कारावास भुगतना था।

(A) (i) fuf'pr tkudkjh gku d ckotn vihykFkh u nfofu;ktu jkdu d fy, xj bekunkj :i l fu;=.k dk ç;kx ugh fd;k FkkA

(ii) vihykFkh u ,d gh fnu e 50.56/- yk[k #i;k dh Hkkjh fudklh d dkj.kk dk irk yxku d fy, dne ugh mBk;k FkkA

(B) vihykFkh u vU; lg&vfHk;Dr d lkFk feyh&Hkxr e voèk :i l Vtjh l èku fudkyuk vU; vfHk;Drx.k d fy, ldj cuk;kA

(C) vihykFkh u ,d yiVki vkj nk fçVjk dk èkuh; ykHk çkIr fd;kA

18. दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश से व्यथित होकर यह अपील दाखिल की गयी थी जिसे अन्य संबंधित अपीलों के साथ सुनने का आदेश दिया गया था।

19. बाद में, अन्य अपीलों से अपीलार्थी द्वारा दाखिल अपील को अलग करने के लिए आई॰ ए॰ सं॰ 1547 वर्ष 2011 दाखिल किया गया था ताकि इसे इस कारण से शीघ्रतापूर्वक सुना और निपटाया जा सके कि अपीलार्थी को कार्डियक सर्जरी के पहले अपने मोटापा नियंत्रित करने के लिए बरियाट्रिक सर्जरी करवाने की आवश्यकता थी जो केवल अमेरिका में की जा रही है क्योंकि अपने मोटापे की वर्तमान अवस्था में यह बिल्कुल संभव है कि वह कार्डियक सर्जरी नहीं झेल पाए।

20. इस समय पर अभिवचनित किया गया था कि मामले में सामने आने वाले तथ्यों और परिस्थितियों में यह अपील अभियोजन के मामले अथवा अन्य अभियुक्तगण के मामले पर प्रतिकूलता कारित नहीं करेगा। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में लेने पर इस न्यायालय ने 'आवश्यकता के सिद्धांत' का अवलंब लेते हुए दिनांक 11.11.2011 के आदेश के तहत अन्य अपीलों से इस अपील को अलग करने का आदेश दिया।

21. इन परिस्थितियों के अधीन अपील सुनी गयी थी।

22. श्री अभय कुमार, अपीलार्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी ने गैर ईमानदार रूप से और जानते हुए अवैध निकासी रोकने के लिए नियंत्रण का प्रयोग नहीं किया था किंतु बिहार ट्रेजरी संहिता और बिहार वित्तीय नियमावली के प्रावधान के अधीन अवैध निकासी रोकने के लिए उपायुक्त के पास मेकेनिज्म नहीं था क्योंकि पशुपालन विभाग को अथवा किसी अन्य विभाग को किए गए आवंटन की प्रति उपायुक्त के कार्यालय को उपलब्ध नहीं करायी गयी थी जिस तथ्य को समस्त संबंधित गवाहों द्वारा स्वीकार किया गया है।

23. आगे इंगित किया गया था कि पूर्वोक्त संहिता और नियमावली के अधीन अवैध निकासी को विभागाध्यक्ष अथवा महालेखाकार अथवा लोक लेखा कमिटि द्वारा रोका जा सकता था क्योंकि निकासी से संबंधित आवंटन और लेखा विवरणों की प्रति उनको उपलब्ध करायी जाती है।

24. इन परिस्थितियों के अधीन, अवैध निकासी को रोकने की जिम्मेदारी अपीलार्थी पर नहीं डाली जा सकती है अथवा अपीलार्थी के विरूद्ध नहीं डाली जा सकती थी।

25. जहाँ तक ट्रेजरी से अवैध रूप से राशि निकालना उनको सुकर बनाने के लिए सह-अभियुक्तगण के साथ अपीलार्थी द्वारा विकसित संबंध से संबंधित अपराध में फँसानेवाली परिस्थितियों का संबंध हैं, विचारण न्यायालय ने श्याम सुंदर शर्मा (अ॰ सा॰ 54) और इकबाली साक्षी दिपेश चांडक (अ॰ सा॰ 72) के साक्ष्यों पर अपना निष्कर्ष आधारित किया है किंतु यदि उनके साक्ष्य को संपूर्णता में स्वीकार भी किया जाता है, वे यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि अपीलार्थी का सह-अभियुक्तगण के साथ संबंध था।

26. इसी प्रकार, न्यायालय ने अ॰ सा॰ 132 और अ॰ सा॰ 134 द्वारा दिए गए साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष दर्ज करने में गलती किया कि अपीलार्थी ने सह-अभियुक्तगण से उपहारस्वरुप एक लैपटॉप/कंप्यूटर और दो प्रिंटरों को प्राप्त किया था क्योंकि उनके साक्ष्य से यह कभी नहीं स्थापित होता है कि इस अपीलार्थी के आधिकारिक निवास स्थान पर लैपटॉप/कंप्यूटर लगाया गया था और न ही यह स्थापित होता है कि अपीलार्थी ने दो प्रिंटरों को प्राप्त किया था।

27. आगे निवेदन किया गया था कि चूँकि अभियोजन अपीलार्थी के विरुद्ध पूर्वोक्त तीनों अपराध में फँसाने वाली परिस्थितियों को स्थापित करने में बुरी तरह विफल रहा है, अपीलार्थी को गलत रूप से दोषसिद्ध किया गया निश्चय ही कहा जा सकता है और इसलिए, दोषसिद्धि का आदेश और दंडादेश अपास्त किए जाने योग्य हैं।

28. इसके विरुद्ध, सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि बिहार ट्रेजरी संहिता के प्रावधान के अधीन कोषागार समाहर्ता के सामान्य प्रभार के अधीन आता है, जो इसके प्रशासन और कामकाज के लिए जिम्मेदार है और उनसे प्रत्येक छह माह में एक बार निरीक्षण करने की उम्मीद की जाती है ताकि ट्रेजरी का समुचित प्रबंधन किया जा सके किंतु स्वीकृत रूप से अपीलार्थी ने ट्रेजरी से अवैध रूप से धन निकालने के लिए अन्य अभियुक्तगण को सुकर बनाने की दृष्टि से जानबूझकर

कोई निरीक्षण नहीं किया और अपीलार्थी का घोटाले के मुख्य आरोपी सहित अन्य अभियुक्तगण के साथ साँठ-गाँठ अ॰ सा॰ 54 और अ॰ सा॰ 72 के साक्ष्यों से स्थापित होता है। इस प्रकार, न्यायालय ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी ने ट्रेजरी से अवैध निकासी को सुकर बनाया और इसके बदले में उसने एक लैपटॉप/कंप्यूटर और दो प्रिंटरों को पाया जो तथ्य अ॰ सा॰ 132 और अ॰ सा॰ 133 के साक्ष्यों से स्थापित होता है।

29. पक्षों की ओर से किए गए निवेदनों के संदर्भ में सर्वप्रथम बिंदु जिस पर विचार करने की आवश्यकता यह है कि क्या अभियोजन निम्नलिखित अपराध में फँसाने वाली परिस्थितियों को स्थापित करने में समर्थ हुआ है जिस पर विचारण न्यायालय ने अपना निष्कर्षों को आधारित किया है:-

(i) fuf'pr tkudkjh d ckotn vihykFkh u nfofu;kx jkdu d fy, fu;=.k dk ç;kx ugh fd;k FkkA

(ii) vihykFkh u ,d gh fnu e 50.56/- yk[k #i;k dh Hkkjh fudkIh d dkj.kk dk irk yxku d fy, dkb dne ugh mBk;k FkkA

30. बिहार सेवा संहिता के नियम 4 के उपनियम (2) सह-पठित बिहार सेवा संहिता के नियम 43 के मुताबिक ट्रेजरी कलक्टर के सामान्य प्रभार के अधीन है जो इसके प्रशासन और कामकाज के लिए सरकार के प्रति जिम्मेदार होगा। जिम्मेदारी न केवल सुरक्षा और अधीनस्थों की ओर से अनियमित परिपाटी तक जाती है बल्कि विहित लेखाओं और रिटर्नों की शुद्धता और इसके प्रस्तुतीकरण की समयनिष्ठता भी सम्मिलित करती है। साथ ही नियम 73 विहित करता है कि कलक्टर सप्ताह में एक बार ट्रेजरी का सुव्यवस्थित निरीक्षण करेगा। पूर्वोक्त नियम ट्रेजरी के सामान्य प्रशासन के बारे में कहते हैं कि लेखाओं और रिटर्नों को सही रूप से अनुरक्षित किया जाता है और समय पर रिटर्नों को प्रस्तुत किया जाता है। किंतु, साथ ही डी॰ सी॰ को यह भी देखना है कि क्या ट्रेजरी के अधिकारीगण अथवा कर्मचारीगण अनियमित परिपाटी अपना रहे हैं अर्थात् परिपाटी जो नियमावली अथवा संहिता अथवा समय-समय पर जारी अन्य मार्गदर्शक सिद्धांतों के विरुद्ध है। अभियोजन का मामला यह है कि अपीलार्थी ने जानबूझकर कोई निरीक्षण नहीं किया ताकि ट्रेजरी अधिकारियों/कर्मचारियों को कपटपूर्वक ट्रेजरी से राशि निकलने की पूरी छूट हो किंतु प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या ट्रेजरी संहिता अथवा वित्तीय नियमावली के अधीन ट्रेजरी से अवैध निकासी को रोकने के लिए उपायुक्त के पास कोई मेकेनिज्म था?

31. इस प्रश्न का उत्तर और किसी द्वारा नहीं बल्कि अभियोजन गवाहों द्वारा दिया गया है जिन्होंने अभिसाक्ष्य दिया है कि अवैध निकासी रोकने के लिए उपायुक्त के पास कोई मेकेनिज्म नहीं है विशेषत: जब पशुपालन विभाग सहित विभिन्न विभागों को आवंटन की प्रति उपायुक्त के कार्यालय को कभी नहीं उपलब्ध करायी जाती थी बल्कि केवल इस घोटाले का पता चलने के बाद ही उपायुक्त के कार्यालय को विभिन्न विभागों की आवंटन की प्रति को भेजने की परिपाटी विकसित की गयी थी।

32. पूर्वोक्त तथ्य के प्रति निर्देश में, समय के प्रासंगिक बिंदु पर अपर उपायुक्त, चाईबासा, पश्चिमी सिंहभूम के रूप में पदस्थापित सूचक अ॰ सा॰ 103 और सेवानिवृत्त लेखाकार अ॰ सा॰ 130 जो समय के प्रासंगिक बिंदु पर चाईबासा ट्रेजरी में पदस्थापित था के साक्ष्य को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिन्होंने कथन किया है कि वर्ष 1993-94 में आवंटन की प्रति उपायुक्त के कार्यालय को कभी नहीं भेजी जा रही थी। अ॰ सा॰ 103 ने आगे अभिसाक्ष्य दिया है कि समय के प्रासंगिक बिंदु पर उपायुक्त के पास यह पता लगाने

का कोई मेकेनिज्म नहीं था कि क्या ट्रेजरी से अवैध निकासी की जा रही थी। उनके अतिरिक्त, अन्य गवाहों अर्थात् अमित खरे, डी॰ सी॰, चाईबासा, राजीव कुमार, डी॰ सी॰, राँची और तत्कालीन वित्त सचिव, वी॰ एस॰ दूबे, जिनके साक्ष्यों को चारा घोटाला के विभिन्न मामलों में दर्ज किया गया था किंतु उनके अभिसाक्ष्यों की प्रति को क्रमश: प्रदर्श A/9, प्रदर्श A/10 और प्रदर्श A/8 के रूप में बचाव की ओर से साक्ष्य में दिया गया था, ने भी इसी प्रकार का अभिसाक्ष्य दिया है।

33. प्रदर्श A/9 (श्री अमित खरे का अभिसाक्ष्य) से और प्रदर्श A/10 (श्री राजीव कुमार का अभिसाक्ष्य) से प्रतीत होगा कि उन्होंने अन्य मामलों में परिसाक्ष्य दिया है कि डी॰ सी॰ के कार्यालय में बजट की प्रति कभी नहीं उपलब्ध कराया जाती थी। अमित खरे ने अभिसाक्ष्य दिया है कि यह देखना सरकार का कर्तव्य है कि क्या अधिक निकासी की गयी है। इसी प्रकार से, श्री राजीव कुमार ने अभिसाक्ष्य दिया है कि न तो महालेखाकार ने और न ही लोक लेखा कमिटि ने अधिक निकासी के बारे में रिपोर्ट किया था। प्रदर्श A/8 (श्री वी॰ एस॰ दूबे का अभिसाक्ष्य) से प्रतीत होगा कि प्रत्येक विभाग बिहार बजट एवं निर्देशिका के मुताबिक बजट तैयार करता था और उसे वित्त विभाग द्वारा समेकित किया जा रहा था जिसे विनियोग विधेयक पारित करने के लिए विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था। तत्पश्चात, बजट महालेखाकार के कार्यालय को तथा विभिन्न विभागाध्यक्षों को भी भेजा जाता था। उस आधार पर, डी॰ डी॰ ओ॰ बिलों को बनाकर ट्रेजरी से धन निकाला करता था। निकासी पर, ट्रेजरी अधिकारी निकासी के मासिक विवरणों को अन्य वाउचरों के साथ महालेखाकार को प्रस्तुत करता था।

34. इस प्रकार, पूर्वोक्त गवाहों के साक्ष्यों से स्पष्टत: स्पष्ट है कि अवैध निकासी रोकने के लिए डी॰ सी॰ के पास साधन नहीं था बल्कि प्रथम रोक बिंदु विभागाध्यक्ष के पास होता प्रतीत होता है जिसके पास आवंटन/बजट की प्रति होती थी और जिसको डी॰ डी॰ ओ॰ समस्त ट्रेजरी निकासी के मासिक विवरणों को प्रस्तुत करता था। अन्य रोक बिंदु महालेखाकार के स्तर पर प्रतीत होता है क्योंकि उत्तरवर्ती-माह के अगले दिन पूर्ववर्ती माह का ट्रेजरी लेखा मूल वाउचरों के साथ महालेखाकार के कार्यालय को अग्रसारित किया गया माना जाता था जिसके पास बजट/आवंटन की प्रति भी होती थी। तीसरा रोक बिंदु वित्त विभाग के पास होता प्रतीत होता है क्योंकि अपीलार्थी की ओर से इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था कि बैंक द्वारा भुगतान किए जाने के बाद विवरण/स्क्रॉल को आर॰ बी॰ आई॰, नागपुर शाखा को भेजने की आवश्यकता होती है। बदले में आर॰ बी॰ आई॰ इसे राज्य सरकार के वित्त विभाग को भेजता है और जब वित्त विभाग को प्रतीत होता है कि अधिक निकासी की गयी है, मामला लोक लेखा कमिटि को निर्दिष्ट किया जाता है। इस प्रकार, प्रचलित प्रणाली के अधीन, ऐसा नहीं है कि अधिक निकासी रोकने का मेकिनिज्म नहीं था बल्कि यह था किंतु यह विभागाध्यक्ष, महालेखाकार अथवा वित्त विभाग/लोक लेखा कमिटि के पास था जबकि दोहराए जाने की कीमत पर कथन किया जाए कि ट्रेजरी से धन की अवैध निकासी को रोकने के लिए डी॰ सी॰ के पास कोई मेकेनिज्म नहीं था।

35. किंतु, विचारण न्यायालय केवल इस आधार पर कि अपीलार्थी ने जानबूझकर ट्रेजरी संहिता और वित्तीय नियमावली का पालन नहीं किया, इस तथ्य के बावजूद जैसा ऊपर कथन किया गया है कि अवैध निकासी का पता लगाने के लिए डी॰ सी॰ के पास मेकेनिज्म नहीं था और कि यह स्थापित करने अथवा दर्शाने के लिए कि अपीलार्थी ने अवैध रूप से धन निकालने के लिए अन्य अभियुक्तगण को सुकर बनाते हुए कतिपय कृत्यों को किया था, कोई अन्य प्रत्यक्ष अथवा परिस्थितिजन्य साक्ष्य नहीं है, इस निष्कर्ष

पर आया कि अपीलार्थी ने अन्य अभियुक्तगण के साथ साँठ–गाँठ करके अवैध निकासी करना अन्य अभियुक्तगण के लिए सुकर बनाया।

36. इन परिस्थितियों के अधीन, यह कभी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी ने अवैध निकासी की निश्चित जानकारी होते हुए भी दुर्विनियोग रोकने के लिए नियंत्रण का प्रयोग नहीं किया था। इस प्रकार, अवैध रूप से धन निकालने के लिए अन्य अभियुक्तगण को सुकर बनाने का अपीलार्थी के विरुद्ध दर्ज निष्कर्ष बिल्कुल अन्यायोचित प्रतीत होता है।

37. जहाँ तक अन्य अपराध में फँसाने वाली परिस्थिति कि अभियुक्त ने अन्य अभियुक्तगण के साथ संबंध विकसित किया था, का संबंध है, अभियोजन ने इसे सिद्ध करने के लिए श्याम सुंदर शर्मा (अ॰ सा॰ 54) और इकबाली साक्षी दिपेश चांडक (अ॰ सा॰ 72) के साक्ष्यों पर विश्वास किया है।

38. श्याम सुंदर शर्मा (अ॰ सा॰ 54) ने अभिसाक्ष्य दिया है कि जब वह राँची आ रहा था, किसी अमरेन्द्र कुमार झा ने उसको किसी सुशील कुमार झा का टेलीफोन नंबर दिया था और उससे कहा था कि सुशील कुमार झा डी॰ सी॰, राँची के निवास स्थान में रहता है जो उसका काम करवाएगा। आगे वह कहता है कि जब वह सिंतबर, 1988 में राँची आया और टेलीफोन किया और सुशील कुमार झा से बात करना चाहा, सुशील कुमार झा ने उसे होटल में मिलने के लिए कहा जहाँ सुशील कुमार झा, लालबत्ती वाली गाड़ी में आया। उसने आगे कथन किया है कि सुशील कुमार झा ने अपीलार्थी के साथ मुलाकात की व्यवस्था किया था जिसने उसके पक्ष में निविदा दिलाने का आश्वासन दिया। किंतु उसे निविदा नहीं मिली थी।

39. साक्ष्य के पूर्वोक्त टुकड़े पर, विचारण न्यायालय ने पाया कि अपीलार्थी का सह–अभियुक्त सुशील कुमार झा के साथ संबंध था और इस तथ्य को नजरअंदाज किया कि प्रसंग जिसके बारे में गवाह ने परिसाक्ष्य दिया था वर्ष 1988 का था जबकि वर्तमान मामला वर्ष 1993-94 से संबंधित है और कि उसने सुशील कुमार झा के मध्यक्षेप के बावजूद पक्ष नहीं लिया था। इसके अतिरिक्त, उक्त गवाह के विवरण की सत्यता भी उसके द्वारा आगे किए गए प्रकटीकरण कि सुशील कुमार झा गुरु सदन सहाय के परिवार के सदस्यों के साथ रह रहा था, की दृष्टि में संदेहास्पद प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त, डी॰ सी॰ जैसे पदधारी से किसी प्राइवेट व्यक्ति को अपने साथ रहने की अनुमति देने की उम्मीद नहीं की जाती है। इसके अतिरिक्त, सुशील कुमार झा, जिसका अभियुक्त की ओर से ब॰ सा॰ 31 के रूप में परीक्षण किया गया है, ने अपीलार्थी के साथ अपने संबंध के बारे में नहीं कहा था और न ही उसने कहा था कि वह अपीलार्थी के साथ रह रहा था जब वह डी॰ सी॰ राँची था।

40. यह अभिनिर्धारित करके कि अ॰ सा॰ 54 का साक्ष्य सुशील कुमार झा के इकबालिया बयान से संपुष्टि पाता है, विचारण न्यायालय अभिलेख की गलती करता प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त, भले ही यह स्वीकार किया जाता है कि अपीलार्थी का सुशील कुमार झा के साथ संबंध था, वह संबंध वर्ष 1988 में था जब अपीलार्थी डी॰ सी॰, राँची था किंतु अ॰ सा॰ 54 सहित गवाहों में से किसी ने संबंध वर्ष 1993-94 तक बने रहने के बारे में नहीं कहा था जब अपीलार्थी डी॰ सी॰ चाईबासा था और उस कारण उसने सुशील कुमार झा को कोई लाभ पहुँचाया था।

41. इकबाली साक्षी अ॰ सा॰ 72 (दिपेश चांडक) का साक्ष्य विस्तारपूर्ण है किंतु जहाँ तक इस अपीलार्थी का संबंध है, उसके द्वारा कथन किया गया है कि डॉ॰ एस॰ बी॰ सिन्हा ने श्री राजीव कुमार को राँची डी॰ सी॰ के रूप में और सजल चक्रवर्ती को चाईबासा डी॰ सी॰ के रूप में पदस्थापित करवाया और कि मो॰ सईद श्री राजीव कुमार के हित का ख्याल रखता था जबकि डॉ॰ बी॰ एन॰ शर्मा इस अपीलार्थी के हित का ख्याल रखता था। उसने यह अभिसाक्ष्य भी दिया कि उसने इस अपीलार्थी को होटल हयात रिजेंसी, दिल्ली में देखा था जहाँ वह डॉ॰ एस॰ बी॰ सिन्हा से मिलने आया था और उसने इस अपीलार्थी

को डॉ॰ एस॰ बी॰ सिन्हा के साकेत किलबर्न कॉलोनी, हीनू, राँची अवस्थित निवास स्थान पर भी देखा था। इस गवाह ने कथन किया है कि डॉ॰ एस॰ बी॰ सिन्हा के अन्य व्यक्ति के साथ बातचीत से उसने जाना कि डॉ॰ बी॰ एन॰ शर्मा अपीलार्थी के हित का ख्याल रखता था किंतु यह साक्ष्य अनुश्रुत प्रकृति का है और यह ग्राह्य कभी नहीं हो सकता है।

42. आगे, इसको लेकर कोई साक्ष्य बिल्कुल नहीं है कि अपीलार्थी का डॉ॰ बी॰ एन॰ शर्मा अथवा सुशील कुमार झा के साथ कोई संबंध था जिसको अपीलार्थी ने किसी तरीके से फायदा पहुँचाया था। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 74 जो इकबाली साक्षी है, का साक्ष्य किसी अन्य गवाह से संपुष्टि नहीं पाता है और इस प्रकार, इस गवाह का साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है जैसा ऊपर कहा गया है।

43. इन परिस्थितियों के अधीन, यह आसानी से कहा जा सकता है कि अभियोजन यह स्थापित करने में विफल रहा है कि अपीलार्थी ने अवैध रूप से धन निकालना उनको सुकर बनाने के लिए अन्य सह-अभियुक्तगण के साथ संबंध अथवा सहयोग विकसित किया।

44. अंत में, यह विचार किया जाना है कि क्या अभियोजन यह स्थापित करने में सक्षम हुआ है कि अपीलार्थी ने अन्य अभियुक्तगण को धनीय लाभ पहुँचाने के लिए उपहारस्वरुप लैपटॉप/कंप्यूटर और दो प्रिंटर प्राप्त किया है।

45. अभियोजन ने उक्त आरोप को सिद्ध करने के लिए अ॰ सा॰ 32 जितेन्द्र कुमार, फील्ड इंजीनियर के परिसाक्ष्य पर विश्वास किया है। उक्त जितेन्द्र कुमार का परीक्षण आर॰ सी॰ सं॰ 22(A) वर्ष 1996 में अभियोजन की ओर से किया गया था। बचाव पक्ष ने आर॰ सी॰ सं॰ 22 (A) वर्ष 1996 में उसका साक्ष्य दर्ज करवाया जो प्रदर्श A/11 है।

46. उसके (अ॰ सा॰ 32) के अनुसार, वह दिनांक 29.3.1995 को कंप्यूटर लगाने चाईबासा आया था। जब वह डी॰ सी॰ के निवास स्थान पर आया, उससे कहा गया था कि वह निवास स्थान पर नहीं हैं। तब वह डी॰ ए॰ वी॰ विद्यालय गया। वह पुनः वापस आया और निवास स्थान के अंदर गया जहाँ उसने रिपोर्ट प्रदर्श 16/45 तैयार किया। इसी दस्तावेज को प्रदर्श 36 के रूप में चिन्हित किया गया है। किंतु, गवाह ने अपने प्रति परीक्षण में अभिसाक्ष्य दिया है कि जब उसने निवास स्थान के बाहर रिपोर्ट तैयार किया था, कोई इसे अंदर ले गया था और इस पर 'एस॰ सी॰' के रूप में हस्ताक्षर करवाया था। आगे, वह कहता है कि जब वह चाईबासा आया था, उसने अपने साथ लैपटॉप/कंप्यूटर नहीं लाया था। पुनः वह कहता है कि चूँकि यह पोर्टेवल कंप्यूटर था, इसे लगाने की आवश्यकता नहीं थी और इसलिए, उसने कंप्यूटर देखे बिना रिपोर्ट तैयार किया। जब इस गवाह का ध्यान आर॰ सी॰ सं॰ 22 (A) वर्ष 1996 में दिए गए उसके पहले के साक्ष्य की ओर आकृष्ट किया गया था, उसने अभिसाक्ष्य दिया कि उस मामले में उसने कथन किया था कि रिपोर्ट डी॰ ए॰ बी॰ विद्यालय में तैयार की गयी थी।

47. इस प्रकार, उसके साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि उसने डी॰ सी॰ के निवास स्थान पर लैपटॉप/कंप्यूटर लगाया गया कभी नहीं देखा था और डी॰ सी॰ के निवास स्थान पर लगाए जाने वाले लैपटॉप/कंप्यूटर को देखे बिना या तो उसने निवास स्थान के बाहर या फिर डी॰ ए॰ वी॰ विद्यालय में रिपोर्ट तैयार किया किंतु उसने डी॰ सी॰ के निवास स्थान पर लैपटॉप/कंप्यूटर लगाया जा रहा कभी नहीं देखा था।

48. अन्य गवाह अ॰ सा॰ 133 अजय कुमार जैन है जो मेसर्स कंप्यूटर नेटवर्क के भागीदारों में से एक है। उसके अनुसार, किसी ने जमशेदपुर से खबर भेजा कि उसे कंप्यूटर की जरुरत है। उस पर कोई कुंदनजी कंप्यूटर की डिलीवरी लेने आया और उसको सजल चक्रवर्ती से बात करने को कहा। उससे बात करने पर, उसने रफ आर्डर (प्रदर्श 32) तैयार किया जो महेन्द्र कुमार कुंदन के साथ सजल चक्रवर्ती के नाम में है किंतु इसी समय पर प्रदर्श B, जो भी अ॰ सा॰ 133 द्वारा तैयार किया गया रफ आर्डर है,

सजल चक्रवर्ती का नाम अंतर्विष्ट नहीं करता है बल्कि यह केवल कुंदन कुमार का नाम अंतर्विष्ट करता है। इसी के आधार पर प्रदर्श 32/1 और प्रदर्श 32/2 (दोनों ही ऑर्डर फॉर्म) तैयार किए गए थे जो दो प्रिंटरों की खरीद से संबंधित है। बाद में, दो प्रतियों में संशोधित आदेशों को तैयार किया गया था जिन्हें प्रदर्श 32/3 और प्रदर्श 32/4 के रूप में चिन्हित किया गया है। आगे प्रकट किया गया है कि कुंदन जी ने आर्डर देने पर उसको लैपटॉप/कंप्यूटर सजल चक्रवर्ती के निवास स्थान पर भेजने के लिए कहा और एक लाख रुपयों की राशि का भुगतान किया। उस पर, दो क्रेडिट वाउचरों प्रदर्श 34 और प्रदर्श 34/1 और तीन जेनरल वाउचरों प्रदर्श 34/2, प्रदर्श 34/3 और प्रदर्श 34/4 को तैयार किया गया था और तब जेनरल लेजर (प्रदर्श 35) में प्रविष्टि की गयी थी। प्रदर्श 16/45 को छोड़कर ये समस्त प्रदर्श ए॰ शर्मा का नाम ग्राहक के रूप में अंतर्विष्ट करते हैं।

49. अ॰ सा॰ 133 ने यह भी प्रकट किया है कि भुगतान कुंदन शर्मा द्वारा किया गया था जिसने अजय शर्मा के नाम में आर्डर दिया था। अपने प्रतिपरीक्षण में, इस गवाह ने कहा है कि मूल आर्डर से प्रतीत होता है कि लैपटॉप/कंप्यूटर सजल चक्रवर्ती के निवास स्थान पर लगाया गया था जिनके साथ उसने आमने-सामने कभी बात नहीं किया था बल्कि उसने किसी व्यक्ति से बात किया था जिसके बारे में उसने अंदाज लगाया कि वह सजल चक्रवर्ती था। उसने पुनः अभिसाक्ष्य दिया है कि उसे याद नहीं है कि क्या कंप्यूटर अजय, कुंदन अथवा उसके सर्विस इंजीनियर द्वारा उसकी दुकान से लिया गया था।

50. इस प्रकार, यदि अ॰ सा॰ 132 और अ॰ सा॰ 133 के परिसाक्ष्यों को उनकी संपूर्णता में विचार लिया जाता है, यह प्रतीत होगा कि कोई भी निश्चित नहीं है कि अ॰ सा॰ 133 के दुकान से लिया गया लैपटॉप/कंप्यूटर सजल चक्रवर्ती के निवास स्थान पर लगाया गया था। अ॰ सा॰ 132, सर्विस इंजीनियर, के अनुसार भी उसके पास सजल चक्रवर्ती के निवास स्थान पर कंप्यूटर देखने का अवसर नहीं था और न ही अ॰ सा॰ 133 निश्चित है कि सजल चक्रवर्ती के निवास स्थान पर लगाए जाने के लिए कंप्यूटर/लैपटॉप उसकी दुकान से लिया गया था। इसके अतिरिक्त, उक्त लैपटॉप/कंप्यूटर सजल चक्रवर्ती के निवास स्थान से जब्त किया गया कभी प्रतीत नहीं होता है। अ॰ सा॰ 133 के साक्ष्य में यह है कि भुगतान महेंद्र कुमार कुंदन (आपूर्तिकर्ता और वर्तमान मामले में अभियुक्त) द्वारा लैपटॉप/कंप्यूटर की आपूर्ति के लिए आर्डर देते समय किया गया था। किंतु यह स्थापित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थी ने इस तरीके से कृत्य किया जिसने वर्ष 1993-94 के दौरान ट्रेजरी से धन निकालने के लिए महेन्द्र कुमार कुंदन को सुकर बनाया।

51. इस प्रकार, जब गवाहों में से किसी ने सजल चक्रवर्ती के निवास स्थान पर लैपटॉप/कंप्यूटर ले जाते अथवा लगाते किसी को नहीं देखा है और न ही किसी ने किसी को सजल चक्रवर्ती के निवास स्थान पर लैपटॉप कंप्यूटर लगाते हुए देखा है, तो विचारण न्यायालय ने निश्चय ही यह अभिनिर्धारित करने में गलती किया कि सजल चक्रवर्ती ने सह-अभियुक्तगण से उपहारस्वरुप लैपटॉप/कंप्यूटर और प्रिंटर पाया था।

52. इस प्रकार, अभियोजन की ओर से दिए गए साक्ष्य के प्राकलन पर अभियोजन यह स्थापित करता हुआ कभी प्रतीत नहीं होता है कि अपीलार्थी ने जानबूझकर ट्रेजरी से धन निकालने के लिए अन्य अभियुक्तगण को सुकर बनाया और सह-अभियुक्तगण में से एक से लैपटॉप/कंप्यूटर और दो प्रिंटर प्राप्त किया। इसके बावजूद, विचारण न्यायालय ने दोषसिद्धि का आदेश और दंडादेश दर्ज किया और इसलिए, इसे अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, अपीलार्थी को उसके विरुद्ध लगाए गए समस्त आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है।

53. परिणामस्वरुप, यह अपील अनुज्ञात की जाती है।

ekuuh;k t ;k jk;] U;k;efr

गंगाधर दूबे

cuke

झारखंड राज्य, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से

Cri. Appeal (S.J.) No. 337 of 2006. Decided on 23rd August, 2012.

आर॰ सी॰ सं॰ 14(A)/90 (D) में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश-VIII-सह-विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 9.3.2006 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 7 एवं 13(2) सह-पठित धाराएँ 13(1) (d) एवं 19—अवैध परितोषण–दोषसिद्धि–अपीलार्थी द्वारा घूस की मांग और प्रतिग्रहण और उससे इसकी बरामदगी स्वतंत्र गवाहों के साक्ष्य द्वारा सिद्ध की गयी–साक्ष्य में लघु विरोधाभास अभियोजन मामले पर संदेह उत्पन्न नहीं कर सकता है जब अभियोजन द्वारा एक दशक बाद गवाहों का परीक्षण किया गया है–अभियोजन ने अपीलार्थी के विरुद्ध अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध किया है–किंतु, अपीलार्थी 78 वर्ष से अधिक आयु का है और अनेक बीमारियों से पीड़ित है–न्याय के उद्देश्य के लिए एक वर्ष का दंडादेश पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक के लिए घटाया गया किंतु 15,000/- रुपयों का जुर्माना अधिरोपित किया गया। (पैराएँ 16 से 22)

अधिवक्तागण.–M/s B.M. Tripathy, Nutan Sharma, For the Appellant; M/s Md. Mokhtar Khan, Amit Kumar, Awadhesh Pandey, For the Respondent.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थी ने यह अपील आर॰ सी॰ केस सं॰ 14 (A)/90(D) में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश VIII-सह-विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 9.3.2006 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त करने के लिए दाखिल किया है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 7 और 13(2) सह-पठित धारा 13(1) (d) के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और उसे पी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 7 के अधीन 250/- रुपयों के जुर्माना के साथ एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है और आगे पी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 13(2) सह-पठित धारा 13(1) (d) के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और 250/- रुपयों के जुर्माना के साथ एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है और दोनों दंडादेशों साथ-साथ चलेंगे।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि इस मामले के सूचक अर्थात् गफ्फार खान ने दिनांक 8.10.1990 को एस॰ पी॰ (सी॰ बी॰ आई॰), धनबाद के पास लिखित परिवाद उसमें यह अभिकथन करते हुए दर्ज किया कि अपीलार्थी ने अवैध परितोषण के रूप में उससे 20,000/- रुपयों की राशि मांगा है। परिवाद में आगे कथन किया गया है कि परिवादी विभागीय कार्यवाही का सामना कर रहा था जिसमें अपीलार्थी जाँच अधिकारी था। अपीलार्थी ने परिवादी को धमकाया था और उसे पूर्वोक्त राशि देने के लिए कहा था अन्यथा उसे सेवा से बर्खास्त कर दिया जाएगा। अपीलार्थी अवैध परितोषण के आंशिक भुगतान के रूप में 20,000/- रुपयों में से 4000/- रुपयों की राशि अपने क्वार्टर सं॰ C-1/7, कोयला नगर में दिनांक 9.10.1990 की शाम को स्वीकार करने के लिए सहमत हुआ था। उक्त परिवाद मामले का सत्यापन करने के लिए किसी टी॰ जे॰ घोष, सी॰ बी॰ आई॰ निरीक्षक को पृष्ठांकित किया गया था और उसने रिपोर्ट दाखिल किया। पूर्वोक्त सी॰ बी॰ आई॰ निरीक्षक ने परिवादी के अभिकथनों को संपुष्ट करते

हुए दिनांक 9.10.1990 को सत्यापन रिपोर्ट दाखिल किया था। इसके आधार पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 7 और धारा 13 (2) सह-पठित धारा 13(1) (d) के अधीन नियमित मामला अर्थात् आर॰ सी॰ केस सं॰ 14(A)/90(D) दिनांक 9.10.1990 अपीलार्थी के विरुद्ध दर्ज किया गया था जो प्रासंगिक समय पर कार्मिक प्रबंधक के रूप में बी॰ सी॰ सी॰ एल॰, धनबाद के बस्ताकोला क्षेत्र IX में पदस्थापित था।

3. अन्वेषण पूरा करने के बाद, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की पूर्वोक्त धाराओं के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। अपीलार्थी ने आरोपों के प्रति दोषी नहीं होने का अभिवचन किया और विचारण किए जाने का दावा किया।

4. अभियोजन ने इस मामले में नौ गवाहों अ॰ सा॰ 1 सी॰ के॰ रमन, अ॰ सा॰ 2 सूरज राम, अ॰ सा॰ 3 टी॰ एन॰ घोष, अ॰ सा॰ 4 गफार खान (परिवादी) अ॰ सा॰ 5 सरबजीत सिंह, अ॰ सा॰ 6 तपन ज्योति घोष, अ॰ सा॰ 7 सनत कुमार मुखोपाध्याय, अ॰ सा॰ 8 कृष्णा बिर्दी और अ॰ सा॰ 9 ज्योति कुमार आई॰ ओ॰ का परीक्षण किया है।

5. अभियोजन ने अभिलेख पर अनेक दस्तावेजों को लाया है जिन्हें प्रदर्श के रूप में चिन्हित किया गया है। प्रदर्श 1 मंजूरी आदेश है। प्रदर्श 2 विभिन्न दस्तावेजों पर प्रदर्श 2 से प्रदर्श 2/79 तक हस्ताक्षरों की श्रृंखला हैं। प्रदर्श 3 परिवाद है। प्रदर्श 4 और 4/1 क्रमशः एफ॰ एस॰ एल॰ की रिपोर्ट और अग्रसारित प्रति है, प्रदर्श 5 आरंभिक ज्ञापन है, प्रदर्श 6 बरामदगी का ज्ञापन है, प्रदर्श 7 प्राथमिकी है, प्रदर्श 8 सर्च लिस्ट है, प्रदर्श 9 दिनांक 6.12.90 का प्रदर्शों का परीक्षण है, प्रदर्श 9/1 आरक्षी अधीक्षक का प्रमाण पत्र है, प्रदर्श 10 गिरफ्तारी मेमो है, इनके अतिरिक्त प्रदर्शित सामग्रियां हैं प्रदर्श I हैंडवाश का घोल अंतर्विष्ट करने वाला बोतल है। प्रदर्श II कलंकित कागजात अंतर्विष्ट करने वाला लिफाफा है। प्रदर्श III से III/1 बोतलें हैं। प्रदर्श II/1 नोट अंतर्विष्ट करने वाला मुहरबंद लिफाफा है। प्रदर्श IV से IV/39 तक 100/- रुपयों के 40 कलंकित नोट अर्थात् कुल 4000/- रुपया है। बचाव ने किसी गवाह का परीक्षण नहीं किया है। किंतु, बचाव पक्ष के अनुरोध पर प्रदर्श A द्वितीय परिवाद याचिका है। प्रदर्श B.C.D. प्रदर्श 1, 1/1 और 1/2 अंतर्विष्ट करने वाले फाइल हैं। प्रदर्श X सत्यापन रिपोर्ट की फोटोकॉपी है। प्रदर्श Y से Y/2 पहचान के लिए चिन्हित तीन फाइलें हैं।

6. इस मामले में उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी ने निवेदन किया है कि विचारण न्यायालय आरंभ से अर्थात् लिखित परिवाद दाखिल किए जाने के चरण से अपीलार्थी के मामले का अधिमूल्यन करने में विफल रहा है क्योंकि लिखित परिवाद काँट-छाँट और अंतःक्षेपण से भरा पड़ा है और तिथि विशेष पर न्यायालय में इसकी प्राप्ति दर्शाने वाला न्यायालय का हस्ताक्षर नहीं धारण करता है। इस संबंध में परिवादी अ॰ सा॰ 4 का साक्ष्य विचारण न्यायालय द्वारा पूरी तरह अनदेखा कर दिया गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि अभिलेख में दो लिखित परिवाद पाए गए थे और द्वितीय परिवाद याचिका (प्रदर्श A) न तो परिवादी (अ॰ सा॰ 4) के लेखन में है और न ही उसका हस्ताक्षर वहाँ है। इस प्रकार, इसने पूरे मामले को संदेहास्पद बना दिया है। यह प्रतिवाद भी किया गया है कि अ॰ सा॰ 6 जो सत्यापन अधिकारी है और उसके साक्ष्य की दृष्टि में सत्यापन और इसका रिपोर्ट पूर्णतः संदेहास्पद है और इसके अतिरिक्त सत्यापन रिपोर्ट को अभिलेख पर कभी नहीं लाया गया था। बल्कि केवल उक्त सत्यापन रिपोर्ट की छायाप्रति पहली बार न्यायालय में प्रस्तुत की गयी है जिसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 के अनुसार साक्ष्य के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता था।

7. श्री त्रिपाठी ने आगे तर्क किया है कि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा कलंकित धन की स्वीकृति और उससे इसकी बरामदगी के संबंध में मुख्य विरोधाभासों को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया है।

8. मंजूरी आदेश के संबंध में, यह निवेदन किया गया है कि मंजूरी देने वाला प्राधिकारी न्यायालय के समक्ष कभी उपस्थित नहीं हुआ और इस प्रकार संबंधित प्राधिकारी, जिसने अभियुक्त अपीलार्थी के अभियोजन के लिए मंजूरी दिया, के अ–परीक्षण के कारण बचाव पक्ष गंभीर प्रतिकूलता से पीड़ित हुआ है।

9. श्री त्रिपाठी ने आगे निवेदन किया है कि परिवादी अ॰ सा॰ 4 स्वयं कोयला चोर था और अपीलार्थी के विरुद्ध विभागीय जांच लंबित था और इसलिए जाँच, जिसमें परिवादी को दोषी अभिनिर्धारित किया जाना निश्चित था और वह सेवा से बर्खास्तगी का सामना कर सकता था, के समापन के पहले अपीलार्थी को झूठा आलिप्त करने के लिए उसके पास पर्याप्त हेतु था।

10. श्री त्रिपाठी ने आगे इंगित किया है कि अपीलार्थी के विरुद्ध संपूर्ण ट्रैप कार्यवाही सिद्ध करने के लिए गवाहों के साक्ष्य को विचारण न्यायालय ने पूरी तरह अनदेखा किया है जिन्होंने अपनी खुद की कहानी सुनायी है जो एक दूसरे के साक्ष्य के विरोध में हैं।

11. अंत में श्री त्रिपाठी ने प्रतिवाद किया है कि अभियुक्त अपीलार्थी वर्ष 1990 में लगभग 45 दिनों तक कारा अभिरक्षा में बना रहा था और तत्पश्चात वह जमानत पर था और उसने जमानत के विशेषाधिकार का दुरुपयोग कभी नहीं किया था। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि अभियुक्त–अपीलार्थी 78 वर्ष से अधिक आयु का है और वर्तमान में अनेक बीमारियों से पीड़ित है।

12. सी॰ बी॰ आई॰ के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री खान ने निवेदन किया है कि अ॰ सा॰ 8 श्री बी॰ के॰ बिर्दी, जो सी॰ बी॰ आई॰ का आरक्षी उपाधीक्षक है, परिवादी के साथ अभियुक्त अपीलार्थी के घर गए थे और समस्त संव्यवहार उनकी उपस्थिति में किए गए थे और उन्होंने पूरी तरह अभियोजन मामले का समर्थन किया है। उन्होंने इस तथ्य का समर्थन किया है कि अपीलार्थी के कब्जा से कलंकित धन बरामद किया गया था। अपने साक्ष्य के पैरा 9 में अ॰ सा॰ 8 ने कहा है कि ट्रैप–पूर्व ज्ञापन तैयार किया गया था और उक्त ज्ञापन में करेंसी नोटों के नंबरों को लिखा गया था और नोटों पर फिलैंथ्रोपिक पाउडर लगाया गया था और परिवादी को दिया गया था। ट्रैप–पूर्व ज्ञापन उनकी उपस्थिति में तैयार किया गया था और उनके द्वारा दस्तावेजों पर हस्ताक्षर भी किया गया था। अपने साक्ष्य के पैरा सं॰ 20 में उसने कहा है कि परिवादी ने अपनी ऊपरी जेब से धन निकाला था और अपीलार्थी के मांगने पर उसने इन्हें दिया था जिसे अपीलार्थी ने गिना था और आगे पैरा 21 में उसने कथन किया है कि अपीलार्थी ने परिवादी से शेष 16,000/- रुपया भी मांगा था और पैरा 25 में उसने कथन किया है कि इंस्पेक्टर ज्योति कुमार ने अपीलार्थी के कब्जा से धन बरामद किया था और उसने पैरा 26 में स्पष्टत: कहा है कि बरामद किए गए करेंसी नोटों का मिलान ट्रैप पूर्व ज्ञापन में उल्लिखित नंबरों के साथ किया गया था जिसे सही पाया गया था। आगे पैरा 27 में उसने कथन किया है कि बरामद किए गए करेंसी नोटों को घटनास्थल पर ही मुहरबंद लिफाफा में रखा गया था और गवाहों ने उस पर हस्ताक्षर किया था। पैरा 28 में उसने कहा है कि उसने न्यायालय में उक्त करेंसी नोटों को पहचाना है जो तात्विक प्रदर्श IV से IV/39 हैं।

13. श्री खान ने आगे प्रतिवाद किया है कि इस मामले के आई॰ ओ॰ अ॰ सा॰ 9 ज्योति कुमार ने भी अभियोजन मामले का समर्थन किया है। उसने अपने साक्ष्य के पैराओं 28, 29 और 30 में स्पष्टत: कथन किया है कि अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा धन लिया गया था और ट्रैप–पूर्व ज्ञापन में उल्लिखित करेंसी नोटों के नंबरों का मिलान बरामद किए गए नोटों के साथ किया गया था। उसने हस्ताक्षरों और तात्विक प्रदर्श अर्थात् IV से IV/39 का पहचान किया है और कथन किया है कि ये वही नोट थे जिन्हें अभियुक्त

अपीलार्थी के कब्जा से बरामद किया गया था। उसने आगे कथन किया है कि उसने अ॰ सा॰ 5 उप मुख्य प्रबंधक (कार्मिक) जिसने अभियुक्त अपीलार्थी को परिवादी के विरुद्ध आरंभ की गयी विभागीय कार्यवाही में जाँच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया था, सहित समस्त गवाहों का बयान अन्वेषण के दौरान लिया था। यह प्रतिवाद भी किया गया है कि अ॰ सा॰ 4 परिवादी ने भी अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है और अ॰ सा॰ 8 (बी॰ के॰ बिर्दी) के बयान का भी समर्थन किया है कि वह उसके साथ अभियुक्त अपीलार्थी के घर के अंदर उपस्थित था जब धन का भुगतान किया गया था। अ॰ सा॰ 4 ने अपने साक्ष्य के पैरा–10 में कथन किया है कि उसने 4000/- रुपयों का भुगतान किया है और अपीलार्थी ने अपने दाएं हाथ से इसे स्वीकार किया था और दोनों हाथों से इसे गिना था और संकेत पर ट्रैप टीम के समस्त सदस्य घर में घुसे थे और सी॰ बी॰ आई॰ निरीक्षक, आई॰ ओ॰ (अ॰ सा॰ 9) ने तुरन्त अपीलार्थी के हाथ को गवाहों की उपस्थिति में पकड़ लिया। बरामदगी के बाद धन लिफाफा में रखा गया था और इसे मुहरबंद किया गया था जिस पर उसने अन्य गवाहों के साथ हस्ताक्षर किया था। इस गवाह ने हस्ताक्षर अर्थात् प्रदर्श 2/33 का पहचान किया है और आगे उसने बरामद किए गए धन का पहचान किया है जो तात्विक प्रदर्श IV से IV/39 (कलंकित नोट) है।

14. श्री खान ने आगे निवेदन किया है कि अ॰ सा॰ 6 जो सत्यापन अधिकारी है, ने भी अपने साक्ष्य में कथन किया है कि सत्यापन पर उसने अभिकथन को वास्तविक पाया है और वह भी दिनांक 9.10.90 को परिवादी के साथ अभियुक्त से मिलने गया था और प्राथमिकी में किए गए अभिकथन के संबंध में चर्चा के बारे में सुना था। श्री खान ने यह प्रतिवाद भी किया कि चूँकि स्वीकृत रूप से परिवादी के विरुद्ध आरंभ किए गए विभागीय कार्यवाही में अभियुक्त अपीलार्थी को जाँच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था, अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा अवैध परितोषण की मांग करने का पूरा मौका था। विचारण न्यायालय ने सही प्रकार से अभियुक्त अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया है।

15. गवाहों के साक्ष्य और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया गया। इस मामले में, धन की मांग, प्रतिग्रहण और बरामदगी के संबंध में गवाहों के साक्ष्य का संवीक्षण अत्यन्त आवश्यक है। अ॰ सा॰ 4 परिवादी है और अ॰ सा॰ 8 सी॰ बी॰ आई॰ इंसपेक्टर है जो परिवादी के साथ गया था और अभियुक्त अपीलार्थी के कमरे में घुसा था। दोनों गवाहों ने धन की मांग, प्रतिग्रहण और बरामदगी के संबंध में अपने साक्ष्य में स्पष्टत: कथन किया है। अ॰ सा॰ 8 ने ट्रैप पूर्व कार्यवाही और ट्रैप पश्चात कार्यवाही के संबंध में अपने साक्ष्य में स्पष्टत: कथन किया है। मैं साक्ष्य से पाती हूँ कि वह प्रति परीक्षण में टिका रहा और उस पर अविश्वास करने के लिए कुछ नहीं है। अ॰ सा॰ 4 ने भी धन की मांग, प्रतिग्रहण और बरामदगी के संबंध में अपने साक्ष्य में अभियोजन मामला सिद्ध किया है। मैं अ॰ सा॰ 6 के साक्ष्य से आगे पाती हूँ कि उसने पैरा 4, 5, 6 में कथन किया है कि दिनांक 9.10.90 को वह और गफ्फार खान (परिवादी) के साथ गंगाधर दूबे (अभियुक्त अपीलार्थी) के घर गया और गंगाधर दूबे और गफ्फार खान के बीच हुए बातचीत को सुना और गंगाधर दूबे ने घूस मांगा। उसने आगे कथन किया है कि उसने उसी दिन सत्यापन रिपोर्ट दाखिल किया। स्वीकृत रूप से, मूल सत्यापन रिपोर्ट अभिलेख पर नहीं है किंतु अभिलेख के परिशीलन से, मैं पाती हूँ कि आरोप पत्र के साथ दस्तावेज की सूची संलग्न है जिसमें टी॰ जे॰ घोष (अ॰ सा॰ 6) का दिनांक 9.10.90 का सत्यापन रिपोर्ट भी उल्लिखित है। अत:, नि:संदेह सत्यापन रिपोर्ट सत्यापन अधिकारी (अ॰ सा॰ 6) द्वारा दाखिल किया गया था किंतु, विचारण की लंबी अवधि अर्थात् एक दशक से अधिक के दौरान यह खो सकता है।

16. मैं अभिलेख से पाती हूँ कि मंजूरी देने वाले अधिकारी का परीक्षण अभियोजन द्वारा नहीं किया गया है किंतु अ॰ सा॰ 1, जो प्रासंगिक समय पर अध्यक्ष, कोल इंडिया लि॰ के कार्यालय में कार्यरत था, ने मंजूरी आदेश को सिद्ध किया है और अपने साक्ष्य में कथन किया है कि इस मंजूरी आदेश को उसे श्री एम॰ पी॰ नारायण द्वारा लिखाया गया था जो अध्यक्ष और नियुक्ति करने वाला प्राधिकारी था और अभियुक्त अपीलार्थी को उन्मोचित करने के लिए सक्षम था और उसने (अ॰ सा॰ 1) ने इसे टंकित किया था। उसने आगे कथन किया है कि श्री नारायण ने कतिपय दस्तावेजों का परिशीलन करने के बाद उसको मंजूरी आदेश लिखवाया था और इस पर हस्ताक्षर किया था। अत:, मैं मंजूरी आदेश में अवैधता नहीं पाती हूँ।

17. अ॰ सा॰ 2 और 3 स्वतंत्र गवाह हैं और अ॰ सा॰ 4 और 8 घूस की मांग और प्रतिग्रहण के संबंध में और अभियुक्त अपीलार्थी से इसकी बरामदगी के संबंध में गवाह हैं। जैसा पहले कहा गया है, अ॰ सा॰ 4 और अ॰ सा॰ 8 ने स्पष्टत: घूस की मांग, प्रतिग्रहण और बरामदगी को सिद्ध किया है। अ॰ सा॰ 2 जो स्वतंत्र गवाह है ने भी अपने साक्ष्य में कथन किया है कि उसकी उपस्थिति में कलंकित करेंसी नोटों को बरामद किया गया था और ट्रैप पूर्व ज्ञापन में उल्लिखित करेंसी नोटों के नंबरों के साथ इनका मिलान किया गया था। उसने अपने साक्ष्य में यह कथन भी किया है कि यद्यपि वह कमरे के अंदर नहीं था किंतु वह ऐसी अवस्था में था कि उसने परिवादी की अभियुक्त अपीलार्थी के साथ वार्तालाप को सुना था और अभियुक्त अपीलार्थी को परिवादी से अवैध परितोषण की मांग करते सुना था। एक अन्य स्वतंत्र गवाह अ॰ सा॰ 3 ने भी अपने साक्ष्य में कथन किया है कि कलंकित करेंसी नोटों को अभियुक्त अपीलार्थी के टेबल से बरामद किया गया था। अत:, घूस की मांग, प्रतिग्रहण और अभियुक्त अपीलार्थी से इसकी बरामदगी को गवाहों द्वारा सिद्ध किया गया है यद्यपि कुछ लघु विरोधाभास है किंतु ये ऐसी प्रकृति के नहीं हैं जो अभियोजन मामले पर संदेह उत्पन्न कर सके जब एक दशक बाद अभियोजन द्वारा गवाहों का परीक्षण किया गया है।

18. श्री त्रिपाठी द्वारा निवेदन किया गया है कि तात्विक प्रदर्शों अर्थात बोतलों को खाली पाया गया था जब इन्हें न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। किंतु इस संबंध में मैं पाती हूँ कि अ॰ सा॰ 7 ने अपने साक्ष्य में कथन और स्पष्ट किया है कि रासायनिक घोल जिसे बोतल में रखा गया था, लंबी अवधि के कारण उड़ गया था और इसलिए बोतलों को खाली पाया गया था।

19. वर्तमान मामले में निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका (प्रदर्श 3) में अनेक काँट-छाँट और लिप्त लेखन हैं। प्रदर्श 3 के परिशीलन से मैं पाती हूँ कि काँट-छाँट मुख्यत: अंकों पर है और यह नहीं कहा जा सकता है कि सी॰ बी॰ आई॰ प्राधिकारियों ने इसे किया है। परिवादी के साक्ष्य के पैरा 20 पर यह भी आया है कि उसने कहा है कि प्रदर्श 3 देखने के बाद उसने अपने मित्र से परिवाद लिखवाया और इसे सी॰ बी॰ आई॰ को अपना हस्ताक्षर इस पर करने के बाद दिया। पैरा 27 में परिवादी ने यह भी स्वीकार किया है कि परिवाद याचिका में कुछ काँट-छाँट और लिप्त लेखन है। अत:, नि:संदेह परिवादी ने परिवाद याचिका दाखिल किया जो प्रदर्श 3 है। मेरे मत में अभियोजन ने सही प्रकार से अन्य परिवाद याचिका पर विश्वास नहीं किया है जो प्रदर्श A है क्योंकि इस पर परिवादी का हस्ताक्षर नहीं है। अत:, द्वितीय परिवाद याचिका अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा केवल भ्रम सृजित करने के लिए प्रस्तुत की गयी है।

20. तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में और ऊपर की गयी चर्चा के आलोक में, मैं पाती हूँ कि अभियोजन ने अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध किया है। तद्नुसार, मैं आर॰ सी॰ केस सं॰ 14(A)/90(D) में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश-VIII-सह-विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, धनबाद द्वारा पारित अपीलार्थी की दोषसिद्धि को संपुष्ट करती हूँ।

21. मैं मामले के अभिलेख से पाती हूँ कि अभियुक्त-अपीलार्थी 78 वर्ष से अधिक की आयु का है और वह वर्तमान में अनेक व्याधियों से पीड़ित है। अभियुक्त अपीलार्थी की आयु और खराब स्वास्थ्य पर विचार करते हुए और यह विचार करते हुए कि उसे पहले कभी दोषसिद्ध नहीं किया गया है, मेरे मत में उसे दो दशक बाद जेल भेजना समुचित नहीं होगा। यद्यपि धारा 7 से संबंधित अपराध के लिए छह माह का न्यूनतम दंडादेश अधिनियम द्वारा प्रावधानित किया गया है और धारा 13 (1) (d) के लिए यह एक वर्ष है किंतु उस व्यक्ति के लिए जो 78 वर्ष की आयु का है और अनेक बीमारियों से पीड़ित है, नैसर्गिक न्याय का सिद्धांत निश्चय ही उसके प्रति नरम और सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाने की मांग करता है। निश्चय ही परिस्थितियाँ है जो अधिनियम में विहित न्यूनतम दंडादेश अधिनिर्णीत किए जाने को न्यायोचित ठहराती है, मेरा दृष्टिकोण है कि न्याय का उद्देश्य पूरा होगा यदि अपीलार्थी पर अधिरोपित एक वर्ष के दंडादेश को पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक के लिए घटा दिया जाता है। अतः, मैं उसको अधिनिर्णीत दंडादेशों को पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक उपांतरित करती हूँ और कारावास के बजाए उसे विचारण न्यायालय में इस निर्णय की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर 15,000/- रुपयों (पन्द्रह हजार) का जुर्माना का भुगतान करने का दंडादेश दिया जाता है। यदि वह पूर्वोक्त अवधि के भीतर जुर्माना की उक्त राशि का भुगतान नहीं करता है, विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय द्वारा अधिनिर्णीत कारावास का दंडादेश स्वतः पुनर्जीवित हो जाएगा और अवर न्यायालय विधि के अनुसार अग्रसर होगा और दंडादेश के शेष भाग को भुगतने के लिए अभियुक्त अपीलार्थी को गिरफ्तार करेगा। चूँकि अपीलार्थी जमानत पर है, उसे जमानत बंध पत्रों के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है।

22. दंडादेश में पूर्वोक्त उपांतरण के साथ अपील खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjï dï ejkfB;k ,o Mhï ,uï mikè;k;] U;k;efrx.k

बिहार राज्य (अब झारखंड)

cuke

निमाई घोष एवं अन्य

Gov. Appeal (DB) No. 31 of 1998 (P). Decided on 2nd August, 2012.

सत्र केस सं॰ 148/120 वर्ष 1990-92 में अपर सत्र न्यायाधीश, पाकुड़ द्वारा पारित दिनांक 2 अप्रिल, 1998 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34 सह-पठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 27—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 378—हत्या–दोषमुक्ति–सूचक ने अभियोजन मामले का पूर्ण समर्थन किया है–चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामला संपुष्ट–बचाव गवाह विश्वसनीय प्रतीत नहीं होते हैं–चश्मदीद गवाहों की उपस्थिति पर अविश्वास करने के आधार विश्वसनीय प्रतीत नहीं होते हैं–चश्मदीद गवाहों के परिसाक्ष्य पर अविश्वास करने का आधार नहीं हैं जो अन्यथा विश्वसनीय थे और घटना के बारे में संगतपूर्ण बयान दिए थे–पूर्व दुश्मनी के कारण अभियुक्तगण ने मृतक की हत्या करने का षडयंत्र रचा–अपील अंशतः अनुज्ञात। (पैराएँ 8, 12, 18, 23, 24, 43 से 48)

(ख) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 154 एवं 157—प्राथमिकी–पुलिस को घटनास्थल तक लाने की सीमा तक दूरभाष संदेश धारा 154 की आवश्यकता को परिपूर्ण करने के लिए अपर्याप्त थे। (पैरा 37)

निर्णयज विधि.–(2010)7 SCC 759; (2012)4 SCC 1; (2010)6 SCC 1—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Ravi Prakash, For the Appellant (State); M/s B.P. Pandey, Bhola Nath Ojha, Manish Kumar, S.N. Singh, For the Respondents.

डी॰ एन॰ उपाध्याय, न्यायमूर्ति.–पक्षों को सुना गया।

2. यह अपील बिहार राज्य (अब झारखंड) द्वारा सत्र केस सं॰ 148/120 वर्ष 1990-92 में अपर सत्र न्यायाधीश, पाकुड़ द्वारा दर्ज दोषमुक्ति आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा प्रत्यर्थीगण को उनके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन विरचित आरोपों से और अभियुक्तगण निमाई घोष एवं सोना चंद घोष के विरुद्ध आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन आरोपों से भी दोषमुक्त कर दिया गया है।

3. अभियोजन मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि दिनांक 8.7.1989 को दोपहर लगभग 3 बजे मृतक (मनमोहन घोष) अपने पुत्र जन्मेजय घोष और सह-ग्रामीण मेघनाथ घोष और शंकर घोष के साथ पाकुड़, जहाँ मृतक का एक अन्य घर निर्माणाधीन था, जाने के लिए अपने घर से निकला। वे सब साईकिल पर जा रहे थे। सायं लगभग 4 बजे जब वे गाँव दादपुर बहियार (परती भूमि) के निकट पहुँचे, अभियुक्तगण निमाई घोष और सोनाचंद घोष अपने हाथ में पिस्तौल लिए आए और वे जबरन मनमोहन घोष को रेलवे पटरी के पूर्व की ओर ले गए। इस बीच, गयानाथ घोष, श्रीधर घोष, सचिन घोष और संबल घोष भी पटरी के पश्चिमी हिस्से से बाहर आए। अभिकथित किया गया है कि निमाई घोष ने मनमोहन घोष की पीठ पर उपहतियाँ कारित करते हुए अपने पिस्तौल से गोली दागा जिसके परिणामस्वरुप वह गिर गया। तत्पश्चात, सोनाचंद घोष भी अपने पिस्तौल से गोली दागा। गोली लगने से हुई उपहतियों के बाद मनमोहन घोष जमीन पर तड़प रहा था, अभियुक्त संबल घोष ने चाकू से और भी उपहतियाँ कारित की।

जब सूचक मेघनाथ घोष और शंकर घोष ने हस्तक्षेप करना चाहा, अभियुक्तगण उन पर प्रहार करने के लिए उनकी ओर मुड़े और इसलिए वे सुरक्षित दूरी पर वापस चले गए और घटना को देखा। अभियुक्तगण मनमोहन घोष की हत्या करने के बाद घटनास्थल से भाग गए।

अगली सुबह अर्थात् दिनांक 9.7.1989 को प्रातः 5.30 बजे जन्मेजय का फर्दबयान दर्ज किया गया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन समस्त छह प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध मामला पाकुड़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 127/1989 दर्ज किया गया था।

4. अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण पूरा करने के बाद समस्त प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया। तद्नुसार, आरोप विरचित किए गए थे और अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में कुल मिलाकर 11 गवाहों को पेश किया जबकि प्रत्यर्थीगण ने अपने बचाव में चार गवाहों का परीक्षण किया और प्रदर्शों के मुताबिक दस्तावेज सिद्ध किया। ग्यारह अभियोजन गवाहों में से शंकर घोष (अ॰ सा॰ 2), मेघनाथ घोष (अ॰ सा॰ 5), सूचक जन्मेजय घोष (अ॰ सा॰ 8) चश्मदीद गवाह हैं जो घटना के समय पर मृतक के साथ थे। मंजुर रहमान (अ॰ सा॰ 4), महादेव घोष (अ॰ सा॰ 6) और सैदुल रहमान (अ॰ सा॰ 9), संयोगी साक्षी है जिन्होंने घटना देखा और अभियोजन मामले का समर्थन किया।

डॉ॰ एस॰ के॰ गुप्ता (अ॰ सा॰ 1) ने दिनांक 9.7.1989 को मृतक मनमोहन घोष के मृत शरीर का शव परीक्षण किया। शंकर घोष (अ॰ सा॰ 3) वृंदावन घोष (अ॰ सा॰ 7) मृत्यु समीक्षा और अभिग्रहण

सूची के गवाह हैं। दीनानाथ राम (अ॰ सा॰ 10) और श्यामा राम (अ॰ सा॰ 11) अन्वेषण अधिकारीगण हैं।

5. प्रत्यर्थीगण ने अपने बचाव में चार गवाहों अर्थात्:–

(i) ukjk;.k ?kk"k (c0 lk0 1)]

(ii) pMh ?kk"k (c0 lk0 2)

(iii) ldkj ?kk"k (c0 lk0 3) vkj

(iv) lckèk dekj cuth (c0 lk0 4) dk ijh{k.k fd;k FkkA

6. अपीलार्थी/राज्य ने आक्षेपित निर्णय का विरोध इस आधार पर किया है कि विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का अधिमूल्यन करने के लिए भिन्न प्रक्रिया अपनाया है। आरंभ से ही न्यायालय ने बचाव गवाहों के साक्ष्य और प्रत्यर्थीगण द्वारा किए गए अभिवचन पर अभियोजन साक्ष्य को त्यक्त और अविश्वास करने के लिए विचार किया है। प्रतिवाद किया गया था कि विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश छह चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य, जो पूरी तरह संगत है, का अधिमूल्यन करने में विफल रहे थे। उनके बयानों में सामने आने वाले लघु विरोधाभासों को उनपर अविश्वास करने के लिए अधिमान दिया गया है।

अभियोजन मामले के अन्य पहलूओं पर विचार किए बिना प्रत्यर्थीगण द्वारा दी गयी बचाव कहानी को स्वीकार कर लिया गया था। बचाव पक्ष ने अभिवचन किया था कि अभियुक्त सोनाचंद घोष के भाई बादल घोष की हत्या वर्तमान घटना की तिथि से 7-8 माह पहले कर दी गयी थी जिसमें मृतक भी अभियुक्त था और, इसलिए, सोना चंद घोष, उसके परिवार के सदस्यों और संबंधियों को झूठा आलिप्त करने के लिए सूचक के पास कारण थे। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने इसे मनमोहन घोष की हत्या के पीछे का हेतु स्वीकार करने के बजाए इसे प्रत्यर्थीगण को झूठा आलिप्त करने के अधिसंभाव्य कारण के रूप में विचार किया था।

अभियोजन गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 2, 5 और 8 पर केवल इसलिए अविश्वास किया गया था क्योंकि वे मृतका के संबंधी थे और उन्हें हितबद्ध गवाह कहा गया है। इसी प्रकार, अ॰ सा॰ 4, 6 और 9, जिन्होंने घटना का वास्तविक विवरण भी दिया था, पर केवल इस आधार पर अविश्वास किया गया था कि वे संयोगी साक्षी थे।

7. न्यायालय ने श्यामा राम (अन्वेषण अधिकारी–अ॰ सा॰ 11) के बयानों में सामने आने वाले लघु विरोधाभाषों और उसकी ओर से की गयी ढिलाई पर भी विचार किया और अभियोजन के साथ अन्याय किया। फर्दबयान को भी इस आधार पर संदेह से देखा गया था कि चश्मदीद गवाह घटना रिपोर्ट करने रात्रि के दौरान पुलिस थाना नहीं गए थे। इस पर विचार नहीं किया गया था कि घटना के बाद सूचक अपने गाँव वापस गया था, अपने परिवार के सदस्यों को सूचित किया था और पुनः घटनास्थल पर आया और मृत शरीर के निकट सारी रात रुका रहा था। अन्वेषण अधिकारी ने अपने अभिसाक्ष्य में भी कथन किया है कि वह रात्रि में घटनास्थल पर गया था, मृत शरीर को देखा था और अगली सुबह 5.30 बजे फर्दबयान दर्ज किया था। यह किसी तरीके से असामान्य नहीं था और ऐसी स्थिति में ऐसा मानव आचरण सदैव अधिसंभाव्य है किंतु न्यायालय अभियोजन मामले के इन समस्त पहलूओं पर विचार करने में विफल रहा था और बचाव विवरण को अधिक अधिमान दिया था और दोषमुक्ति आदेश दर्ज किया जो अनपेक्षणीय था।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण ने आक्षेपित निर्णय का और विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश के निष्कर्षों का भी समर्थन किया है। यह निवेदन किया गया था कि तथाकथित चश्मदीद गवाहों में से कोई घटना स्थल पर उपस्थित नहीं था और घटना नहीं देखा था।

ब॰ सा॰ 1, ब॰ सा॰ 2 और ब॰ सा॰ 3 ने स्पष्टत: कथन किया है कि गोली चलने की आवाज सुनने के बाद जब वे घटनास्थल पर गए उन्होंने मनमोहन घोष को अपने शरीर पर उपहतियाँ पाकर मृत पड़ा पाया। उन्होंने किसी गवाह, सूचक को तो बिल्कुल ही नहीं, को घटना स्थल पर समय के प्रासंगिक बिंदु पर नहीं देखा था। बचाव गवाहों ने आगे कथन किया है कि उन्होंने मनमोहन घोष की हत्या के बारे में सूचक और परिवार के अन्य सदस्यगण को सूचित किया जिसके बाद वे डेढ़ घंटा बाद घटनास्थल पर पहुँचे। इस संदर्भ में, अ॰ सा॰ 11 के बयान (पैरा 7) को भी निर्दिष्ट किया गया था जिसमें पुलिस अधिकारी ने कथन किया है कि वह रात्रि के दौरान घटनास्थल पर गया था और मृत शरीर को देखा था। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया था कि चौकीदार रेल पटरी के निकट उपस्थित था किंतु प्राथमिकी दर्ज करने के लिए चौकीदार का फर्दबयान दर्ज नहीं किया गया था। अ॰ सा॰ 11 ने प्रासंगिक समय पर मृत शरीर के निकट तथाकथित चश्मदीद गवाहों की उपस्थिति के बारे में नहीं कहा था। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने सही प्रकार से विचार किया है कि प्राथमिकी समय पर दर्ज नहीं की गयी थी और अ॰ सा॰ 8 द्वारा दिया गया फर्दबयान संदेहमुक्त नहीं था।

न्यायालय ने सही प्रकार से संयोगी साक्षियों के साक्ष्य को त्यक्त कर दिया है क्योंकि फर्दबयान घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति उपदर्शित नहीं करता था बल्कि फर्दबयान बचाव गवाहों की उपस्थिति का समर्थन करता है जो चारा (बहियार) भूमि पर अपने पशुओं को चरा रहे थे।

सूचक और अ॰ सा॰ 2 एवं 5 ने बादल घोष हत्या मामले में मृतक की अंतर्ग्रस्तता के संबंध में अपनी अनभिज्ञता दर्शाया था और वह भी उन गवाहों का साख समाप्त करने का कारण था जो शुद्ध हृदय से नहीं आए थे।

प्रत्यर्थीगण का आगे प्रतिवाद यह है कि चिकित्सीय साक्ष्य चाक्षुक साक्ष्य, जैसा चश्मदीद गवाहों ने प्रकट किया, को संपुष्ट नहीं करता है। डॉक्टर ने मृतक के शरीर पर दो गोली से हुई उपहतियों को नहीं पाया था।

घटनास्थल और घटना का तरीका, जैसा गवाहों द्वारा प्रकट किया गया है, संगत नहीं था। दीनानाथ राम (अ॰ सा॰ 10) ने अपने अभिसाक्ष्य में स्वीकार किया था कि उसने नारायण घोष (ब॰ सा॰ 1) और सुकुमार घोष (ब॰ सा॰ 3) से घटना के बारे में पूछा था किंतु उनके बयानों को केस डायरी में दर्ज नहीं किया था क्योंकि बयान अनुश्रुत थे। यह भी उपदर्शित करता है कि निष्पक्ष अन्वेषण नहीं किया गया था।

अंत में प्रतिवाद किया गया था कि बचाव गवाहों की उपस्थिति न्यायालय द्वारा स्वीकार की गयी थी और, इसलिए, उनके द्वारा दिए गए साक्ष्य पर सही प्रकार से विश्वास किया गया है। अ॰ सा॰ 11 के बयान के अनुसार, समय के प्रासंगिक बिंदु पर मृत शरीर के निकट तथाकथित चश्मदीद गवाह उपस्थित नहीं थे और विद्वान सत्र न्यायाधीश ने सही प्रकार से उनके बयान पर अविश्वास किया है। इन समस्त पहलुओं को विचार में लेते हुए विद्वान सत्र न्यायाधीश ने प्रत्यर्थीगण को दोषमुक्त कर दिया था और आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

9. परस्पर विरोधी निवेदनों को सुनने के बाद हम उन सिद्धांतों पर चर्चा करने के इच्छुक हैं जिन्हें दांडिक विधि शास्त्र में स्वीकार किया गया है। दांडिक विधिशास्त्र में यह सर्वाधिक मूल तथ्य है कि अभियुक्त के रूप में अभियोजित व्यक्ति को तब तक निर्दोष उपधारित किया जाता है जबतक अभियोजन

द्वारा साक्ष्य, जो उसे आरोपित अपराध का दोषी दर्शा सकता है, को पेश करके उस उपधारणा का खंडन नहीं किया जाता है। अभियुक्त के दोष को सिद्ध करने का भार अभियोजन पर है और जब तक यह स्वयं को भार से मुक्त नहीं करता है, न्यायालय अभियुक्त के दोष का निष्कर्ष दर्ज नहीं कर सकता है। दांडिक न्याय के प्रशासन का एक अन्य स्वर्णिम सिद्धांत यह है कि यदि साक्ष्य पर दो दृष्टिकोण संभव है–एक अभियुक्त का दोष और दूसरा उसकी निर्दोषिता सिद्ध करने वाला दृष्टिकोण जो अभियुक्त के पक्ष में है, स्वीकार किया जाना चाहिए। यह तथ्य कि मामले में बचाव अयुक्तियुक्त था, अभियोजन को अपना मामला पूरी तरह सिद्ध करने से विमुक्त नहीं करता है। अभिलेख पर जो हम लाना चाहते हैं वह यह है कि अभियुक्त के विरुद्ध समस्त युक्तियुक्त संदेह की छाया के परे अपना मामला सिद्ध करने का भार अभियोजन पर है। अतः, अभियोजन द्वारा दिए गए साक्ष्य पर सतर्कता के साथ चर्चा करना होगा। हमारा अर्थ यह नहीं है कि अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों के खंडन में अपने बचाव में अभियुक्तगण द्वारा दिए गए साक्ष्य को कम अधिमान दिया जाना होगा। दांडिक विचारण के सामान्य क्रम में अभियोजन दोषकर्ता को दंडित करवाने के आशय के साथ अभियुक्त के विरुद्ध अभिकथन करते हुए कतिपय तथ्यों के साथ आता है। हमारे देश में प्रचलित विरोधपूर्ण न्यायिक प्रणाली अभियुक्त को आरोपों का खंडन करने के लिए अपने बचाव में साक्ष्य देने का समान अधिकार देता है। इस प्रकार, यह उपदर्शित किया गया है कि अपना मामला सिद्ध करने के लिए प्रथम अवसर व्यथित पक्ष को दिया जाना होगा।

10. वर्तमान मामले में, जैसा हमने पूर्ववर्ती पैराग्राफों में संप्रेक्षित किया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने साक्ष्य का संवीक्षण आरंभ किया था और अपने बचाव में अभियुक्त द्वारा दिए गए साक्ष्य के आलोक में इसका मूल्यांकन किया था। विश्वास करने या नहीं करने के लिए उन्हें पहले अभियोजन गवाहों के साक्ष्य पर चर्चा करना चाहिए था और तब बचाव द्वारा अभिलेख पर लायी गयी अगली अधिसंभाव्य कथा पर विचार करना चाहिए था। यह सत्य है कि निष्कर्ष देने के प्रयोजन से साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालय को अभिलेख पर उपलब्ध समस्त प्रकार के साक्ष्य को ध्यान में रखना होगा, जिसे अभियोजन द्वारा अथवा बचाव द्वारा दिया जा सकता है।

11. इन समस्त पहलुओं जो वर्तमान मामले में सामने आ रहे हैं पर विचार करते हुए हम नए सिरे से साक्ष्य का संवीक्षण करने के इच्छुक हैं क्योंकि यह दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील है और न्यायालय को ऐसी स्थिति में साक्ष्य का संवीक्षण करने में सदैव सतर्क रहना चाहिए।

12. अभियोजन मामले पर आते हुए हम पाते हैं कि फर्दबयान दिनांक 9.7.1989 को प्रातः 5.30 बजे जन्मेजय घोष (अ॰ सा॰ 8) द्वारा दादपुर गाँव के बहियार, जहाँ मनमोहन घोष का मृत शरीर पड़ा था, पर दर्ज किया गया था। सूचक द्वारा दिए गए तथ्य ये हैं कि दिनांक 8.7.1989 को दोपहर 3 बजे मृतक सूचक (अ॰ सा॰ 8), मेघनाथ घोष (अ॰ सा॰ 5) और शंकर घोष (अ॰ सा॰ 2) के साथ पाकुड़ जा रहा था। जब वे बहियार अवस्थित रेलवे पुल के निकट सायं 4 बजे पहुँचे, अभियुक्तगण निमाई घोष और सोनाचंद घोष अपने हाथ में पिस्तौल लिए आए और वे जबरन मृतक को रेलवे पटरी की ओर घसीट कर ले गए। इस बीच अन्य प्रत्यर्थीगण अर्थात् गयानाथ घोष, श्रीधर घोष, सचिन घोष और संबल घोष भी पश्चिम दिशा से आए। निमाई घोष और सोनाचंद घोष ने आग्नेयास्त्र द्वारा मृतक पर उपहति कारित किया जबकि संबल घोष ने छूरे से वार किया। सूचक और उसके साथियों ने हस्तक्षेप करने का प्रयास किया किंतु, प्रत्यर्थीगण द्वारा उन्हें धमकाया गया था।

सूचक ने अभियोजन मामले, जैसा उसने अपने फर्दबयान में बनाया है, का पूरा समर्थन किया है। उसने विनिर्दिष्टत: कथन किया है कि निमाई घोष ने मृतक की पीठ पर गोली दागकर उपहतियों को कारित किया था, जिसके बाद मृतक गिर गया था। तत्पश्चात्, सोनाचंद घोष ने पिस्तौल से गोली चलाया। संबल घोष ने चाकू का 3-4 वार किया जिसके बाद घटनास्थल पर मृतक की मृत्यु हो गयी।

सूचक ने इस सीमा तक न्यायालय में कहानी विकसित किया है कि दया घोष और श्रीधर घोष अपने हाथ में लाठी लिए थे और मृतक की हत्या करने के लिए निमाई घोष और सोनाचंद को उकसा रहे थे। उसने समर्थन किया है कि खाली कारतूस, साइकिल और रक्त रंजित मिट्टी पुलिस द्वारा अभिग्रहित की गयी थी।

अपने प्रति परीक्षण में उसने बादल घोष, जो प्रत्यर्थीगण सोनाचंद घोष और श्रीधर घोष का बड़ा भाई था, की हत्या में अपने पिता मनमोहन घोष (मृतक) की अंतर्ग्रस्तता के बारे में अपनी अनभिज्ञता दर्शाया है। पूछे जाने पर, यह कहा गया था कि हल्ला सुनने पर भी कोई चरवाहा घटना स्थल पर उपस्थित नहीं हुआ था क्योंकि वे डेढ़ कि॰ मी॰ की दूरी पर थे। घटना के बाद, वह लगभग आधा घंटा घटनास्थल पर रूका रहा और तब अपने परिवार के सदस्यों को बताने अपने गाँव वापस लौटा। बाद में उसे पता चला था कि किसी ने तिलबिथा रेलवे स्टेशन से पुलिस को टेलीफोन किया था। उसने किंकर घोष और वृंदावन घोष को घटना के बारे में सूचित किया और पुन: अपने परिवार के सदस्यों के साथ घटनास्थल पर वापस आया। जब पुलिस घटनास्थल पर आयी, उसके परिवार के सदस्य, वृंदावन घोष, किंकर घोष और अन्य ग्रामीण उपस्थित थे। घटनास्थल पर मृत शरीर किस हालत में पड़ा था इसके बारे में सूचक का आगे प्रति परीक्षण किया गया था।

13. अ॰ सा॰ 2 शंकर घोष और अ॰ सा॰ 5 मेघनाथ घोष भी मृतक और सूचक के साथ थे। उन्होंने अभियोजन मामले का समर्थन किया था और अभिसाक्ष्य दिया था कि शनिवार दिनांक 8.7.1989 को सायं 4 बजे जब वे मृतक के साथ पाकुड़ जा रहे थे और गाँव दादपुर बहियार के भीतर अवस्थित रेलवे पुल के निकट पहुँचे, अभियुक्तगण निमाई घोष और सोनाघोष पिस्तौल से लैस होकर घटनास्थल पर प्रकट हुए और जबरन मृतक को रेलवे पुल की ओर ले गए। इसी बीच शेष अपीलार्थीगण आए।

गयानाथ घोष ने मृतक की हत्या करने के लिए अपने साथियों को उकसाया जिसके बाद निमाई घोष ने मृतक की पीठ पर उपहति कारित करते हुए पिस्तौल से गोली चलाया और मृतक गिर गया। तत्पश्चात, अभियुक्त सोनाचंद ने अपने पिस्तौल से गोली दागा। घटनास्थल पर ही मनमोहन घोष की मृत्यु हो गयी। जब इन गवाहों ने हस्तक्षेप करना चाहा, अभियुक्तगण द्वारा उन्हें धमकी दी गयी थी। यह भी प्रकट किया गया है कि घटनास्थल पर तीन-चार व्यक्ति आ-जा रहे थे और उन्होंने भी घटना देखा था। इन दोनों गवाहों ने अभियुक्त संबल घोष द्वारा कारित चाकू के वार के बारे में कथन नहीं किया है।

14. मंजूर रहमान (अ॰ सा॰ 4), महादेव घोष (अ॰ सा॰ 6), सैदुर रहमान (अ॰ सा॰ 9) ने भी घटना देखा था जब वे संग्रामपुर से घर लौट रहे थे। उन्होंने भी इन्हीं तथ्यों को दोहराया है जैसा अ॰ सा॰ 2 और 5 द्वारा प्रकट किया गया है।

मंजूर रहमान (अ॰ सा॰ 4) ने आगे कथन किया है कि घटना सैदुर रहमान और महादेव घोष द्वारा भी देखी गयी थी। अपने प्रतिपरीक्षण में अ॰ सा॰ 4 ने घटना का तरीका, अभियुक्तगण द्वारा इस्तेमाल किए

गए हथियार, आदि के बारे में वर्णन किया है। यह कथन भी किया गया है कि साइकिल जिसे मनमोहन चला रहा था, रेलवे पटरी पर पड़ी रही जब अभियुक्तगण द्वारा उसे पटरी से ले जाया जा रहा था। भयवश वह उस जगह पर खड़ा रहा जहाँ वह था और घटना देखा। अभियुक्तगण के भाग जाने के बाद वह भी घर चला गया।

15. महादेव घोष (अ॰ सा॰ 6) ने कहा है कि वह बैल खरीदने के बाद विक्रमपुर से लौट रहा था। जब वह दादपुर रेलवे पुल के निकट पहुँचा, उसने मनमोहन घोष को साइकिल पर जाते हुए देखा। उसने निमाई घोष को नामित किया है और सोनाचंद की ओर इंगित करते हुए कथन किया है कि इन दोनों व्यक्तियों ने मनमोहन घोष को उसकी साइकिल से जबरन खींच लिया और उसे पटरी की ओर ले गए। इस बीच दया घोष, सचिन घोष, सचिन घोष का पुत्र भी आ गए। दया घोष के उकसाने पर, अभियुक्त निमाई घोष ने मनमोहन की पीठ पर उपहतियाँ कारित करते हुए गोली दागा जिसके बाद वह गिर गया।

सोनाचंद घोष ने अपनी पिस्तौल से एक गोली चलायी और संबल घोष ने चाकू से मनमोहन पर उपहतियों को कारित किया।

16. सैदूर रहमान (अ॰ सा॰ 9) ने कहा है कि वह विक्रमपुर से लौट रहा था। जब वह दादपुर रेलवे पुल के निकट पहुँचा, उसने कुछ व्यक्तियों को देखा जिन्होंने किसी व्यक्ति को उसकी साइकिल से गिरा दिया था। उसने मनमोहन घोष के रूप में उस व्यक्ति को पहचाना जिसे खींचा गया था और निमाई घोष और सोनाचंद घोष वे व्यक्ति थे जो मनमोहन को खींच रहे थे। तत्पश्चात्, निमाई घोष ने मनमोहन पर आग्नेयास्त्र से उपहति कारित किया, और भी 3-4 व्यक्ति अर्थात श्रीधर घोष, सचिन घोष, संबल घोष और गयानाथ घोष भी आए थे और वे मृतक की हत्या करने के लिए कह रहे थे। संबल घोष ने मृतक के शरीर पर चाकू से वार किया। वह आगे कहता है कि मृतक मनमोहन घोष का पुत्र अपने पिता को बचाने के लिए भयवश हस्तक्षेप करने का साहस नहीं किया।

घटनास्थल पर मनमोहन घोष की मृत्यु हो गयी। अभियुक्तगण भाग गए। उक्त तीन गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 4, 6 और 9 का मृतक के साथ उनके संबंध के बारे में एवं समय एवं स्थान जहाँ से वे लौट रहे थे के बारे में भी प्रतिपरीक्षण किया गया था।

17. बचाव अधिवक्ता ने महादेव घोष और अभियुक्त दयानाथ घोष के बीच दुश्मनी को अभिलेख पर लाने का प्रयास किया है।

18. अ॰ सा॰ 1 डॉ॰ एस॰ के गुप्ता ने मनमोहन घोष के मृत शरीर का शव परीक्षण किया था और निम्नलिखित उपहतियाँ पायी थी:–

(i) ck, Ldiyk d dk.k ij tyh ifjfèk e xkykdkj 1" 0;kl okyh migfr (ço'k t[e)

(ii) QQMk] ,vkVk] ân; vkj bn&fxn dh ljpukvk dk ipj djd vkj rRle ilfy;k dk ÝDpj djd dfofV cukr g, 4" efM;y 5" Åij] 6" ik'o f=dk.kkdkj pkV d ck, fgLl ij migfr l0 1 l tkjh migfr (fudkl t[e)

(iii) fonh.k ekftu d lkFk 1/2"x1/2" dej d 2" Åij ofVdy dkye d cxy dh ihB e migfrA

(iv) 2"x1/4" ekli'kh rd xgjk eki okyk xnu d ck, fgLl ij dVk gvk t[eA

(v) 1/2"x1/6"x1/6" eki okyk ukd d nk, fgLl d cxy e pgj ij dVk gvk t[eA

(vi) Ropk rd xgjk x 1½"x1¼" ØLV d ck, fgLl ij dVk gvk t[eA

डॉक्टर के अनुसार, मृत्यु का कारण उसके द्वारा उल्लिखित शव पूर्व उपहतियाँ थी। मृत्यु मानव वध था। उपहति स॰ 1 एवं 2 एकल गोली आग्नेयास्त्र द्वारा कारित की गयी थी और उपहति सं॰ 4, 5 एवं 6 चाकू जैसे तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी और मृत्यु से शव परीक्षण तक बीता समय लगभग 24 घंटा था।

19. किंकर घोष (अ॰ सा॰ 3) अभिग्रहण सूची का गवाह है। उसकी उपस्थिति में घटनास्थल से रक्तरंजित मिट्टी और खाली कारतूस अभिगृहित किए गए थे और उसने घटना का अनुश्रुत विवरण भी दिया है।

बिन्दावन घोष अभिग्रहण और मृत्यु समीक्षा का एक अन्य गवाह है और उसने उन दस्तावेजों पर अपना हस्ताक्षर सिद्ध किया है।

दीनानाथ राम (अ॰ सा॰ 10) समय के प्रासंगिक बिंदु पर पाकुड़ मुफस्सिल पुलिस थाना में प्रभारी-अधिकारी के रूप में पदस्थापित था और वह आंशिक अन्वेषण अधिकारी है और उसने औपचारिक प्राथमिकी और मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट सिद्ध किया है। अन्वेषण पूरा करने के बाद, उसने प्राथमिकी में नामित अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया था।

अपने प्रति परीक्षण में वह कहता है कि उसने सैदुर रहमान का बयान दर्ज किया था किंतु उसने घटनास्थल का निरीक्षण नहीं किया था। वह दादपुर गाँव गया था जहाँ काशी घोष, भीम घोष, शिबू घोष, सुकुमार घोष, नारायण घोष उपस्थित थे और वे घटना का अनुश्रुत विवरण प्रकट कर रहे थे और, इसलिए, उसने केस डायरी में उनके बयान को दर्ज नहीं किया था। उसने इस सुझाव से इनकार किया कि वे घटना का सत्य विवरण दे रहे थे जो अभियुक्तगण के पक्ष में था।

श्यामा राम (अ॰ सा॰ 11) एक अन्य अन्वेषण अधिकारी है। उसने कथन किया है कि दिनांक 8.7.1989 को वह पाकुड़ मुफस्सिल पुलिस थाना में पदस्थापित था और उस तिथि पर सायंकाल टेलीफोन पर संदेश प्राप्त करने के बाद कि दादपुर गाँव में एक व्यक्ति की हत्या कर दी गयी है, वह वहाँ गया। उसने दिनांक 9.7.1989 की अहली सुबह जन्मेजय घोष (सूचक) का फर्दबयान दर्ज किया था और प्रदर्श-5 (फर्दबयान) स्वीकार करता है जब इसे उसको निर्दिष्ट किया गया। अन्वेषण का प्रभार लेने के बाद, गवाहों की उपस्थिति में मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार की गयी थी और मृत शरीर को शव परीक्षण के लिए भेजा गया था। गवाह द्वारा वर्णित घटना स्थल बहियार (खुली भूमि) है जो दादपुर गाँव से लगभग 1/2 कि॰ मी॰ पर अवस्थित है। वहाँ रेल पटरी थी जिस पर पुल सं॰ 24 और कि॰ मी॰ खंभा सं॰ 575 था। उसने अभिसाक्ष्य दिया कि घटना स्थल से रक्तरंजित मिट्टी और खाली कारतूस अभिगृहित किए गए थे और तद्नुसार गवाहों की अनुपस्थिति में अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी। उसने अन्य गवाहों का साक्ष्य दर्ज किया था जिसके बाद अन्वेषण का प्रभार अ॰ सा॰ 10 को सौंपा गया था। उसने केस डायरी का पैरा 1 से 17 लिखा है।

अपने प्रति परीक्षण में वह स्वीकार करता है कि घटना स्थल का साइट प्लान या स्केच तैयार नहीं किया गया था। वह कहता है कि उसने टेलीफोन कॉल प्राप्त किया था किंतु वह टेलीफोन करने वाले व्यक्ति का नाम नहीं जानता था। दूरभाष संदेश पाने के बाद, वह मोटर साइकिल से घटनास्थल की ओर गया था किंतु उसे याद नहीं था कि वह अकेले था अथवा कोई उसके साथ था। उसने रात में मृत शरीर देखा था और सुबह में फर्दबयान दर्ज किया था। उसने चौकीदार किशोरी राम और बादल राजवंशी का

बयान दर्ज नहीं किया था। घटनास्थल से मलयपुर गाँव की दूरी 5-7 कि॰ मी॰ है और मृतक उस गाँव का निवासी था।

20. नारायण घोष (ब॰ सा॰ 1), चंडी घोष (ब॰ सा॰ 2) और सुकुमार घोष (ब॰ सा॰ 3) ने कथन किया है कि कुछ व्यक्तियों द्वारा मनमोहन घोष की हत्या की गयी थी और घटना आषाढ़ माह में हुई थी और घटना का समय लगभग दोपहर 3.30 बजे था। घटनास्थल दादपुर गाँव के बहियार के भीतर अवस्थित रेल पुल के निकट था। घटना का सटीक स्थल रेलवे पुल के पूर्व 5-6 हाथ पर था। वे घटनास्थल से लगभग 100 गज की दूरी पर थे और गोली चलने की आवाज सुनने के बाद वे घटनास्थल की ओर दौड़े और मनमोहन घोष को मृत पाया। उन्होंने वहाँ पर किसी व्यक्ति को उपस्थित नहीं देखा था। उन्होंने नहीं देखा था कि किसने किसकी हत्या की थी। घटना के बाद उन्होंने मनमोहन घोष के परिवार के सदस्यों को सूचित किया जो डेढ़ घंटे बाद घटनास्थल पर आए।

21. सुबोध कुमार बनर्जी (ब॰ सा॰ 4) ने मामले के औपचारिक प्राथमिकी को सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श A के रूप में और फर्दबयान को प्रदर्श B के रूप में चिन्हित किया गया है। अभियुक्तगण ने उन दस्तावेजों को यह दर्शाने के लिए सिद्ध किया है कि मृतक और चश्मदीद गवाहों में से कुछ बादल घोष की हत्या में अभियुक्तगण थे और उक्त बादल घोष अभियुक्त श्रीधर घोष का भाई था और पूर्व दुश्मनी के कारण अभियुक्तगण को इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है।

ब॰ सा॰ 1, 2, 3 का परीक्षण यह दर्शाने के लिए किया गया है कि चश्मदीद गवाहों में से कोई घटना के समय पर उपस्थित नहीं था।

22. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अ॰ सा॰ 8 (सूचक), अ॰ सा॰ 2 शंकर घोष और अ॰ सा॰ 5 मेघनाथ घोष पर निम्नलिखित आधारों पर अविश्वास किया है।

(i) fd o erd d lcèkh g vkj vR;Ur fgrc) xokg g(

(ii) fd mUgku ckny ?kk"k tk vfHk;Dr Jhèkj dk Hkkb Fkk dh gR;k e erd dh vrxLrrk dk Niku dk ç;kl fd;k Fkk vkj og ?kVuk oreku ?kVuk d yxHkx 7-8 ekg igy gb FkhA

(iii) fd mue l dkb Hkh ?kVukLFky ij mifLFkr ugh Fkk tc v0 lkO 11 u jkf= e er 'kjhj n[kk Fkk vkj o lpuk nt djoku ifyl Fkkuk ugh x, FkA

(iv) fd iokDr rhu p'enhn xokgk d c;ku e fojkèkkHkkl FkA

(v) fd cpko xokgk d vulkj mue l dkb Hkh le; d çklfxd fcn ij ?kVukLFky ij mifLFkr ugh FkkA

इस संदर्भ में, हमने इन साक्ष्यों का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है और ब॰ सा॰ 1, 2, 3 के साक्ष्य का भी सावधानीपूर्वक संवीक्षण किया है। हमने यह भी संप्रेक्षित किया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश इन चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य पर चर्चा करने के बजाए घटनास्थल पर चश्मदीद गवाहों की उपस्थिति को असिद्ध करने के लिए बचाव साक्षियों के बयान का मदद लिया था और उनके साक्ष्य को इस आधार पर त्यक्त कर दिया था कि वे मृतक के संबंधी और अत्यन्त हितबद्ध गवाह हैं। किंतु विद्वान सत्र न्यायाधीश भूल गए हैं अथवा इस तथ्य को ध्यान में नहीं लिया था कि ब॰ सा॰ 1, 2 तथा 3 अभियुक्त के भी संबंधी हैं और केवल अभियुक्तगण को बचाने के लिए उनका परीक्षण किया गया था और वे अपने मिशन में सफल हुए हैं।

23. हमने इन बचाव साक्षियों को विश्वसनीय आधार पर नहीं पाया था कि उन्होंने कथन किया था कि गोली चलने की आवाज सुनने के बाद वे घटनास्थल की ओर दौड़े थे और मृतक मनमोहन घोष को मृत पड़ा देखा और उनके अनुसार समय के उस बिंदु पर वे घटनास्थल से 100 गज की दूरी पर थे। अगर ऐसा होता, यह सदैव ही अपेक्षा की जाती थी कि कम से कम उनलोगों ने उपद्रवियों को घटनास्थल से भागते देखा होगा क्योंकि घटनास्थल चारागाह के रूप में उपयोग में लाया जाने वाला खुला स्थान है और इससे होकर रेल की पटरी जा रही थी। हमारे कहने का अर्थ यह है कि यदि पूर्वोक्त ब॰ सा॰ उपस्थित थे, उनके पास कम से कम घटनास्थल से दुष्टों को भागते देखने का अवसर था। घटनास्थल पर आवासीय गृह, अथवा बाजार अथवा कुछ भी नहीं था जिसमें दुष्टों का गायब हो जाना संभव हो सकता था। अतः, चश्मदीद गवाहों की उपस्थिति पर अविश्वास करने के आधार, जैसा विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा बताया गया है, तर्कपूर्ण और युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है और हमारे पास ऐसे तर्क को त्यक्त करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

24. अगला आधार जिस पर चश्मदीद गवाहों पर अविश्वास किया गया था, भी समुचित नहीं है क्योंकि पुलिस ने मृतक और अन्य अभियुक्तगण, जिन्हें अभिकथित रूप से श्रीधर घोष द्वारा नामित किया गया था, के विरुद्ध फाइनल फॉर्म दाखिल किया है और यह तथ्य प्रदर्श 10 से प्रकट है जो बादल घोष हत्या मामले में पुलिस द्वारा दाखिल फाइनल फॉर्म है। यह चश्मदीद गवाहों के परिसाक्ष्य पर अविश्वास करने का आधार नहीं है जो अन्यथा विश्वसनीय थे और घटना के बारे में संगतपूर्ण बयान दिए थे। पुरानी दुश्मनी, जिसे अभियुक्तगण ने स्वीकार किया है, मनमोहन घोष की हत्या के पीछे का हेतु है और, इसलिए, अभियुक्तगण ने घटनास्थल जो गाँव से 6-7 कि॰ मी॰ की दूरी पर था पर मनमोहन घोष की हत्या करने का षडयंत्र रचा था।

हमने पूर्ववर्ती पैराग्राफों में अ॰ सा॰ 2, 5 एवं 8 के साक्ष्य को भी उद्धृत किया है। उन्होंने संगतपूर्ण रूप से अभिसाक्ष्य दिया था कि वे मृतक के साथ थे जो अपने निर्माणाधीन घर को देखने पाकुड़ जा रहा था और वह स्थान मलयपुर गाँव से 10-12 कि॰ मी॰ की दूरी पर था। जन्मेजय घोष (अ॰ सा॰ 8) मृतक का पुत्र है और उसने स्पष्टतः कथन किया है कि वह अपने पिता के साथ था। अन्य दो गवाह अर्थात् अ॰ सा॰ 5 और अ॰ सा॰ 2 भी घटना के समय पर मृतक के साथ थे। उन सबों ने कथन किया है कि घटनास्थल नीची भूमि थी जहाँ पानी लगा रहता था और, इसलिए, रेल की पटरी उस भूमि से कतिपय ऊँचाई पर निर्मित की गयी थी। बरसात का मौसम था। चूँकि मृतक और गवाहगण जो अपने साईकिल पर जा रहे थे, वे एक-दूसरे के पीछे जा रहे थे और मृतक आगे था। इन गवाहों की उपस्थिति केवल इस आधार पर त्यक्त नहीं की जा सकती थी कि वे मृतक के संबंधी हैं अथवा मृतक के साथ उनका मैत्रीपूर्ण संबंध था।

25. निर्णयों की श्रृंखला में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है कि इस आधार पर कि चश्मदीद गवाह मृतक के संबंधी थे, उनके परिसाक्ष्य पर संदेह नहीं किया जा सकता है। उदाहरणस्वरुप, **(2010)7 SCC 759** में प्रकाशित **धरणीधर बनाम उ॰ प्र॰ राज्य एवं अन्य** के निर्णय में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया है:-

"12. dkb Bkl fu;e ugh g fd ifjokj d lnL; ?kVuk d lPp xokg dHkh ugh gk ldr g vkj fd o lno U;k;ky; d le{k >Bk vfHkk{; nxA ;g lno fn, x, ekey d rF;k vkj ifjfLFkfr;k ij fuHkj djxkA t ;ckyu cuke ikfMpjh l?kh; {k= e bl U;k;ky; d ikl ;g fopkj dju dk volj Fkk fd D;k fgrc) xokgk d lk{; ij fo'okl fd;k tk ldrk gA U;k;ky; u nf"Vdk.k viuk;k fd

fgrc) xokg d lk{; ij fopkj djr g, 0;ogkj vd'ky #[k ykx ugh fd;k tk ldrk gA ,l lk{; dk doy blfy, vun[kk vFkok vLohdkj ugh djuk pkfg, D;kfd ;g ihfMr d lkFk fudV:i l lcfèkr 0;fDr l vkrk gA U;k;ky; u fuEufyf[kr vfHkfuèkkfjr fd;k (SCC P 213, Paras 23-24)

"23. gekjk lfopkfjr nf"Vdk.k g fd mu ekeyk e] tgk U;k;ky; dk fgrc) xokgk d lk{; ij fopkj dju d fy, dgk tkrk g] U;k;ky; dk #[k ,l xokgk d lk{; dk vfèkeY;u djr g, 0;ogkj vd'ky ugh gkuk pkfg,A U;k;ky; dk fgrc) xokgk }kjk fn, x, lk{; dk vfèkeY;u dju vkj bldk Lohdkj dju e lrd jguk gkxk fdr U;k;ky; dk ,l lk{; d çfr lngi.k ugh gkuk gkxkA U;k;ky; dk çkFkfed ç;kl lxrrk n[kuk gA fdlh xokg dk lk{; doy blfy, vun[kk vFkok vLohdkj ugh fd;k tk ldrk g fd ;g ml 0;fDr dk g tk ihfMr dk fudV lcèkh gA

24. ... ..."

13. jke Hkjkl cuke m0 ç0 jkT; e bl U;k;ky; }kjk le#i nf"Vdk.k viuk;k x;k Fkk tgk U;k;ky; u fofèk d fu;e dk dFku fd;k fd erd dk fudV lcèkh vfuok;r% fgrc) xokg ugh cu tkrk gA fgrc) xokg og g tk fooknk d dkj.k vFkok çfr'kkèk vFkok n'euh dh Hkkouk l fdlh 0;fDr dh nk"kflf) ljf{kr dju e fgrc) g vkj doy ml vk'k; l U;k;ky; d le{k vfHk lk{; nrk g] u fd U;k; d gr dk vxlj dju eA fgrc) xokg d lk{; d vfèkeY;u l lcfèkr fofèk lfuf'pr g ft ld vulkj fgrc) xokg d fooj.k dk vLohdkj ugh fd;k tk ldrk g cfYd bl Lohdkj dju d igy lkoèkkuhiod bldk ijh{k.k djuk gkxkA

*14. mDr fu.k;k d vkykd e Li"V g fd vfHk;ktu ekey d leFku e vfHkdfFkr fgrc) xokgk d c;kuk ij U;k;ky; }kjk ljf{kr :i l fo'okl fd;k tk ldrk gA fdr lkoèkkuhiod ,lk dju dh t:jr g vkj ;g lfuf'pr djuk gkxk fd 0;fDr tk erd dk fudV lcèkh g }kjk nkfMd U;k; dk ç'kklu [kk[kyk ugh dj fn;k tkrk gA tc mud c;ku vU; xokgk d c;ku] fo'k"kK d lk{; }kjk lif"V ikr g vkj ekey dh ifjfLFkfr;k vfHk;Dr d nk"k dk bfxr dju oky lk{; dh J[kyk dh i.krk dk Li"Vr% fpf=r djr g] rc ge dkb dkj.k ugh n[kr g fd rFkkdfFkr ^^fgrc) xokgk** d c;ku ij U;k;ky; }kjk vfo'okl D;k ugh fd;k tk ldrk gA***

26. इन तीन गवाहों द्वारा प्रकट किया गया घटना का समय और घटनास्थल ब॰ सा॰ 1, 2, 3 के साक्ष्य से पूरा समर्थन पाता है और हम कह सकते हैं कि बचाव पक्ष ने कम या अधिक इस तथ्य को स्वीकार किया है कि मनमोहन घोष, जो साईकिल पर जा रहा था, को दादपुर रेलवे पुल बहियार के निकट घेरा गया था और उसे गोली मारी गयी थी। जहाँ तक घटना के तरीका, जैसा अ॰ सा॰ 8 द्वारा प्रकट किया गया है, का संबंध है, यह घटनास्थल से खाली कारतूस के अभिग्रहण से पूर्ण समर्थन पाता है और शव परीक्षण रिपोर्ट भी आग्नेयास्त्र और चाकू द्वारा कारित उपहतियों का समर्थन करता है। यहाँ तक कि चाकू के वार की संख्या भी शव परीक्षण रिपोर्ट द्वारा समर्थित की गयी है।

27. धरणीधर (ऊपर) के निर्णय में यह भी संप्रेक्षित किया गया था कि केवल इसलिए चश्मदीद गवाहों ने मृतक को बचाने का प्रयास नहीं किया था, उनके परिसाक्ष्य पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है।

28. जहाँ तक इन तीनों गवाहों के बयान में सामने आने वाले विरोधाभासों का संबंध है, यह केवल इस सीमा तक है कि अ॰ सा॰ 2 और 5 ने संबंल घोष द्वारा कारित चाकू के वारों के बारे में कथन नहीं किया है। कोई भी कल्पना कर सकता है कि यदि चार व्यक्ति साथ-साथ जा रहे हैं और उनमें से एक को अचानक दुष्टों द्वारा उसकी हत्या करने के आशय से कब्जे में ले लिया जाता है और दुष्ट अपने हाथ में आग्नेयास्त्र लिए थे, पीड़ित के साथ जाने वाले व्यक्ति हस्तक्षेप करने के बजाए पहले सुरक्षित आश्रय पर जाने का प्रयास करेंगे। यह आशा नहीं की जाती है कि वे एक स्थान पर साथ बैठकर सिनेमा की तरह घटना को देखेंगे बल्कि यह स्वाभाविक मानवीय आचरण होगा कि वे अपने को बचाने के लिए अपनी पसंद के स्थानों पर बिखर जाएं। अत: अ॰ सा॰ 2 और 5 के साक्ष्य को इस आधार पर ठुकराया नहीं जा सकता है कि उन्होंने संबंल घोष द्वारा कारित चाकू के वारों को स्पष्ट नहीं किया था। अ॰ सा॰ 8 के साक्ष्य में यह भी है कि घटना के पहले भाग में मृतक ने अभियुक्त निमाई घोष द्वारा कारित गोली से हुई उपहतियों को पाया था और तब सोनाचंद घोष द्वारा एक अन्य गोली दागी गयी थी उस समय, मृतक घायल होकर जमीन पर पड़ा था। तत्पश्चात् संबल घोष ने चाकू का वार कारित किया था। चाकू के वार घटना के अंत में किए गए थे और, इसलिए, दोनों चश्मदीद गवाहों अर्थात् मेघनाथ घोष एवं शंकर घोष पर केवल इस कारण से अविश्वास नहीं किया जा सकता था कि घटना का उक्त भाग उनके द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया था। उन दोनों ने स्पष्टत: कथन किया है कि किस प्रकार निमाई घोष और सोनाचंद घोष द्वारा मृतक को कब्जा में लिया गया था और किस प्रकार उसे रेल पटरी तक ले जाया गया था और गोली मारी गयी थी।

29. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अ॰ सा॰ 4, 6 तथा 9 के साक्ष्य पर गलत रूप से अविश्वास किया है और इसे त्यक्त किया है। कोई ठोस नियम नहीं है कि संयोगी साक्षियों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। यदि किसी खास घटना की दी गयी तथ्यों और परिस्थितियों में घटना स्थल पर ऐसे गवाहों की उपस्थिति अधिसंभाव्य है, उनके परिसाक्ष्य पर संदेह नहीं किया जा सकता है। अ॰ सा॰ 4 ने कथन किया है कि वह संग्रामपुर से घर लौट रहा था और वह उसके घर जाने का रास्ता था। इस गवाह ने सूचक अ॰ सा॰ 8 द्वारा दिए गए साक्ष्य को पूरी तरह संपुष्ट किया है। केवल यही नहीं, उसने अ॰ सा॰ 6 और 8 को भी पहचाना है जो अपने बैल के साथ आ रहे थे। अ॰ सा॰ 2 और 5 द्वारा संपुष्ट किया गया सूचक द्वारा दिया गया घटना का विवरण इन तीन गवाहों अर्थात् मंजूर रहमान (अ॰ सा॰ 4), महादेव घोष (अ॰ सा॰ 6) और सैदुर रहमान (अ॰ सा॰ 9) के साक्ष्य से पूरा समर्थन पाता है। महादेव घोष और अभियुक्त गयानाथ घोष के संबंधियों में से एक के बीच दुश्मनी की प्रकृति भी अभिलेख पर लायी गयी है किंतु हम महसूस नहीं करते हैं कि दुश्मनी इतनी ज्यादा थी कि व्यक्ति झूठा साक्ष्य दे। तर्क के ख्याल से भी, यदि महादेव घोष का साक्ष्य विचार से अपवर्जित किया जाता है, हम शेष पाँच चश्मदीद गवाहों पर अविश्वास नहीं कर सकते हैं।

30. ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, हम नहीं पाते हैं कि पूर्वोक्त चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य पर अविश्वास करने के लिए विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा दिए गए तर्क स्वीकार्य नहीं हैं।

31. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने इस तथ्य पर विश्वास किया है कि गवाहों में से कोई भी सूचना दर्ज करने पुलिस थाना नहीं गया था। उन्होंने यह भी ध्यान में लिया है कि श्यामा राम (अ॰ सा॰ 11) दूरभाष से सूचना प्राप्त करने के बाद कि दादपुर गाँव में एक व्यक्ति की हत्या कर दी गयी थी, जब घटनास्थल पर पहुँचा, उसने गवाहों में से किसी को वहाँ उपस्थित नहीं पाया। श्यामा राम (अ॰ सा॰ 11) रेलवे पटरी के निकट चौकीदार से मिला किंतु उसने प्राथमिकी दर्ज करने के लिए उसका बयान दर्ज नहीं किया था।

इस अ॰ सा॰ 11 ने यह भी स्वीकार किया है कि जन्मेजय घोष (अ॰ सा॰ 8) का फर्दबयान दर्ज करने के पहले उसने मृत शरीर देखा था। अत: विद्वान सत्र न्यायाधीश के अनुसार, अ॰ सा॰ 8 द्वारा दिए गए बयान को प्राथमिकी के रूप में नहीं माना जाना चाहिए था। इस संबंध में हमने अ॰ सा॰ 11 के साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है और इस तथ्य को केस डायरी से सत्यापित किया है कि क्या फर्दबयान दर्ज करने के पहले रात्रि में वह घटनास्थल पर गया था। केस डायरी के पैराग्राफ 1 का पठन निम्नलिखित है:–

*^^fnukd 8.7.1989, lkr ct lè;k VyhQku ij lpuk feyu d ckn xke nknij cfg;kj e vku ij ck, (y¶V) vfdr frFk o le; e bl dl d okn tUet ; ?kk"k] ih0 b0 euekgu ?kk"k] lkfdu ey ; ij] Fkkuk&ikdM eQfL ly] fty lkgcxt] viuk c;ku fn;k tk fuEu çdkj gA***

*rRi'pkr] tUet ; ?kk"k dk Qnc;ku vkjHk gvk vkj gkf'k, ij ^^fnukd 9.7.1989/5.30 ct** fy[kk gA*

32. केस डायरी में दर्ज अन्वेषण अधिकारी का पूर्वोक्त प्रतिवाद उपदर्शित करता है कि उसने सायं 7 बजे टेलीफोन पर सूचना प्राप्त किया कि दादपुर बहियार में एक व्यक्ति की हत्या कर दी गयी है और तत्पश्चात् वह घटनास्थल की ओर रवाना हुआ और दिनांक 9.7.1989 को प्रात: 5.30 बजे सूचक का फर्दबयान दर्ज किया। यह तर्क भी किया गया था कि अ॰ सा॰ 11 द्वारा प्राप्त सूचना को प्राथमिकी के रूप में माना जाना चाहिए था क्योंकि यह सूचना सर्वप्रथम प्राप्त की गयी थी।

33. यह सत्य है कि संज्ञेय अपराध किए जाने के संबंध में सूचना किसी भी चीज द्वारा अप्रभावित समय में सबसे पहले होनी चाहिए किंतु तब पुलिस अधिकारी जो अस्पष्ट अथवा संक्षिप्त अथवा अपूर्ण सूचना पर घटनास्थल पर गया है, को मृतक का नाम अथवा हमलावरों का नाम अथवा गवाहों का नाम सत्यापित करने का अवसर दिया जाना चाहिए और ऐसी सूचना एकत्रित करने में उसके द्वारा लगाए गए समय को संदेह की दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए। ये सूचनाएँ अन्वेषण करने के लिए मूल आवश्यकता है। किंतु यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि प्राथमिकी संस्थापित करने में अस्पष्टीकृत विलंब कारित किए बिना शीघ्रातिशीघ्र युक्तियुक्त समय के भीतर ऐसा करना आवश्यक होता है।

34. पुलिस अधिकारी अथवा चौकीदार से, जो टेलीफोन से सूचना मिलने पर घटनास्थल पर गया था और मृत शरीर पाया था जिसकी पहचान उसको प्रकट नहीं की गयी थी अथवा उसे ज्ञात नहीं था, तुरन्त प्राथमिकी दर्ज करने के लिए अपना स्वबयान देने की उम्मीद नहीं की जाती है। अत:, ऐसे अपराध करने के संबंध में आरंभिक जाँच करने की आवश्यकता होती है।

35. यह विवाद्यक कि क्या प्राथमिकी के संस्थापन के पहले आरंभिक जाँच अनुज्ञेय है या नहीं, पर **लतिका कुमारी बनाम उ॰ प्र॰ राज्य एवं अन्य, (2012)4 SCC 1,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था किंतु भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों पर विचार करते हुए यह मामला अब संवैधानिक पीठ को निर्दिष्ट किया गया है। **लतिका कुमारी (ऊपर)** मामले में उपलब्ध तथ्य और परिस्थिति एवं स्थिति हमारे समक्ष वर्तमान मामले के प्रति अत्यन्त प्रासंगिक नहीं है किंतु अंतर्ग्रस्त विवाद्यक कुछ सीमा तक प्रासंगिक है।

36. अब वर्तमान मामले में सामने आने वाले तथ्यों और परिस्थितियों पर आते हुए हम महसूस

करते हैं कि **सिद्धार्थ वशिष्ट उर्फ मनु शर्मा बनाम राज्य (दिल्ली का एन॰ सी॰ टी॰), (2010)6 SCC 1** में दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 154 और 157 के संदर्भ में माननीय न्यायाधीशों द्वारा किए गए संप्रेक्षण अधिक प्रासंगिक हैं जिन्हें नीचे उद्धृत किया जाता है:–

*^^113. ^^ifyl Fkkuk e 0;fDrxr rkj ij** fn, x, lK; vijkèk fd, tku d ckj e lpuk vkj ^^VyhQku ij** fn, x, lK; vijkèk d ckj e lpuk dk bl U;k;ky; }kjk lno fofHkUu ekinMk ij rkyk x;k gA nkuk fLFkfr;k d çfr mDr fHkUukRed 0;ogkj dk rd ;g g fd VyhQku ij ifyl dk fdlh 0;fDr }kjk nh x;h lpuk dk ç;ktu çkFkfedh nt djuk ugh g cfYd ifyl dk ?kVukLFky ij tku d fy, vujkèk djuk g tcfd ifyl dk 0;fDrxr rkj ij mifLFkr xokg vFkok fdlh vU; }kjk fn, x, vijkèk dju d ckj e lpuk dk ç;ktu çkFkfedh nt djuk gA nkuk fLFkfr;k d chp mDr oLrijd fHkUurk dh igpku djr g, bl U;k;ky; u Li"Vr% vud fu.k;k e vfHkfuèkkfjr fd;k fd lK; vijkèk d lf{kIr njHkk"k ln'k dk lfgrk d vèkhu çkFkfedh d :i e ugh ekuk tk ldrk gA*

114. bl U;k;ky; }kjk fu.k;k dh J[kyk e ;g Hkh vfHkfuèkkfjr fd;k x;k g fd ek= blfy, fd VyhQku ij lpuk igy nh x;h Fkh dk vFk ;g ugh gkxk fd bl çkFkfedh tlk lfgrk d vèkhu le>k x;k g] d :i e ekuk tk;A je'k ckcjko noldj cuke egkjk"V jkT; e bl nf"Vdk.k dk nkgjk;k x;k g fd fdlh vU; tk viuh igpku ugh çdV djrk g }kjk VyhQku ij fn;k x;k lf{kIr ln'k nM çfØ;k lfgrk dh èkkjk 154 dh vko';drk dk lr"V ugh dj ldrk gA

115. mDr ppk dh nf"V e fnukd 30.4.1999 dk çkr% yxHkx 2.25 ct ifyl }kjk çkIr fd, x, rhu njHkk"k ln'k lfgrk dh èkkjk 154 d vèkhu çkFkfedh xfBr ugh djrh Fkh vkj ';ke e'kh v0 lk0 2 dk c;ku lgh :i l çkFkfedh d :i e nt fd;k x;k FkkA

आगे, माननीय न्यायालय ने पैरा 303 (3) पर निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:–

*"303 (3) ?kVuk d rjUr ckn ifyl dk fd;k x;k Qku dky doy rc çkFkfedh xfBr djrk g tc og vLi"V vkj x< ugh gA 'k)r% doy vijkèkLFky rd ifyl dk Hktu d dkj.k l fd, x, dky vko';dr% çkFkfedh xfBr ugh djr gA oreku ekey e] Qku dky vLi"V Fk vkj blfy, mudk çkFkfedh d :i e nt ugh fd;k tk ldrk FkkA v0 lk0 2 ';ke e'kh d c;ku d erkfcd çkFkfedh lefpr :i l nt dh x;h FkhA***

37. इस प्रकार, हम पाते हैं कि अ॰ सा॰ 11 द्वारा प्राप्त किया गया दूरभाष संदेश पुलिस को घटनास्थल तक लाने की सीमा तक का था और यह दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 154 की आवश्यकता को परिपूर्ण करने के लिए अपर्याप्त था। वस्तुत: अ॰ सा॰ 3 द्वारा दिया गया बयान दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 154 की आवश्यकताओं को परिपूर्ण करता है जिसके बाद अन्वेषण आरंभ हुआ।

38. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने और प्रत्यर्थीगण/अभियुक्तगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस बिंदु पर काफी जोर दिया है कि मृतक को बचाने के लिए परिवार का कोई सदस्य वहाँ नहीं था। कोई गवाह उपस्थित नहीं था जब पुलिस घटना स्थल पर पहुँची थी। जब हमने अ॰ सा॰ 8, 2, 5 और अन्य गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 7 और 3 का परीक्षण किया, हम पाते हैं कि घटना के बाद वे गाँव वापस गए, घटना के बारे में परिवार के अन्य सदस्यों को सूचित किया और डेढ़ घंटे बाद घटनास्थल पर वापस आए और मृत शरीर के निकट उपस्थित रहे जब पुलिस आयी।

पुनः हम यह उल्लेख करना आवश्यक महसूस करते हैं कि घटनास्थल मलयपुर, गाँव जिसका निवासी सूचक है, से लगभग 6-7 कि॰ मी॰ की दूरी पर खुले स्थान में अवस्थित था।

39. हमने अ॰ सा॰ 11 के बयान का सावधानीपूर्वक परीक्षण किया है। उसने सटीक समय उल्लिखित अथवा प्रकट नहीं किया था जब वह घटनास्थल पर पहुँचा था। इस गवाह ने फर्दबयान दर्ज करने के बाद अन्य औपचारिकताओं, जैसे घटनास्थल से रक्तरंजित मिट्टी और खाली कारतूसों का अभिग्रहण, को पूरा किया था।

40. ऊपर निर्दिष्ट निर्णयों और चर्चा की दृष्टि में हम नहीं पाते हैं कि जन्मेजय घोष का फर्दबयान दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 162 के प्रतिकूल है और उस फर्दबयान के पहले प्राथमिकी गठित करने के लिए एक अन्य सूचना उपलब्ध थी जैसा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 154 के अधीन आवश्यक है। हम उसमें इंगित समय और स्थान पर फर्दबयान के दर्ज किए जाने पर अविश्वास करने का कारण नहीं पाते हैं।

41. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने बिंदु उठाया है कि डॉक्टर द्वारा पायी गयी उपहतियाँ तथाकथित चश्मदीद गवाहों द्वारा दिए गए चाक्षुक साक्ष्य को संपुष्ट नहीं करती थी। अभिसाक्ष्य दिया गया था कि दो गोलियाँ चलायी गयी थी जबकि मृतक को केवल एक गोली लगी थी।

42. हमने शव परीक्षण रिपोर्ट और अ॰ सा॰ 1 के बयान का परीक्षण किया है। डॉक्टर ने कुल मिलाकर मृतक के शरीर पर छह उपहतियों को पाया है जिनमें से उपहति सं॰ 4 से 6 तेज धारवाले हथियार द्वारा कारित कटने के जख्म थे और डॉक्टर द्वारा सुझाव स्वीकार किया गया है कि चाकू से उन उपहतियों को कारित करना संभव है।

43. उपहति सं॰ 1 और 2 आग्नेयास्त्र द्वारा कारित प्रवेश और निकास जख्म हैं। डॉक्टर द्वारा विदीर्ण मार्जिन के साथ 1/2" x 1/2" मापवाला कमर के उपर "VE-2" के बगल में पीठ पर उपहति सं॰ 3 को ध्यान में लिया गया था। यद्यपि स्पष्टतः मत नहीं दिया गया है कि किस प्रकार उपहति सं॰ 3 कारित की गयी थी, किंतु चश्मदीद गवाहों ने बयान दिया है कि एक गोली पीछे से दागी गयी थी और दूसरी तब दागी गयी थी जब मृतक छटपटा रहा था। अतः, चश्मदीद गवाहों के बयान इस बिंदु पर संगतिपूर्ण हैं कि एक गोली निमाई घोष द्वारा चलायी गयी थी और दूसरी गोली सोना चंद द्वारा दागी गयी थी। पहली गोली मृतक के पीठ पर चलायी गयी थी जब वह खड़ा था और दूसरी गोली सोनाचंद घोष द्वारा दागी गयी थी जब मृतक जमीन पर छटपटा रहा था और तब संबल घोष ने चाकू से वार किया था। मेडिकल रिपोर्ट में सामने आने वाला यह लघु अंतर चश्मदीद गवाहों के संगतपूर्ण बयान को अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं और, इसलिए, हमें गवाहों द्वारा दिए गए चाक्षुक अभिसाक्ष्य पर विश्वास करना होगा।

44. अभियुक्त के परिवार और मृतक के बीच पुरानी दुश्मनी को अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर्याप्त रूप से उपदर्शित करता है। प्रदर्श C (पाकुड़ (एम॰) केस सं॰ 217/1998 के संबंध में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन दर्ज गुरुपद घोष का बयान) उपदर्शित करता है कि बादल घोष (अभियुक्त श्रीधर के भाई) की हत्या किसी नागेन घोष की हत्या का बदला लेने के लिए की गयी थी और उस हत्या मामले में, मृतक को आरंभ में प्राथमिकी में अभियुक्त बनाया गया था। दो समूहों के बीच रक्तपात प्रकार के मामले में अनुभव किया गया है कि अंतर्ग्रस्त वास्तविक दुष्टों की तुलना में अधिक व्यक्तियों को आलिप्त करने की प्रवृति होती है।

45. वर्तमान मामले में, फर्दबयान और गवाहों के बयान में अभियुक्तगण गयानाथ घोष, श्रीधर घोष और सचिन घोष के नाम सामने आ रहे हैं किंतु किसी गवाह ने ऐसा कथन नहीं किया है कि पूर्वोक्त अभियुक्तगण में से किसी ने किसी तरीके से प्रहार में भाग लिया था। अतः, हम महसूस करते हैं कि

उन्हें संदेह का लाभ देना चाहिए और तद्नुसार, हम उसे दोषी नहीं पाते हैं और दोषी अभिनिर्धारित नहीं करते हैं किंतु अभिलेख पर संगतपूर्ण साक्ष्य यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि निमाई घोष, सोनाचंद घोष और संबल घोष द्वारा मनमोहन घोष की हत्या की गयी और उपहति कारित करने के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त विनिर्दिष्ट हथियार के बारे में गवाहों द्वारा स्पष्ट रूप से बोला गया था और, इसलिए, हम उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषी पाते और अभिनिर्धारित करते हैं। अभियुक्तगण निमाई घोष और सोनाचंद घोष को आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी दोषी अभिनिर्धारित किया जाता है।

46. चूँकि मामला विरल मामलों में विरलतम के कार्यक्षेत्र के अधीन नहीं आता है, दोषसिद्धों अर्थात् निमाई घोष, सोनाचंद घोष और संबल घोष को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए कठोर आजीवन कारावास भुगतने और प्रत्येक को 5000/- रुपया के जुर्माना का भुगतान करने और जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में छह माहों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया जाता है। दोषसिद्ध निमाई घोष और सोनाचंद घोष को आगे आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन दो वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया जाता है। समस्त दंडादेश साथ-साथ चलेंगे।

47. पूर्वोक्त दोषसिद्धों को दंडादेश पूरा करने के लिए इस आदेश की तिथि से एक माह के भीतर दोषसिद्ध करने वाले/उत्तरवर्ती न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाता है जिसमें उनके विफल रहने पर अवर न्यायालय पूर्वोक्त दोषसिद्धों की उपस्थिति सुरक्षित करने के लिए समस्त प्रपीड़क कदम उठाएगा और उनकी उपस्थिति सुरक्षित करने के बाद दोषसिद्धि वारंट, जैसा ऊपर उपदर्शित किया गया है, भी जारी किए जाए।

48. तद्नुसार, अपील अंशतः अनुज्ञात की जाती है।

आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o ç'kkUr dekj] U;k;efrx.k

फागू ओराँव एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal No. 356 of 2002. Decided on 3rd September, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 41 वर्ष 1999 में द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 10.5.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 13.5.2002 के दंडादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/201/34—हत्या—दोषसिद्धि—अभियोजन गवाहों में से किसी ने भी मृतक की हत्या का अपीलार्थीगण द्वारा किया गया अपराध सिद्ध नहीं किया है—बरामदगी खुले स्थान से की गयी थी जो किसी अभियुक्त के घर के अंतर्गत नहीं था—अभियुक्तगण और अपराध में फँसाने वाली वस्तुओं के बीच संबंध नहीं है—अभियोजन युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा है—दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त—अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr.Shekhar Sinha, For the Appellants; Mr. D.K. Chakraverty, For the Respondents.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.—वर्तमान अपील सत्र विचारण सं॰ 41 वर्ष 1999 में द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 10.5.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 13.5.2002 के

दंडादेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अपीलार्थीगण (जो मूल अभियुक्त सं॰ 2 और 3 हैं) को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302/201/34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और आजीवन कारावास का दंडादेश दिया गया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन कोई पृथक दंडादेश अधिनिर्णीत नहीं किया गया है।

2. हमने न्यायमित्र के रूप में श्री शेखर सिन्हा को नियुक्त किया है, क्योंकि अपीलार्थीगण के अधिवक्ता उपस्थित नहीं हैं जब मामला सुनवाई के लिए बुलाया गया है। अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने इंगित किया है कि अभियोजन ने अभियोजन गवाहों के अभिसाक्ष्य में मुख्य लोपों और विरोधाभासों का समुचित अधिमूल्यन नहीं किया है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू का समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है और, इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अपास्त और अभिखंडित किए जाने योग्य है। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थीगण के अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अ॰सा॰ 1, अ॰सा॰ 2 और अ॰सा॰ 3 अनुश्रुत गवाह हैं। इन समस्त गवाहों ने न्यायालय के समक्ष कथन किया है कि उन्हें घटना के बारे में किसी बंधाना ओराँव द्वारा सूचित किया गया था। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 1, अ॰सा॰ 2 और अ॰सा॰ 3 प्रश्नगत घटना के गवाह नहीं हैं। घटना दिनांक 5.7.1998 को हुई है, और, सूचक (अ॰सा॰ 7) के पुत्र अर्थात नजमुल अंसारी की हत्या अपीलार्थीगण द्वारा कर दी गयी है, किंतु युक्तियुक्त संदेह के परे आरोपों को अभियोजन द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि जहां तक अ॰सा॰ 4, जो अभिग्रहण पंचनामा का गवाह है, ने कथन किया है कि कुआँ से साईकिल बरामद की गयी थी और अपीलार्थी सं॰ 1 (मूल अभियुक्त सं॰ 2) के खेत से चाकू बरामद किया गया था, जबकि अ॰ सा॰ 9 अन्वेषण अधिकारी ने कथन किया है कि चाकू अपीलार्थी सं॰ 1 (मूल अभियुक्त सं॰ 2) के खेत से बरामद किया गया था और खेत में पानी था। मूल अभियुक्त सं॰1 अर्थात देशा ओराँव का संस्वीकृति बयान नहीं है। अ॰ सा॰ 4 ने कभी नहीं कथन किया है कि साईकिल और चाकू की बरामदगी मूल अभियुक्त सं॰ 1 अथवा मूल अभियुक्त सं॰ 2 के कहने पर की गयी थी। अ॰ सा॰ 4 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, साईकिल और चाकू को पहले से तैयार रखा गया था और पंचनामा भी तैयार किया गया था जिस पर इस गवाह द्वारा हस्ताक्षर किया गया था। इस प्रकार, बरामदगी अभियुक्त में से किसी के बयान के साथ संबंधित नहीं है और, इसलिए, बरामदगी मात्र अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी सं॰ 1 (मूल अभियुक्त सं॰ 2) का संस्वीकृति बयान भी सिद्ध नहीं किया गया है। आई॰ ओ॰ ने अ॰ सा॰ 9 के रूप में अपने अभिसाक्ष्य में फागू ओराँव के हस्ताक्षर के बारे में कथन नहीं किया है। इस प्रकार, घटना के बारे में पुलिस के समक्ष उसका बयान भारतीय साक्ष्य अधिनियम के मुताबिक ग्राह्य नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू का समुचित अधिमूल्यन नहीं किया गया है, और इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है। घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है। अभियोजन का संपूर्ण मामला अटकलों और अनुमानों पर आधारित है।

3. हमने राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ को सुना है, जिन्होंने जोरदार निवेदन किया है कि घटना दिनांक 5 जुलाई, 1998 को हुई थी और प्राथमिकी दिनांक 6.7.1998 को दर्ज की गयी थी। अपीलार्थीगण को प्राथमिकी में नामित किया गया था। वस्तुतः, तीन अभियुक्तगण थे किंतु मूल अभियुक्त सं॰ 1 को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है। शेष अभियुक्तगण सं॰ 2 और 3 को दोषसिद्ध किया गया है जिन्होंने इस अपील को दाखिल किया है। अ॰ सा॰ 7 सूचक ने अभियुक्त को भैंस बेचा था और उनसे पैसा वसूला जाना था और, इसलिए, सूचक अ॰ सा॰ 7 ने अपने पुत्र अर्थात

नजमुल अंसारी को 3000/- रुपयों की राशि वसूलने के लिए अपीलार्थीगण के घर भेजा था और तत्पश्चात् सूचक के पुत्र की हत्या की गयी थी। अ॰ सा॰ 1, अ॰ सा॰ 2 और अ॰ सा॰ 3 द्वारा इस तथ्य का कथन किया गया है। चाकू और साईकिल भी बरामद किया गया है। अ॰ सा॰ 4 और अ॰ सा॰ 6 द्वारा और अ॰ सा॰ 9 आई॰ ओ॰ द्वारा भी इन तथ्यों को सिद्ध किया गया है। इस प्रकार, अपीलार्थी सं॰ 1 (मूल अभियुक्त सं॰ 2) के बयान के कारण और मूल अभियुक्त सं॰ 1 देशा ओराँव, जिसे पहले ही विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है, के बयान के आधार पर अपराध में फँसाने वाली वस्तुओं की बरामदगी की गयी है। इसके अतिरिक्त, पुलिस के समक्ष अपीलार्थी सं॰ 1 ने न्यायिकेतर संस्वीकृति किया है। उक्त दस्तावेज सत्र विचारण अभिलेखों में प्रदर्श 5 है, अत: विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा कोई गलती नहीं की गयी है।

4. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के परिशीलन पर प्रतीत होता है कि अभियोजन का मामला यह है कि सूचक (अ॰ सा॰ 7) ने अभियुक्त को भैंस बेचा था और उनसे 3000/- रुपयों की राशि वसूली जानी थी जिसके लिए अ॰ सा॰ 7 ने अपने पुत्र अर्थात नजमुल अंसारी को भेजा था जिसकी हत्या अभियुक्तगण द्वारा कर दी गयी थी। दिनांक 6.7.1998 को प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। अन्वेषण किया गया था और तीन अभियुक्तगण अर्थात (a) देशा ओराँव (b) फागू ओरावँ और (c) चरकू ओराँव के विरूद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। विचारण न्यायालय द्वारा देशा ओराँव को दोषमुक्त कर दिया गया है, जबकि, शेष दो अभियुक्तगण अर्थात फागू ओराँव और चरकू ओराँव को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए मुख्यत: दोषसिद्ध किया गया है और आजीवन करावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। उन्हें भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201/34 के अधीन अपराध के लिए भी दोषसिद्धि किया गया है, किंतु पृथक दंडादेश अधिनिर्णीत नहीं किया गया है।

5. अ॰ सा॰ 1, अ॰ सा॰ 2 और अ॰ सा॰ 3 के साक्ष्य को देखते हुए प्रतीत होता है कि वे अनुश्रुत गवाह हैं। उन्होंने अपने अभिसाक्ष्य में स्पष्टत: कथन किया है कि उन्हें किसी बंधाना ओराँव की पत्नी द्वारा दी गयी सूचना के आधार पर घटना के बारे में जानकारी हुई। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 1, अ॰ सा॰ 2 और अ॰ सा॰ 3 में से किसी ने घटना को नहीं देखा है और बंधाना ओराँव की पत्नी का परीक्षण अभियोजन द्वारा नहीं किया गया है।

6. अ॰ सा॰ 4 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि मूल अभियुक्त सं॰ 1 अथवा मूल अभियुक्त सं॰ 2 के बयान के आधार पर चाकू अथवा साईकिल बरामद नहीं किया गया था बल्कि, पुलिस द्वारा साईकिल और चाकू तैयार रखा गया था और अ॰ सा॰ 4 ने पंचनामा पर हस्ताक्षर किया है। इस प्रकार, अभियुक्तगण और अपराध में फँसाने वाली वस्तुओं की बरामदगी के बीच संबंध नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू का समुचित अधिमूल्यन नहीं किया गया है। अ॰ सा॰ 6 का अभिसाक्ष्य भी समरूप है। अ॰ सा॰ 5 मृत्यु समीक्षा पंचनामा का गवाह है।

7. अ॰ सा॰ 5 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि वह भी अनुश्रुत गवाह है और अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 2 ने उसे घटना के बारे में सूचित किया। इस प्रकार, इन गवाहों में से किसी ने युक्तियुक्त संदेह के परे मृतक की हत्या के अपराध को सिद्ध नहीं किया है।

8. सूचक (अ॰ सा॰ 7) जो मृतका का पिता है के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि वह घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है। उसने भी अ॰ सा॰ 1 और 2 द्वारा उसे दी गयी सूचना पर विश्वास किया है जिनको बंधाना ओराँव की पत्नी द्वारा सूचित किया गया था। इस प्रकार, इन अभियोजन गवाहों में से किसी ने भी अपीलार्थीगण द्वारा मृतक की हत्या करने के अपराध को सिद्ध नहीं किया है।

9. अन्वेषण अधिकारी अ॰ सा॰ 9 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, उसने कथन किया है कि अपीलार्थीगण सं॰ 1 (मूल अभियुक्त सं॰ 2) द्वारा न्यायिकेतर संस्कृति की गयी है। उसके बयान पर किया गया हस्ताक्षर सिद्ध नहीं किया गया है और पुलिस के समक्ष दिया गया बयान मात्र साक्ष्य में ग्राहय नहीं है। इसके अतिरिक्त, अन्वेषण अधिकारी अ॰ सा॰ 9 के साक्ष्य को देखते हुए, उसने कथन किया है कि मूल अभियुक्त सं॰1 के बयान के आधार पर कुआँ से साईकिल बरामद किया गया है किंतु, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मूल अभियुक्त सं॰ 1 को दोषमुक्त कर दिया गया है। जहाँ तक चाकू का संबंध है, इसे अपीलार्थी सं॰ 1 के खेत से बरामद किया गया था और खेत में पानी था। उक्त स्थान खुला है जो किसी अभियुक्त के घर के अंतर्गत नहीं है। साक्ष्य की इन कमजोर टुकड़ियों को देखते हुए, अभियोजन युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा है। विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू का समुचित अधिमूल्यन नहीं किया गया है।

10. अतः, हम सत्र विचारण सं॰ 41 वर्ष 1999 में द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 10.5.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 13.5.2002 के दंडादेश को अभिखंडित और अपास्त करते हैं। अपीलार्थीगण अर्थात फागू ओराँव और चरकू ओराँव को उनके विरूद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। अवर न्यायालय को अपीलार्थीगण अर्थात फागू ओराँव और चरकू ओरावँ, जो अभिरक्षा में है, को तुरन्त निर्मुक्त करने का निदेश दिया जाता है, यदि किसी अन्य मामले में उनकी जरूरत नहीं है। अपील अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

---

ekuuh; ,p0 lh0 feJk] U;k;efr

यादव माजी

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 537 of 2003. Decided on 11th September, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 494, 379 एवं 498A—द्वि-विवाह, क्रूरता और चोरी—दोषसिद्धि—प्रहार का स्वतंत्र चश्मदीद गवाह नहीं—मेडिकल रिपोर्ट सिद्ध नहीं किया गया—याची और अन्य सह-अभियुक्तगण के विरूद्ध अभिकथन सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं लाया गया—याची का अभिकथित दूसरा विवाह बिल्कुल सिद्ध नहीं किया गया—भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन अभिकथन, जिन्हें अभिकथित दूसरे विवाह के बाद अभिकथित प्रहारों के लिए किया गया है, भी संदेहास्पद बन जाते हैं—संदेह का लाभ दिया गया और याची दोषमुक्त किया गया। (पैराएँ 7 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajeeva Sharma, For the Petitioner; Mrs.Richa Sanchita, For the State.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए। इस तथ्य के बावजूद कि पहले के अवसर पर परिवादी विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की गैर-उपस्थिति के कारण परिवादी विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के अधिवक्ता को मौका देने के लिए मामला स्थगित किया गया था, परिवादी विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से कोई उपस्थित नहीं होता है।

2. याची दांडिक अपील सं॰ 34/141 वर्ष 2000 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश-IV, जामतारा द्वारा पारित दिनांक 31.3.2003 के निर्णय से व्यथित है जिसके द्वारा सी॰ आर॰ सं॰ 71 वर्ष 1992/ टी॰ आर॰

सं॰ 31 वर्ष 2000 में श्री अजय कुमार शर्मा, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जामतारा द्वारा दिनांक 18.9.2000 के निर्णय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराओं 494, 379 और 498A के अधीन अपराध के लिए अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश के विरूद्ध याची द्वारा दाखिल अपील विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अंशत: अनुज्ञात की गयी है। कथन किया जा सकता है कि विचारण न्यायालय ने याची को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 494, 379 और 498A के अधीन अपराधों का दोषी पाया था और उसे इसके लिए दोषसिद्ध किया था और दंडादेश के बिंदु पर सुनवाई करने पर याची को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 494 और 498A के अधीन प्रत्येक अपराध के लिए दो वर्ष छह माह का कठोर कारावास भुगतने और 500/- रुपया जुर्माना का भुगतान करने और जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में अधिनिर्णीत दंडादेश की अवधि के अतिरिक्त दो माह का सामान्य कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था। याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश भी दिया गया था और दोनों दंडादेशों को साथ-साथ चलना था।

3. अपील पर, अवर अपीलीय न्यायालय ने याची को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379 और 494 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त कर दिया, किंतु भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन अपराध के लिए याची के विरूद्ध दोषसिद्धि और दंडादेश पोषित किया और अंशत: अपील अनुज्ञात किया।

4. याची को अन्य सह-अभियुक्तगण के साथ तब दुमका जिला में जामतारा के अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय में याची यादव माजी की पत्नी पुतुल रानी माजी द्वारा दाखिल पी॰ सी॰ आर॰ केस सं॰ 71 वर्ष 1992 में अभियुक्त बनाया गया है। यह प्रतीत होता है कि इस मामले में याची को उसके परिवार के सदस्यों और किसी माया माजी, जिसका विचारण नहीं किया जा सका था, के साथ अभियुक्त बनाया गया है। अवर न्यायालय अभिलेख में उपलब्ध परिवाद याचिका स्पष्टत: दर्शाती है कि इसे घटना के संबंध में जो दिनांक 12.3.1992 को कल्यानेश्वरी मंदिर में और बाद में दिनांक 27.3.1992 को ग्राम बनबिस्टुपुर (पी॰ एस॰ उत्तन धड़का) से गोरइनाला मोड़ (पी॰ एस॰ मिहिजाम) में जामतारा-मिहिजाम रोड पर हुई थी।

5. परिवाद याचिका में कथन किया गया है दिनांक 29.4.98 को परिवादी का विवाह याची के साथ हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार हुआ था और विवाहोपरांत परिवादी अपने ससुराल गयी जहाँ दहेज मांग के लिए उसे क्रूरता और यातना के अध्यधीन किया गया था। किंतु, जैसा उपर इंगित किया गया है, यह परिवाद दिनांक 29.4.1988 से दिनांक 11.3.1992 तक के बीच की अवधि के साथ संबंधित नहीं है बल्कि यह दिनांक 12.3.1992 और आगे की घटना से संबंधित है। अभिकथित किया गया है कि दिनांक 12.3.1992 को याची अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से कल्याणेश्वरी मंदिर में अभियुक्त सं॰ 5 अर्थात माया माजी के साथ दूसरा विवाह कर रहा था और परिवादी ने अपने माता-पिता और भाई को सूचित किया। माता-पिता और भाई दौड़कर कल्याणेश्वरी मंदिर गए, किंतु अभिकथित किया गया है कि याची और उक्त माया माजी के बीच विवाह संपन्न हो चुका था। परिवाद याचिका में आगे कथन किया गया है कि उक्त विवाहोपरांत परिवादी अपने पति के घर आयी और पिता और भाई अपने घर वापस लौट गए। अभिकथित किया गया है कि उसके बाएँ गाल पर प्रहार किया गया था और गर्म लोहे के चिमटे से उसकी बायीं कोहनी का जोड़ दागा गया था जिसके कारण उसे जख्म हुआ और तत्पश्चात लातों-मुक्कों से उस पर प्रहार किया गया था जिस कारण वह बेहोश हो गयी। अभियुक्तगण ने उसका 40,000/- रुपये मूल्य का गहना ले लिया और बेहोशी हालत में उसे टैक्सी पर ले जाकर मिहिजाम-जामतारा रोड

पर गोरई नाला मोड़ के निकट उसके पिता के घर के सामने फेंक दिया गया था। मुख्यत: इन अभिकथनों के साथ याची और उसके परिवार के सदस्यों के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 494, 498A, 109 और 379 के अधीन परिवाद याचिका दाखिल की गयी थी और अंतत: उनका विचारण किया गया था।

6. यह प्रतीत होता है कि विचारण के क्रम में परिवादी ने स्वयं, अपने पिता और भाई सहित पाँच गवाहों का परीक्षण किया था और बचाव की ओर से भी पाँच गवाहों का परीक्षण किया गया था। विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर साक्ष्य के आधार पर पूर्वोक्तानुसार याची को दोषसिद्धि और दंडादेशित किया। याची द्वारा दाखिल अपील अंशत: अनुज्ञात की गयी थी और भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379 और 494 के अधीन अपराध के लिए याची की दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त कर दिया गया था जबकि भारतीय दंड संहिता की धारा 498 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्धि और दंडादेश पोषित किया गया था।

7. अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के परिशीलन से प्रकट है कि अवर अपीलीय न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379 और 494 के अधीन अपराध के लिए परिवादी द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य में तात्विक विरोधाभासों को विचार में लिया है। अभिनिर्धारित किया गया था कि साक्ष्य में तात्विक विसंगतियां थे (जिन पर अपीलीय न्यायालय के निर्णय में विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी थी) और याची के विरूद्ध न तो दूसरे विवाह का अपराध और न ही चोरी का अपराध सिद्ध किया जा सका था जहाँ तक याची द्वारा परिवादी को क्रूरता एवं यातना के अध्यधीन किए जाने के अभिकथन का संबंध है, इंगित किया गया है कि परिवाद मामला केवल दूसरे विवाह, जो अभिकथित रूप से दिनांक 12.3.1992 और तत्पश्चात किया गया था, के संबंध में दाखिल किया गया था। अवर न्यायालय द्वारा चर्चा किए गए साक्ष्य से प्रतीत होता है कि दूसरे विवाह के बाद प्रहार के अभिकथन के बिंदु पर भी, जैसा परिवाद याचिका में अभिकथित किया गया है, गवाहों के साक्ष्य में तात्विक अंतर है और यद्यपि अभिकथन किया गया है कि गर्म लोहे (चिमटा) से उस पर प्रहार किया गया था और दागा गया था किंतु प्रहार का कोई स्वतंत्र चश्मीद गवाह नहीं है, किसी मेडिकल रिपोर्ट को सिद्ध नहीं किया गया है और याची तथा अन्य सह-अभियुक्तगण के विरूद्ध उक्त अभिकथन सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं लाया गया था। यह भी प्रतीत होता है कि यद्यपि विनिर्दिष्ट अभिकथन है कि परिवादी जब बेहोश हो गयी, उसे टैक्सी पर बिठाकर दांपत्य गृह से निकाल दिया गया था और अपने पिता के निवासस्थान के निकट फेंक दिया गया था किंतु इस बिंदु पर भी परिवादी द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य में अंतर है क्योंकि अ॰ सा॰ 1 चंदो मांझी, गवाह जो चश्मदीद गवाह होने का दावा करती है, ने कथन किया था कि उसे मोटर साईकिल पर अपने पिता के निवासस्थान लाया गया था और नाला में फेंका गया था।

8. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य में उक्त अंतरों को विचार में लेते हुए और इस तथ्य को भी विचार में लेते हुए कि याची के विरूद्ध प्रहार का जो भी अभिकथन है, वह याची के अभिकथित दूसरे विवाह के विरूद्ध है जिसे बिलकुल सिद्ध नहीं किया गया है, मेरा सुविचारित मत है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अभिकथन भी, जिसे अभिकथित दूसरे विवाह के बाद अभिकथित प्रहार के लिए किया गया है, संदेहास्पद बन जाता है और किसी भी स्थिति में, मेरे सुविचारित मत में याची कम से कम संदेह के लाभ का हकदार है।

9. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, सी॰ आर॰ सं॰ 71 वर्ष 1992/टी॰ आर॰ सं॰ 31 वर्ष 2000 में श्री अजय कुमार शर्मा, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जामतारा द्वारा पारित दिनांक 18.9.2000 का निर्णय और आदेश और दांडिक अपील सं॰ 34/141 वर्ष 2000 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश IV

जामतारा द्वारा पारित दिनांक 31.3.2003 का निर्णय भी एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है और याची को संदेह का लाभ देते हुए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। याची जमानत पर है और उसे अपने जमानत बंधपत्र के दायित्वों से भी उन्मोचित किया जाता है। तद्नुसार, इस पुनरीक्षण आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है। अवर न्यायालय अभिलेख को तुरन्त वापस भेजा जाए।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o ç'kkr dekj] U;k;efrx.k

खलील मियाँ एवं एक अन्य

cuke

झारखण्ड राज्य

I.A. (Cr.) No. 867 of 2012 In Cr.App. (DB) No. 491 of 2009. Decided on 1st September, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 389—हत्या—दोषसिद्धि—दंडादेश का निलंबन—अपीलार्थी के विरूद्ध प्रथम दृष्टया मामला—दंडादेश के निलंबन के लिए आवेदक द्वारा दाखिल अंतर्वर्ती आवेदनों को उच्च न्यायालय द्वारा अनुज्ञात नहीं किया गया है और दंडादेश का निलंबन करवाने के लिए यह तीसरा प्रयास है—दंडादेश के निलंबन के लिए प्रार्थना के पहले की अस्वीकृतियों के बाद परिस्थिति परिवर्तित नहीं हुई है—आवेदन खारिज। (पैराएँ 2 से 4)

अधिवक्तागण.—Mr. M.K. Habib, For the Appellants; A.P.P., For the State.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.—वर्तमान अंतर्वर्ती आवेदन सत्र विचारण सं॰ 95 वर्ष 2007 में अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट IX, गिरीडीह द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश, के निलंबन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के अधीन मूल अभियुक्त सं॰ 2 अर्थात आवेदक सं॰ 2 मंसूर मियाँ द्वारा दाखिल की गयी है जिसके द्वारा वर्तमान अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दंडित किया गया है और आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

2. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का परिशीलन करने पर, यह प्रतीत होता है कि वर्तमान आवेदक के विरूद्ध प्रथम दृष्टया मामला है। पहले, दंडादेश के निलंबन के लिए वर्तमान आवेदक द्वारा दाखिल दो अंतर्वर्ती आवेदनों को इस माननीय न्यायालय द्वारा अनुज्ञात नहीं किया गया है और दंडादेश निलंबित करवाने का यह तीसरा प्रयास है। अंत में दिनांक 23 अगस्त, 2010 को दंडादेश के निलंबन के लिए वर्तमान आवेदक द्वारा दाखिल अंतर्वर्ती आवेदन आई॰ ए॰ सं॰ 1277 वर्ष 2010 विस्तृत सकारण आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। उक्त आदेश के पैराग्राफ सं॰ 2 और 3 का पठन निम्ननिखित है:—

> *"2. nkuk i{kk d fo}ku vfèkoDrk dk luu ij vkj vfHky[k ij miyC/k lk{; dk ifj'khyu dju ij] ;g çrhr gkrk g fd vihykFkh&vfHk;Dr d fo:) çFke n"V;k ekeyk gA pfd nkfMd vihy yfcr g] vr% ge vfHky[k ij miyC/k lk{; dk vfèkd fo'y"k.k ugh dj jg gA bruk dguk i;kIr g fd oreku ekey e vud p'enhn xokg gA v0lkO 2, 3, 4, 5, 6, 7, vkj 9 p'enhn xokg gA bld vfrfjDr] v0 lkO 10 MkO ,0 d0 pkèkjh }kjk fn, x, fpfdRlh; lk{; l i;kIr lif"V dh x;h g ftUgku dFku fd;k g fd erd vCckl fe;k ij*

vudkud migfr;k gA nk, Ldiyj {k= vkj Nkrh ,o iV ij vkj ck, ijkbVy vfLFk ij Hkh vud migfr;k g vkj 7 Cm x 5 Cm eki okyk ck, ijkbVy vfLFk dk ÝDpj g vkj [kkiMh dh [kky l cu dk fgLlk ckgj vk x;k gA

*3. vkond&vfHk;Dr d fo}ku vfèkoDrk }kjk tkjnkj çfrokn fd;k x;k g fd p'enhn xokg fgrc) vFkok li{kh xokg gA pfd ;g n0 ç0 l0 dh èkkjk 389 dk pj.k g] ge fooj.kk e ugh tk jg gA bruk dguk i;klr g fd p'enhn xokg LokHkkfod xokg g vkj mUgku oreku ekey d vkond&vfHk;Drx.k dk vrxLr dju okyk Li"V vfHk lk{; fn;k gA v ihykFkhx.k&vfHk;Drx.k d gkFk e vfHkdfFkr gfFk;kj dk erd }kjk çklr dh x;h migfr&fpfdRlh; lk{; l li"V fd;k x;k g vkj blfy, bl pj.k ij ge fopkj.k U;k;ky; }kjk vfèkfu.khr nMkn'k dk fuyfcr dju d bPNd ugh gA ifod volj ij Hkh] bu vkond&vfHk;Drx.k dh nMkn'k d fuycu d fy, dh x;h çkFkuk bl U;k;ky; }kjk fnukd 5 vxLr] 2009 d foLrr ldkj.k vkn'k }kjk vLohdkj dj nh x;h FkhA***

3. मामले के उस दृष्टिकोण में और चूँकि दंडादेश के निलंबन के लिए प्रार्थना की पहले कर दी गयी अस्वीकृति के बाद परिस्थिति परिवर्तित नहीं हुई है इसलिए हम विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश को निलंबित करने के इच्छुक नहीं हैं।

4. आवेदक के अधिवक्ता ने दिसम्बर, 2006 से आगे अबतक अभिरक्षा में उसके द्वारा बितायी गयी अवधि के चलते वर्तमान आवेदक के दंडादेश के निलंबन पर जोर दिया। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य को देखते हुए इस न्यायालय द्वारा इस प्रतिवाद को स्वीकार नहीं किया गया है।

अतः यह अंतर्वर्ती आवेदन एतद्द्वारा खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

वजीर मोहम्मद एवं एक अन्य

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड)

Cri. Rev. No. 60 of 2000 (R). Decided on 6th September, 2012.

दांडिक अपील सं० 111 वर्ष 1998 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, डालटेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 25.11.199 के निर्णय के विरूद्ध।

भारतीय वन अधिनियम, 1927—धारा 33—वन अपराध—दोषसिद्धि—वर्ष 1955 में जारी अधिसूचना वर्ष 1985 में अपना बल खो दिया था—याचीगण से अभिकथित अभिग्रहण की तिथि पर वन को संरक्षित वन अधिसूचित करने वाली अधिसूचना प्रभाव में नहीं थी—ऐसे किसी अधिसूचना की अनुपस्थिति में धारा 33 के अधीन याचीगण की दोषसिद्धि और दंडादेश को संपोषित नहीं किया जा सकता है—आक्षेपित निर्णय अपास्त—याचीगण को आरोप से दोषमुक्त किया गया। (पैराएँ 6 से 8)

निर्णयज विधि.–[2012 (2) East Cr. C 21 (Jhr)]; (AIR 1960 Pat 213)—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Kashyap, Lina Shakti, For the Petitioners; Md. Hatim, For the State.

न्यायालय द्वारा.—याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान ए० पी० पी० सुने गए।

2. याचीगण दांडिक अपील सं० 111 वर्ष 1998 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, डालटेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 25 नवंबर, 1999 के निर्णय से व्यथित है जिसके द्वारा सी० एफ० सं० 574 वर्ष 1993/ टी०

आर॰ सं॰ 463 वर्ष 1998 में श्री पी॰ एन॰ राय, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, डालटेनगंज द्वारा पारित दिनांक 17 अगस्त, 1998 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरूद्ध दाखिल अपील दंडादेश में उपांतरण के साथ विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गयी है। कथन किया जा सकता है कि अभिलेख पर साक्ष्य के आधार पर याचीगण को भारतीय वन अधिनियम की धारा 33 के अधीन अपराध का दोषी पाया गया था और उन्हें इसके लिए दोषसिद्ध किया गया था। दंडादेश के बिंदु पर सुनवाई करने पर प्रत्येक याचीगण को आठ माह का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा याचीगण की उक्त दोषसिद्धि पोषित की गयी थी, किंतु अवर अपीलीय न्यायालय ने भारतीय वन अधिनियम की धारा 33 के अधीन अपराध के लिए छह माह के कठोर कारावास में उपांतरित करने के बाद अपील खारिज कर दिया था।

3. अपराध रिपोर्ट से, यह प्रतीत होता है कि दिनांक 7.11.1993 को याचीगण को संरक्षित वन क्षेत्र से लकड़ी के चार टुकड़ों अर्थात् 'सेमल तथा' की तीन टुकड़ों और 'सेमल खंभा' के एक टुकड़े के साथ गिरफ्तार किया गया था और चार बैलों और अन्य वस्तुओं को भी बरामद किया गया था जो याचीगण के साथ थे। भारतीय वन अधिनियम की धारा 33 के अधीन अपराध के लिए याचीगण के विरूद्ध मामला संस्थापित किया गया था जिसके लिए अंततः उनका विचारण किया गया था और अभियोजन द्वारा दिए गए साक्ष्य के आधार पर उन्हें पूर्वोक्तानुसार दोषसिद्ध और दंडादेशित किया गया था।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इस पुनरीक्षण में संक्षिप्त बिंदु लिया है और अवर विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय से इंगित किया है कि संरक्षित वन के संबंध में अधिसूचना प्रदर्श 5 के रूप में अवर न्यायालय में सिद्ध की गयी थी। प्रदर्श 6 वह अधिसूचना है जिसके द्वारा सेमल पेड़ को भी आरक्षित अधिसूचित किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि संरक्षित वन अधिसूचित करती भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 के अधीन अधिसूचना दिनांक 2.9.1955 को जारी की गयी थी। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि घटना की तिथि दिनांक 7.11.1993 होने के नाते अधिसूचना प्रभाव में नहीं थी क्योंकि भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 के अधीन जारी अधिसूचना केवल 30 वर्षों की अवधि के लिए थी और तद्नुसार स्वयं वर्ष 1985 में उक्त अधिसूचना का अवसान हो गया था। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि भारतीय वन अधिनियम की धारा 33 के अधीन याचीगण के विरूद्ध कोई अपराध बनता नहीं कहा जा सकता है क्योंकि याचीगण से अभिकथित अभिग्रहण की तिथि पर वन को संरक्षित वन अधिसूचित करती अधिसूचना प्रभाव में नहीं थी। विद्वान अधिवक्ता ने **अनूप कुमार बनाम झारखंड राज्य, 2012 (2) East Cr. C 21 (Jhr),** मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें **जानू खान एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, AIR 1960 Pat 213,** मामले में पटना उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास करते हुए, अभिनिर्धारित किया गया है कि भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 के अधीन अधिसूचना का अवसान 30 वर्ष में हो जाता है और यह प्रभाव खो देती है और यदि घटना की तिथि पर अधिसूचना प्रभाव में नहीं है, भारतीय वन अधिनियम की धारा 33 के अधीन अपराध बनता नहीं कहा जा सकता है। उक्त निर्णय पर विश्वास करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णयों को विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने निवेदन किया है कि पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप करने लायक अवर न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णयों में अवैधता नहीं है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के वाद और अभिलेख के परिशीलन पर, मैं पाता हूँ कि यद्यपि वन, जहाँ से बरामदगी की गयी थी, को संरक्षित वन अधिसूचित करते हुए वर्ष 1995 में जारी अधिसूचना अभियोजन द्वारा प्रदर्श 5 के रूप में सिद्ध किया गया है किंतु अधिनियम के अधीन आगे जारी किसी अधिसूचना को अभिलेख पर यह दर्शाने के लिए नहीं लाया गया है कि याचीगण से अभिकथित अभिग्रहण की तिथि पर वन तब तक संरक्षित वन था। यह प्रकट है कि अधिसूचना, जिसे प्रदर्श 5 के रूप में सिद्ध किया गया है, को वर्ष 1955 में जारी किया गया था, वर्ष 1985 में अपना प्रभाव खो दिया था और तद्नुसार याचीगण से अभिकथित अभिग्रहण की तिथि पर अर्थात दिनांक 7.11.1993 को वन को संरक्षित वन अधिसूचित करती अधिसूचना प्रभाव में नहीं थी और ऐसी किसी अधिसूचना की अनुपस्थिति में भारतीय वन अधिनियम की धारा 33 के अधीन याचीगण की दोषसिद्धि और दंडादेश को विधि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

7. पूर्वोक्त चर्चा की दृष्टि में, सी॰ एफ॰ सं॰ 574 वर्ष 1993/टी॰ आर॰ सं॰ 463 वर्ष 1998 में श्री पी॰ एन॰ राय, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, डालटेनगंज द्वारा पारित दिनांक 17 अगस्त, 1998 का आक्षेपित निर्णय और आदेश और दांडिक अपील सं॰ 111 वर्ष 1998 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, डालटेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 25 नवम्बर, 1999 के निर्णय को भी एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, याचीगण को आरोप से दोषमुक्त किया जाता है। याचीगण जमानत पर है और उन्हें उनके जमानत बंधपत्र के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

8. तद्नुसार, यह दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है। अवर न्यायालय अभिलेख को तुरन्त अवर न्यायालय को भेजा जाए।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o ç'kkr dekj] U;k;efrx.k

प्रदीप राम

cuke

झारखंड राज्य

I.A Nos. 540 of 2007 and 1193 of 2012 In Cr. Appeal (DB) No. 315 of 2007. Decided on 5th September, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 389—हत्या–दोषसिद्धि–दंडादेश का निलंबन—अभियोजन मामला बालक गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य पर आधारित है—अभियोजन द्वारा मानव बध मृत्यु सिद्ध नहीं की गयी—न तो डॉक्टर और न ही आई॰ ओ॰ का परीक्षण किया गया—मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण भी नहीं किया गया—10,000/- रुपयों के जमानत बंधपत्र के निष्पादन के अध्यधीन अपील के लंबित रहने के दौरान दंडादेश निलंबित किया गया। (पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–Mr. P.P.N. Roy, For the Appellant; Mr. Amresh Kumar, For the Respondents.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.—

आई॰ ए॰ सं॰ 540 वर्ष 2007

अपीलार्थी के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दंडादेश के निलंबन के लिए इस आई॰ ए॰ को पहले दाखिल किया गया था जिस पर अब तक कोई भी आदेश पारित नहीं किया गया है और इसी प्रार्थना के लिए इस न्यायालय के समक्ष नया आई॰ ए॰ सं॰ 1193 वर्ष 2012 पहले ही दाखिल किया गया है। अतः, पहले के आई॰ ए॰ सं॰ 540 वर्ष 2007 को इस चरण पर प्रस्तुत नहीं किया गया है।

2. निवेदन की दृष्टि में, नया आई॰ ए॰ सं॰ 1193 वर्ष 2012 के आलोक में इस चरण पर जोर नहीं देने के कारण आई॰ ए॰ सं॰ 540 वर्ष 2007 निपटाया जाता है।

3. आई॰ ए॰ सं॰ 540 वर्ष 2007 निपटाया जाता है।

आई॰ ए॰ सं॰ 1193 वर्ष 2012

4. वर्तमान आवेदन अपीलार्थी द्वारा सत्र विचारण सं॰ 608 वर्ष 1994 में दिनांक 24 जनवरी, 2007 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के तहत अपर सत्र न्यायाधीश, VII, एफ॰ टी॰ सी॰, धनबाद द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश के निलंबन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 (1) के अधीन दाखिल किया गया है, जिसके द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन दण्डनीय अपराध के लिए मुख्य रूप से अपीलार्थी को दण्डित किया गया है।

5. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का परिशीलन करने पर वर्तमान अपीलार्थी के पक्ष में प्रथम दृष्टया मामला है। चूंकि दांडिक अपील लंबित है, हम अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का विश्लेषण नहीं कर रहे हैं, किंतु इतना कहना पर्याप्त है कि अभियोजन का पूरा मामला अ॰ सा॰ 7 के साक्ष्य पर मुख्यत: आधारित है, जो घटना की तिथि पर लगभग पाँच वर्षीय बाल गवाह है। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रतिवाद किया गया है कि अभियोजन द्वारा मानवबध मृत्यु सिद्ध नहीं किया गया है। हमने सत्र विचारण के अभिलेखों और कार्यवाहियों का भी परिशीलन किया है। न तो डॉक्टर का परीक्षण किया गया है क्योंकि मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण नहीं किया गया है और न ही आई॰ ओ॰ का परीक्षण किया गया है।

6. अन्य अभियोजन गवाहों के अभिसाक्ष्य का परिशीलन करके, हम एतद् द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा, वर्तमान दांडिक अपील के लंबित रहने के दौरान, वर्तमान अपीलार्थी को अधिनिर्णीत दंडादेश को इस शर्त पर निलंबित करते हैं कि वह समान राशि प्रत्येक की दो प्रतिभूतियों के साथ 10,000/- रुपयों का जमानत बंध पत्र विचारण न्यायालय/एस॰टी॰ सं॰ 608 वर्ष 1994 में अपर सत्र न्यायाधीश, VII, एफ॰ टी॰ सी॰, धनबाद की संतुष्टि के प्रति निष्पादित करेगा और इस शर्त पर भी कि वह जब और जैसे उसकी उपस्थिति की आवश्यकता होने पर वह इस न्यायालय में उपलब्ध होगा और इस शर्त पर भी कि वह इस न्यायालय की अनुमति के बिना अपना आवासीय पता नहीं बदलेगा।

7. तद्नुसार, आई॰ ए॰ सं॰ 1193 वर्ष 2012 अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

राजू साहू

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड)

Cr. Revision No. 61 of 2000 (R). Decided on 6th September, 2012.

आयुध अधिनियम, 1959—धारा 27—आग्नेयास्त्र से हमला—दोषसिद्धि—यह दर्शाने के लिए साक्ष्य नहीं है कि याची द्वारा वस्तुतः किसी आग्नेयास्त्र का उपयोग किया गया था—याची से आग्नेयास्त्र की बरामदगी सुझाने के लिए अभिग्रहण सूची नहीं है—पक्षों के बीच दुश्मनी स्वीकार की गयी है जिस कारण घटना हुई थी—सूचक की ओर आग्नेयास्त्र से निशाना लगाने के अभिकथन पर याची को झूठा आलिप्त किए जाने से इनकार नहीं किया जा सकता है—संदेह का लाभ देकर याची को दोषमुक्त किया गया। (पैराएँ 8 से 11)

अधिवक्तागण.–Mrs. Rakhi Rani, For the Petitioner; Miss. Anita Sinha, For the State.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची दांडिक अपील सं॰ 32 वर्ष 1995/6 वर्ष 1995 में श्री विश्वनाथ प्रसाद सिंह विद्वान अपर न्यायिक आयुक्त, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 25 सितम्बर, 1999 के निर्णय से व्यथित है जिसके द्वारा एस॰टी॰ केस सं॰ 132 वर्ष 1992 में श्री पी॰ एन॰ लाल, विद्वान सहायक सत्र न्यायाधीश, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 8.5.1995 के निर्णय, जिसके द्वारा याची को आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था और तीन वर्षों का सामान्य कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था, के विरूद्ध दाखिल अपील को विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।

3. अवर न्यायालय अभिलेख में उपलब्ध प्राथमिकी से प्रतीत होता है कि याची और अन्य सह–अभियुक्त को भांद्रा पी॰ एस॰ केस सं॰ 29 वर्ष 1991, जी॰ आर॰ सं॰ 309 वर्ष 1991 के तत्सम, जिसे भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 307, 324, 323, 341 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए संस्थापित किया गया था, में इस अभिकथन पर अभियुक्त बनाया गया था कि प्राथमिकी में नामित अभियुक्तगण ने सूचक के पिता पर और सूचक पर भी प्रहार किया था और उन्हें घायल किया था। जहाँ तक याची का संबंध है, उसके विरूद्ध प्रहार का अभिकथन नहीं है बल्कि अभिकथित किया गया है कि याची ने रिवालवर से सूचक पर निशाना लगाया था।

4. सूचक के फर्दबयान के आधार पर पुलिस मामला संस्थापित किया गया था और अन्वेषण किया गया था। यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण के बाद पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 307, 324, 341, 323/34 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अभियुक्तगण के विरूद्ध आरोप–पत्र दाखिल किया था और तद्नुसार संज्ञान लिया गया था। मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया था और सत्र न्यायालय में याची और अन्य सह–अभियुक्तगण के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन अपराध के लिए आरोप विरचित किया गया था और याची के विरूद्ध आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन पृथक आरोप भी विरचित किया गया था। आगे यह प्रतीत होता है कि विचारण के दौरान अभियोजन द्वारा सूचक, अन्य घायलों, आई॰ ओ॰, डॉक्टर और मामले का समर्थन करने वाले गवाहों सहित दस गवाहों का परीक्षण किया गया था। बचाव पक्ष ने भी इस मामले में दो गवाहों का परीक्षण किया है।

5. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के परिशीलन से, यह प्रकट है कि जहाँ तक इस याची का संबंध है, अ॰ सा॰ 2 जो इस मामले का सूचक है सहित गवाहों ने केवल यह कथन किया है कि याची द्वारा उस पर आग्नेयास्त्र से निशाना लगाया था। यह प्रकट है कि आग्नेयास्त्र का उपयोग नहीं किया गया है और गोली नहीं दागी गयी थी और एल॰ सी॰ आर॰ में यह दर्शाने के लिए कुछ नहीं है कि याची से कभी कोई आग्नेयास्त्र बरामद किया गया था और किसी अभिग्रहण सूची को सिद्ध किया गया था। यह प्रतीत होता है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर अवर विचारण न्यायालय में इस याची को केवल आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया था और दंडादेश के बिंदु पर सुनवाई पर याची को तीन वर्षों का सामान्य कारावास भुगतने के लिए दोषसिद्ध किया गया था। याची के विरूद्ध पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपील में विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पोषित किया गया था, किंतु अवर अपीलीय न्यायालय का निर्णय दर्शाता है कि अन्य अपीलार्थी को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम का लाभ दिया गया था और परिवीक्षा बंध पत्र देने पर निर्मुक्त किया गया था। जहाँ तक याची का संबंध है, विद्वान अपीलीय न्यायालय ने आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन याची की दोषसिद्धि को पोषित किया और अवर विचारण न्यायालय द्वारा याची पर अधिरोपित दंडादेश को भी पोषित किया।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय बिल्कुल अवैध है, क्योंकि अभिलेख पर साक्ष्य से प्रकट है कि यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि याची से कभी किसी आग्नेयास्त्र को बरामद किया गया था और इसका वस्तुतः उपयोग किया गया था। गवाहों ने केवल यह कथन किया है कि सूचक पर केवल आग्नेयास्त्र से निशाना लगाया गया था। आग्नेयास्त्र के किसी उपयोग का अभिकथन नहीं है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन याची की दोषसिद्धि विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं की जा सकती है।

7. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप करने लायक आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है।

8. वर्तमान मामले में, मैं पाता हूँ कि याची के विरूद्ध अभिकथन के सिवाए यह दर्शाने के लिए साक्ष्य नहीं है कि याची द्वारा वस्तुतः किसी आग्नेयास्त्र का उपयोग किया गया था। याची से आग्नेयास्त्र की बरामदगी सुझाने के लिए आग्नेयास्त्र की बरामदगी नहीं है और न ही कोई अभिग्रहण सूची है।

9. मामले के उस दृष्टिकोण में, मेरा सुविचारित मत है कि इस तथ्य की दृष्टि में कि पक्षों के बीच दुश्मनी मामले में स्वीकार की गयी है जिसके कारण घटना हुई थी और सूचक की ओर आग्नेयास्त्र से निशाना लगाने के अभिकथन के साथ याची को झूठा आलिप्त करने से इस मामले के तथ्यों में इनकार नहीं किया जा सकता है, याची को कम से कम संदेह का लाभ देना चाहिए था।

10. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, एस॰ टी॰ सं॰ 132 वर्ष 1992 में श्री पी॰ एन॰ लाल, विद्वान सहायक सत्र न्यायाधीश, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 8.5.1995 का आक्षेपित निर्णय और दांडिक अपील सं॰ 32 वर्ष 1995/ 6 वर्ष 1995 में श्री विश्वनाथ प्रसाद सिंह, विद्वान अपर न्यायिक आयुक्त द्वारा पारित दिनांक 25.9.1999 का निर्णय भी एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। याची को संदेह का लाभ दिया जाता है और उसे आरोप से दोषमुक्त किया जाता है। याची जमानत पर है और उसे उसके जमानत बंध पत्र के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

11. तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। अवर न्यायालय अभिलेख को तुरन्त वापस भेजा जाय।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

उषा नरसरिया एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1172 of 2011. Decided on 4th September, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 379—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—चोरी—संज्ञान—इस मामले को दर्ज करने के पहले जब परिवादी ने चेक के अनादर के संबंध में याचीगण द्वारा भेजी गयी नोटिस को प्राप्त किया था, परिवादी ने मामला दर्ज किया जिसमें अभिवचन किया गया था कि याचीगण द्वारा चेक चुरा लिए गए थे और कूटरचित हस्ताक्षर

करके इनका उपयोग किया गया था–बचाव सृजित करने के अंतरस्थ हेतु के साथ परिवाद मामला दर्ज किया गया—संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित—आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 6 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Nilesh Kumar, For the Petitioners; A.P.P., For the State; Mr. C. Mukherjee, For the Complainant.

आदेश

याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता तथा परिवादी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह आवेदन परिवाद मामला सं॰ 663 वर्ष 2008 में पारित दिनांक 23.3.2011 के आदेश को अभिखंडित करने के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा तथा जिसके अधीन तत्कालीन न्यायिक दंडाधिकारी, राँची ने याचीगण के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए संज्ञान लिया।

3. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री निलेश कुमार निवेदन करते हैं कि वर्तमान मामला, जिसे परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध करने के लिए याचीगण द्वारा दर्ज किया गया है, में बचाव सृजित करने के अंतरस्थ प्रयोजन से परिवादी द्वारा दर्ज किया गया है।

4. इस संबंध में, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि कर्ज के निर्वहन में परिवादी द्वारा याचीगण को छह चेक दिए गए थे जिन्हें दिनांक 3.3.2008 और दिनांक 26.2.2008 को बैंक में जमा किया गया था। जब समस्त छह चेकों का अनादर कर दिया गया, याचीगण ने दिनांक 7.3.2008 को परिवादी को कानूनी नोटिस भेजा जिसे परिवादी द्वारा दिनांक 10.3.2008 और दिनांक 11.3.2008 को प्राप्त किया गया था। नोटिस प्राप्त करने के बावजूद, जब भुगतान नहीं किया गया था, याचीगण द्वारा परिवादी के विरूद्ध परिवाद मामला सं॰ 750 वर्ष 2008 और 751 वर्ष 2008 दाखिल किया गया था। नोटिस प्राप्त करने के बाद जब परिवादी आशंकित हुआ कि याचीगण द्वारा उसके विरूद्ध मामला दाखिल किया जाएगा, उसने दिनांक 19.8.2008 को परिवाद मामला सं॰ 663 वर्ष 2008 दाखिल किया और अभिकथन किया कि परिवादी और याचीगण मित्रवत थे और इसलिए, याचीगण दिनांक 9.1.2008 को परिवादी के घर आए थे। उस कमरे में जहाँ याचीगण बैठे हुए थे, चेक बुक सहित कतिपय दस्तावेज टेबुल पर रखे हुए थे। नाश्ता के बाद वे चले गए। बाद में तीन दिन बाद दिनांक 12.1.2008 को उसे पता चला कि बुकलेट के वह चेक गायब थे। परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन मामला दर्ज करने में याचीगण द्वारा उन चेकों का इस्तेमाल किया गया था। उक्त अभिकथन अंतरस्थ प्रयोजन से किया गया है ताकि बचाव सृजित किया जा सके और इसलिए, वर्तमान मामले को निश्चय ही द्वेषपूर्ण अभियोजन का मामला कहा जा सकता है।

5. इसके विरूद्ध, परिवादी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि चेक, जिन्हें याचीगण द्वारा चुरा लिया गया था, पर परिवादी द्वारा हस्ताक्षर कभी नहीं किया गया था और इसलिए, परिवादी के स्वीकृत हस्ताक्षर से हस्ताक्षर का सत्यापन करवाने के लिए हस्तलेखन विशेषज्ञ के समक्ष चेकों को भेजने की प्रार्थना अवर न्यायालय के समक्ष की जा रही है और इस स्थिति के अधीन मामले का अभिखंडन अपेक्षणीय नहीं है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर प्रतीत होता है कि स्वीकृत रूप से याचीगण को नोटिस भेजी गयी थी जब छह चेकों का अनादर कर दिया गया था किंतु जब भुगतान नहीं किया गया था, परिवाद मामला सं॰ 750 वर्ष 2008 और 751 वर्ष 2008 के तहत याचीगण द्वारा परिवाद दर्ज किया गया था।

इस मामले को दर्ज करने के पहले जब परिवादी ने याचीगण द्वारा भेजी गयी नोटिस को प्राप्त किया था जिसमें उसे सूचित किया गया था कि चेक का अनादर कर दिया गया था, परिवादी ने मामला दर्ज किया जिसमें अभिवचन किया गया है कि याचीगण द्वारा चेकों को चुरा लिया गया है और कूटरचित हस्ताक्षर करके इनका उपयोग किया गया है।

7. इन परिस्थितियों के अधीन, परिवाद मामला बचाव सृजित करने के अंतरस्थ प्रयोजन से दाखिल किया गया प्रतीत होता है।

8. तद्नुसार, दिनांक 23.3.2011 का संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित किया जाता है।

9. परिणामस्वरूप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o ç'kkr dekj] U;k;efrx.k

जवाहर यादव एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (DB) No. 575 of 2012. Decided on 5th September, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 389—हत्या—दोषसिद्धि—दंडादेश के निलंबन के लिए प्रार्थना की अस्वीकृति—अभियोजन ने किसी प्रत्यक्ष कृत्य के बिना अपीलार्थीगण की उपस्थिति मात्र को स्थापित किया है—उनकी उपस्थिति के सिवाए मृतक पर उपहतियाँ कारित करने के लिए उनकी कोई अन्य भूमिका नहीं बतायी गयी है—दंडादेश निलंबित। (पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.—Mr. K.P. Deo, For the Appellants; Mr. Pankaj Kumar, For the Respondent.

डी॰एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.—अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य को देखते हुए यह दांडिक अपील अनुज्ञात की जाती है। इस न्यायालय की रजिस्ट्री को झारखंड उच्च न्यायालय नियमावली, 2001 के नियम सं॰ 190 और 191 के मुताबिक पेपर बुक तैयार करवाने और गवाहों के अभिसाक्ष्य की टंकित प्रति तैयार करवाकर पेपर बुक तैयार करवाने का निर्देश दिया जाता है।

2. दांडिक अपील सं॰ 580 वर्ष 2012 में सत्र विचारण सं॰ 70 वर्ष 1998 के अभिलेख और कार्यवाही पहले से ही इस न्यायालय के समक्ष हैं।

3. हमने अपीलार्थीगण (मूल अभियुक्तगण सं॰ 2 से 9) को अधिनिर्णीत दंडादेश के निलंबन के लिए विचारण न्यायालय के अभिलेखों और कार्यवाहियों का परिशीलन किया है।

4. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का परिशीलन करने पर इन अपीलार्थीगण के पक्ष में प्रथम दृष्टया मामला है। चूँकि दांडिक अपील लंबित है, हम अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का विश्लेषण नहीं कर रहे हैं, किंतु इतना कहना पर्याप्त है कि अभियोजन गवाहों के साक्ष्य को देखते हुए अभियोजन ने किसी प्रत्यक्ष कृत्य के बिना तीनों अपीलार्थीगण की उपस्थिति मात्र को स्थापित किया है। अभियोजन मामले के मुताबिक कुल मिलाकर नौ अभियुक्तगण थे और आग्नेयास्त्र द्वारा मृतक द्वारा प्राप्त की गयी उपहति मूल अभियुक्त सं॰ 1 द्वारा कारित की गयी थी जिसने दांडिक अपील सं॰ 580 वर्ष 2012 दाखिल किया है जिसमें, दंडादेश के निलंबन के लिए उसकी प्रार्थना इस न्यायालय द्वारा आज अस्वीकार कर दी गयी है। जहाँ तक इन अपीलार्थीगण का संबंध है, उनकी उपस्थिति के सिवाए मृतक पर किसी उपहति को कारित करने में उनकी कोई भूमिका नहीं बतायी गयी है।

5. इन तथ्यों की दृष्टि में, हम एतद्द्वारा सत्र विचारण सं॰ 70 वर्ष 1998 में दिनांक 30.4.2012 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 2.5.2012 के दंडादेश द्वारा जिला एवं अपर सत्र न्यायाधीश–I, गोड्डा द्वारा वर्तमान अपीलार्थीगण (मूल अभियुक्तगण सं॰ 2 से 9) को अधिनिर्णीत दंडादेश निलंबित करते हैं और विचारण न्यायालय की संतुष्टि के लिए समान राशि की दो प्रतिभूतियों के साथ 10,000/- रुपयों के जमानत बंध पत्र के निष्पादन पर और इस पर भी कि अपीलार्थीगण, जब और जैसे इस न्यायालय द्वारा उनकी उपस्थिति की आवश्यकता हो उपलब्ध रहेंगे और वे इस न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना अपना आवासीय पता नहीं बदलेंगे।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

कुलदेव डागरी एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Criminal Revision No. 410 of 2003. Decided on 3rd September, 2012.

दांडिक अपील सं॰ 96 वर्ष 2000 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 4.3.2003 के निर्णय के विरूद्ध।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 303 एवं 304—भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 147 एवं 323—बचाव का अधिकार—याचीगण को सुने बिना दोषसिद्धि के विरूद्ध अपील खारिज कर दी गयी—भले ही अवर न्यायालय में अपीलार्थीगण के विरूद्ध कोई उपस्थित नहीं हुआ, अवर न्यायालय को न्याय मित्र अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के माध्यम से अपीलार्थीगण का बचाव करने के लिए किसी अधिवक्ता को नियुक्त करने के बाद ही निर्णय लेना चाहिए था—अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय संपोषित नहीं किया जा सकता है—आक्षेपित निर्णय अपास्त किया गया और नए निर्णय के लिए मामला अवर न्यायालय के पास वापस भेजा गया। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s Jay Prakash Jha, S.P. Jha, Aishwarya Prakash, For the Petitioner; Mr. S.K. Dubey, For the State; Mr. Indu Shekhar Gupta, For the O.P. No.2.

न्यायालय द्वारा.—याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ और परिवादी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याचीगण दांडिक अपील सं॰ 96 वर्ष 2000 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 4.3.2003 के निर्णय से व्यथित हैं, जिसके द्वारा पी॰ सी॰ आर॰ सं॰ 229 वर्ष 1994/टी॰ आर॰ सं॰ 821 वर्ष 2000 में अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147 और 323 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करने वाले दिनांक 22 जुलाई, 2000 के निर्णय के विरूद्ध याचीगण द्वारा दाखिल अपील खारिज कर दी गयी है।

3. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय से इंगित किया है कि बचाव किए बिना विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अपील विनिश्चित की गयी थी, क्योंकि सुनवाई के लिए अपील लिए जाने की तिथि पर अपीलार्थीगण के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ था और न ही अवर न्यायालय ने उनके बचाव के लिए किसी को नियुक्त किया था और अपीलार्थीगण को सुने बिना अपील विनिश्चित किया है। तद्नुसार, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आक्षेपित निर्णय विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

4. दूसरी ओर, परिवादी-विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप के लायक अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में अवैधता नहीं है।

5. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन करने के बाद, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि चूँकि याचीगण ने अवर न्यायालय के समक्ष अपील दाखिल किया था और भले ही अवर न्यायालय में अपीलार्थीगण के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ, अवर न्यायालय को न्यायमित्र अथवा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के माध्यम से अपीलार्थीगण का बचाव करने के लिए किसी अधिवक्ता को नियुक्त करने के बाद ही अपील विनिश्चित करना चाहिए था। इस तथ्य की दृष्टि में कि अपीलार्थीगण को सुने बिना अपील विनिश्चित की गयी है, अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

6. तद्नुसार, दांडिक अपील सं॰ 96 वर्ष 2000 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 4 मार्च, 2003 का निर्णय एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और नए सिरे से अपील विनिश्चित करने के लिए मामला अवर न्यायालय के पास वापस भेजा जाता है।

7. तद्नुसार, यह दांडिक पुनरीक्षण पूर्वोक्त निर्देश के साथ अनुज्ञात किया जाता है।

8. अवर न्यायालय अभिलेखों को तुरन्त अवर न्यायालय को भेजा जाए।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o ç'kkUr dekj] U;k;efrx.k

बिंदु राम

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (D.B.) No. 287 of 2002. Decided on 1st September, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 486 वर्ष 1995 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, डालटेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 21.5.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 313—पत्नी की हत्या—परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर दोषसिद्धि आधारित–प्राथमिकी में न्यायिकेतर संस्वीकृति के प्रति निर्देश नहीं—दं॰प्र॰सं॰ की धारा 313 के अधीन बयान दर्ज करते समय अपीलार्थी/अभियुक्त के समक्ष अपराध में फँसानेवाली परिस्थितियाँ कभी प्रस्तुत नहीं की गयी—दं॰प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन दर्ज बयान का विचारण न्यायालय द्वारा समुचित अधिमूल्यन नहीं किया गया—दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त—अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Ram Prakash Singh, For the Appellant; Mr. S.S. Choudhary, For the Respondent.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.—वर्तमान अपील सत्र विचारण सं॰ 486 वर्ष 1995 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, डालटेनगंज, पलामू द्वारा दिनांक 21.5.2001 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा वर्तमान अपीलार्थी/अभियुक्त को मुख्यतः भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास का दंड दिया गया है।

2. अभियोजन का मामला यह है कि घटना दिनांक 9 अप्रिल, 1995 को सांय लगभग 5 बजे हुई है। अ॰ सा॰ 4 सूचक है जिसने दिनांक 10 अप्रिल, 1995 को प्रात: लगभग 2 बजे पुलिस को सूचित किया था। सूचक मृतका गीता देवी का भाई है। अभियोजन का मामला यह है कि बहनोई, जो अपीलार्थी/अभियुक्त है, किसी अन्य मामले में कारा अभिरक्षा में था, और तत्पश्चात, जमानत पर रिहा किया गया था। अभियुक्त की पत्नी जो सूचक की बहन है मृतका के माता-पिता के साथ रह रही थी और अपीलार्थी/अभियुक्त किसी अन्य मामले में जमानत पर रिहा किए जाने के बाद सूचक जो अ॰ सा॰ 4 है के घर पर आया और अपनी पत्नी अर्थात गीता देवी को अपने साथ भेजने पर जोर दे रहा था। प्राथमिकी के मुताबिक दिन में कुछ झगड़ा हुआ था और तत्पश्चात सूचक कुछ काम से बाहर गया था और घर लौटने पर उसे इस तथ्य की जानकारी हुई कि उसकी बहन गीता देवी जीवित नहीं है। मृत शरीर अ॰ सा॰ 4 के घर में था। अ॰ सा॰ 4 का बहनाई, जो अपीलार्थी/अभियुक्त है, भी उसी घर में था। इस प्रकार अपराध प्रकट किया गया था और नगर उन्तरी पुलिस थाना जिला गढ़वा में प्राथमिकी दाखिल की गयी थी। अन्वेषण किया गया था। अभियोजन ने छह गवाहों का परीक्षण किया है और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय ने परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अपीलार्थी/अभियुक्त को दोषसिद्ध किया है। दिनांक 21.5.2001 के दोषसिद्धि के इस निर्णय और दंडादेश के विरूद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गयी है।

3. इस न्यायालय ने श्री राम प्रकाश सिंह को अपीलार्थी/अभियुक्त की ओर से न्यायमित्र के रूप में नियुक्त किया है क्योंकि अपीलार्थी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ है। अपीलार्थी के अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि पूरी घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 4 द्वारा अभियोजन मामला पूरी तरह से सुधारा गया है। प्राथमिकी में न्यायिकेतर संस्कृति का विवरण नहीं है। इसके अतिरिक्त, परिस्थितियों, जिन पर विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा विश्वास किया गया है, निर्णय के पैराग्राफ 21 पर है। इन परिस्थितियों को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन बयान दर्ज करते हुए अभियुक्त के समक्ष कभी इंगित नहीं किया गया था। ये निर्णायक परिस्थितियाँ हैं, विशेषत: घर में उसकी उपस्थिति और मृतका के साथ उसके पूर्व के झगड़े के बारे में जिनके बारे में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन बयान में कभी नहीं पूछा गया है और इसलिए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी/अभियुक्त अपराध की तिथि अर्थात दिनांक अप्रिल, 1995 से कारा में है। लगभग 17 वर्ष की अवधि का अवसान पहले ही हो चुका है और अपीलार्थी/अभियुक्त विगत 17 वर्षों से कारा में है। अत:, दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि अभियोजन गवाह सं॰ 1, 2 और 3 ने अ॰ सा॰ 4 द्वारा कथित तथ्यों के आधार पर अपना साक्ष्य दिया है। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 4 एकमात्र गवाह है जिसने घटना का विवरण दिया है किंतु अ॰ सा॰ 4 के अभिसाक्ष्य, विशेषत: प्रति परीक्षण को देखते हुए, अभियोजन मामले में तात्विक सुधार है। किसी के समक्ष, अ॰ सा॰ 4 की तो बात ही दूर, अपीलार्थी/अभियुक्त ने न्यायिकेतर संस्वीकृति नहीं किया है। मामले के इस पहलू का समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अभिखंडित और अपास्त करने योग्य है।

4. राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अपर लोक अभियोजक ने जोरदार निवेदन किया कि अपीलार्थी/अभियुक्त घर में था जब हत्या की गयी थी। अपीलार्थी/अभियुक्त एक अन्य मामले में कारा में था, उसे घटना के एक दिन पहले जमानत पर रिहा किया गया था और वह जोर दे रहा था कि उसकी पत्नी गीता देवी उसके साथ उसके घर चले गए किंतु अ॰ सा॰ 4 द्वारा इसका प्रतिरोध किया गया था और पूरी घटना हुई थी। अ॰ सा॰ 4 के घर पर अपीलार्थी/अभियुक्त की उपस्थिति भी अभियोजन द्वारा स्थापित की गयी। मृतका और अपीलार्थी/अभियुक्त के बीच झगड़ा था, अभियोजन द्वारा हेतु भी स्थापित किया गया है और अ॰ सा॰ 4 का अभिसाक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा पर्याप्त रूप से संपुष्ट होता है। इस प्रकार, अभियोजन गवाहों ने मुख्यत: तीन परिस्थितियों को सिद्ध किया है जिन्हें विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के पैराग्राफ सं॰ 21 पर दिया गया है और इन तीन परिस्थितियों के आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय ने सही प्रकार से अपीलार्थी/अभियुक्त को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दंडित किया है और इसलिए यह दांडिक अपील खारिज किए जाने योग्य है।

5. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य का परिशीलन करने पर, यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी/अभियुक्त किसी अन्य मामले के संबंध में कारा में था, तत्पश्चात उसे जमानत पर रिहा किया गया था और अपीलार्थी/अभियुक्त दिनांक 8 अप्रिल, 1995 को अ॰ सा॰ 4 के घर आया था। प्राथमिकी के मुताबिक, आगे प्रतीत होता है कि अपीलार्थी/अभियुक्त जोर दे रहा था कि उसकी पत्नी अर्थात गीता देवी को उसके साथ घर चलना चाहिए किंतु अ॰ सा॰ 4 इसका प्रतिरोध कर रहा था। अ॰ सा॰ 4 के साक्ष्य को देखते हुए, अभियोजन मामले में तात्विक सुधार है। अ॰ सा॰ 4 ने अपने अभिसाक्ष्य में विवरण दिया है कि न्यायिकेतर संस्वीकृति की गयी थी जबकि प्राथमिकी में इस न्यायिकेतर संस्वीकृति के प्रति निर्देश नहीं है। इसके अतिरिक्त, अन्य अभियोजन गवाहों अर्थात अ॰ सा॰ 1, 2 और 3 को देखते हुए, उनके अभिसाक्ष्य इस तथ्य को प्रकट करते हैं कि उन्हें गीता देवी की मृत्यु के बारे में अ॰ सा॰ 4 द्वारा सूचित किया गया था। इस प्रकार, किसी ने भी पूरी घटना नहीं देखी है। अभियोजन का मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। अभियोजन ने मुख्यत: तीन परिस्थितियों पर विश्वास किया है।

> *"(i) vfHk;Dr fnukd 9.4.1995 dk erdk dk viu lkFk ?kj y tku ij tkj n jgk Fkk ftld fy, erdk lger ugh FkhA*
>
> *(ii) v0 lk0 2 vkj 3, cky xokg] tk ?kVukLFky d iMkl e jg jg Fk] u ?kVuk d igy vfHk;Dr dk erdk d lkFk >xMk djr n[kk FkkA*
>
> *(iii) vfHk;Dr dk ?kVuk d igy vkj ?kVuk d ckn Hkh erdk d lkFk ?kVukLFky d ?kj e ik;k x;k Fkk tgk l ml ifyl vfèkdkjh }kjk fxj¶rkj fd;k x;k FkkA***

ये तीन परिस्थितियाँ हैं जिनका विवरण आक्षेपित निर्णय के पैराग्राफ 21 पर दिया गया है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सही प्रकार से निवेदन किया गया है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन बयान दर्ज करते हुए अपीलार्थी/अभियुक्त के समक्ष परिस्थिति सं॰ 1, 2 और 3 को कभी प्रस्तुत नहीं किया गया था। हमने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज अपीलार्थी/अभियुक्त के बयान का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है। इसके अतिरिक्त, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन बयान दर्ज करते हुए अपीलार्थी/अभियुक्त के समक्ष निर्णय के पैराग्राफ 22 पर निर्दिष्ट परिस्थिति को भी प्रस्तुत नहीं किया गया था। क्या अपीलार्थी/अभियुक्त घर में उपस्थित था? क्या कोई झगड़ा हुआ था और क्या वह घटना हो जाने के बाद भी उपस्थित था, न ही संस्वीकृति की परिस्थिति को उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया था।

6. इन तथ्यों की दृष्टि में कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन दर्ज बयान का समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है, हम सत्र विचारण सं॰ 486 वर्ष 1995 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, डालटेनगंज, पलामू द्वारा दिनांक 21.5.2001 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त और अभिखंडित करते हैं। अपीलार्थी/अभियुक्त अर्थात बिंदु राम को न्यायिक अभिरक्षा से तुरन्त निर्मुक्त करने का आदेश एतद् द्वारा दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में कारा में उसकी उपस्थिति आवश्यक नहीं है। अपील अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

विश्वजीत मिश्रा एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 56 of 2012. Decided on 14th September, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 498A सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धाराएँ 3/4—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—दहेज की मांग और क्रूरता—उन्मोचन याचिका की अस्वीकृति—पुलिस अन्वेषण के परिणाम और याचीगण के विरूद्ध केस डायरी में उपलब्ध सामग्रियों पर कोई चर्चा नहीं की गयी—किसी सामग्री पर चर्चा किए बिना अवर न्यायालय ने याचीगण द्वारा उन्मोचन के लिए दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया—अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश बिल्कुल गैर-सकारण आदेश है—आक्षेपित आदेश अपास्त किया गया और अवर न्यायालय को नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.—Mr. Sandip Kr. Burnwal, For the Petitioners; A.P.P., For the State; Mr. Rajesh Kumar Mahtha, For the Opp. Party No.2.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता और विरोधी पक्षकार सं॰ 2, जो अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुआ, के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचीगण जी॰ आर॰ सं॰ 756 वर्ष 2010/ टी॰ आर॰ सं॰ 2008 वर्ष 2011 में विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, तेनूघाट, बेरमो द्वारा पारित दिनांक 16.12.2011 के आदेश से व्यथित हैं जिसके द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 239 के अधीन याचीगण द्वारा उन्मोचन के लिए दाखिल आवेदन अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।

3. याचीगण पेतरबार/तेनूघाट पी॰ एस॰ केस सं॰ 73 वर्ष 2010, जी॰ आर॰ केस सं॰ 756 वर्ष 2010 के तत्सम, में अभियुक्त बनाए गए हैं। याचीगण सूचक के पति और ससुराल वाले हैं और प्राथमिकी में उनके विरूद्ध किए गए अभिकथन भारतीय दंड संहिता की धारा 498A और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराओं 3/4 के अधीन अपराध बनाते हैं। यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण के बाद पुलिस ने याचीगण के विरूद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया था और याचीगण ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 239 के अधीन उन्मोचन के लिए आवेदन दाखिल किया था जिसे अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।

4. अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने केवल प्राथमिकी में किए गए अभिकथनों को उद्धृत किया है और यह कथन करते हुए आवेदन अस्वीकार कर दिया है कि याचीगण के विरूद्ध आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है और आरोप विरचित करने के लिए तिथि नियत किया है।

5. आक्षेपित आदेश के परिशीलन से प्रकट है कि पुलिस द्वारा किए गए अन्वेषण के परिणाम और याचीगण के विरूद्ध केस डायरी में उपलब्ध सामग्री के बारे में कोई चर्चा नहीं की गयी है। किसी सामग्री पर चर्चा किए बिना अवर न्यायालय ने याचीगण द्वारा उन्मोचन के लिए दाखिल आवेदन को अस्वीकार कर दिया है। मामले के इस दृष्टिकोण में अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश बिल्कुल गैर-सकारण आदेश है। यद्यपि यह विस्तृत आदेश है, किंतु प्राथमिकी में किए गए अभिकथनों को दोहराने के सिवाए पुलिस द्वारा अन्वेषण के दौरान याचीगण के विरूद्ध पाए गए किसी सामग्री के बारे में चर्चा नहीं की गयी है।

6. अत:, आक्षेपित आदेश बिल्कुल गैर-सकारण आदेश होने के कारण इसे विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

7. पूर्वोक्त चर्चा की दृष्टि में, जी॰ आर॰ सं॰ 756 वर्ष 2010/टी॰ आर॰ सं॰ 2008 वर्ष 2011 में विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, तेनूघाट, बेरमो द्वारा पारित दिनांक 16.12.2011 का आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है और याचीगण के विरूद्ध केस डायरी में उपलब्ध सामग्रियों पर चर्चा करके नया आदेश पारित करने का निर्देश अवर न्यायालय को दिया जाता है। तदनुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

8. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुरोध पर याचीगण के व्यय पर इस आदेश को फैक्स के माध्यम से संबंधित न्यायालय को संसूचित किया जाए।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

रूदन तिर्के

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 334 of 2003. Decided on 3rd September, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 406 एवं 120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 245—न्यास का दांडिक भंग, छल एवं षडयंत्र—उन्मोचन आवेदन की अस्वीकृति—परिवादी को भूमि बेचने के पहले याची द्वारा विधि के अधीन आवश्यक अनुमति ली गयी थी और केवल तत्पश्चात रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के माध्यम से याची को भूमि बेची गयी थी—विक्रय के समय याची भूमि पर काबिज था—यदि भूमि पर परिवादी के कब्जा के प्रति तीसरे पक्ष द्वारा कोई आपत्ति की गयी है, परिवादी के पास सिविल उपाय है—याची के विरूद्ध अपराध नहीं बनता है—याची उन्मोचित। (पैराएँ 7 से 9)

अधिवक्तागण.–

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए। इस तथ्य के बावजूद कि विरोधी पक्षकार सं॰ 2 नोटिस पर अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुआ और विद्वान अधिवक्ता का नाम

वाद सूची में आता है, परिवादी विरोधी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। यह भी प्रकट है कि दिनांक 6.8.2012 को मामला सुना गया था और इस तथ्य की दृष्टि में कि विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित नहीं हुए थे, उनको मौका देने के लिए मामला स्थगित कर दिया गया था। तत्पश्चात, दिनांक 22.8.2012 को मामला सुना गया था और उक्त तिथि पर भी विरोधी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ था। आज भी विरोधी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ है।

2. याची परिवाद मामला सं॰ 815 वर्ष 1999 में कुमारी रंजना अस्थाना, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, राँची द्वारा पारित दिनांक 4.2.2003 के आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा याची द्वारा उन्मोचन के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 245 के अधीन दाखिल आवेदन अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

3. याची को मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय, राँची में दाखिल परिवाद केस सं॰ 815 वर्ष 1999 में अभियुक्त बनाया गया है जिसमें परिवादी द्वारा अभिकथित किया गया है कि उसने याची से 44,000/- रुपयों की प्रतिफल राशि के लिए प्रश्नगत भूमि को खरीदा था। परिवाद याचिका में कथन किया गया है कि खरीद के पहले अभियुक्त याची द्वारा किराया वाद उप-कलक्टर, राँची के समक्ष आवेदन दाखिल करके छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 46 के अधीन आवश्यक अनुमति ली गयी थी और केस सं॰ M574 R 8 II वर्ष 1989-90 में किराया वाद उप-कलक्टर, राँची से दिनांक 31.7.1990 के आदेश द्वारा अनुमति प्राप्त करने के बाद दिनांक 13.9.1991 को परिवादी के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था जिसे दिनांक 13.9.1991 के रजिस्ट्रेशन के तहत रजिस्टर्ड किया गया था। प्रश्नगत भूमि को नामांतरण केस सं॰ 130 वर्ष 1992-93 में परिवादी के पक्ष में नामांतरित भी किया गया था और तब से परिवादी राज्य सरकार को किराया का भुगतान कर रहा है। परिवाद याचिका में अभिकथित किया गया है कि जब याची ने वर्ष 1999 में प्रश्नगत भूमि पर अपना मकान बनाना चाहा, किसी श्रीमती कृष्णा भसीन द्वारा आपत्ति की गयी थी और तत्पश्चात जांच करने पर पाया गया था कि उक्त प्रश्नगत भूमि के संबंध में किसी जदुनंदन तिवारी के साथ पहले से ही हक वाद था जो अभिलिखित अभिधारी के साथ करार के माध्यम से भूमि खरीदने के लिए सहमत हुआ था। उक्त हक वाद में याची उपस्थित हुआ था और उक्त जदुनंदन तिवारी के अधिकार, हक और हित को स्वीकार करते हुए सुलह यचिका दाखिल किया था और तद्नुसार, सरकारी सिरिस्ता में जदुनंदन तिवारी का नाम नामांतरित किया गया था। उक्त श्रीमती कृष्णा भसीन ने उक्त जदुनंदन तिवारी से प्रश्नगत भूमि को खरीदा था। तद्नुसार, भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 420, 406 और 120B के अधीन अपराधों का अभिकथन करते हुए परिवादी द्वारा याची के विरूद्ध परिवाद याचिका दाखिल की गयी थी क्योंकि याची इन तथ्यों को जानने पर और यह भी जानते हुए कि उसका प्रश्नगत भूमि पर अधिकार, हक और कब्जा नहीं था, परिवादी को भूमि बेचा था।

4. आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि परिवादी ने एस॰ ए॰ पर दर्ज अपने बयान में अपने मामले का समर्थन किया था और जांच के चरण पर परिवादी द्वारा कुछ गवाहों का परीक्षण भी किया गया था जिस आधार पर याची के विरूद्ध प्रथम दृष्टया मामला पाया गया था।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि याची को इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि स्वयं परिवाद याचिका से प्रकट होगा कि प्रश्नगत भूमि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम के अधीन आवश्यक अनुमति प्राप्त करने के बाद याची द्वारा परिवादी को बेची गयी

थी और परिवादी के पक्ष में विक्रय विलेख के निष्पादन के बाद परिवादी के पक्ष में भूमि नामांतरित भी की गयी थी और वह प्रश्नगत भूमि के संबंध में राज्य सरकार को लगान का भुगतान भी कर रहा है। जांच के दौरान गवाहों ने भी विनिर्दिष्टत: स्वीकार किया कि याची परिवादी को भूमि बेचने के समय पर प्रश्नगत भूमि पर काबिज था जैसा स्वयं आक्षेपित आदेश प्रकट है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह मामला शुद्धत: सिविल प्रकृति का है और याची के विरूद्ध अपराध बनता हुआ नहीं कहा जा सकता है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह उपयुक्त मामला है जिसमें याची को उम्मोचित कर दिया जाना चाहिए।

6. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि परिवाद याचिका में किए गए अभिकथन के आधार पर और आक्षेपित आदेश में साक्ष्य की चर्चा के आधार पर याची के विरूद्ध स्पष्टत: आधार बनता है।

7. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि यह परिवादी का स्वीकृत मामला है कि परिवादी को प्रश्नगत भूमि बेचने के पहले याची द्वारा विधि के अधीन आवश्यक अनुमति ली गयी थी और केवल तत्पश्चात, दिनांक 13.9.1991 के रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के तहत याची को भूमि बेची गयी थी। परिवादी का विनिर्दिष्ट मामला यह है कि तत्पश्चात परिवादी ने प्रश्नगत भूमि के संबंध में नामांतरण के लिए आवेदन दाखिल किया और नामांतरण केस सं॰ 130 वर्ष 1992-93 में उसके पक्ष में नामांतरण की अनुमति दी गयी थी और तत्पश्चात परिवादी राज्य सरकार को लगान का भुगतान कर रहा है। परिवादी के गवाहों ने भी स्वीकार किया था कि विक्रय के समय पर याची प्रश्नगत भूमि पर काबिज था।

8. इस मामले के तथ्यों में, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि यदि प्रश्नगत भूमि पर परिवादी के कब्जा के प्रति किसी तीसरे पक्ष द्वारा कोई आपत्ति की गयी है, परिवादी के पास सक्षम न्यायालय में सिविल उपाय है और याची के विरूद्ध कोई अपराध बनता नहीं कहा जा सकता है। तद्नुसार, याची के विरूद्ध दांडिक मामला जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग है और यह दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में याची को उन्मोचित करने के लिए सुयोग्य मामला है।

9. पूर्वोक्त चर्चा की दृष्टि में, परिवाद केस सं॰ 815 वर्ष 1999 में कुमारी रंजना अस्थाना, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, राँची द्वारा पारित दिनांक 4.2.2003 के आक्षेपित आदेश को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, याची को उन्मोचित किया जाता है। तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çkr dekj] U;k;efr

अजय कुमार चौबे उर्फ अजय चौबे एवं अन्य

cuke

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 460 of 2009. Decided on 31st August, 2012.

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989—धाराएँ 3 (iv), (viii) और (x) सह-पठित भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 448 एवं 504—दंड प्रक्रिया संहिता,

1973—धारा 482—अपमान–संज्ञान–पुलिस द्वारा अंतिम फॉर्म दाखिल–विरोध याचिका पर संज्ञान लिया गया–पक्षों के बीच भूमि विवाद–परिवादियों के याचियों के साथ संबंध पहले से कटु और दुश्मनीपूर्ण हैं–अभिकथित घटना परिवादी के घर के भीतर हुई–घटना की तिथि के संबंध में तात्विक विरोधाभास–घटना सार्वजनिक रूप से नहीं हुई थी–आक्षेपित आदेश अभिखंडित। (पैराएँ 6 से 10)

निर्णयज विधि.–AIR 1992 SC 604—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Sameer Saurabh, For the Petitioners; Mr. Gautam Kumar, For the O.P. No.2.

आदेश

यह आवेदन परिवाद केस सं॰ 1201 वर्ष 2008, टी॰ आर॰ सं॰ 1166 वर्ष 2009 के तत्सम में सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 17.3.2009 के आदेश को अभिखंडित करने के लिए दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा उन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 448 और 504 और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धाराओं 3 (iv), (viii), (x) के अधीन याचीगण के विरुद्ध संज्ञान लिया।

2. यह प्रतीत होता है कि परिवादी/विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने हरिजन पुलिस थाना, मुफ्फसिल हजारीबाग के प्रभारी-अधिकारी के समक्ष लिखित रिपोर्ट उसमें यह अभिकथन करते हुए दाखिल किया है कि दिनांक 8 जनवरी, 2008 को याचीगण उसके घर आया और कहा कि परिवादी 'डोम' समुदाय का है और उसका काम नाला साफ करना है। यह भी अभिकथित किया गया है कि याचीगण ने खेत में लगे अंबेडकर की प्रतिमा का अपमान किया और धमकी दी कि वे इसे तोड़ देंगे। पूर्वोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर सदर पी॰ एस॰ केस सं॰ 2 वर्ष 2008 संस्थापित किया गया और पुलिस ने अन्वेषण किया।

3. यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण के बाद पुलिस ने अंतिम फार्म दाखिल किया, जिसे दिनांक 4.8.2008 को न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था। किंतु उक्त अंतिम फॉर्म की स्वीकृति के पहले विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने अभ्यापत्ति याचिका दाखिल किया जिसे परिवाद के रूप में माना गया और तद्नुसार परिवाद केस सं॰ 1201 वर्ष 2008 संस्थापित किया गया था। तत्पश्चात्, परिवादी का शपथ पर बयान दर्ज किया गया। जाँच के दौरान कुछ गवाहों का परीक्षण भी किया गया था। उक्त जाँच के बाद सब डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी ने पूर्वोक्तानुसार दिनांक 17.3.2009 के अपने आदेश के तहत अपराधों का संज्ञान लिया जिसे इस आवेदन में आक्षेपित किया गया है।

4. श्री समीर सौरभ द्वारा निवेदन किया गया है कि याचीगण से बदला लेने के आशय के साथ परिवादी द्वारा वर्तमान याचिका दाखिल किया गया है क्योंकि परिवादी/विरोधी पक्षकार सं॰ 2 अपने पिता द्वारा दाखिल वादों में कोई अनुतोष प्राप्त करने में विफल रहा था। वह निवेदन करते हैं कि पूर्वोक्त वादों में याचीगण के पक्ष में पारित डिक्री माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक संपुष्ट की गयी थी। यह भी निवेदन किया गया है कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के अधीन याचीगण के पिता के विरुद्ध दाखिल पहले के परिवाद में याचीगण के पिता को दोषमुक्त कर दिया गया है। आगे निवेदन किया गया है कि प्राथमिकी, परिवाद याचिका और परिवादी के एस॰ ए॰ के परिशीलन से भी भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 448 और 504 और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धाराएँ 3 (iv), 3(viii), 3(x) के अधीन अपराध नहीं बनता है। तद्नुसार, यह

निवेदन किया गया है कि विद्वान सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी ने कोई कारण कि किस प्रकार उक्त अपराध बनते हैं, दिए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया है और इसे संपोषित नहीं किया जा सकता है।

5. दूसरी ओर, विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के अधिवक्ता श्री गौतम कुमार निवेदन करते हैं कि प्राथमिकी, एस॰ ए॰ पर परिवादी के बयान और गवाहों के बयान के परिशीलन से अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3 (x) के अधीन अपराध बनता है और इस प्रकार अवर न्यायालय ने सही प्रकार से याचीगण के विरुद्ध संज्ञान लिया है। तद्नुसार, वर्तमान आवेदन खारिज किए जाने का दायी है।

6. निवेदनों को सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। परिशिष्टों 6, 7 और 7/1 के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि पक्षों के बीच भूमि विवाद है और परिवादी का पिता सुंदर राम रावत दो-तीन अवसरों पर उच्च न्यायालय में मामला हार चुका था। वर्तमान आवेदन में आगे कहा गया है कि परिवादी का पिता उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय तक गया और वहाँ भी हारा। परिशिष्ट 8 से आगे प्रतीत होता है कि परिवादी के पिता और याचीगण के बीच दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन कार्यवाही शुरू की गयी थी, जिसे याचीगण के पक्ष में विनिश्चित किया गया था। तब परिशिष्ट-9 से प्रतीत होता है कि परिवादी के पिता ने याचीगण के पिता के विरुद्ध अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के अधीन मामला दाखिल किया था, जिसका परिणाम उसकी दोषमुक्ति में हुआ। इस प्रकार, स्पष्ट है कि परिवादी और याचीगण के संबंध पहले से कटु और दुश्मनी के हैं।

7. प्राथमिकी में कथित किया गया है कि अभियुक्तगण 8.1.2008 को परिवादी के घर आए और उसको गाली दिया किंतु परिवादी ने एस॰ ए॰ पर स्वयं का परीक्षण करते हुए कथन किया था कि उक्त घटना दिनांक 9.1.2008 को हुई थी। इस प्रकार, घटना की तिथि के संबंध में तात्विक विरोधाभास है। प्राथमिकी और एस॰ ए॰ से आगे प्रतीत होता है कि पूरी घटना परिवादी के घर के अंदर हुई थी।

8. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(x) के मुताबिक यह आवश्यक है कि अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के सदस्य का अपमान और/अथवा अभित्रास सार्वजनिक रूप से किया जाए। चूँकि घटना घर के अंदर हुई थी, अत: मेरे मत में यह सार्वजनिक दृष्टि के अंतर्गत नहीं है क्योंकि आमलोगों के पास उस स्थान तक पहुँच नहीं है।

9. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए और इस तथ्य को भी ध्यान में लेते हुए कि पक्षों के बीच भूमि विवाद थे, जिसमें याचीगण सर्वोच्च न्यायालय तक सफल हुए थे, मेरा दृष्टिकोण है कि वर्तमान मामला याचीगण से बदला लेने की दृष्टि से दाखिल किया गया है। इस प्रकार, यह **भजन लाल के मामले, AIR 1992 Supreme Court 604,** में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा अधिकथित विधि के अंतर्गत आता है।

10. तद्नुसार, मैं इस आवेदन को अनुज्ञात करता हूँ और परिवाद केस सं॰ 1201 वर्ष 2008, टी॰ आर॰ सं॰ 1166 वर्ष 2009 के तत्सम, में सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 17.3.2009 के आक्षेपित आदेश को अभिखंडित करता हूँ।

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o ç'kkr dekj] U;k;efrx.k

मनीशल मुर्मू (288 में)

किरानी हेमब्रम एवं एक अन्य (61 में)

cuke

झारखंड राज्य (दोनों में)

Criminal Appeal Nos. 288 with 61 of 2003. Decided on 1st September, 2012.

सत्र केस सं॰ 19 वर्ष 2001 में चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 21.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 201—भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 27—हत्या–आजीवन कारावास–अभियोजन द्वारा इकबालिया बयान सिद्ध नहीं किया गया–अभियोजन अभियुक्त द्वारा किए गए प्रकटिकरण बयान को सिद्ध करने में विफल रहा–अवर न्यायालय ने इकबालिया बयान के आधार पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करने में अवैधता कारित किया–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त–अपीलें अनुज्ञात। (पैराएँ 9 से 15)

निर्णयज विधि.–(1969)2 SCC 872—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Arbind Kumar, For the Appellants; Mr. Ravi Prakash, For the Respondents.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.–ये अपीलें सत्र केस सं॰ 19 वर्ष 2001 में चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 21.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201 के अधीन भी दोषसिद्ध किया और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास भुगतने और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201 के अधीन अपराध के लिए पाँच वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया और आदेश दिया कि दोनों दंडादेश साथ-साथ चलेंगे।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 24.8.2000 को सूचक अ॰ सा॰ 1 ने अफवाह सुना कि धोबीजोरिया (नदी) में महिला की मृत शरीर बह रहा था। तद्नुसार, वह वहाँ गया और नदी में महिला के मृत शरीर को बहते देखा। आगे कथन किया गया है कि इस बीच रामगढ़ पुलिस थाना का प्रभारी अधिकारी भी आया और उसने गाँववालों की मदद से महिला का सिरकटा मृत शरीर नदी से निकाला। तत्पश्चात्, उसने मृत शरीर के बाएँ हाथ पर ''सूरजमनि टुडू'' लिखा टैटू देखा। यह कथन किया गया है कि मृत शरीर के सिर को कहीं छुपाकर रखा गया था। तद्नुसार, सूचक और अन्य को संदेह हुआ कि महिला की हत्या अन्यत्र की गयी थी और उसके मस्तकहीन मृत शरीर को नदी में फेंक दिया गया था और साक्ष्य छुपाने के आशय से उसका सिर कहीं छुपाकर रखा गया था।

3. तद्नुसार, अज्ञात लोगों के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/201 के अधीन रामगढ़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 74 वर्ष 2000 संस्थापित किया गया था और पुलिस ने अन्वेषण किया। यह प्रतीत होता है कि अन्वेषण के दौरान पुलिस ने मृतक के मस्तकहीन मृत शरीर का मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श 5) तैयार किया। आगे प्रतीत होता है कि अन्वेषण के क्रम में अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम को गिरफ्तार किया गया था और उसने पुलिस सब-इंस्पेक्टर अर्थात् वैद्यनाथ सिंह के समक्ष अपने दोष की संस्वीकृति किया था। आगे प्रतीत

होता है कि किरानी हेम्ब्रम की संस्वीकृति पर पिनदारी गाँव से एक कि॰ मी॰ की दूरी पर अवस्थित कुएँ से मृतका का सिर बरामद किया गया था और पुलिस ने द्वितीय मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श 6) तैयार किया। आगे प्रतीत होता है कि अन्वेषण पूरा करने के बाद पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201 के अधीन भी अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया।

4. विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने अपराधों का संज्ञान लिया और तत्पश्चात्, मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया है क्योंकि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपराध अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य है। यह प्रतीत होता है कि विद्वान चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 11.4.2001 के अपने आदेश के तहत आरोप विरचित किया और अपीलार्थीगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201 के अधीन आरोप को स्पष्ट किया जिसके प्रति अपीलार्थीगण ने निर्दोषिता का अभिवचन किया और विचारण किए जाने का दावा किया। तत्पश्चात्, अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में कुल मिलाकर नौ गवाहों का परीक्षण किया। विद्वान विचारण न्यायालय ने न्यायालय गवाह के रूप में एक गवाह का परीक्षण किया जिसने अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम के इकबालिया बयान प्रदर्श 7 को सिद्ध किया है। अभियोजन ने प्रदर्श 1 सूचक का फर्दबयान पर हस्ताक्षर, प्रदर्श 4 औपचारिक प्राथमिकी, प्रदर्श 5 और 6 मृत्यु समीक्षा रिपोर्टों, प्रदर्श 7 पुलिस सब-इंस्पेक्टर वैद्यनाथ सिंह द्वारा दर्ज अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम का इकबालिया बयान अभिलेख पर लाया है।

5. अभियोजन मामले की समाप्ति पर, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपीलार्थीगण का बयान दर्ज किया गया था जिसमें उनका बचाव पूरे इनकार का है। यह प्रतीत होता है कि विद्वान अवर न्यायालय ने अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम के इकबालिया बयान, जो इसके अनुसार मृतका के सिर की बरामदगी की ओर ले गया, पर विचार करने के बाद समस्त अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 201 और 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया और दिनांक 21.12.2002 के आक्षेपित निर्णय द्वारा पूर्वोक्तानुसार उनको दंडादेशित किया। उस निर्णय के विरुद्ध इन अपीलों को दाखिल किया गया है।

6. आक्षेपित निर्णय का विरोध करते हुए, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अपीलार्थीगण के विरुद्ध विधिक साक्ष्य नहीं हैं। उन्होंने निवेदन किया कि विद्वान अवर न्यायालय ने पुलिस के समक्ष एक सह अभियुक्त द्वारा दिए गए इकबालिया बयान, जिसका साक्ष्यिक मूल्य नहीं है, के आधार पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम द्वारा इंगित किए जाने पर कुएँ से मृतका का सिर बरामद किया गया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि तर्क के ख्याल से यह उपधारित करते हुए भी कि अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम की संस्वीकृति के आधार पर मृतका का सिर बरामद किया गया था, तब भी अन्य दो अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि अपेक्षणीय नहीं थी, क्योंकि बरामदगी की ओर ले जाती एक सह-अभियुक्त की संस्वीकृति का उपयोग अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, उन्होंने निवेदन किया कि दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश इन अपीलों में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

7. विद्वान अपर लोक अभियोजक ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का परिशीलन करने के बाद निष्पक्षत: कथन किया कि वर्तमान मामले में अपीलार्थीगण में से एक अर्थात् किरानी हेम्ब्रम के इकबालिया बयान मात्र पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया गया था।

8. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर हमने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का सावधानीपूर्वक संवीक्षण किया है।

9. अ॰ सा॰ 1, शिव मिर्धा इस मामले का सूचक है। उसने अपीलार्थीगण के विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं किया है। अ॰ सा॰ 2 अमीर लाल कुँवर, अ॰ सा॰ 3 गाजो कुँवर, अ॰ सा॰ 4 भिखारी राय, और अ॰ सा॰ 5 जिना राउत मृत्यु समीक्षा के गवाह हैं और उनहोंने मृत्यु समीक्षा रिपोर्टों पर अपने हस्ताक्षरों को सिद्ध किया है जिन्हें प्रदर्श 2 श्रृंखला चिन्हित किया गया है। इन गवाहों ने केवल यह कथन किया कि धोबिया जोरिया से मस्तकहीन महिला का मृत शरीर उनकी उपस्थिति में बरामद किया गया था। उन्होंने आगे कथन किया कि उन्होंने मृत शरीर के बायें हाथ पर ''सूरजमनि टुडू'' नाम गुदा हुआ देखा। उन्होंने घटना के तरीके के बारे में कुछ नहीं कहा था। अ॰ सा॰ 6 शिव राम मुर्मू को पक्षद्रोही घोषित किया गया है, क्योंकि उसने अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं किया है। अ॰ सा॰ 7 सुकल मुर्मू ने केवल यह कथन किया कि मृतका का विवाह किसी निक्की हेम्ब्रम के साथ पहले हुआ था, जिसने उसे तलाक दे दिया था। तत्पश्चात्, मृतका अपीलार्थीगण मनीश्वर, किरानी हेम्ब्रम और शैलेन्द्र मुर्मू के साथ रहने लगी थी। उसने स्पष्टत: कथन किया कि उसने अपनी आँखों से घटना नहीं देखा था। इसलिए उसका साक्ष्य अभियोजन की मदद करता प्रतीत नहीं होता है। अ॰ सा॰ 8 निकी हेम्ब्रम को भी पक्षद्रोही घोषित किया गया है क्योंकि उसने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है। अ॰ सा॰ 9 सुखलाल वास्की औपचारिक गवाह है जिसने प्रदर्शों 3, 4, 5 और 6 को सिद्ध किया है। उसने घटना के तरीके के संबंध में कुछ भी कथन नहीं किया है।

10. इस प्रकार, अ॰ सा॰ 1 से 9 के साक्ष्यों के परिशीलन से हम पाते हैं कि उनके साक्ष्य, विशेषत: अपीलार्थीगण के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने के लिए, अभियोजन के मामले पर प्रकाश नहीं डालते हैं।

11. अब, न्यायालय गवाह सं॰ 1 अर्थात् सुशील कुमार झा के साक्ष्य पर आते हुए प्रतीत होता है कि वह कॉंस्टेबल है और पुलिस लाइन दुमका में पदस्थापित था। उसने रामगढ़ पुलिस थाना के तत्कालीन सब-इंस्पेक्टर बैद्यनाथ सिंह के हस्तलेखन और हस्ताक्षर को सिद्ध किया है। यह उल्लेखनीय है कि प्रदर्श 7 अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम का अभिकथित इकबालिया बयान है जिसे बैद्यनाथ सिंह द्वारा दर्ज किया गया था। प्रदर्श 7 के परिशीलन से हम पाते हैं कि इस पर अंगूठे के दो निशान हैं। एक निशान रामेश्वर मुर्मू का है जो संस्वीकृति का गवाह प्रतीत होता है। किंतु यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कुछ नहीं है कि दूसरा व्यक्ति कौन है जिसने प्रदर्श 7 पर अपने अंगूठे का निशान लगाया। न्यायालय गवाह सं॰ 1 ने कथन नहीं किया था कि अंगूठे का उक्त निशान अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम का है। उल्लेखनीय है कि न्यायालय गवाह सं॰ 1 ने अपने प्रति परीक्षण में स्वीकार किया है कि उक्त इकबालिया बयान उसकी उपस्थिति में दर्ज नहीं किया गया था और वह इकबालिया बयान के विषयवस्तु के बारे में भी नहीं जानता था। हम आगे पाते हैं कि अभियोजन ने रामेश्वर मुर्मू का परीक्षण नहीं किया जिसने गवाह के रूप में प्रदर्श 7 पर अपने अंगूठे का निशान लगाया और उसके अपरीक्षण के लिए स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। उक्त परिस्थिति के अधीन हम पाते हैं कि अभियोजन द्वारा प्रदर्श 7 अर्थात् किरानी हेम्ब्रम का अभिकथित इकबालिया बयान सिद्ध नहीं किया गया है। हम आगे पाते हैं कि यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि प्रदर्श 7 के आधार पर मृतका का मस्तक बरामद किया गया था। अभियोजन ने यह दर्शाने के लिए किसी गवाह को पेश नहीं किया है कि अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम की संस्वीकृति के आधार पर मृतका का मस्तक बरामद किया गया था। मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट प्रदर्श 6 में भी इसे उल्लिखित नहीं किया गया था। उक्त परिस्थिति के अधीन हम पाते हैं कि अभियोजन यह सिद्ध करने में विफल रहा है कि अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम की संस्वीकृति के आधार पर मृतका का मस्तक बरामद किया गया था।

12. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 की व्याख्या करते हुए **जाफर हुसैन दस्तगीर बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1969 (2) SCC 872,** में मामले में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:–

^^èkkjk ykx fd, tku d fy, vfHk;ktu dk LFkkfir djuk gh gkxk fd vihykFkh }kjk nh x;h lpuk mld }kjk vfHkkf{;r dN rF; dh [kkt dh vkj y x;hA ;g Li"V g fd [kkt fdlh ,l rF; dh gkuh gh pkfg, ftl ifyl u igy vU; lkrk l ugh tkuk Fkk vkj fd rF; dh tkudkjh igyh ckj vfHk;Dr }kjk nh x;h lpuk l çkIr dh x;h FkhA èkkjk dk vko';d vo;o ;g g fd vfHk;Dr }kjk nh x;h lpuk dk rF; tk ,lh lpuk dk çR;{k ifj.kke g] dh [kkt dh vkj y tkuk gh gkxkA f}rh;r%] nh x;h lpuk dk doy ,lk v'k] tk mDr [kkt d lkFk lfHkUu :i l lcfèkr g] vfHk;Dr d fo#) xkg; gkxkA rrh;r%] rF; dh [kkt fdlh vijkèk fd, tku l lcfèkr gkuh gh pkfg,A ifyl d le{k vfHk;Dr d c;kuk ij fu"kèk ykx ugh gkxk ;fn mDr 'krk dk ifji.k fd;k tkrk gA**

13. जैसा ऊपर गौर किया गया है, वर्तमान मामले में, अभियोजन ने सिद्ध नहीं किया है कि प्रदर्श 7 अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम का बयान है। इसी तरह से, अभियोजन यह सिद्ध करने में भी विफल रहा है कि अपीलार्थी किरानी हेम्ब्रम के इकबालिया बयान के आधार पर मृतका का मस्तक बरामद किया गया था।

14. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में, हम पाते हैं कि विद्वान अवर न्यायालय ने प्रदर्श 7 के आधार पर अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करने में गंभीर अवैधता की। तद्नुसार, दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश इन अपीलों में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

15. उपर की गयी चर्चा की दृष्टि में इन अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है और सत्र केस सं॰ 19 वर्ष 2001 में चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण, अर्थात्, मनीषल मुर्मू, किरानी हेम्ब्रम और सुरेन्द्र मुर्मू को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। अवर न्यायालय को (दांडिक अपील (डी॰ बी॰) सं॰ 288/2003) में अपीलार्थी मनीषल मुर्मू को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है। यह प्रतीत होता है कि अन्य अपीलार्थीगण अर्थात् किरानी हेम्ब्रम और सुरेंद्र मुर्मू जमानत पर हैं जिन्हें उनके जमानत बंधपत्रों के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

जगदीश पांडे

cuke

मेसर्स भारत कोकिंग कोल लिमिटेड एवं अन्य

L.P.A. No. 114 of 2012. Decided on 28th August, 2012.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—रिट याचिका इस आधार पर खारिज की गयी कि याची के पास औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन वैकल्पिक उपाय है–प्रत्यर्थीगण याची-अपीलार्थी के मामले का परीक्षण करने के लिए तैयार हैं–अपीलार्थी को अपना मामला रखने और अभ्यावेदन दाखिल करने का पूर्ण अवसर दिया जा सकता है–आक्षेपित आदेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Shailesh, For the Appellant; Mr. Indrajit Sinha, For the Respondents.

आदेश

चूँकि याची-अपीलार्थी की एकमात्र शिकायत यह है कि उसकी वास्तविक जन्मतिथि दिनांक 1.3.1954 है और उक्त तिथि को सांविधिक फॉर्म 'B' में उल्लिखित किया गया है और इसी जन्मतिथि को अंतर्विष्ट करते हुए पहचान पत्र जारी किया गया था और भविष्य निधि अभिलेख में भी जन्मतिथि दिनांक 1.3.1954 दर्शायी गयी है। यह निवेदन किया गया है कि मामले के उस दृष्टिकोण में रिट याची द्वारा अभिकथित तथ्यों को विवादित करने के लिए प्रत्यर्थीगण को कहे बिना विद्वान एकल न्यायाधीश ने औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1957 के अधीन समुचित प्राधिकारी द्वारा विवाद को विनिश्चित करने के लिए रिट याचिका खारिज कर दिया।

2. दिनांक 9 जनवरी, 2012 के आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि रिट याचिका केवल इस आधार पर खारिज कर दी गयी है कि याची के पास औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन वैकल्पिक उपाय है। चूँकि याची का दावा स्वयं प्रत्यर्थीगण के दस्तावेजों पर आधारित है और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता अब निवेदन करते हैं कि याची प्रत्यर्थीगण के समक्ष किसी अभ्यावेदन को प्रस्तुत किए बिना सीधे इस न्यायालय के पास आया, अतः, रिट याची के मामले पर विचार करने का अवसर नहीं था और प्रत्यर्थीगण मामले पर पुनर्विचार करने के लिए तैयार है, और कठोरतापूर्वक विधि के अनुरुप और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अनुसार विवाद्यक विनिश्चित करेंगे।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि किसी जरुरत की स्थिति में स्वयं प्रत्यर्थीगण द्वारा दिए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों के मुताबिक मामला मेडिकल बोर्ड को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

4. चाहे जो भी हो, यह समुचित होगा कि प्रत्यर्थीगण, जो रिट याची-अपीलार्थी के मामले का परीक्षण करने के लिए तैयार हैं, पहले उनके पास उपलब्ध सामग्री के अनुसार मामले का परीक्षण करें और यदि आवश्यक हो, वे मेडिकल बोर्ड का मत प्राप्त कर सकते हैं। यह भी समुचित है कि अपना मामला रखने और आज के दिन से एक सप्ताह की अवधि के भीतर अपना अभ्यावेदन दाखिल करने का पूरा अवसर दिया जा सकता है और अपना अभ्यावेदन देने पर प्रत्यर्थीगण द्वारा मामले पर विचार किया जा सकता है और यदि याची अपना दावा सिद्ध करने के लिए कोई अन्य सामग्री प्रस्तुत करता है, उस पर भी विचार किया जा सकता है और तत्पश्चात् एक माह की अवधि के भीतर निर्णय लिया जा सकता है। निर्णय संक्षिप्त सकारण आदेश हो सकता है।

5. उक्त संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ इस एल॰ पी॰ ए॰ को अनुज्ञात किया जाता है और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 9.1.2012 को पारित आदेश अपास्त किया जाता है।

---

ekuuh; vkykd flg] U;k;efr

सुरजीत कौर

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.(S) No. 3853 of 2012. Decided on 23rd August, 2012.

झारखंड राज्य वित्त रहित शैक्षणिक संस्थान (सहायता अनुदान) अधिनियम, 2004—धाराएँ 4 एवं 6—अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान राष्ट्रीय आयोग अधिनियम, 2004—अनुदान पाने के

इच्छुक शैक्षणिक संस्थानों को राज्य अधिनियम की धारा 6 के अधीन आवेदन देना होगा और तत्पश्चात अनुदान मंजूर किया जा सकता है–स्वतः अनुदान का प्रावधान नहीं है। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s. M.M. Pan, K.N. Sahay, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kumar, For the State.

आदेश

आक्षेपित आदेश का परिशीलन प्रकट करता है कि याची का दावा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि झारखंड राज्य वित्त रहित शैक्षणिक संस्थान (सहायता अनुदान) अधिनियम, 2004 के अधीन विद्यालय ने आवेदन कभी नहीं दिया था और इसे सदायता अनुदान विद्यालय के रूप में मान्यता नहीं दी गयी थी और इसलिए, सरकार द्वारा भुगतान नहीं किया जा सकता है।

2. बार–बार पूछे जाने पर याची के विद्वान अधिवक्ता झारखंड राज्य वित्त रहित शैक्षणिक संस्थान (सहायता अनुदान) अधिनियम, 2004 को यह तर्क करने के लिए उद्धृत करने में सक्षम नहीं हुए हैं कि मान्यता की आवश्यकता नहीं है, जैसा आक्षेपित आदेश में उल्लिखित किया गया है और अनुदान स्वतः है। वह प्रतिवाद करते हैं कि उन्होंने 2004 का अधिनियम नहीं देखा है। वह कठोर बने रहते हुए प्रतिवाद करते हैं कि याची के दावा की अस्वीकृति को न्यायोचित ठहराने के लिए सरकारी वकील को 2004 अधिनियम दर्शाना उद्धृत करना चाहिए।

3. पूनम बनाम सुमित तंवर, (2010)4 SCC 460, मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ सं॰ 16 और 22 पर निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:–

> *"16. l[kiky flg cuke dY;k.k flg] AIR 1963 SC 146, e bl U;k;ky; u vfHkfuèkkfjr fd;k g fd vfèkoDrk }kjk U;k;ky; dk lefpr lgk;rk dh vuifLFkfr e U;k;ky; ij ekey dk fofuf'pr dju dh ckè;rk bl ljy dkj.k ek= l ugh g fd tc rd U;k;ky; dk vfèkoDrk lefpr lgk;rk ugh nrk g] U;k;ky; ekeyk fofuf'pr dju e l{ke ugh gA fookn fofuf'pr djuk Lo; U;k;ky; d fy, lefpr ugh gA vfèkoDrk viuh ;kfpdk e flQ fook|d mBk ugh ldrk g vkj U;k;ky; ij vfHky[k d ifj'khyu d ckn vkj mudh 'k) rk dk fofuf'pr djr g, mu fcnvk ij viuk fu.k; nu dk Hkkj NkM ugh ldrk gA ;g irk yxkuk U;k;ky; dk dke ugh g fd voèkkj.kk d fcn D;k gk ldr g vkj rc mu fcnvk ij fu.k; nu d fy, vxlj gkA*
>
> *22. ekey dk ,d vU; igy g fd ;fn ;kph dk vfèkoDrk rkfF;d vFkok fofèkd fook|d mBku e l{ke ugh g] ;|fi ,l fcn e vPNk x.kkx.k gk ldrk g] U;k;ky; dk bldk fofuf'pr ugh djuk pkfg, D;kfd foi{kh vfèkoDrk d ikl bl fufeÙk ^^viuk, x, rd dh ifDr dk tokc nu d fy, mfpr volj ugh gA ,lk fu.k; ulfxd U;k; d fl)kr dk mYy?ku gk ldrk gA***

4. सर्वोच्च न्यायालय की उक्ति की दृष्टि में, यदि याची के विद्वान अधिवक्ता मामले के तथ्यों और प्रासंगिक विधि को संबोधित करने में सक्षम नहीं हैं, तथ्यों और विधि का पता लगाने के लिए पृष्ठों को उलटना न्यायालय का काम नहीं है। जब तक याची के विद्वान अधिवक्ता यह संबोधित करने में सक्षम नहीं हैं कि क्यों आक्षेपित आदेश में उद्धृत प्रावधान प्रयोज्य नहीं हैं, न्यायालय की ओर से प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता को आक्षेपित आदेश में उद्धृत प्रावधानों का अवलंब लिए जाने को न्यायोचित ठहराने के लिए कहना उचित नहीं है।

5. किंतु, यह ध्यान में रखते हुए कि मुकदमेबाज का हित सर्वोपरि है, मैंने अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान राष्ट्रीय आयोग अधिनियम, 2004 और झारखंड राज्य वित्त रहित शैक्षणिक संस्थान (सहायता

अनुदान) अधिनियम, 2004 (इसके बाद 'केंद्रीय अधिनियम' और 'राज्य अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट का परिशीलन किया है।

6. केंद्रीय अधिनियम, 2004 की धारा 10 और 10A के अधीन अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान स्थापित करने और चलाने के लिए अनुमति आवश्यक है और ऐसे मान्यता प्राप्त अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान अपने पसंद के विश्वविद्यालय की संबद्धता इप्सित कर सकते हैं। केंद्रीय अधिनियम की धारा 10 और 10A के अधीन विभिन्न राज्य सरकार द्वारा ऐसे मान्यता प्राप्त अथवा संबद्ध संस्थान को स्वत: अनुदान दिया जाना कहीं नहीं प्रावधानित करता है।

7. राज्य अधिनियम, 2004 की धारा 4 के मुताबिक राज्य सरकार अपने स्ववविवेक से निम्नलिखित अनुदान मंजूर कर सकती है।

(i) vuj{k.k vFkok iujkor vunku(

(ii) midj.k] Hkou] vkfn d fy, viujkor vunku]

(iii) lLFkku tk vf[ky Hkkjrh; pfj= dk g vkj ftld çktDVk vkj xfrfofèk;k dk dn vFkok jkT; ljdkj }kjk ,l fucèkuk vkj 'krk] ftl vfèkjkfir djuk ;g l;kX; le>rk g] ij vuekfnr fd;k x;k g]

(iv) ,l vU; vunku ftUg le;≤ ij jkT; ljdkj }kjk bl ç;ktu l fojfpr fu;ek d vèkhu etj fd;k tk ldrk gA

8. किंतु, अनुदान पाने को इच्छुक शिक्षण संस्थानो को राज्य अधिनियम की धारा 6 के अधीन आवेदन देना होगा।

9. वर्तमान मामले में, यह कहने के लिए अभिलेख पर सामग्री उपलब्ध नहीं करायी गयी है कि पंजाब कन्या उच्च विद्यालय, अल्पसंख्यक संस्थान ने कभी राज्य अधिनियम की धारा 6 के अधीन आवेदन दिया है और अधिनियम की धारा 4 के अधीन सरकार द्वारा अनुदान मंजूर किया था।

10. इस न्यायालय के मत में, राज्य अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत कोई सरकारी आदेश, नियम, विनियमन राज्य अधिनियम के अधिनियमन के बाद उसकी धारा 18 की दृष्टि में निरसित हो जाते हैं।

11. इसके अतिरिक्त, याची ने अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान को प्रत्यर्थीगण में से एक के रूप मे पक्षकार नहीं बनाया है।

12. सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 1 नियम 9 के प्रावधानों को लागू करते हुए वर्तमान याचिका सर्वाधिक आवश्यक पक्ष में असंयोजन के लिए खारिज किए जाने की दायी है।

13. यहाँ ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में वर्तमान रिट याचिका खारिज की जाती है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

महिन्दर सिंह एवं अन्य

cuke

गिरीडीह नगरपालिका एवं अन्य

W.P.(C) No. 2367 of 2003. Decided on 23rd August, 2012.

बिहार एवं उड़ीसा नगरपालिका अधिनियम, 1922—धारा 107 (1)(b)—निर्धारण सूची का संशोधन–याची को समुचित अवसर दिए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया गया–निजी प्रत्यर्थी के आवेदन पर लगभग 37 वर्ष पहले मृतक याची के नाम में किया गया नामांतरण संशोधित किया गया है–अनुशंसा के लिए मामला नगरपालिका के कार्यपालक अधिकारी को भेजा गया। (पैराएँ 7 एवं 8)

निर्णयज विधि.–1978 BPSG 530—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Ayush Aditya, For the Petitioners; M/s P.C. Tripathi, R.N. Sahay, For the Respondents.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी नगरपालिका एवं निजी प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट आवेदन में आक्षेपित आदेश तत्कालीन विशेष अधिकारी, गिरिडीह नगरपालिका, द्वारा पारित दिनांक 9.2.2003 का है जिसके द्वारा तात्पर्यित रूप से बिहार एवं उड़ीसा नगरपालिका अधिनियम, 1922 (अब झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया) की धारा 107(1)(b) के प्रावधान के अधीन प्रत्यर्थी सं॰ 4 मंसूर खान द्वारा दाखिल आवेदन पर याची के नाम को अंतर्विष्ट करने वाले निर्धारण सूची को संशोधित करने का निर्देश दिया गया है।

3. याची का प्रतिवाद है कि उसने किसी जीवा देवी, जिसने स्वयं तत्कालीन स्वामी हरि जायसवाल द्वारा निष्पादित दिनांक 18.5.1954 के रजिस्टर्ड विक्रय विलेख द्वारा प्रश्नगत संपत्ति को खरीदा था, से दिनांक 8.1.1965 के रजिस्टर्ड विक्रय विलेख द्वारा उक्त संपत्तियों को खरीदा था। भूमि का उक्त टुकड़ा बक्शीडीह रोड भंडारीडीह, गिरिडीह अवस्थित एम॰ एस॰ भूखंड सं॰ 855 के अंतर्गत गठित और गिरीडीह नगर पालिका की पुरानी धृति सं॰ 97 नयी धृति सं॰ 117 के अंतर्गत गठित उस पर खड़े खपड़पोश निर्माणों के साथ 8 डिसमिल था। याची का प्रतिवाद है कि जीवा देवी ने प्रत्यर्थी गिरिडीह नगरपालिका के समक्ष आवेदन दाखिल करके अपने पक्ष में ऐसा हस्तांतरण किए जाने पर अपना नाम नामांतरित करवाया था जिसने वर्ष 1957-58 में जीवा देवी के नाम में रजिस्टर में मांग खोलने का आदेश पारित किया था। आगे निवेदन किया गया है कि जीवा देवी ने प्रत्यर्थी नगरपालिका के समक्ष भवन योजना प्रस्तुत किया और दिनांक 17.4.1963 के आदेश (परिशिष्ट–2) के तहत गिरिडीह नगरपालिका द्वारा इसे सम्यक रूप से पारित किया गया था और उसने पक्के भवन का निर्माण किया था और काबिज बनी रही और गिरीडीह नगरपालिका को धृति कर का भुगतान करती रही जिसके विरुद्ध रसीद (परिशिष्ट–3) जारी किया गया था। दिनांक 8 जनवरी, 1965 के रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के अनुसरण में प्रश्नगत संपत्ति वर्तमान याचीगण की माता को अंतरित की गयी थी जिसे वर्तमान रिट आवेदन के लंबित रहने के दौरान उसकी मृत्यु पर प्रतिस्थापित किया गया था। वर्तमान याचीगण की माता श्रीमती कुलवंत कौर ने बिहार एवं उड़ीसा नगरपालिका अधिनियम, 1922 की धारा 107 के प्रावधानों का अवलंब लेते हुए तत्कालीन स्वामी श्रीमती जीवा देवी के स्थान पर नामांतरण द्वारा अपना नाम प्रविष्ट करवाया था और उसका नाम सम्यक रूप से मांग रजिस्टर में प्रविष्ट किया गया था। याची का मामला है कि कुलवंत कौर प्रश्नगत भूमि के संबंध में वर्ष 1967 में प्रत्यर्थी नगरपालिका के अधीन निर्धारित बन गयी। प्रत्यर्थी नगरपालिका ने किसी की आपत्ति के बिना वर्ष 2002 में विशेष अधिकारी, गिरीडीह नगरपालिका के समक्ष निजी प्रत्यर्थी द्वारा आवेदन दिए

जाने तक धृति कर वसूल किया। याची की ओर से निवेदन किया गया है कि स्वयं परिशिष्ट–12 में अंतर्विष्ट आक्षेपित आदेश के मुताबिक प्रतीत होगा कि विशेष अधिकारी, गिरिडीह नगरपालिका ने याची को अपने दावा का समर्थन करने के लिए केवल तीन दिन का समय दिया था और उसके बाद याची को पर्याप्त अवसर दिए बिना निजी प्रत्यर्थी सं॰ 4 मंसूर खान द्वारा याची के नाम को प्रतिस्थापित करने के लिए अग्रसर हुआ। याची के विद्वान अधिवक्ता यह निवेदन भी करते हैं कि प्रत्यर्थी विशेष अधिकारी, गिरीडीह नगरपालिका द्वारा किया गया कार्य अधिकारिताहीन था क्योंकि निजी प्रत्यर्थी ने अपने द्वारा उठाए गए हक के विवादित प्रश्न पर अपना दावा किया था और बिहार एवं उड़ीसा नगरपालिका अधिनियम, 1922 की धारा 107(1) (B) के प्रावधान उसको उपलब्ध नहीं हो सकते थे जो उस व्यक्ति को उपलब्ध हैं जो स्वामी अथवा अधिभोगी के स्थान पर अपना नाम प्रतिस्थापित करवाने के लिए प्रश्नगत धृति के स्वामित्व अथवा अधिभोग के प्रति अंतरण अथवा अन्यथा द्वारा सफल होता है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने **तेतर मंडल एवं अन्य बनाम कार्यपालक अधिकारी एवं अन्य, 1978 BPSG 530,** मामले में निर्णय पर विश्वास किया है।

5. यह निवेदन किया गया है कि निजी प्रत्यर्थी ने कतिपय दस्तावेजों पर अपना दावा किया है जो बिल्कुल अस्तित्व में थे जब जीवा देवी का नाम और बाद में क्रेता जीवा देवी द्वारा उसके पक्ष में किए गए हस्तांतरण के अनुसरण में वर्ष 1967 में मृतक याची कुलवंत कौर का नाम नामांतरित किया गया था। किंतु, निजी प्रत्यर्थी ने इस पर आपत्ति नहीं किया था और वर्ष 2002 में अचानक लगभग 37 वर्ष बाद मृतक याची कुलवंत कौर का नाम आक्षेपित आदेश द्वारा निजी प्रत्यर्थी द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है।

6. किंतु नगरपालिका के विद्वान अधिवक्ता आक्षेपित आदेश को ध्यान में लेते हुए निवेदन करते हैं कि याची को दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए तीन दिन का समय देकर अवसर दिया गया था जैसा परिशिष्ट–12 से प्रतीत होगा और ऐसा करने में विफल होने पर निजी प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्य को विचार में लेते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। निजी प्रत्यर्थी नोटिस पर उपस्थित भी हुआ और अपना प्रतिशपथपत्र और दस्तावेज दाखिल किया और कथन किया कि याची को उनकी संपत्ति में किराएदार के रूप में रखा गया था जो उसके पिता को मासिक किराए का भुगतान कर रहा था और उसने कपट के कृत्य द्वारा उसकी जानकारी के बिना उसके पीठ पीछे मांग रजिस्टर में अपना नाम पुर:स्थापित करवाया था। वह निवेदन करते हैं कि विशेष अधिकारी, गिरीडीह नगरपालिका ने कार्यालय में उपलब्ध मांग रजिस्टर सहित दस्तावेजों को विचार में लिया और इस निष्कर्ष पर आया कि किसी पदधारी के हस्ताक्षर के बिना नामों में परिवर्तन किया गया था और नगरपालिका के किसी प्राधिकृत पदधारी द्वारा मांग रजिस्टर अभिप्रमाणित नहीं किया गया था। उन्होंने यह प्रश्न भी किया कि उक्त संपत्ति की स्वामिनी होने का तत्कालीन स्वामिनी जीवा देवी का दावा विवादित है।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और आक्षेपित आदेश तथा साथ ही साथ अभिलेख पर उपलब्ध प्रासंगिक सामग्रियों के परिशीलन के बाद, यह प्रतीत होता है कि वर्ष 1956-57 में जीवा देवी के नाम में मांग खोला गया था जिसे बाद में उसके द्वारा प्रस्तुत विक्रय विलेख के आधार पर मृतक याची के नाम में मांग खोलकर वर्ष 1967 में संशोधित किया गया था। आगे, वर्ष 2002 में निजी प्रत्यर्थी द्वारा आवेदन दिया गया था और तत्कालीन विशेष अधिकारी, गिरीडीह नगरपालिका द्वारा जाँच संचालित की गयी थी और याची को केवल तीन दिन के भीतर समस्त प्रासंगिक दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था। याची निवेदन करता है कि सीमित समय में वह तत्कालीन विशेष अधिकारी,

गिरीडीह नगरपालिका के समक्ष प्रासंगिक दस्तावेज प्रस्तुत नहीं कर सका था। किंतु, वह जल्दबाजी में आक्षेपित आदेश पारित करके गुणागुण पर मामला विनिश्चित करने के लिए अग्रसर हुआ। प्रसंगवश प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता भी निवेदन करते हैं कि रिट आवेदन के परिशिष्ट-4 के रूप में संलग्न याची का विक्रय विलेख विशेष अधिकारी, गिरीडीह नगरपालिका के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सका था क्योंकि विवाद्यक विनिश्चित करते हुए उसे बहुत थोड़ा समय दिया गया था।

8. चाहे जो भी हो, यह प्रतीत होता है कि याची को पर्याप्त अवसर दिए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया गया है जिसके द्वारा दिनांक 9.2.2003 के आक्षेपित आदेश द्वारा निजी प्रत्यर्थी सं॰ 4 के आवेदन पर लगभग 37 वर्ष पहले मृतक याची के नाम में किया गया नामांतरण संशोधित किया गया है। इन परिस्थितियों में, मेरा दृष्टिकोण है कि याची को समुचित अवसर दिए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया गया है और संबंधित प्राधिकारी अर्थात् कार्यपालक अधिकारी, गिरिडीह नगरपालिका द्वारा इस पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है जिनके पास मामला वापस भेजा जाता है। कार्यपालक अधिकारी, गिरीडीह नगरपालिका याची और निजी प्रत्यर्थी को पर्याप्त अवसर देकर पक्षों की उपस्थिति की तिथि से 16 सप्ताह की अवधि के भीतर तार्किक और सकारण आदेश पारित करके विधि के अनुरूप विवाद्यक विनिश्चित करेंगे। पक्षों को इस आदेश की प्रति के साथ दिनांक 11.9.2012 को कार्यपालक अधिकारी, गिरीडीह नगरपालिका के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है जिसके बाद कार्यपालक अधिकारी, गिरीडीह नगरपालिका, विधि के अनुरुप विवाद्यक को नए सिरे से विनिश्चित करेंगे।

9. पूर्वोक्त निबंधनानुसार यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

10. किंतु, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश को पारित करते हुए इस न्यायालय ने मामलों के गुणागुण पर विचार नहीं किया है और कार्यपालक अधिकारी, गिरीडीह नगरपालिका को यहाँ उपर किए गए संप्रेक्षण से प्रभावित हुए बिना खुले दिमाग से विवाद विनिश्चित करने की छूट होगी।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o vij'k dekj flg] U;k;efr

रबिन्द्र कुमार

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 04 of 2012. Decided on 7th September, 2012.

सेवा विधि–अनुकंपा पर नियुक्ति–विलंब–याची के पिता की मृत्यु वर्ष 1999 में हुई–अनुकंपा पर नियुक्ति नियमित नियुक्ति नहीं है बल्कि यह परिवार की आसन्न आवश्यकता को पूरा करने के लिए नियुक्ति है–दत्तक पुत्र के अधिकार के संबंध में याची के दावा को खुला छोड़ते हुए अपील खारिज की गयी। (पैराएँ 2 से 4)

निर्णयज विधि.–(1998)2 SCC 412;(2000)7 SCC 192—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Om Prakash Tiwari, Ajit Kumar Dubey, For the Appellant; S.C.-II, For the State.

न्यायालय द्वारा.–याची-अपीलार्थी, जिसके पिता की मृत्यु वर्ष 1999 में हो गयी, अनुकंपा पर नियुक्ति इप्सित कर रहा है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पात्र व्यक्ति को नियुक्ति देने के लिए और सेवारत व्यक्ति के आश्रित को प्राथमिकता देने के लिए अनुकंपा पर नियुक्ति की नीति निरुपित करने के कारणों को ध्यान में लेने के बाद **उ॰ प्र॰ राज्य बनाम पारस नाथ, (1998)2 SCC 412;** और **संजय कुमार**

बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2000)7 SCC 192 के दो निर्णयों पर विश्वास करते हुए रिट याचिका खारिज कर दी गयी है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा संप्रेक्षित किया गया है कि काफी समय बीतने के बाद ऐसी नियुक्ति उपलब्ध नहीं करायी जा सकती है।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि यह अपीलार्थी की गलती नहीं है क्योंकि अपीलार्थी ने अपने पिता की मृत्यु के पाँच वर्षों के भीतर समुचित आवेदन देते हुए अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन दिया किंतु उसे इस कारण से क्योंकि याची ने दावा किया कि वह दत्तक पुत्र है, उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्राप्त करने का निर्देश दिया गया था। याची ऐसा उत्तराधिकार प्रमाण पत्र पाने के लिए तुरन्त सिविल न्यायालय के पास गया और इसे प्राप्त करने के बाद उसने पद के लिए आवेदन दिया जिसे इस आधार पर इनकार किया गया था कि उसके दत्तक पुत्र होने के नाते उसे नियमावली में अंतर्विष्ट प्रावधानों की दृष्टि में नियुक्ति नहीं दी जा सकती है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि ऐसा नियम बिल्कुल अधिकारातीत है और यह भी कि बिहार राज्य में इसे संशोधित किया गया है। निवेदन किया गया है कि दत्तक पुत्र के पास पुत्र का समस्त अधिकार है और इस अधिकार को हिंदू दत्तक और भरण–पोषण अधिनियम में सांविधिक प्रावधान द्वारा मान्यता दी गयी है।

3. जहाँ तक वर्ष 1999 में पिता की मृत्यु के कारण अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए याची की प्रार्थना का संबंध है इस आधार को सरल कारण से न्यायोचित ठहराया नहीं जा सकता है कि अनुकंपा पर नियुक्ति नियमित नियुक्ति नहीं है बल्कि यह परिवार की आसन्न आवश्यकता को जो कर्मचारी की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु के कारण हो सकती है, को पूरा करने के लिए नियुक्ति है। उक्त दोनों निर्णयों में इस विवाद्यक पर विचार किया गया है और हमारा सुविचारित मत है कि यह हस्तक्षेप करने योग्य मामला नहीं है।

4. अतः, लेटर्स पेटेन्ट अपील दत्तक पुत्र के अधिकार के संबंध में अपीलार्थी द्वारा उठाए गए प्रश्न को खुला छोड़ते हुए खारिज की जाती है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

जय कर्ण सिन्हा

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 2363 of 2007. Decided on 23rd August, 2012.

झारखंड राज्य महिला आयोग अधिनियम, 2003—धारा 10—अनुशंसी निकाय के रूप में महिला आयोग गठित किया गया है–आयोग संबंधित पक्षों पर किसी खास तरीके से कृत्य करने अथवा परहेज करने के लिए निर्देश जारी करने के लिए विधि के न्यायालय की प्रकृति में न्याय निर्णयणकारी भूमिका नहीं निभाता है–आयोग के पास प्रासंगिक सांविधिक निकाय/प्राधिकारीगण को अनुशंसा करने की भूमिका है यदि इसे महिला के विरुद्ध यातना, हिंसा एवं अत्याचार का पता चलता है। (पैराएँ 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Abhijeet Kumar Singh, For the Petitioner; M/s Dilip Kr. Prasad, Sunita Kumari, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची प्रत्यर्थी सं॰ 5 अर्थात् अध्यक्षा, राज्य महिला आयोग, झारखंड द्वारा पारित दिनांक 12/16.4.2007 के आदेश (परिशिष्ट 1) द्वारा व्यथित है और आक्षेपित आदेश पर कृत्य नहीं करने के लिए प्रत्यर्थीगण राज्य को निर्देश देने की प्रार्थना करता है।

3. आदेशों को मुख्यत: इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि राज्य महिला आयोग प्रासंगिक संविधि अर्थात् झारखंड राज्य महिला आयोग अधिनियम, 2005 के अधीन सृजित किया गया है जो आयोग को आदेश की प्रकृति में निर्देश जारी करने और आगे सम्यक रूप से गठित विधि के न्यायालय द्वारा पारित आदेश की तरह डिक्री की प्रकृति में अपने आदेशों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करने की भूमिका प्रदान नहीं करता है। अध्याय III धारा 10 में अंतर्विष्टानुसार आयोग को शक्ति प्रदत्त करने वाला प्रासंगिक प्रावधान निम्नलिखित है:–

> *"10 (1)(p) jkT; e efgykvk d fo#) gk jg mRihMu ;kruk vkj vR;kpkjk }kjk efgykvk l lcfèkr fofèk vkj fofèkd mik;k d mYy?ku d lHkh ekeyk dk l{ke çkfèkdkfj;k d le{k çLrr djukA***

4. वर्ष 2005 के अधिनियम के अधीन पूर्वोक्त प्रावधानों और अन्य प्रावधानों सहित अधिनियम के उद्देश्य के परिशीलन से प्रकट है कि महिला आयोग को अनुशंसी निकाय के रूप में गठित किया गया था। इसके अध्याय III धारा 10 में झारखंड राज्य महिला आयोग अधिनियम, 2005 के प्रावधानों के अधीन इसे प्रासंगिक सांविधिक प्राधिकारी को महिलाओं के विरुद्ध यातना, उत्पीड़न और अत्याचार के ऐसे मामलों के संबंध में अनुशंसा करने की भूमिका है। याची के विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि आयोग के समक्ष निजी प्रत्यर्थी के परिवाद पर, जिस पर मामला सं॰ 72 आरंभ किया गया था, आयोग की अध्यक्षा निर्देश जैसा आक्षेपित आदेश के पैरा 4 में अंतर्विष्ट है जारी करने के लिए अग्रसर हुई हैं जो अन्य बातों के साथ आदेश अथवा निर्देश की प्रकृति का है जो याची और अन्य को निजी प्रत्यर्थीगण को याची के घर तक समुचित पहुँच की अनुमति देने का निर्देश देता है और उनको याची/वर्तमान प्रत्यर्थी के विरुद्ध घरेलू हिंसा में लिप्त होने से परहेज करने का निर्देश भी देता है। पैरा 4 के प्रासंगिक अंश को यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:–

> *"4 (1) pfd ;kph ekèkjh Hkkj}kt vkj mld fudVre ikfjokfjd lnL; uocj] 2003 l edyLdhxt ?kj e jg Fk vkj foxr <kb ekg l mld llj] lkl vkj NkVk noj ml ?kj e jg jg g vkj ?kj vHkh Hkh l;Dr ifjokj lifÙk g] ;g Li"Vr% ;kph dk ^^l ljky** cu tkrk g tgk ml cMh cg gku d ukr jgu dk çR;d vfèkdkj g ml ?kjy fglk d dkj.k ?kj NkMu d fy, etcr fd;k x;k Fkk tk vc ?kjy fglk l efgykvk dk lj{k.k vfèkfu;e] 2005 d çkoèkkuk dk vkÑ"V djxkA foi{kh i{kdkj t;dj.k flUgk] lfe=k Hkkj}kt vkj lnje Hkkj}kt dk gLr{ki ugh dju dk vkj ;kph dk viu fudVre ifjokj d lkFk ml ?kj e lefpr igp dh vuefr nu dk fun'k fn;k tkrk gA foi{kh i{kdkj ;kph d fo#) fdlh çdkj dh ?kjy fglk l ijgt djxA o lfuf'pr djx fd ml fdlh rjhd l rx ugh fd;k tkrk g tc og edyLdhxt ?kj e jgu vkrh*

*gA mUg ml mld leLr ?kjy oLrvk] tk mlu ?kj e NkM fn;k Fkk] dk miyCèk djku dk fun'k Hkh fn;k tkrk gA ;fn vk;kx d fun'k d erkfcd fo0 i0 ml ?kj e ml lefpr igp nu e foQy gkr g] o ?kjy fgl k l efgykvk dk lj{k.k vfèkfu;e] 2005 d çkfxd èkkjkvk d vèkhu vfHk;ktu d nk;h gkxA***

5. दूसरी ओर, निजी प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आक्षेपित आदेश के प्रवृत्त भाग के परिशीलन मात्र से यह प्रतीत होगा कि आयोग ने केवल केस सं॰ 580 वर्ष 2006 जो उनके समक्ष लंबित था, को विनिश्चित करवाने के लिए सब-डिविजनल दंडाधिकारी, गुमला के पास प्रत्यर्थीगण को विपक्षी पक्षकार से याची/वर्तमान निजी प्रत्यर्थी द्वारा महसूस की जा रही बोधनीय खतरे और असुरक्षा की दृष्टि में आयोग के आदेश की प्रति के साथ किए जाने की अनुशंसा की थी।

6. यहाँ उपर निर्दिष्ट अधिनियम, 2005 के प्रावधानों की दृष्टि में निजी प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता विधिक प्रतिपादना विवादित नहीं करते हैं कि आयोग किसी खास तरीके से कृत्य करने अथवा इससे परहेज करने के लिए संबंधित पक्षों पर निर्देश जारी करने की विधि के न्यायालय की प्रकृति में न्याय निर्णयणकारी भूमिका नहीं निभाता है। उनका सुविचारित मत है कि आयोग की अनुशंसनात्मक भूमिका है और आक्षेपित आदेश पारित करके आयोग ने केवल अनुशंसा किया है।

7. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और आक्षेपित आदेश सहित अधिनियम के प्रावधानों पर गौर करने के बाद, यह स्पष्ट होता है कि आक्षेपित आदेश के पैरा 4 में कतिपय संप्रेक्षण करते हुए विद्वान आयोग अधिनियम, जिसके अधीन इसे सृजित किया गया है, अपनी अनुशंसनात्मक भूमिका के परे चला गया है और विधि के न्यायालय की तरह आदेश की प्रकृति का निर्देश जारी किया है जिसे विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है। अध्याय III धारा 10 सहित अधिनियम, 2005 के अनेक प्रावधानों की आज्ञा के मुताबिक भी प्रतीत होता है कि आयोग के पास प्रासंगिक सांविधिक निकाय/प्राधिकारी के समक्ष अनुशंसा करने की भूमिका है जब इसे महिलाओं के विरुद्ध यातना, हिंसा और अत्याचार का पता चलता है।

8. अत: मामले के उस दृष्टिकोण में घोषित किया जाता है कि पैरा 4 में अंतर्विष्ट आदेश मात्र संप्रेक्षण है जिसके पास विधि के न्यायालय के घोषणा अथवा निर्देश का बल नहीं है और इस रूप में इसे किसी प्रत्यर्थी-राज्य प्राधिकारी द्वारा निष्पादित नहीं किया जा सकता है। किंतु, निजी प्रत्यर्थी को आयोग की अनुशंसा के साथ व्यथित होने पर प्रासंगिक अधिनियमों के अधीन सक्षम प्राधिकारी/सांविधिक निकाय के पास जाने की स्वतंत्रता है।

9. मामले के उस दृष्टिकोण में, पैरा 4 में अंतर्विष्ट आक्षेपित आदेश केवल निजी प्रत्यर्थी के पक्ष में अनुशंसा है और उससे अधिक कुछ नहीं। यहाँ उपर दर्ज पूर्वोक्त तथ्यों और चर्चा की दृष्टि में, यह रिट याचिका पूर्वोक्त निबंधनानुसार निपटायी जाती है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि॰

cuke

उषा रानी मंडल एवं अन्य

M.A. No. 85 of 2010. Decided on 24th August, 2012.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धाराएँ 168 एवं 173—दुर्घटना में मृत्यु–अपीलार्थी को 14,52,000/- रुपयों के मुआवजा का भुगतान करने का निर्देश दिया गया–मृतक मोटरसाईकिल का सवार था–यह प्रतिवाद नहीं किया जा सकता है कि दावा याचिका पोषणीय नहीं था क्योंकि मोटर साइकिल के स्वामी को पक्ष बनाया नहीं गया था जब अपराधकारी ट्रक के विरुद्ध मुआवजा का दावा किया गया था–घटना ट्रक को लापरवाह और उपेक्षापूर्वक तरीके से चलाए जाने के कारण हुई–योगदायी उपेक्षा का प्रश्न नहीं था और दायित्व बाँटने का अवसर नहीं था–अपील खारिज। (पैराएँ 7 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. G.C. Jha, For the Appellant; Mr. D.K. Chakravorty, For the Respondents.

आदेश

अपीलार्थी नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि॰ (संक्षेप में बीमा कंपनी) ने मुआवजा मामला सं॰ 50 वर्ष 2008 में श्री दिनेश चंद्र राय, पंचम अपर जिला न्यायाधीश–सह–मोटर यान दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित दिनांक 27.8.2009 के निर्णय और अधिनिर्णय के विरुद्ध इस अपील को दाखिल किया है।

उक्त अधिनिर्णय द्वारा विद्वान अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि दावेदारगण अपीलार्थी–बीमा कंपनी से उक्त राशि पाने के हकदार हैं, दावेदारगण–प्रत्यर्थीगण को मुआवजा के रूप में 14,52,000/- रुपया अधिनिर्णीत किया है।

2. अपीलार्थी द्वारा आक्षेपित निर्णय/अधिनिर्णय को मुख्यत: इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि ट्रक और मोटरसाइकिल के बीच टक्कर हुई थी किंतु मोटरसाइकिल के स्वामी को पक्ष नहीं बनाया गया था। यह मामले में गंभीर त्रुटि थी और यह पोषणीय नहीं था। अधिनिर्णय को चुनौती का एक अन्य आधार यह है कि विद्वान अधिकरण ने मुआवजा की राशि का बँटवारा नहीं किया था यद्यपि यह दो वाहनों द्वारा योगदायी उपेक्षा का मामला था जो मामले के तथ्यों से स्पष्ट होगा।

3. दावेदारगण–प्रत्यर्थीगण ने अपील का प्रतिवाद किया और निवेदन किया कि बीमा कंपनी–अपीलार्थी द्वारा प्रतिवाद किए गए आधार को मामले के तथ्यों पर नहीं बनाया गया है और अपील आरंभ में ही खारिज किए जाने की दायी है।

4. पक्ष सुने गए।

5. इस अपील को उद्भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि दिनांक 31.3.2008 को प्रात: लगभग 6 बजे मृतक अशोक कुमार मंडल मोटर साइकिल सवार के रूप में टाटा रेलवे स्टेशन के लिए अपने घर से रवाना हुआ। मोटरसाइकिल उसके पुत्र पार्थो सारथी मंडल द्वारा चलायी जा रही थी। जब वे प्रात: लगभग 7.20 बजे गाँव पिचाली के निकट पक्की सड़क पर पहुँचे, रजिस्ट्रेशन सं॰ WB33-4560 वाला ट्रक पीछे से मोटरसाइकिल से टकराया जिस कारण दुर्घटना हुई और मृतक तथा उसका पुत्र सड़क पर गिर गए और ट्रक ने मृतक को कुचल दिया। मृतक सरकारी विद्यालय शिक्षक था और प्रतिमाह 17,500 रुपया वेतन पा रहा था। दुर्घटना के समय पर मृतक 52 वर्ष का था। मृतक का परिवार मृतक के वेतन पर आश्रित था और उसकी समयपूर्व मृत्यु के कारण आवेदकगण ने गंभीर हानि सहा था। रजिस्ट्रेशन सं॰ WB33-4560 वाला अपराधकारी ट्रक श्री तरुण कुमार पात्रा के नाम में रजिस्टर्ड किया गया था जो नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि॰, विष्टुपुर, जमशेदपुर के साथ बीमाकृत था। आवेदकगण ने अशोक कुमार मंडल की दुर्घटनापूर्ण मृत्यु के लिए 15,50,000/- रुपयों के मुआवजा का दावा किया।

6. बीमा कंपनी ने अन्य बातों के साथ यह कथन करते हुए दावा का प्रतिवाद किया कि दावा आधारहीन है और बीमा कंपनी किसी मुआवजा का भुगतान करने की दायी नहीं है। आवेदकगण द्वारा दावा की गयी मुआवजा राशि अत्यधिक और आधारहीन थी। बीमा कंपनी को दुर्घटना की जानकारी नहीं थी जैसा आवेदकगण द्वारा अभिकथित किया गया है। मृतक मोटरसाइकिल का पिछला सवार था किंतु आवेदकगण द्वारा मोटर साइकिल का रजिस्ट्रेशन नंबर प्रकट नहीं किया गया है।

पक्षों ने मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्य दिया।

7. विद्वान अधिकरण ने अभिलेख पर तथ्यों, सामग्रियों और साक्ष्य पर सम्यक विचार करने के बाद यह अभिनिर्धारित करते हुए कि आवेदकगण अपीलार्थी–बीमा कंपनी से 14,52,000/- रुपयों की मुआवजा राशि पाने के हकदार हैं, आक्षेपित अधिनिर्णय दिया।

8. मैं अपीलार्थी के दावा में सार नहीं पाता हूँ कि दावा याचिका पोषणीय नहीं थी क्योंकि मामले में मोटरसाइकिल के स्वामी को पक्ष नहीं बनाया गया था जब अपराधकारी ट्रक, जो मोटरसाइकिल से टकराया और दुर्घटना कारित किया, के विरुद्ध मुआवजा का दावा किया गया था।

9. विद्वान अधिकरण ने स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया है कि दुर्घटना ट्रक को लापरवाह और उपेक्षापूर्वक तरीके से चलाने के कारण हुई। मोटरसाइकिल स्वामी के योगदायी उपेक्षा का प्रश्न नहीं था और दायित्व के बँटवारा का अवसर नहीं था।

10. विद्वान अधिकरण ने विस्तारपूर्वक समस्त पहलूओं पर विचार किया है और अभिलेख पर तथ्यों, सामग्रियों और साक्ष्य का समुचित अधिमूल्यन किया है और सुतार्किक निष्कर्ष दिया है।

11. मैं आक्षेपित अधिनिर्णय में गलती या अवैधता नहीं पाता हूँ और इसमें हस्तक्षेप करने का आधार नहीं पाता हूँ।

12. तद्नुसार, अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

महाबीर महतो एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 316 of 2011. Decided on 27th August, 2012.

(क) बिहार अभिधारी धृति (अभिलेखों की देखरेख) अधिनियम, 1973—धारा 14—नामांतरण–नामांतरण कार्यवाही उन मामलों तक सीमित है जिनका संज्ञान अंचलाधिकारी द्वारा हित के न्यागमन और ऐसी सूचना के परिणाम में अंतरण के परिणामस्वरुप कब्जा के संबंध में लिया जा सकता है–राजस्व प्राधिकारी जटिल विधिक विवाद और विपरीत दावा विनिश्चित नहीं कर सकता है–नामांतरण कार्यवाही का विस्तार सीमित है। (पैराएँ 21, 23 एवं 25)

(ख) बिहार अभिधारी धृति (अभिलेखों की देखरेख) अधिनियम, 1973—धारा 14—संपत्ति में अधिकार, हक और हित की घोषणा का डिक्री अथवा आदेश पारित करने की शक्ति

और अधिकारिता अंचलाधिकारी के पास नहीं है–सतत खतियान और अभिधारी लेजर रजिस्टर में प्रविष्टियों के परिवर्तन का दावा उस व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता है जिसका हित उस व्यक्ति जिसका नाम राजस्व अभिलेख में प्रविष्ट किया गया है के हित के बिलकुल विपरीत है यदि अभिलिखित व्यक्ति को उत्तराधिकारियों के बीच दावों और परस्पर दावों के प्रति गंभीर विवाद है, उन्हें समुचित वाद दाखिल करने का निर्देश दिया जा सकता है। (पैराएँ 29 एवं 33)

निर्णयज विधि.–1993 (1) PLJR 231—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Kalyan Ray, For the Appellants; Mr. V.K. Prasad, For the Respondent State; Mr. Niraj Kishore, For the Respondent Nos. 7 to 12.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. अपीलार्थी डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1565 वर्ष 2008 में पारित दिनांक 29.6.2011 के निर्णय के विरुद्ध व्यथित है जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने विविध पुनरीक्षण सं॰ 158 वर्ष 2005 में आयुक्त, हजारीबाग द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.2.2008 को अपास्त कर दिया है।

3. संक्षेप में तथ्यों को अभिलेख पर रखना समुचित होगा:–

vihykFkhx.k u nkok fd;k fd vihykFkhx.k d i{k e Hkfe dh cnkcLrh d QyLo#i mud ukek dk fcgkj vfHkèkkjh èkfr (vfHky[kk dh n[kj[k) vfèkfu;e] 1973 d vèkhu jkt Lo vfHky[k@vfèkdkj vfHky[k e çfo"V dju dh vko';drk FkhA fdr] fnukd 8 flrcj] 1925 d cnkcLrh d mDr nkok d fy, vihykFkhx.k u fnukd 27.1.1961 dk vkonu l0 37/1961-62 nkf[ky fd;k ftl ij vihykFkhx.k d uke jkt Lo vfHky[k e çfo"V fd, x, FkA vihykFkhx.k o"k 1967-68 rd fdjk;k dk Hkxrku djr jgA o"k 1968 d ckn] jkt Lo çkfèkdkfj;k u vihykFkhx.k l yxku Lohdkj dju l budkj dj fn;kA vihykFkhx.k dk o"k 1998 e tkudkjh gb fd tekcnh e çR;Fkhx.k dk uke xyr :i l çfo"V fd;k x;k g vkj ml dkj.k l jkt Lo çkfèkdkjhx.k vihykFkhx.k l yxku Lohdkj ugh dj jg gA tekcnh e bl xyr çfof"V dk ikr g, vihykFkhx.k u o"k 1998 e vpykfèkdkjh d le{k vkonu fn;k vkj og vkonu oLrr% çR;Fkhx.k d ukek dh xyr çfof"V dk yki dju d fy, Fkk fdr bl ij o"k 1973 d vfèkfu;e dh èkkjk 14 d vèkhu ukekrj.k d fy, vkonu d :i e fopkj fd;k x;k FkkA fnukd 8.11.1998 dk vpykfèkdkjh }kjk mDr vkonu [kkfjt dj fn;k x;k FkkA vihykFkhx.k d fo}ku vfèkoDrk d vulkj vihykFkhx.k }kjk bl [kkfjth d fo#) vihy nkf[ky ugh dh x;h Fkh fdr futh çR;Fkhx.k d fo}ku vfèkoDrk d vulkj oLrr% vihy fnukd 8.11.1998 d vkn'k d fo#) vihykFkhx.k }kjk Hkfe&lèkkj mik;Dr d le{k nkf[ky dh x;h Fkh ftUgku Hkh vihy vLohdkj dj fn;k FkkA pkg tk Hkh gk] nkuk fLFkfr e] çR;Fkhx.k d ukek d yki d fy, vihykFkhx.k d vkonu dh vLohÑfr dk fnukd 8.11.1998 dk vkn'k vfrerk çkIr dj pdk FkkA rc vihykFkhx.k u bUgh vurk"kk d fy, vij dyDVj d le{k vkonu fn;k vkj vij dyDVj u fnukd 22.12.2004 d vkn'k }kjk vpykfèkdkjh d fnukd 8.11.1998 d vkn'k dk vikLr dj fn;k vkj fun'k fn;k fd vihykFkhx.k d ukek dk jkt Lo vfHky[k e çfo"V fd;k tk ldrk g vkj vpykfèkdkjh dk vihykFkhx.k l yxku Lohdkj dju dk fun'k fn;kA vihykFkhx.k

d vulkj] fnukd 22.12.2004 d vkn'k d fo#) 0;fFkr gkdj çR;FkhZx.k u blh çkfèkdkjh vij dyDVj d le{k iufoyZdu vkonu nkf[ky fd;kA mÙkjorh vij dyDVj u mDr iufoyZdu vkonu vuKkr fd;k vkj fnukd 27.10.2005 d vkn'k }kjk fnukd 22.12.2004 dk vkn'k vikLr dj fn;kA fnukd 27.10.2005 d vkn'k d fo#) 0;fFkr oreku vihykFkhZx.k }kjk vk;Dr d le{k iujh{k.k ;kfpdk nkf[ky dh x;h FkhA fo}ku vk;Dr u fnukd 19.2.2008 d vkn'k d rgr iujh{k.k ;kfpdk vuKkr fd;k vkj vfHkfuèkkfjr fd;k fd vij dyDVj d ikl fnukd 22.12.2004 d vkn'k dk iufoyZdu dju dh vfèkdkfjrk ugh Fkh vkj blfy, fnukd 22.12.2004 d vkn'k ftld }kjk çR;FkhZx.k d ukek dk ykiu jktLo vfHky[k l dj fn;k x;k Fkk dk iuLFkkfir djr g, fnukd 27.10.2005 dk iufoyZdu vkn'k vikLr dj fn;kA

iujh{k.k e vk;Dr }kjk ikfjr fnukd 19.2.2008 d vkn'k d fo#) çR;FkhZx.k u oreku fjV ;kfpdk MCY;O ih0 (lh0) l0 1565 o"k 2008 nkf[ky fd;k ftl fo}ku ,dy U;k;kèkh'k }kjk vuKkr fd;k x;k g vkj fnukd 19.2.2008 d vkn'k vkj fnukd 22.12.2004 d vkn'k nkuk dk vikLr dj fn;k x;k FkkA fo}ku ,dy U;k;kèkh'k d vulkj vij dyDVj 1973 vfèkfu;e dh èkkjk 16 d vèkhu iujh{k.k xg.k ugh dj ldrk Fkk tk èkkjk 16 d vèkhu ftyk dyDVj d le{k dh tkrh gA vij dyDVj vihy d :i e vkonu dk lquokbZ Hkh ugh dj ldrk Fkk D;kfd mDr vkn'k d fo#) vihy Hkfe&lèkkj mi&dyDVj (,y0 vkj0 Mh0 lh0) d le{k dh tk ldrh FkhA vr%] vij dyDVj dk fnukd 22.12.2004 dk vkn'k i.kr% vfèkdkfjrkghu FkkA fo}ku ,dy U;k;kèkh'k u vfHkfuèkkfjr fd;k fd fnukd 22.12.2004 dk vkn'k ,di{kh; :i l vkj çR;FkhZx.k dk lquokbZ dk volj fn, fcuk ikfjr fd;k x;k Fkk vkj tc vij dyDVj d le{k lgh fofèk dh tkudkjh yk;h x;h Fkh] vij dyDVj u fnukd 27.10.2005 dk vkn'k ikfjr fd;k vkj fnukd 22.12.2004 d vkn'k dk ifj'kkfèkr fd;kA vr% fo}ku ,dy U;k;kèkh'k u vfHkfuèkkfjr fd;k fd bl fofèkd voLFkk e vk;Dr dk iujh{k.k ;kfpdk xg.k ugh djuk pkfg, Fkk vkj fofoèk iujh{k.k l0 158 o"k 2005 e vk;Dr gtkjhckx }kjk ikfjr fnukd 19 Qjojh] 2008 dk vkn'k vikLr dj fn;kA

4. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्ष 1967-68 तक अपीलार्थीगण के नाम राजस्व अभिलेख में, स्पष्टत: जमाबंदी में थे और, इसलिए, जमाबंदी में इस प्रविष्टि को केवल सक्षम प्राधिकारी के आदेश द्वारा परिवर्तित किया जा सकता था किंतु प्रत्यर्थीगण के नाम बिल्कुल अवैध रूप से प्रविष्ट किए गए थे और, इसलिए, प्रत्यर्थीगण के नाम का लोप करना चाहिए था और सही प्रकार से दिनांक 22.12.2004 के आदेश द्वारा उसका लोप कर दिया गया था और जमाबंदी में अपीलार्थीगण के नामों को प्रविष्ट करने का आदेश सही प्रकार से दिया गया था। निवेदन किया गया है कि भले ही विद्वान एकल न्यायाधीश का दृष्टिकोण सही है कि अपर कलक्टर के पास अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल आवेदन को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी, तब अपर कलक्टर के पास भी प्रत्यर्थीगण/रिट याचीगण द्वारा दाखिल आवेदन ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी जिस पर दिनांक 22.12.2004 का आदेश पारित किया गया था। उस स्थिति में, न्यायालय को मामला सक्षम प्राधिकारी के पास वापस भेज देना चाहिए था जो नामांतरण कार्यवाही से संबंधित विधि के अनुरुप पक्षों के आवेदन को जो विनिश्चित कर सकता था। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि स्वयं विद्वान एकल न्यायाधीश ने **कपिलदेव सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** 2003 (2) PLJR 431, में दिए गए इस न्यायालय की

खंडपीठ के निर्णय पर विचार किया है जिसमें इस न्यायालय की खंडपीठ ने समरुप स्थिति पाते हुए, जब गलत प्राधिकारी के समक्ष आवेदन दिया गया था, मामले को विधि के अनुरुप विचार किए जाने के लिए सक्षम प्राधिकारी के पास वापस भेज दिया। उस स्थिति में भी, विद्वान एकल न्यायाधीश कपिलदेव सिंह मामले में दिए गए इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय से बाध्य थे।

5. प्रत्यर्थीगण/रिट याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि वस्तुत: अपीलार्थीगण द्वारा आरंभ की गयी कार्यवाही नामांतरण कार्यवाही नहीं थी क्योंकि नामांतरण कार्यवाही केवल हित के न्यागमन, जो उसी अधिकार, हक और हित, जो भूमि के अभिलिखित अभिधारी के पास था जैसा राजस्व अभिलेख में दर्ज किया गया है, का दावा करते हुए विक्रय, उपहार के रूप में अथवा उत्तराधिकार के फलस्वरुप हो सकता है, द्वारा कृषि भूमि में अधिकार के प्रोद्भवन के आधार पर आरंभ की जा सकती थी। अभिलिखित व्यक्ति का विरोधी पक्ष राजस्व अभिलेख से किसी व्यक्ति के नाम के लोप के लिए और राजस्व अभिलेख में अपने नाम की प्रविष्टि के लिए नामांतरण कार्यवाही का लाभ इस सादे एवं सरल कारण नहीं ले सकता है क्योंकि नामांतरण कार्यवाही में किसी प्राधिकारी द्वारा अधिकार, हक और हित विनिश्चित नहीं किया जा सकता है। अत:, व्यक्ति जिसके पास जमाबंदी में अभिलिखित व्यक्ति के विरुद्ध प्रतिकूल हक है, उसके पास राजस्व अभिलेख में घोषणा और शुद्धि के लिए सिविल वाद दाखिल करने का एकमात्र विकल्प है। संपत्ति में किसी पक्ष के अधिकार, हक और हित विनिश्चित करने के लिए नामांतरण कार्यवाही हक वाद में संपरिवर्तित नहीं की जा सकती है।

6. प्रत्यर्थीगण/रिट याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे जोरदार निवेदन किया कि किसी कार्यवाही को आरंभ करने के लिए किसी पक्ष के दावा के समर्थन में अभिलेख पर कुछ सामग्री होनी ही चाहिए और प्रत्यर्थीगण/रिट याचीगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार अपीलार्थीगण किसी विधिपूर्ण दस्तावेज को प्रस्तुत करने में विफल रहे जिसके आधार पर वे राजस्व अभिलेख में अपने नामों को प्रविष्ट करने के अपने अधिकार का दावा कर सकते थे। अपीलार्थीगण और प्रत्यर्थीगण ने हमारा ध्यान विभिन्न भूमि राजस्व कानूनों के अधीन और विशेषत: नामांतरण की प्रक्रिया विहित करने वाले बिहार अभिधारी धृति (अभिलेख की देखरेख) अधिनियम के अधीन अधिकार रखने वाले कृषकों के लिए विधि के प्रासंगिक प्रावधानों की ओर आकृष्ट किया है।

7. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया है।

8. यह विवादित नहीं है कि यह कार्यवाही नामांतरण की फिस्कल कार्यवाही से उद्भूत होती है जिसके अधीन पक्षों के अधिकार, हक अथवा हित की घोषणा नहीं की जा सकती है जैसा सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में नियमित रूप से संस्थापित वाद में किया जा सकता है। वर्ष 1973 में धारा 12 के खंड (2) में नामांतरण की परिभाषा दी गयी है:–

*2(l) ^^ukekarj.k** l vfHkçr g bl vfèkfu;e d vèkhu j[k x, lrr [kfr;ku vkj vfHkèkkjh ytj jftLVj e çfof"V e dkb ifjoruA*

नामांतरण के आधार पर व्यक्ति जिसका नाम नामांतरित किया गया है, राजस्व अभिलेख और अधिकार अभिलेख में अपना नाम प्रविष्ट कराने का अधिकार पा सकता है।

9. वर्ष 1973 के अधिनियम में धारा 3 से 14 के अधीन नामांतरण का विषय दिया गया है। वर्ष 1973 के अधिनियम की धारा 3 के मुताबिक अंचलाधिकारी को सतत खतियान, अभिधारी लेजर रजिस्टर और गाँव के नक्शों को रखने की आवश्यकता होती है।

10. वर्ष 1973 के अधिनियम की धारा 4 भी प्रासंगिक है जो निम्नलिखित है:–

4. ***fucèku dju oky çkfèkdkjh dk vpykfèkdkjh dk vrj.k vkj jftLV'ku dk ukfVl nuk g-****&tc foØ;] fofue;] cèkd] iVVk] cVokjk vFkok migkj d :i e vrj.k vFkok èkfr vFkok mld Hkkx dk fdlh vU; <x l vrj.k d fdlh fy[kr dk jftLV'ku ijk gkrk g] fucèku çkfèkdkjh fofgr Qke e {k= d vpykfèkdkjh ftldh vfèkdkfjrk e Hkfe vofLFkr g dk ukfVl nxkA*

धारा 4 से यह स्पष्ट है कि विक्रय, विनिमय, बंधक, पट्टा, बँटवारा अथवा उपहार के रूप में संपत्ति के अंतरण अथवा धृति अथवा उसके भाग का किसी अन्य ढंग से अंतरण के मामले में निबंधन प्राधिकारी विहित फॉर्म में अंचलाधिकारी को अंतरण प्रभावकारी दस्तावेज के ऐसे रजिस्ट्रेशन की नोटिस देगा।

11. वर्ष 1973 की धारा 5 सक्षम सिविल न्यायालयों द्वारा पारित डिक्री के प्रभाव पर विचार करती है। धारा 15 का पठन निम्नलिखित है:–

5. ***flfoy U;k;ky;k dk fMØhèkkjd vFkok uhykeh [kjhnkj dk dCtk nu vFkok cVokjk d fy, vFkok ijkcèk d fy, fMØh dk ukfVl vpykfèkdkjh dk nuk g-****&tc flfoy çfØ;k lfgrk] 1908 (1908 dk vfèkfu;e 5) d vèkhu èkfr vFkok mld Hkkx dk dCtk fMØh d fu"iknu e fMØh èkkjd dk vFkok U;k;ky; uhykeh foØ; e [kjhnkj dk fn;k x;k g vFkok tc cVokjk d fy, vFkok cèkd d ijkcèk d fy, fMØh fu"ikfnr dju oky U;k;ky; vFkok cVokjk vFkok ijkcèk] ;FkkfLFkfr d fy, vfre fMØh ikfjr dju oky U;k;ky; }kjk vfre fMØh ikfjr fd;k x;k g] U;k;ky; fofgr Qke e {k= d vpykfèkdkjh ftldh vfèkdkfjrk e Hkfe vofLFkr g dk rF;k dk ukfVl nxkA*

12. वर्ष 1973 के अधिनियम की धारा 6 प्रावधानित करती है:–

6. ***çek.k i= vfèkdkjh dk uhykeh [kjhnkj dk dCtk nu dk ukfVl vpykfèkdkjh dk nuk g-****&tc fcgkj ,o mMhlk ykd ekx olyh vfèkfu;e] 1914 (1914 dk fcgkj ,o mMhlk vfèkfu;e IV) d vèkhu çek.ki= d fu"iknu e fd, x, uhykeh foØ; d [kjhnkj dk èkfr vFkok mld Hkkx dk dCtk fn;k tkrk g] çek.k i= vfèkdkjh fofgr Qke e vpykfèkdkjh ftldh vfèkdkfjrk e Hkfe vofLFkr g dk rF; dk ukfVl nxkA*

13. वर्ष 1973 के अधिनियम की धारा 7 का पठन निम्नलिखित है:–

7. ***dyDVj dk Hkfe vtu vfèkfu;e] 1894 d vèkhu vpykfèkdkjh dk vtu dk ukfVl nuk g-****&tgk Hkfe vtu vfèkfu;e] 1894 (1984 dk vfèkfu;e 1) d vèkhu èkfr vFkok mldk Hkkx vftr fd;k x;k g] dyDVj vFkok U;k;ky;] ;FkkfLFkfr] ml vfèkfu;e d vèkhu vfèkfu.k; nr g, fofgr Qke e vpykfèkdkjh ftldh vfèkdkfjrk e Hkfe vofLFkr g dk rF; dk ukfVl nxkA*

14. धारा 9 वर्ष 1885 के बिहार अधिनियम VIII की धारा 84 के अधीन भूमि के अर्जन का सिविल न्यायालयों द्वारा नोटिस दिए जाने के लिए प्रावधान प्रावधानित करती है।

15. वर्ष 1973 के अधिनियम की धारा 10 के मुताबिक जब बिहार भूदान यज्ञ अधिनियम, 1954 के अधीन किसी भूमिहीन व्यक्ति को भूदान यज्ञ कमिटि द्वारा कोई भूमि प्रदान की जाती है, उक्त कमिटि विहित फॉर्म में क्षेत्र के अंचलाधिकारी को तथ्य का नोटिस देगी।

16. धारा 11 प्रावधानित करती है कि बिहार भूमि सुधार (अधिकतम सीमा निर्धारण और अधिशेष भूमि का अर्जन) अधिनियम, 1961 के अधीन अधिभोगी रैयत का दर्जा पाने का दावा करने वाले रैयत को अपना नाम प्रविष्ट करवाने के प्रयोजन से अंचलाधिकारी के समक्ष आवेदन देने की आवश्यकता है।

17. इस लेटर्स पेटेन्ट अपील को विनिश्चित करने के प्रयोजन से धारा 12 अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है जो निम्नलिखित है:–

> *12.* ***futh :i l vFkok U;k;ky; d ekè;e l vFkok fuol h;r vFkok ol h;rh mÙkjkfèkdkj] vrj.k] fofue;] djkj] cnkcLrh] iVVk] cèkd] migkj vFkok fdlh vU; lkèku l çHkkoh cuk, x, cVokjk }kjk fgr dk nkok dju oky 0;fDr;k dk vpykfèkdkjh dk ukfVl nuk*** *g-&bl vfèkfu;e d vkjHk gku d ckn fdlh {k= e futh :i l vFkok U;k;ky; d ekè;e l vFkok fuol h;r vFkok ol h;rh mÙkjkfèkdkj] vrj.k] fofue;] djkj] cnkcLrh] iVVk] cèkd] migkj vFkok fdlh vU; lkèku l çHkkoh cuk, x, cVokjk }kjk ml {k= e èkfr vFkok mld Hkkx e fgr j[ku oky çR;d 0;fDr dk , l fgr d çknHkou d Ng ekg d Hkhrj fofgr Qke e vpykfèkdkjh ftl dh vfèkdkfjrk e Hkfe vofLFkr g dk rF; dk ukfVl nuk gkxk vkj og lrr [kfr;ku vkj vfHkèkkjh ytj jftLVj e èkfr vFkok mld Hkkx d lcèk e viu uke d vrj.k d fy, vkonu n ldrk g vkj vkonu dh ,lh lpuk dh çkflr ij vpykfèkdkjh ,l 0;fDr dk jlhn çnku djxkA*

वर्ष 1973 के अधिनियम की धारा 12 के मुताबिक स्वयं धारा 12 में उल्लिखित कतिपय परिस्थितियों में जैसे यदि कोई व्यक्ति निजी रूप से अथवा न्यायालय के माध्यम से अथवा निर्वसीयती भूमि में अथवा वसीयती उत्तराधिकार, अंतरण, विनिमय, करार, बंदोबस्ती, पट्टा, बंधक अथवा किसी अन्य साधन से बँटवारा के रूप में धृति अथवा उसके भाग में हित का दावा कर रहा है, तब उसे अनुबंधित समय के भीतर अंचलाधिकारी को सूचना देने की आवश्यकता है।

18. उक्त के अतिरिक्त, धारा 13 मुखिया, अंचल निरीक्षक और कर्मचारी पर कर्तव्य डालती है जिन्हें धृति अथवा इसके भाग में बँटवारा, निर्वसीयती, हित, वसीयती उत्तराधिकार अथवा हित का अर्जन अथवा किसी अन्य साधन की सूचना प्राप्त करने की आवश्यकता है जिन्हें स्पष्टत: गाँव, क्षेत्र, भूमि का दौरा करना है और उन्हें विहित प्रारूप में अंचलाधिकारी को सूचना देने की आवश्यकता है।

19. अत:, 1973 के अधिनियम से स्पष्ट है कि 1973 के अधिनियम के अधीन राजस्व अधिकारियों द्वारा दर्ज राजस्व अभिलेख की देखरेख के संबंध में यथासंभव समस्त आकस्मिकताओं को ध्यान में लिया गया है ताकि अंतरण, सरकार द्वारा स्वयं के लिए अथवा अन्य के लिए भूमि अर्जन, सिविल न्यायालय की डिक्री के फलस्वरुप अथवा वसीयत द्वारा अथवा उत्तराधिकारी की स्वीय विधि के अधीन हक के अर्जन द्वारा हित के न्यागमन के संबंध में समस्त सूचनाओं को अंचलाधिकारी को देने की आवश्यकता है। ऐसी सूचना की प्राप्ति पर अध्याय III प्रवर्तन में आता है।

20. वर्ष 1973 के अधिनियम की धारा 14 उक्त आकस्मिकताओं में समुचित आदेश पारित करने की अधिकारिता अंचलाधिकारी को देती है। धारा 14 निम्नलिखित है:–

> *14.* ***ukekrj.k ekeyk dh rych vkj fuiVkjk-&(1)*** *èkkjkvk 4, 5, 6, 7, 8, 9 vkj 10 d vèkhu ukfVl vFkok èkkjk 11 vFkok 12 d vèkhu vkonu vFkok èkkjk 13 d vèkhu fjikV dh çkflr ij vpykfèkdkjh ukekrj.k dk;okgh vkjHk*

djxk vkj ukekrj.k dl jftLVj ftl fofgr Qke e euVu fd;k tk,xk] e bl çfo"V dju d ckn ,lh tkp tlk vko';d le>k x;k g djxkA

(2) vpykfèkdkjh lkekU; ukfVl tkjh djxk vkj ukfVl tkjh dju d 15 fnuk d Hkhrj vkifÙk ;fn gk] nkf[ky dju d fy, lcfèkr i{kk dk ukfVl nxkA vkifÙk ;fn gk] çkIr dju ij vpykfèkdkjh lcfèkr i{kk dk lk{; ;fn gk] nu] lu tku dk ;fDr;Dr volj nxk vkj vkifÙk fuiVk,xk vkj ,lk vkn'k ikfjr djxk tlk vko';d le>k tkrk gA

(3) ,l ekeyk e ftle dkb vkifÙk çkIr ugh dh tkrh g] vpykfèkdkjh vkifÙk nkf[ky dju dh volku frfFk d ,d ekg d Hkhrj mudk fuiVk,xk vkj ,l ekeyk e ftue vkifÙk çkIr dh x;h g] vpykfèkdkjh vkifÙk nkf[ky dju dh volku vofèk l rhu ekg fdr bll vfèkd ugh] e fuiVk,xkA

21. अत: वर्ष 1973 के अधिनियम की पूर्ण योजना, जैसी चर्चा विस्तारपूर्वक उपर की गयी है, स्पष्टत: उपदर्शित करती है कि नामांतरण कार्यवाही उन मामलों तक सीमित है जिनका संज्ञान हित के न्यागमन और अंतरण के परिणामस्वरुप कब्जा के सम्बन्ध में ऐसी सूचना की प्राप्ति पर अंचलाधिकारी द्वारा लिया जा सकता है जैसा धारा 3 से 13 तक के अधीन प्रावधानित किया गया है। नामांतरण का प्रयोजन केवल, जैसा हमने धारा 2 के खंड (I) में दी गयी नामांतरण की परिभाषा से गौर किया है, ''इस अधिनियम के अधीन रखे गए सतत खतियान और अभिधारी लेजर रजिस्टर में प्रविष्टियों में परिवर्तन के लिए है और न कि परस्पर विरोधी दावों जैसे अभिलिखित व्यक्ति के प्रतिकूल दावे विनिश्चित करने के लिए।

22. राजस्व अभिलेख में सही व्यक्तियों के नामों की प्रविष्टि आवश्यक है ताकि सरकार, जो भूमि का स्वामी है, उन व्यक्तियों जिनका नाम राजस्व अभिलेखों में प्रविष्ट किया गया है से राजस्व संग्रहित कर सके और इसलिए लोगों के व्यापक हित में भी कि जब कभी भूमि अर्जन कार्यवाही आरंभ की जाती है, सरकार ऐसे व्यक्तियों को समुचित नोटिस दे सकता है और आगे लोकहित में कि कृषक धृति में कोई अधिकार, हक अथवा हित रखने वाले व्यक्ति जिसे यदि किसी गलती को करता अभिकथित किया जाता है, की ओर से कमी की स्थिति में उसे राज्य सरकार में कृषि भूमि को पुनर्निहित करने के पहले राजस्व प्राधिकारीगण द्वारा समुचित नोटिस दिया जा सके। इन भू-अभिलेखों को अद्यतन बनाए रखकर प्रत्येक विवाद को संक्षिप्त किया जा सकता है।

23. कार्यवाही जो केवल सतत खतियान और अभिधारी लेजर रजिस्टर में प्रविष्टियों में परिवर्तन करने के प्रयोजन से है, की प्रकृति से अवर राजस्व अधिकारी को सीमित उद्देश्य से साक्ष्य लेकर इन विवादों को विनिश्चित करने की अधिकारिता दी गयी है और ऐसा राजस्व प्राधिकारी जटिल विधिक विवाद और प्रतिकूल दावों को विनिश्चित नहीं कर सकता है।

24. इस मोड़ पर, यहाँ उल्लेख करना समुचित होगा कि नामांतरण कार्यवाही विवाद नहीं होने के मामले में अप्रतिवादित हो सकती है और इसका प्रतिवाद किया जा सकता है जैसा 1973 अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (2) से स्पष्ट है। अत:, 1973 के अधिनियम की धारा 15 के अधीन व्यथित पक्ष को अपील करने का अधिकार दिया गया है और अंचलाधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील भूमि-सुधार उप-कलक्टर के समक्ष की जाती है और पुनरीक्षण शक्ति जिला कलक्टर में निहित है जिसे 1973 के

अधिनियम और उसके अधीन बनायी गयी नियमावली के अधीन किसी प्राधिकारी द्वारा पारित किसी आदेश की वैधता और औचित्यता का परीक्षण करने की शक्ति है। किंतु आदेश, जो धारा 15 के अधीन अपील में अथवा धारा 16 के अधीन पुनरीक्षण में पारित आदेश द्वारा अंतिमता प्राप्त कर सकती है, की प्रकृति सीमित प्रभाववाली उसी फिस्कल प्रकृति की बनी रहेगी। आदेश की अंतिमता प्राप्त करने के बाद, जिसे उपर निर्दिष्ट किया गया था, अंचलाधिकारी को सतत खतियान और अभिधारी लेजर रजिस्टर में शुद्धि करके धारा 18 के अधीन आदेश को प्रभाव देने की आवश्यकता है और उसकी शुद्ध की गयी प्रविष्टियों की प्रतियों को सब-डिविजनल अधिकारी और कलक्टर को अग्रसारित करने की आवश्यकता है।

25. राजस्व अभिलेख में की गयी प्रविष्टि का मूल्य उपधारणात्मक मूल्य है और धारा 19 इस प्रावधान पर विचार करती है। 1973 अधिनियम की धारा 19 निम्नलिखित है:–

> *"19. **lrr [kfr;ku vkj vfHkèkkjh ytj jftLVj e çfof"V;k dh 'k)rk dh mièkkj.kk-**&èkkjk 3 dh mièkkjk (4) d [kM (iii) d vèkhu vfre :i l çdkf'kr lrr [kfr;ku vkj vfHkèkkjh ytj jftLVj e çR;d çfof"V*
>
> *(i) ,lh çfof"V e fufn"V ekey dk lk{; gkxh] vkj*
>
> *(ii) bl lèkkjk x;k mièkkfjr fd;k tk,xk tc rd fuEufyf[kr dk;okfg;k e bl lk{; }kjk v'k) fl) ugh fd;k tkrk g%&*
>
> *(a) l{ke vfèkdkfjrk d flfoy U;k;ky; dh dk;okgh e] vFkok*
>
> *(b) fdlh {k= e tgk jkT; ljdkj u ;g fun'k nr g, fd lo fd;k tk, vkj ml {k= e Hkfe d lcèk e vfèkdkj vfHky[k r;kj fd;k tk,] vkn'k ikfjr fd;k vkj ,l vkn'k d vulj.k e lo vkj cnkcLrh vkij'ku igy l gh tkjh g fcgkj vfHkèkfr vfèkfu;e] 1885 (1885 dk vfèkfu;e VIII), dk vè;k; X; vFkok NkVkukxij vfHkèkfr vfèkfu;e] 1908 (1908 dk vfèkfu;e VI), dk vè;k; XII vFkok lFky ijxuk 0;oLFkk iu fofu;eu] 1872 (1872 dk fofu;eu 3) vFkok fcgkj èkfr pdcnh vkj [kMdj.k fuokj.k vfèkfu;e] 1956 (1956 dk fcgkj vfèkfu;e 22) d vèkhu dk;okgh eA*

धारा 19 कहती है कि धारा 3 की उपधारा (4) के खंड (iii) के अधीन अंतिम रूप से प्रकाशित सतत खतियान और अभिधारी लेजर रजिस्टर में प्रत्येक प्रविष्टि ऐसी प्रविष्टि में निर्दिष्ट मामले का साक्ष्य होगी और उपखंड (ii) के मुताबिक शुद्ध की गयी उपधारित की जाएगी जबतक इसे इस धारा के खंड (a) और (b) में निर्दिष्ट कार्यवाहियों में साक्ष्य द्वारा गलत सिद्ध नहीं किया जाता है जो सक्षम अधिकारिता के सिविल न्यायालय में कार्यवाही और बिहार अभिधृति अधिनियम, 1885, छोटानागरपुर अभिधृति अधिनियम, 1908; संथाल परगना व्यवस्थापन विनियमन, 1872 और बिहार जोतों की चकबंदी एवं खंडकरण निवारण अधिनियम, 1956 के अनेक प्रावधानों के अधीन अन्य कार्यवाही सम्मिलित करती है।

26. संक्षेप में यह है कि जहाँ तक इसके प्रभाव का संबंध है, नामांतरण कार्यवाही का सीमित विस्तार हैं और नामांतरण कार्यवाही का प्रयोजन स्वयं 1973 के अधिनियम से अत्यन्त स्पष्ट है जो सारत: सुझाती है कि ये मुख्यत: राज्य और राजस्व प्राधिकारियों के हित को सुरक्षित करने की कार्यवाही है ताकि राज्य कृषि भूमि के उपर व्यक्ति के अधिकार को जान सके और जब एक बार नामों को राजस्व अभिलेख

में प्रविष्ट किया जाता है, उन्हें केवल 1973 के अधिनियम की धाराओं 3 से 13 तक में उल्लिखित कारणों से परिवर्तित किया जा सकता है। उक्त निर्दिष्ट प्रावधान हकदारी के संबंध में गंभीर विवाद के मामलों में घोषणा करवाने के लिए नहीं हैं और, इसलिए, 1973 के अधिनियम की धारा 5 द्वारा विनिर्दिष्टत: प्रावधानित किया गया है कि जब सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन धृति अथवा उसके भाग का कब्जा डिक्री के निष्पादन में डिक्री धारक को अथवा न्यायालय द्वारा नीलामी विक्रय में खरीदार को दिया जाता है अथवा जब बँटवारा के लिए अथवा बंधक के पुरोबंध के लिए अंतिम डिक्री पारित किया गया है, डिक्री निष्पादित करने वाला न्यायालय अथवा बँटवारा अथवा पुरोबंध के लिए अंतिम डिक्री पारित करने वाला न्यायालय, यथास्थिति, विहित फॉर्म में क्षेत्र के अंचलाधिकारी को तथ्य का नोटिस भी देगा। अंचलाधिकारी के पास न्यायालय की डिक्री और 1973 के अधिनियम के अधीन कब्जा के पारिणामिक प्रभाव अथवा अन्यथा को परिवर्तित अथवा उपांतरित करने अथवा अवज्ञा करने की अधिकारिता नहीं है। राजस्व अभिलेख में शुद्धि करने वाले अंचलाधिकारी की सीमित अधिकारिता और कार्यवाही की प्रकृति को देखते हुए अंचलाधिकारी के पास संपत्ति में अधिकार, हक अथवा हित की घोषणा का डिक्री अथवा आदेश पारित करने की शक्ति और अधिकारिता नहीं है और/अथवा अंतरण अथवा व्यवस्थापन के लिखत की वैधता और विधिमान्यता के बारे में घोषणा करने अथवा विवादित उत्तराधिकार मामलों के विवाद्यक, जो शक्ति भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के प्रावधानों के अधीन सिविल न्यायालयों में निहित है, को विनिश्चित करने का अधिकार नहीं है।

27. प्रश्न उद्भूत होता है कि किसी मामले में जहाँ एक पक्ष दूसरे व्यक्ति, जिसका नाम सतत खतियान अथवा अधिकार अभिलेख में दर्ज किया गया है, के प्रतिकूल अधिकार का दावा करता है, क्या वह नामांतरण के लिए आवेदन दे सकता है।

28. वर्ष 1973 के अधिनियम की योजना, जैसा हमने धाराओं 3 से 13 तक से गौर किया है, कहीं पर भी इसके लिए नहीं प्रावधानित करती है। तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि धारा 4 से 10 के अधीन किसी सूचना पर और धाराओं 11 एवं 12 के अधीन आवेदन पर और धारा 13 के अधीन रिपोर्ट पर केवल अंचलाधिकारी धारा 14 के अधीन आवेदन विनिश्चित करने के लिए अग्रसर हो सकता है। धाराओं 3 से 13 में और धारा 14 में कहीं प्रावधानित नहीं किया गया है कि कोई व्यक्ति, जिसे सतत खतियान और अधिकार अभिलेख में गलत प्रविष्टि के विरुद्ध शिकायत है, दर्ज प्रविष्टि के मुकाबले भूमि में अपना अधिकार, हक और हित विनिश्चित करवाने के लिए आवेदन दाखिल कर सकता है। हम यहाँ पुनर्स्मरण कर सकते हैं कि अंचलाधिकारी को दिए गए कर्तव्य के मुताबिक उसे स्वयं धारा के उपखंड (1) में प्रावधानित प्रक्रिया का अनुसरण करके सतत खतियान और अभिधारी लेजर रजिस्टर तैयार करने और रखने की आवश्यकता है और अन्य मामलों में अंचलाधिकारी सूचना पा सकता है जैसा धारा 4 से 13 के अधीन प्रावधानित किया गया है।

29. उक्त प्रावधानों की योजना से स्पष्ट है कि स्पष्टत: सतत खतियान में और अभिधारी लेजर रजिस्टर में प्रविष्टियों के परिवर्तन के लिए नामांतरण आवेदन का दावा उस व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता है जिसका उस व्यक्ति जिसका नाम राजस्व अभिलेख में प्रविष्ट किया गया है के हित के प्रतिकूल हित है और, इसलिए, इस दावा के साथ कि उनके अधिकार का स्रोत स्वतंत्र है और स्वयं प्रत्यर्थीगण/रिट याचीगण के प्रतिकूल है, अपीलार्थीगण के नामों की प्रविष्टि के लिए दाखिल आवेदन पोषणीय नहीं था। यह प्रतीत होता है कि कालक्रम में नामांतरण कार्यवाही, जिसका विस्तार सीमित है और जो 1973 के अधिनियम के अधीन अंचलाधिकारी को सीमित अधिकारिता देती है, अपने विस्तार के परे तक बढ़ गयी और व्यवहार में उस व्यक्ति के नाम को प्रविष्ट करने के लिए कार्यवाही में विपरीत मुकदमा बन सकती थी जो उस व्यक्ति जिसका नाम राजस्व अभिलेख में दर्ज किया गया है के माध्यम से अधिकार का दावा कर रहा है और मूल अभिलिखित व्यक्ति के मृत्यु के फलस्वरुप और अभिलिखित व्यक्ति का

उत्तराधिकारी होने के नाते अथवा अंतरण, विनिमय, करार, व्यवस्थापन, पट्टा, बंधक, उपहार के फलस्वरुप अथवा किसी अन्य साधन द्वारा अथवा न्यायालय की डिक्री के फलस्वरुप अथवा किसी अन्य साधन द्वारा अथवा न्यायालय की डिक्री के फलस्वरुप अथवा भूदान यज्ञ कमिटि द्वारा प्रदान भूमि के फलस्वरुप अथवा भूमि अर्जन अधिनियम अथवा अन्य संविधियों के अधीन भूमि के अर्जन के परिणाम के फलस्वरुप अधिकार का दावा कर रहा है, किंतु विधित:, अंचलाधिकारी को अधिनियम की धारा 3 से 13 तक के अधीन प्रावधानित से भिन्न प्रतिकूल दावों को विनिश्चित करने की अधिकारिता नहीं है।

30. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य को विवादित नहीं कर सके थे कि नामांतरण कार्यवाही में किसी पक्ष के अधिकार, हक और हित के संबंध में कोई घोषणा नहीं की जा सकती है और न हीं किसी पक्ष को बेदखल करके दूसरे पक्ष को कब्जा देने के लिए कोई डिक्री/कब्जा का आदेश पारित किया जा सकता है भले ही उसके पास भूमि के अंतरण का वैध और विधिक दस्तावेज हो। विद्वान अधिवक्ताओं ने सही प्रकार से ऐसा इस कारण से स्वीकार किया कि नामांतरण कार्यवाही में कार्यवाही मुख्यत: उक्त निर्दिष्ट अंतरण और उत्तराधिकार के प्रश्न प्रासंगिक हैं और कब्जा अधिक प्रासंगिक है जैसा 1973 के अधिनियम की धारा 5 से प्रकट है जो कहती है कि मात्र डिक्री पारित करके नामांतरण प्रभावकारी नहीं बनाया जा सकता है बल्कि पारिणामिक कब्जा दिया जाना भी आवश्यक है।

31. इस स्थिति में, पक्षगण वर्ष 1998 से संपत्ति में अपने अधिकार, हक और हित की घोषणा जैसे पारिणामिक अनुतोषों के बिना और एक पक्ष से दूसरे पक्ष को कब्जा दिए जाने के किसी पारिणामिक अनुतोष के बिना राजस्व अभिलेख में अपना नाम प्रविष्ट करवाने के लिए मुकदमें से जूझते रहे। ऐसे अनुतोषों का दावा इस सादे एवं सरल कारण मात्र से नहीं किया गया है क्योंकि ऐसा अनुतोष 1973 के अधिनियम के अधीन अंचलाधिकारी द्वारा अथवा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अथवा पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा प्रदान नहीं किया जा सकता है। अत:, यदि पक्षों को अपील और पुनरीक्षण दाखिल करके और तत्पश्चात रिट याचिका और लेटर्स पेटेन्ट अपील में और तत्पश्चात विशेष अनुमति से अपील में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आदेशों को चुनौती देकर घोषणा और कब्जा और व्यादेश के वास्तविक अनुतोष के बिना राजस्व अभिलेख में अपने नामों की प्रविष्टि मात्र के लिए मुकदमेबाजी करने की अनुमति दी जाती है, तब सर्वोच्च न्यायालय से निर्णय प्राप्त करने पर भी पक्षगण केवल राजस्व अभिलेख में अपना नाम प्रविष्ट करवा पाएँगे जिसका 1973 के अधिनियम की धारा 19 के अधीन केवल उपधारणात्मक मूल्य है और चूँकि यह साक्ष्य सिविल न्यायालय की कार्यवाही में खंडनीय है जहाँ माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक मुकदमेबाजी करने के बाद वाद दाखिल किया जाएगा और जहाँ दूसरा पक्ष दर्शा सकता है कि राजस्व अभिलेख में प्रविष्टि के ऐसे साक्ष्य का मूल्य नहीं है और सिविल न्यायालय निश्चय ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि प्रतिवाद करने वाले पक्ष द्वारा पर्याप्त रूप से उपधारणा खंडित की गयी है, तब अंचलाधिकारी के आदेश के साथ अंतिमता संलग्न करके और प्रावधान बनाकर कि विधि के सक्षम न्यायालय से वाद में वास्तविक अनुतोष प्राप्त करने के लिए पक्षों को अनुमति देते हुए धारा 3 से 13 तक में उल्लिखित प्रकृति के अविवादित मामलों को अंचलाधिकारी विनिश्चित कर सकता है, ऐसे घुमावदार रास्ते से बचा जा सकता है।

32. यह मामला उनमें से एक है जहाँ तथ्य विवादित नहीं है कि वर्ष 1998 में जब अंचलाधिकारी के समक्ष आवेदन दिया गया था, काफी पहले से राजस्व अभिलेख में प्रत्यर्थीगण/रिट याचीगण के नाम थे और अपीलार्थीगण प्रत्यर्थीगण के माध्यम से हक का दावा नहीं कर रहे थे और, इसलिए, उनका रिट याचीगण/प्रत्यर्थीगण के प्रतिकूल विरोधी दावा था। वर्ष 1998 से फिस्कल कार्यवाही मामले में जिसने पक्षों को वास्तविक अनुतोष नहीं दिया जा सकता है, आदेश प्राप्त करने के लिए कुल सात फोरमों के पास गए। यदि पक्षों ने वर्ष 1998 में सक्षम अधिकारिता के न्यायालय में समुचित प्रकृति का वाद दाखिल किया

होता, उन्हें संपत्ति के बाजार मूल्य, जैसा यह वर्ष 1998 में था, के अनुसार न्यायालय शुल्क का भुगतान करना पड़ सकता था। लगभग 14 वर्षों तक मुकदमा लड़ने के बाद पक्षगण संपत्ति में अधिकार, हक और हित की घोषणा के बिना राजस्व अभिलेख में अपने नामों को प्रविष्ट करवा सकते हैं। चौदह वर्षों के इस विलंब के बाद यदि पक्षगण वाद दाखिल करेंगे, तब उन्हें वर्ष 2012 में संपत्ति के मूल्य के मुताबिक न्यायालय शुल्क का भुगतान करना होगा परन्तु यह कि यह आदेश अंतिमता प्राप्त कर ले और पक्षगण वास्तविक अनुतोष के लिए वाद दाखिल करना चुनते हैं। दोहराने की कीमत पर, हम संप्रेक्षित कर सकते हैं कि अपीलार्थीगण न तो घोषणा पा सकते हैं और न ही कब्जा पा सकते हैं और न ही इन कार्यवाहियों में किसी पक्ष को बेदखल कर सकते हैं, फिर भी वे विधि की उपलब्धता के कारण मुकदमेबाजी करने के लिए मजबूर हैं अथवा अधिक महत्वपूर्ण कारण यह हो सकता है कि उन्हें तुरन्त सिविल वाद दाखिल करने की सलाह नहीं दी गयी थी जब उन्होंने पाया कि राजस्व अभिलेख में प्रविष्टि गलत है। इन सारे मुकदमों से उनको समुचित अनुतोष के लिए वाद दाखिल करने की सलाह देकर बचा जा सकता था।

33. हमारा सुविचारित मत है कि नामांतरण कार्यवाही में भी यदि अभिलिखित व्यक्ति के उत्तराधिकारियों के बीच दावा-प्रतिदावा के संबंध में गंभीर विवाद है, तब उन्हें समुचित वाद दाखिल करने का निर्देश दिया जा सकता है। हम **सुन्दरी देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** 1993 (1) PLJR 231, में दिए गए पटना उच्च न्यायालय के पूर्व निर्णय की मदद ले सकते हैं जिसमें माननीय न्यायाधीश एस॰ बी॰ सिन्हा, जो वे तब थे, द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि भले ही नामांतरण के लिए अनुसरित किए जाने के लिए आवश्यक प्रक्रिया का राजस्व प्राधिकारियों द्वारा कठोर अनुपालन नहीं किया गया है, उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 227 के अधीन अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग नहीं करना चाहिए और उपचार समुचित अनुतोष प्राप्त करने के लिए सक्षम सिविल न्यायालय के समक्ष सिविल वाद दाखिल करना है।

34. बिहार अभिधारी धृति (अभिलेखों की देखरेख) अधिनियम, 1973 की धारा 15 और धारा 16 में समुचित संशोधन और धारा 14 में भी समुचित संशोधन करके इस प्रकार के मुकदमों से बचा जा सकता है ताकि अंचलाधिकारी के आदेश को अंतिमता दिया जा सके और समुचित धारा अथवा प्रावधान अंत:स्थापित करके यह आवश्यक बनाते हुए कि धारा 14 के अधीन अंचलाधिकारी के आदेश के बाद व्यथित पक्ष सक्षम अधिकारिता के न्यायालय में सिविल वाद दाखिल कर सकता है ताकि धारा 14 के अधीन पारित आदेश के विरुद्ध व्यथित पक्षगण, धारा 15 के अधीन अपील के अधिकार और धारा 16 के अधीन पुनरीक्षण में आदेश को चुनौती देने के अधिकार की उपलब्धता मात्र के कारण इस मार्ग को अपनाने के लिए पथ विमुख नहीं किए जा सकते हैं, जिसका परिणाम अंतत: इसी प्रभाव का होगा अर्थात् पक्षों के लिए न्यायालय से घोषणा इप्सित करना आवश्यक बनाने वाला और कब्जा, आदि के अनुतोष की प्रार्थना करने वाला, जहाँ वे अपने कब्जा का संरक्षण और संपत्ति के लिए रिसीवर की नियुक्ति का अंतरिम अनुतोष पा सकते हैं जो अनुतोष इन कार्यवाहियों में उपलब्ध नहीं हैं जहाँ किसी वास्तविक अनुतोष के बिना पक्षगण दशकों तक मुकदमा लड़ सकते हैं।

35. अत:, हमारा सुविचारित मत है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण है जिसे भिन्न कारणों से पारित किया गया है किंतु चूँकि हमारा दृष्टिकोण है कि अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल मूल आवेदन पोषणीय नहीं था, अत:, इस लेटर्स पेटेन्ट अपील को खारिज किया जाता है।

36. इस निर्णय की प्रति राज्य विधि आयोग और राज्य सरकार को विधि सचिव के माध्यम से भेजी जाए ताकि वे इस आदेश में उठाए गए विवाद्यक का परीक्षण कर सके और राज्य सरकार भी विचार कर सकती है कि क्या कब्जा के अनुतोष के साथ अथवा कब्जा के बिना घोषणा के लिए और कृषक भूमि

के लिए किसी आनुवंशिक अनुतोष के लिए वाद में संपत्ति के बाजार मूल्य के अनुसार, मूल्यानुसार न्यायोचित है अथवा इसे अल्प नियत न्यायालय शुल्क होना चाहिए जैसा अन्य राज्यों में उद्ग्रहण योग्य हो सकता है, इस तथ्य को देखते हुए कि कृषकों के पास भूमि का बड़ा टुकड़ा हो सकता है किंतु उनके पास अपनी भूमि के बाजार मूल्य के अनुसार न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का साधन नहीं हो सकता है और हम तथ्य का न्यायिक ध्यान ले सकते हैं कि अन्य राज्यों में कृषि योग्य भूमि के उपर किसी अधिकार का दावा करने वाले व्यक्ति पर न्यायालय शुल्क का इस प्रकार का भार नहीं हो सकता है। इस चरण पर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन न्यायालय शुल्क का भुगतान किए बिना वाद दाखिल करने का प्रावधान है। किंतु, हमारा सुविचारित मत है कि कृषि योग्य भूमि के मुकदमेबाजों को यह घोषणा प्राप्त करने के लिए कहने की आवश्यकता नहीं है कि वे दरिद्र व्यक्ति है और, इसलिए, हमारा सुविचारित मत है कि राज्य सरकार को केवल कृषि भूमि के ऊपर अधिकार, हक, कब्जा और हित के लिए वाद में कृषकों को न्यायालय शुल्क देने से मुक्त करने के लिए समुचित विधि बनाने का विचार करना चाहिए।

पूर्वोल्लिखित कारणों से एल॰ पी॰ ए॰ खारिज किया जाता है, व्यय को लेकर आदेश नहीं।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

सत्यदेव प्रसाद गुप्ता

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (C) No. 5911 of 2002. Decided on 30th August, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

स्टांप अधिनियम, 1899—धारा 54—अनुपयोगित गैर-न्यायिक स्टांप की वापसी—इनकार—गैर-न्यायिक स्टांप की वापसी के लिए आवेदन समय के भीतर दिया गया था और उपायुक्त के कार्यालय में स्टांप शीटों की विवरण भी प्रस्तुत किए गए थे—इस आधार पर इनकार कि विहित फॉर्म में आवेदन नहीं दिया गया था, संपोषणीय नहीं है—नए आदेश के लिए मामला उपायुक्त को वापस भेजा गया। (पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.—Mr. Sachidanand Das, For the Petitioner; JC to SC-II, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.—पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची स्टांप रिफंड याचिका सं॰ 1 वर्ष 1999 में उपायुक्त, पाकुड़ द्वारा पारित दिनांक 3.6.2000 के आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 की धारा 54 के निबंधनानुसार अनुपयोगित स्टांप के रिफंड के लिए आवेदन इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया है कि गैर-न्यायिक स्टांपों के अनुपयोग का कारण उसके आवेदन में उपदर्शित नहीं किया गया है।

3. याची का प्रतिवाद यह है कि उसने भूमि के टुकड़े के संबंध में विक्रय विलेख के रजिस्ट्रेशन के लिए गैर-न्यायिक स्टांप खरीदा था जिसके लिए दिनांक 1.8.1998 को चालान सं॰ 5 दिनांक 1.8.1998 के तहत पाकुड़ ट्रेजरी में 16,700/- की आवश्यक राशि दी गयी थी और, तत्पश्चात, गैर-न्यायिक स्टांप के शीटों की आपूर्ति की गयी थी, किंतु इसका उपयोग नहीं किया जा सका था क्योंकि

याची का विक्रेता वृद्ध व्यक्ति और कोलकाता का निवासी होने के कारण दिनांक 1.8.1998 को स्टांप की खरीदगी की तिथि से छह माह की विहित अवधि के भीतर विक्रय विलेख के रजिस्ट्रेशन के लिए पाकुड़ नहीं आ सका था। याची ने दिनांक 25.1.1999 को विक्रय विलेख के गैर-निष्पादन के लिए अपरिहार्य परिस्थितियों को स्पष्ट करते हुए 16,700/- रुपए के स्टांप मूल्य, जिसे स्टांप के कुल मूल्य का 10% काटने के बाद वापस किया जाना था, का रिफंड इप्सित करते हुए छह माह की अनुबंधित अवधि के भीतर उपायुक्त, पाकुड़ के समक्ष रिट आवेदन के परिशिष्ट-2 में अंतर्विष्ट आवेदन दिया। यह निवेदन किया गया है कि समय के भीतर आवेदन दाखिल किए जाने और समस्त आवश्यक तथ्यों और कारणों को दिए जाने के बावजूद उपायुक्त ने रहस्यमय आदेश द्वारा इसको अस्वीकार कर दिया है।

4. प्रत्यर्थीगण उपस्थित हुए हैं और अपना प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया है जिसमें अतिरिक्त आधार भी लिया गया है कि विहित फॉर्म में आवेदन नहीं दिया गया था। किंतु, याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि परिशिष्ट-B के रूप में संलग्न आवेदन केवल प्रिंटेड फॉर्म है और न कि कोई सांविधिक फॉर्म जिसे पूर्वोक्त प्रयोजन से विहित किया गया कहा जा सकता है।

5. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, यह प्रतीत होता है कि गैर-न्यायिक स्टांप के रिफंड के लिए आवेदन समय के भीतर दिया गया था और गैर-न्यायिक स्टांप की उक्त शीटों के विवरण को भी याची की ओर से उक्त मामले में उपायुक्त, पाकुड़ के कार्यालय में प्रस्तुत किया गया था। अतः, प्रतीत होता है कि विवेक के समुचित इस्तेमाल के बिना आक्षेपित आदेश पारित किया गया है एवं इसके अतिरिक्त भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 की धारा 54 के प्रावधान के मुताबिक आवेदन की अस्वीकृति का आधार भी असंपोषणीय है। इन परिस्थितियों में, मामला नए सिरे से विचार करने के लिए और आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर विधि के अनुरूप विनिश्चित करने के लिए उपायुक्त, पाकुड़ के पास वापस भेजा जाता है।

6. पूर्वोक्त संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o ç'kkr dekj] U;k;efrx.k

सतीश नाग (245 में)

देव कुमार साहू (91 में)

राजेश नाग एवं एक अन्य (402 में)

cuke

झारखंड राज्य (सभी में)

Cri. App. (D.B.) Nos. 245 of 2009 with 91 and 402 of 2010. Decided on 30th August, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 57 वर्ष 2007/विचारण सं॰ 37 वर्ष 2008 में अपर सत्र न्यायाधीश, सिमडेगा द्वारा (समस्त मामलों में) पारित दिनांक 22.9.2008 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34—हत्या–आजीवन कारावास–अभियोजन साक्षीगण अनुश्रुत गवाह हैं–घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है–संपूर्ण अभियोजन मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है–प्रकाश के स्रोत की अनुपस्थिति में अपीलार्थीगण की पहचान सिद्ध नहीं की गयी–अपीलार्थीगण द्वारा दिया गया प्रकटिकरण बयान भी सिद्ध नहीं

किया गया–अभियोजन मामला सिद्ध नहीं किया–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त–अपीलें अनुज्ञात। (पैराएँ 11 से 17)

अधिवक्तागण.–Mrs. Vani Kumari (in all), For the Appellants; Mr. Sekhar Sinha (in 245, 402) Mr. Ravi Prakash (in 91), For the Respondents.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.–ये अपीलें एस॰ टी॰ सं॰ 57 वर्ष 2007, विचारण सं॰ 37 वर्ष 2008 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने समस्त अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया और उनको आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया। उन्होंने आगे प्रत्येक अपीलार्थी के विरुद्ध 15,000/- रुपयों का जुर्माना भी अधिनिर्णीत किया और उक्त जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में उनको दो माह का सामान्य कारावास भुगतने का निर्देश दिया।

2. चूँकि पूर्वोक्त अपीलें एक ही दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश से उद्‌भूत हुई हैं, उन्हें साथ सुना जा रहा है और इसे एक ही निर्णय द्वारा निपटाया जा रहा है।

3. अनावश्यक विवरणों के बिना अभियोजन मामला संक्षेप में यह है कि दिनांक 25.12.2006 को रात्रि लगभग 8 बजे जब सूचक (शीतल साहू) अपने खेत से लौट रहा था, उसने अपने पुत्र की चीख सुनी और अपने घर की ओर भागा। आगे अभिकथित किया गया है कि लौटते समय टॉर्च के प्रकाश में उसने देखा कि उसका बड़ा पुत्र देव कुमार साहू, राजेश नाग, सतीश नाग और सुदर्शन साहू तलवार, लाठी और फरसा से लैस होकर उसके घर के पीछे से भाग रहे थे। आगे कथन किया गया है कि घर पहुँचने पर उसने आंगन में अपने छोटे पुत्र देवेन्द्र साहू का मृत शरीर देखा। उसने मृतक देवेन्द्र साहू के मस्तक पर उपहतियों को देखा। उसने आगे कथन किया कि वह अपने द्वितीय पुत्र अर्थात् संजय साहू को घर में नहीं पा सका था। किंतु, सबेरे पुरु सिंह के खेत से पुलिस की उपस्थिति में उसका मृत शरीर बरामद किया गया था। कथन किया गया है कि एक सप्ताह पहले धान और लकड़ी के बल्लों के संबंध में देव कुमार साहू और देवेन्द्र साहू के बीच झगड़ा हुआ था और उस समय अपीलार्थी देव कुमार साहू ने देवेन्द्र साहू को धमकाया था। तद्‌नुसार, कथन किया गया है कि देव कुमार साहू ने अन्य अपीलार्थीगण के साथ वर्तमान अपराध किया था।

4. पूर्वोक्त फर्दबयान के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन बानो पी॰ एस॰ केस सं॰ 65 वर्ष 2006 संस्थापित किया गया था और पुलिस ने अन्वेषण किया। अन्वेषण के दौरान, पुलिस ने मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार किया, रक्तरंजित मिट्‌टी जब्त किया और अभिग्रहण सूची तैयार किया। अन्वेषण के दौरान, पुलिस ने सह–अभियुक्त सतीश नाग की संस्वीकृति पर तलवार और डाउली भी बरामद किया और अभिग्रहण सूची तैयार किया। आगे प्रतीत होता है कि मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार करने के बाद देवेन्द्र साहू और संजय साहू के मृत शरीरों को शव परीक्षण के लिए भेजा गया था और तत्पश्चात पुलिस द्वारा शव परीक्षण रिपोर्ट प्राप्त किया गया था। आगे प्रतीत होता है कि अन्वेषण पूरा करने के बाद पुलिस ने अपीलार्थीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आरोप–पत्र दाखिल किया। विद्वान सी॰ जे॰ एम॰, सिमडेगा ने अपराध का संज्ञान लिया और मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य है।

5. सुपुर्दगी के बाद, सत्र न्यायालय में मामले का अभिलेख प्राप्त किया गया और न्यायाधीश ने दिनांक 30 जुलाई, 2007 के आदेश द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आरोप विरचित

किया और इसे अपीलार्थीगण को स्पष्ट किया जिसके प्रति उन्होंने निर्दोषिता का अभिवचन किया और विचारण किए जाने का दावा किया। तत्पश्चात् अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में कुल मिलाकर 13 गवाहों का परीक्षण किया है।

6. अभियोजन ने मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट, अभिग्रहण सूची, शव परीक्षण रिपोर्ट, फर्दबयान और औपचारिक प्राथमिकी, आदि को दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में अभिलेख पर लाया। तब प्रतीत होता है कि अभियोजन मामला सुनने के बाद विद्वान अवर न्यायालय ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपीलार्थीगण के बयानों को दर्ज किया जिसमें उनका बचाव पूरे इनकार का है।

7. आगे प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के बाद अपना दिनांक 22.9.2008 के निर्णय और आदेश द्वारा अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया और उनको आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया और प्रत्येक को 15,000/- रुपया जुर्माना भरने का निर्देश भी दिया और पूर्वोक्त जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में उन्हें दो माह का सामान्य कारावास भुगतना था।

8. अवर न्यायालय के निर्णय का विरोध करते हुए अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्रीमती वाणी कुमारी निवेदन करती हैं कि अभियोजन का सारा मामला अ॰ सा॰ 11 (सूचक) के एकमात्र परिसाक्ष्य पर टिका है। वह निवेदन करती हैं कि अ॰ सा॰ 11 का बयान विश्वसनीय नहीं है, अत: उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। वह निवेदन करती हैं कि प्राथमिकी में अ॰ सा॰ 11 ने कथन किया कि उसने टॉर्च की रोशनी में अपीलार्थीगण को पहचाना था जब वे उसके घर के पीछे से भाग रहे थे, किंतु प्रतिपरीक्षण में अ॰ सा॰ 11 ने स्पष्टत: कथन किया कि जब अपीलार्थीगण भाग रहे थे, उसने डर के कारण टार्च नहीं चमकाया था। तद्नुसार, यह निवेदन करती है कि अ॰ सा॰ 11 का साक्ष्य पूर्णत: विश्वसनीय नहीं है और इसलिए उसके एकमात्र साक्ष्य पर अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि अपेक्षित नहीं है। वह आगे निवेदन करती हैं कि अभियोजन की कहानी कि अपराध करने में प्रयुक्त हथियारों को अपीलार्थी सतीश नाग की संस्वीकृति पर बरामद किया गया था, अ॰ सा॰ 8 के बयान की दृष्टि में अस्वीकार कर दिए जाने का दायी है। वह आगे निवेदन करती है अभिकथित बरामद का एक अन्य गवाह अर्थात् अ॰ सा॰ 10 ने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है। यह निवेदन किया गया है कि अभियोजन के मामले के समर्थन में कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है कि अपीलार्थी सतीश नाग की संस्वीकृति पर अपराध करने में प्रयुक्त हथियार बरामद किया गया था। वह निवेदन करती हैं कि अ॰ सा॰ 11 ने स्वीकार किया कि मृतक संजय साहू के साथ अपीलार्थीगण का संबंध सौहार्दपूर्ण था। अत:, वर्तमान अपराध करने का कारण उनके पास नहीं है। अ॰ सा॰ 11 द्वारा स्वीकार किया गया है कि उसका किसी रामचंद्र साहू के साथ कटु संबंध था जिसके साथ सूचक भूमि विवाद का मुकदमा लड़ रहा था। अत:, संभावना हो सकती है कि उक्त घटना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जा सकती थी। वह निवेदन करती हैं कि सूचक अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह करना चाहता था और अभियुक्त देव कुमार साहू और उसके दो भाई अर्थात् देवेन्द्र साहू और संजय साहू (मृतक व्यक्ति) सूचक को ऐसा करने से रोक रहे थे। वह निवेदन करती है कि शायद सूचक ने अपने दो पुत्रों देवेंद्र साहू और संजय साहू की हत्या कर दी थी और अपने तीसरे पुत्र अर्थात् देव कुमार साहू का उक्त अपराध में झूठा आलिप्त कर दिया था। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्ति के हकदार हैं।

9. दूसरी ओर रवि प्रकाश एवं विद्वान अपर लोक अभियोजक श्री शेखर सिन्हा ने निवेदन किया कि सूचक अपीलार्थी देव कुमार साहू का पिता है। अत:, यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि वह स्वयं अपने पुत्र को झूठा आलिप्त करेगा। आगे निवेदन किया गया है कि साक्ष्य में यह आया है कि घटना

की तिथि की रात्रि चांदनी रात थी और इस प्रकार चांदनी में पिता द्वारा अपने पुत्र और निकट संबंधियों को पास से पहचान करना संभव है। वे निवेदन करते हैं कि अन्वेषण अधिकारी ने अपीलार्थी सतीश नाग की संस्वीकृति के आधार पर अपराध करने में प्रयुक्त हथियार की जब्ती सिद्ध किया और उस पर अविश्वास करने के लिए कुछ नहीं है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपीलार्थीगण के विरुद्ध लगाए गए आरोप को सिद्ध करने में सक्षम रहा है। अत:, इस न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

10. निवेदनों को सुनने पर हमने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट, शव परीक्षण रिपोर्ट और डॉक्टर (अ॰ सा॰ 12) जिन्होंने देवेन्द्र साहू और संजय साहू के मृत शरीरों का शव परीक्षण किया, के अभिसाक्ष्य के परिशीलन से स्पष्ट है कि मृतक देवेन्द्र साहू ने अपने शरीर पर कुल मिलाकर 10 उपहतियाँ पायी थी जबकि मृतक संजय साहू ने अपने शरीर पर कुल मिलाकर छह उपहतियाँ पायी थी। अ॰ सा॰ 12 के अनुसार ये समस्त उपहतियाँ तेज धार वाले हथियार द्वारा प्राप्त की गयी थी और शव पूर्व प्रकृति की थी। डॉक्टर के मत में दोनों मृतकों की मृत्यु उनके द्वारा प्राप्त की गयी उपहतियों के कारण हुई। अत:, हम पाते हैं कि दोनों मृतकों का मानव वध हुआ था। अत:, इस मामले में विनिश्चयकरण के लिए अब प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या इन अपीलार्थीगण का वर्तमान अपराध करने में हाथ है? यह हमें अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के लिए कहता है।

11. अ॰ सा॰ 1 दामोदर सिंह, अ॰ सा॰ 2 हरिश्चंद्र सिंह, अ॰ सा॰ 3 रामधनी साहू अनुश्रुत गवाह हैं। उन्होंने स्पष्टत: कथन किया है कि उन्होंने अपनी आँखों से घटना नहीं देखा था। अ॰ सा॰ 4 राम चंदर साहू मृत्यु समीक्षा का गवाह है और उसने घटना के तरीके के बारे में कुछ नहीं कहा है। अ॰ सा॰ 5 रघु सिंह अभिग्रहण सूची का गवाह है जिसकी उपस्थिति में अन्वेषण अधिकारी ने रक्त रंजित मिट्टी जब्त किया था। अ॰ सा॰ 6 पुनिया पहान भी अभिग्रहण सूची गवाह है, जिसकी उपस्थिति में रक्तरंजित मिट्टी बरामद की गयी थी। वह घटना की बिंदु पर अनुश्रुत गवाह है। अ॰ सा॰ 7 सावन सिंह भी घटना के बिंदु पर अनुश्रुत गवाह है। अ॰ सा॰ 8 बिमल बागे अभिग्रहण सूची गवाह है जिसने कथन किया कि पुलिस ने सतीश नाग के घर से कुछ वस्तुओं को जब्त किया था और अभिग्रहण सूची तैयार किया था। पैरा सं॰ 4 पर उसने कथन किया कि पुलिस ने सतीश नाग की उपस्थिति में कुछ भी बरामद नहीं किया। उसने आगे कथन किया कि सतीश नाग की गिरफ्तारी के समय पुलिस के पास पहले से ही तलवार और डाउली था। अ॰ सा॰ 9 विश्राम बखला और अ॰ सा॰ 10 सिलवियस कुलु को अभियोजन द्वारा पक्षद्रोही घोषित किया गया है क्योंकि उन्होंने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया था। अ॰ सा॰ 11 सूचक है जिसने अभियोजन मामले का समर्थन किया। अ॰ सा॰ 12 डॉ॰ कृष्ण कुमार शर्मा है जिन्होंने ऑटोप्सी किया और अ॰ सा॰ 13 वर्तमान मामले का अन्वेषण अधिकारी है।

12. इस प्रकार, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के परिशीलन से स्पष्ट है कि घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है और अभियोजन का संपूर्ण मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। अभियोजन द्वारा विश्वास की गयी पहली परिस्थिति यह है कि अ॰ सा॰ 11 ने अपीलार्थीगण को पहचाना था जब वे तलवार, लाठी, फरसा से लैस होकर भाग रहे थे और अभियोजन द्वारा विश्वास की गयी दूसरी परिस्थिति अपीलार्थी सतीश नाग की संस्वीकृति पर अपराध करने में प्रयुक्त हथियारों की बरामदगी है। अत:, हम यह विचार करने के लिए अग्रसर होते हैं कि क्या अभियोजन पूर्वोक्त परिस्थितियों को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में सफल रहा था।

13. अ॰ सा॰ 11 शीतल साहू ने अपने मुख्य परीक्षण में कथन किया था कि जब वह रात्रि 8-8.30 बजे अपने खेत से घर लौट रहा था, उसने अपने पुत्र संजय साहू की चीख सुनी और तब चार व्यक्तियों को अपने घर के पीछे से भागते देखा उसने उन्हें देव कुमार साहू, राजेश नाग, सतीश नाग और सुदर्शन साहू (अपीलार्थीगण) के रूप में पहचाना। मुख्य परीक्षण में, उसने प्रकाश स्रोत प्रकट नहीं किया था जिसके प्रकाश में उसने अपीलार्थीगण को पहचाना। किंतु, प्राथमिकी में उसने कथन किया कि उसने टॉर्च की रोशनी में उनको पहचाना था। किंतु प्रति परीक्षण में, पैरा 12 पर उसने स्पष्टत: कथन किया कि अपीलार्थीगण के भागते समय उसने डर के कारण टॉर्च नहीं चमकाया था। इस प्रकार, हमारे दृष्टिकोण में, प्रकाश स्रोत नहीं है जिसमें अपीलार्थीगण को पहचाना जा सकता था। पैरा सं॰ 13 पर इस गवाह ने कहानी विकसित करने का प्रयास किया कि घटना की तिथि पर चांदनी रात थी और उसने चांदनी में अपीलार्थीगण को पहचाना था। किंतु प्रति परीक्षण में पहली बार यह कहानी विकसित किए जाने के कारण इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। इस गवाह के बयान से प्रतीत होता है कि घर के चारों ओर चारदीवार थी और घर में घुसने के लिए पूर्व और दक्षिण में फाटक थे। इस गवाह ने कथन किया कि वह पूरब की ओर से घर में घुसा। उक्त परिस्थिति के अधीन, उसके लिए अपीलार्थीगण को पहचानना संभव नहीं है जो दक्षिणी ओर से भाग रहे थे और वह भी प्रकाश के स्रोत की अनुपस्थिति में। इस प्रकार, हम पाते हैं कि पहली परिस्थिति को समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध नहीं किया गया है।

14. दूसरी परिस्थिति पर आते हुए हम पाते हैं कि आई॰ ओ॰ ने अपने अभिसाक्ष्य के पैरा 8 में कथन किया था कि अपीलार्थी सतीश नाग ने अपना दोष संस्वीकार किया था और उसकी संस्वीकृति के आधार पर बिमल बागे (अ॰ सा॰ 8) और सिलवियस कुलु (अ॰ सा॰ 10) की उपस्थिति में उसने एक तलवार और एक दाउली तालाब से बरामद किया था और अभिग्रहण सूची तैयार किया था। जैसा उपर गौर किया गया है, आई॰ ओ॰ (अ॰ सा॰ 13) का पूर्वोक्त बयान बिमल बागे (अ॰ सा॰ 8) और सिलवियस कुलु (अ॰ सा॰ 10) द्वारा समर्थित नहीं किया गया है। अ॰ सा॰ 8 ने पैरा 6 पर स्पष्टत: कथन किया कि सतीश नाग की गिरफ्तारी के समय पुलिस के पास पहले से ही तलवार और दाउली था। यह गौर करना महत्वपूर्ण है कि अ॰ सा॰ 8 को पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया है, अत:, उसका बयान अक्षुण्ण बना रहता है। उक्त परिस्थिति के अधीन अन्वेषण अधिकारी का दावा कि उसने सतीश नाग की संस्वीकृति पर तलवार और दाउली बरामद किया, सही प्रतीत नहीं होता है क्योंकि यदि आई॰ ओ॰ का बयान सही था, तब वह किस प्रकार से सतीश नाग की गिरफ्तारी के समय तलवार और दाउली पर काबिज था। अ॰ सा॰ 8 का पूर्वोक्त बयान अभियोजन मामले को चोट पहुँचाता है कि अपीलार्थी सतीश नाग की संस्वीकृति पर अपराध करने में प्रयुक्त हथियार बरामद किया गया था।

15. मामले के उस दृष्टिकोण में हमारा मत है कि अभियोजन द्वारा विश्वास की गयी दूसरी परिस्थिति भी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध नहीं की गयी है।

16. उपर की गयी चर्चा की दृष्टि में और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का परिशीलन करते हुए हम पाते हैं कि अभियोजन अपीलार्थीगण के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है। इस प्रकार, इन अपीलों में आक्षेपित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश को संपोषित नहीं किया जा सकता है।

17. परिणामस्वरुप, इन अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है और सत्र विचारण सं॰ 57 वर्ष 2007 विचारण सं॰ 37 वर्ष 2008 में अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश

को एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। समस्त अपीलार्थीगण अर्थात् सतीश नाग, देव कुमार साहू, राजेश नाग और सुदर्शन साहू जो अभिरक्षा में है को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। अवर न्यायालय को समस्त उक्त नामित अपीलार्थीगण को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उनकी आवश्यकता नहीं है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

हरेन्द्र कुमार एवं अन्य

cuke

भारतीय जीवन बीमा निगम एवं एक अन्य

L.P.A. No. 167 of 2012. Decided on 10th September, 2012.

सेवा विधि–नियुक्ति–पैनल–पैनल केवल दो वर्षों तक अस्तित्वशील रहेगा–याचीगण वर्ष 1999 की चयन सूची में नहीं थे–वर्ष 1999 की चयन सूची के व्यक्तियों को नियुक्ति देने का वचन अथवा योजना नहीं है–अपील खारिज। (पैराएँ 4 से 6)

निर्णयज विधि.–(1983) 2 SCC 33;—Distinguished.

अधिवक्तागण.–Mr. Manoj Tandon, For the Appellants; Mr. Sachin Kumar, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. अपीलार्थीगण वर्ष 1999 की चयन सूची में थे और अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार अपीलार्थीगण-याचीगण भारतीय जीवन बीमा निगम के नीतिगत निर्णय के विनिर्दिष्ट खंड 5, जो प्रावधानित करती है कि जब तक पैनल नि:शेष नहीं किया जाता है अथवा पद विज्ञापित नहीं किया जाता है, अवधि में जो भी कम है तक के लिए पैनल जारी रहेगा, की दृष्टि में अनिश्चित अवधि के लिए पद पर नियुक्ति के हकदार है। किंतु, वर्ष 2007 में एक अन्य नीतिगत निर्णय द्वारा इस नीति को अधिक्रांत कर दिया गया था जिसके द्वारा प्रावधानित किया गया है कि पैनल केवल दो वर्षों तक जीवित रहेगा। चूँकि याची वर्ष 2007 से पहले के वर्ष के चयन पैनल में था, अत:, याची को असंशोधित नीति की दृष्टि में नियुक्ति पाने का अधिकार प्रोद्भूत हुआ क्योंकि संशोधित नीति याची के मामले पर लागू नहीं की जा सकती है, अत: याचीगण-अपीलार्थीगण नौकरी के हकदार थे।

3. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने गुजरात उच्च न्यायालय के दो निर्णयों, बॉम्बे उच्च न्यायालय के एक निर्णय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में से एक पर विश्वास किया।

4. किंतु, हमारा सुविचारित मत है कि उन समस्त मामलों में विचारार्थ प्रश्न बिलकुल भिन्न था। गुजरात उच्च न्यायालय और बॉम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष भारतीय जीवन बीमा निगम ने स्वयं कर्मचारियों में से कुछ को नियुक्ति देना स्वीकार किया और गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णयों में से एक अर्थात् **जीशनभाई चेहाभाई महेरिया बनाम भारत संघ एवं अन्य** मामले में दिए गए निर्णय में गुजरात उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने उन कर्मचारियों, जिन्हें पहले ही नियुक्ति नहीं दी गयी थी, को अनुतोष देने से इनकार कर दिया और उन व्यक्तियों को अनुतोष दिया जिन्हें अस्थायी आधार पर भी पहले ही नियुक्ति दी गयी थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष **भारत संघ एवं अन्य बनाम डी॰ वी॰ अनिल कुमार,**

आदि मामले में सिविल अपील सं॰ 953-968 वर्ष 2005 में दिनांक 19.1.2011 को भारतीय जीवन बीमा निगम कुछ व्यक्तियों को रोजगार देने के लिए विनिर्दिष्ट योजना के साथ आया जो चयन सूची में थे और स्क्रीनिंग, आदि के बाद नियुक्ति का प्रस्ताव दिया। अत:, वह ऐसा मामला था जहाँ एक योजना के अधीन कुछ नियुक्ति दी गयी थी। स्वीकृत रूप से, यहाँ इस मामले में याचीगण वर्ष 1999 की चयन सूची में नहीं थे और न ही वर्ष 1999 की चयन सूची के व्यक्तियों को नियुक्ति देने का वचन अथवा कोई योजना है, अत: उक्त मामला प्रयोज्य नहीं है।

5. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने **गुजरात राज्य बनाम रमन लाल केशवलाल सोनी, (1983)2 SCC 33** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर विश्वास किया और निवेदन किया कि यह याचीगण को प्रोद्भूत अधिकार था जिसे चयन सूची को अभिखंडित करते हुए वर्ष 2007 में पारित आदेश द्वारा वापस नहीं लिया जा सकता था। पूर्व निर्दिष्ट मामले **(गुजरात राज्य बनाम रमन लाल केशव लाल सोनी)** के तथ्य बिलकुल भिन्न हैं और वर्तमान मामले के तथ्यों पर प्रयोज्य नहीं हैं और उस मामले में कर्मचारी ने सरकारी सेवक का दर्जा अर्जित किया था और विधि की प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना नियुक्ति की समाप्ति इप्सित की गयी थी। उन तथ्यों और स्थिति में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है कि जब एक बार कर्मचारी सरकारी सेवक का दर्जा अर्जित करता है, उसे केवल विधि के अनुरुप हटाया जा सकता है। अत:, उसके प्रोद्भूत अधिकार को मान्यता दी गयी थी। यहाँ उन व्यक्तियों का प्रोद्भूत अधिकार नहीं है जिनके नाम चयन सूची में है।

6. अत:, एल॰ पी॰ ए॰ खारिज किया जाता है।

---

ekuuh;k t ;k jk;] U;k;efr

वकील शरण सिंह

cuke

झारखंड राज्य, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से

Criminal Appeal (S.J.) No. 57 of 2007. Decided on 30th August, 2012.

आर॰ सी॰ सं॰ 18(A)/94 (R) में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश VIII-सह-विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰ धनबाद द्वारा पारित दिनांक 21.12.2006 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 7 एवं 13(2) सह-पठित धारा 13(1) (d)—अवैध परितोषण–दोषसिद्धि–अभियुक्त के पास उस कार्य को करने की शक्ति रखने की आवश्यकता है जिसके लिए उसने अवैध परितोषण मांगा और स्वीकार किया है–स्वतंत्र गवाहों के पास अपीलार्थी और परिवादी के बीच वार्तालाप सुनने अथवा संव्यवहार देखने का अवसर नहीं था–सी॰ बी॰ आई॰ पदधारियों द्वारा मामला दर्ज करने के पहले सत्यापन नहीं किया गया था–राशि की मांग, स्वीकार्यता और बरामदगी के संबंध में गवाहों के साक्ष्य में गंभीर विरोधाभास है–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 5, 12 से 18)

निर्णयज विधि.–(2009)6 SCC 444—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. P.S. Pati, For the Appellant; Mr. Md. Mokhtar Khan. For the Respondent.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थी ने यह अपील आर॰ सी॰ सं॰ 18 (A)/94 (R) में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश VIII-सह–विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 21.12.2006 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त करवाने के लिए दाखिल किया है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराओं 7 और 13(2) सह–पठित धारा 13(1)(d) के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और पी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 7 के अधीन एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। उसे 100/- रुपयों के जुर्माना का भुगतान करने का दंडादेश भी दिया गया है जिसके व्यतिक्रम में उसे 15 दिनों का कठोर कारावास भुगतान करने का दंडादेश भी दिया गया है और आगे पी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 13(2) सह–पठित धारा 13(1) (d) के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और पी॰ सी॰ अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) सह–पठित धारा 13(1)(d) के अधीन एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया और 100/- रुपयों के जुर्माना का भुगतान करने का दंडादेश भी दिया जिसके व्यतिक्रम में 15 दिनों का कठोर कारावास उसे भुगतना है और दोनों दंडादेश साथ चलेंगे।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि किसी सतेन्द्र प्रसाद का पिता अर्थात् जनार्दन दिनांक 31.8.89 को बोकारो इस्पात लि॰ से सेवानिवृत हुआ था। कुछ कारणों से वह सरकारी आवास खाली नहीं कर सका था। उसका पिता पक्षाघात से पीड़ित था। उसके पिता ने दिनांक 26.11.93 को आवास खाली किया था। उसके पिता ने शास्ति किराया वसूल नहीं करने के लिए प्रबंध निदेशक को आवेदन दिया था। उसने दिनांक 23.8.94 को नगर प्रशासन के डीलिंग क्लर्क वकील शरण सिंह से मुलाकात किया है, तब उसने कहा कि विद्युत प्रभारों के शास्ति किराया से छूट के लिए उसे उसको 500/- देना होगा। उसने अनुरोध किया और कहा कि वह धन देने में अक्षम है क्योंकि वह गरीब है। तब वकील शरण सिंह ने यथासंभव शीघ्र उसे 500/- रुपया देने को कहा क्योंकि केवल तब उसे शास्ति किराया से छूट दी जाएगी। प्रतीत होता है कि (सूचक के पिता) जनार्दन प्रसाद को आवंटित आवास के संबंध में पूर्वोक्त प्रभारों से मुक्त करने के संबंध में सत्येन्द्र प्रसाद से अभियुक्त द्वारा 500/- रुपयों के अवैध परितोषण की मांग के पूर्वोक्त तथ्य के संबंध में स्रोत के माध्यम से सूचना मिलने पर एस॰ पी॰, सी॰ बी॰ आई॰ ने दिनांक 25.8.94 को डी॰ एस॰ पी॰ सी॰ बी॰ आई॰, राँची, नारायण झा को टीम गठित करने और वकील शरण सिंह के विरुद्ध आवश्यक कार्रवाई करने के लिए प्रात: लगभग 10 बजे दिनांक 25.8.94 को बोकारो स्टील सिटी में परिवादी से संपर्क करने का निर्देश दिया था। प्राथमिकी से प्रतीत होता है कि डी॰ एस॰ पी॰ नारायण झा ने टीम गठित किया था, स्वतंत्र गवाहों की व्यवस्था भी की गयी थी, इन व्यक्तियों और परिवादी की उपस्थिति में ट्रैप पूर्व कार्यवाही का प्रबंध किया गया था जिसके विवरण को पृथक ट्रैप पूर्व ज्ञापन में दर्ज किया गया था और तत्पश्चात ट्रैप बिछाया गया था। अभियुक्त को घूस का 500/- रुपया मांगते और स्वीकार करते हुए गिरफ्तार किया गया था। इसे उसके कब्जा से बरामद किया गया था और इसके बाद पृथक रूप से बरामदगी का ज्ञापन तैयार किया गया था। इस संबंध में परिवादी सतेन्द्र प्रसाद द्वारा लिखित परिवाद भी दिया गया था जब वह डी॰ एस॰ पी॰ नारायण झा से मिला था। पूर्वोक्त विवरणों को अंतर्विष्ट करते हुए लिखित रिपोर्ट तैयार किया था और अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध नियमित मामला आर॰ सी॰ सं॰ 18A/94 (R) संस्थापित किया गया था। अन्वेषण के बाद, पी॰ सी॰ अधिनियम, 1988 की पूर्वोक्त धाराओं के अधीन अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप–पत्र दाखिल किया गया था।

3. अभियोजन ने इस मामले में ग्यारह गवाहों का परीक्षण किया है। वे हैं: अ॰ सा॰ 1 सुरेश राय, अ॰ सा॰ 2 विजय बहादुर सिंह, अ॰ सा॰ 3 मो॰ कमरुद्दीन, अ॰ सा॰ 4 सतेन्द्र प्रसाद, अ॰ सा॰ 5 रामासूवा अजर रामचंद्र, अ॰ सा॰ 6 बबन तिवारी, अ॰ सा॰ 7 बबन प्रसाद सिंह, अ॰ सा॰ 8 रघुवंश शर्मा, अ॰ सा॰ 9 अजय कुमार, अ॰ सा॰ 10 बिमलेंदु दास, अ॰ सा॰ 11 नारायण झा। अभियोजन ने अनेक दस्तावेज दिया

है जिन्हें प्रदर्श के रूप में चिन्हित किया गया है। बचाव पक्ष ने किसी गवाह का परीक्षण नहीं किया है और न ही उसकी ओर से अभिलेख पर कोई दस्तावेजी साक्ष्य लाया गया है।

4. अपीलार्थी का बचाव है कि उसे इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है और उसने निर्दोषिता का अभिवचन किया और विचारण का दावा किया।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री पी॰ एस॰ पति ने निवेदन किया है कि विचारण न्यायालय यह अधिमूल्यन करने में बिल्कुल विफल रहा है कि अभियुक्त अपीलार्थी विद्युत के शास्ति किराया का भुगतान करने से परिवादी अथवा उसके पिता को छूट देने के लिए कोई कदम उठाने वाला सक्षम व्यक्ति नहीं था और प्रबंध निदेशक ही ऐसा व्यक्ति है जो इसकी छूट दे सकता है। अभियुक्त-अपीलार्थी पूर्वोक्त मामले से संबंधित डीलिंग क्लर्क नहीं था और वह उक्त मामले से किसी प्रकार से संबंधित नहीं था। यह तथ्य अ॰ सा॰ 2 अर्थात् विजय बहादुर सिंह के साक्ष्य में आया है जो प्रासंगिक अवधि पर प्रबंधक, भूमि और संपदा, नगर प्रशासन, बोकारो स्टील प्लांट था। वह अंतिम सेटलमेंट में भी कार्यरत था जहाँ सामान्यत: पूर्व कर्मचारी के दावों और पेचों को सुलझाया जाता है। उक्त अ॰ सा॰ 2 ने अपने साक्ष्य में यह कथन भी किया है कि समय के उस बिंदु पर अभियुक्त अपीलार्थी प्रबंध निदेशक के कार्यालय में संबंधित सहायक नहीं था और न तो अभियुक्त अपीलार्थी स्थापन कार्यालय का कर्मचारी था। उक्त अभियुक्त अपीलार्थी उसके विभाग में सहायक था। अत: परिवादी को शास्ति किराया से छूट देने के लिए अवैध परितोषण के रूप में धन मांगने का अवसर अभियुक्त-अपीलार्थी के पास नहीं था जैसा उपर कहा गया है। इस संबंध में पति ने **पंजाब राज्य बनाम सोहन सिंह, 2009(6) SCC 444,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उद्धृत किया है जिसमें विनिश्चित किया गया है:–

> *^^15. ---- fufooknr% iu% vO lkO 9 xjpj.k flg }kjk fd, x, fujiokn dFku dh nf"V e ojh;rk lph d fucèkuku lkj gkb V'ku duD'ku VklQkej LFkkfir dju d ckn fn;k tk ldrk FkkA vO lk 9 d vulkj iR;Fkh tk duh; vfHk;rk Fkk dk ekey e dkb Hkfedk ugh FkhA duD'ku inku dju d ekey e ikFkfedrk doy ckM d mPprj ikfèkdkfj;k }kjk nh tk ldrh FkhA iokfYyf[kr rkfF;d ifjn'; e iR;Fkh d cpko ij fopkj djuk gkxkA*
>
> *20. geu ;gk igy xkj fd;k g fd tgk ojh;rk lph r;kj dh xb g] ikjh vku d igy fo|r duD'ku inku dju d ekey e iR;Fkh dh Hkfedk ugh Fkh] bl d vfrfjDr] doy VklQkej yxku d ckn duD'ku inku fd;k tk ldrk Fkk tk ckM d mPprj ikfèkdkfj;k d vuU; dk;{k= d vrxr FkkA**

इस प्रकार, अभियुक्त के पास उस काम को करने की शक्ति रखने की आवश्यकता है जिसके लिए उसने अवैध परितोषण मांगा है और स्वीकार किया है।

6. विद्वान अधिवक्ता श्री पति ने आगे प्रतिवाद किया है कि अवर न्यायालय यह विचार में लेने में विफल रहा कि घूस धन की बरामदगी बिंदु के संबंध में तात्विक विरोधाभास है और विभिन्न गवाहों ने विभिन्न विवरण दिया है और कोई संगत अभिसाक्ष्य नहीं है जिसके द्वारा अपीलार्थी को अभिकथित पूर्वोक्त अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है। इस संबंध में, उन्होंने इंगित किया है कि अ॰ सा॰ 1 और 3 जो स्वतंत्र गवाह हैं, रसोईघर में नहीं गए थे बल्कि प्रासंगिक समय पर कैंटीन के हॉल में बैठे हुए थे।

चूँकि कैंटीन का हॉल और रसोई दो भिन्न स्थान हैं और हॉल में बैठा व्यक्ति यह देखने की अवस्था में नहीं था कि रसोई में क्या हो रहा है। इस प्रकार, स्वतंत्र गवाहों में से किसी के पास अभियुक्त अपीलार्थी और परिवादी के बीच वार्तालाप सुनने अथवा संव्यवहार देखने का अवसर नहीं था क्योंकि स्वीकृत रूप से वे दोनों रसोई में थे, न कि कैंटीन के हॉल में। अत:, इन गवाहों ने छापामारी को सफल बनाने के लिए अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध झूठा साक्ष्य दिया था।

7. श्रीपति ने आगे निवेदन किया है कि सत्यापन रिपोर्ट नहीं है और स्वीकृत रूप से प्राथमिकी के विषय वस्तु सूचना का स्रोत नहीं दर्शाता है जैसा प्राथमिकी के विषयवस्तु में यह आया है–''इस प्रभाव की स्रोत के माध्यम से सूचना की प्राप्ति पर.....''इस प्रकार, यह अत्यंत संदेहास्पद है कि क्या व्यथित पक्ष ने कोई सूचना दिया था अथवा अभियुक्त अपीलार्थी के साथ दुश्मनी रखने वाले व्यक्ति ने इस रिष्टि को किया था और शिकायत एवं दुश्मनी के कारण अभियुक्त अपीलार्थी को झूठा आलिप्त किया था। श्री पति ने आगे निवेदन किया है कि कुछ पदधारीगण जो एक ही विभाग में कार्यरत थे को अपीलार्थी के विरुद्ध शिकायत थी और उनकी प्रेरणा पर अपीलार्थी को बलि का बकरा बनाया गया है।

8. आगे प्रतिवाद किया गया है कि इंस्पेक्टर पी॰ के॰ पाणिग्रही का परीक्षण अभियोजन द्वारा नहीं किया गया है और अभियोजन ने स्पष्ट नहीं किया है कि क्यों उसका परीक्षण नहीं किया गया है और उसके अपरीक्षण के कारण, इसने बचाव के मामले पर प्रतिकूलता कारित किया है।

9. श्री पति ने आगे इंगित किया है कि परिवादी द्वारा दिनांक 25.8.94 को परिवाद याचिका (प्रदर्श 6) दाखिल की गयी थी किंतु प्राथमिकी में यह आया है कि एस॰ पी॰, सी॰ बी॰ आई॰ ने डी॰ एस॰ पी॰ सी॰ बी॰ आई॰ नारायण झा को दिनांक 24.8.94 को टीम गठित करने और वकील शरण सिंह के विरुद्ध आवश्यक कार्रवाई करने के लिए दिनांक 25.8.94 को प्रात: लगभग 10 बजे बोकारो स्टील सिटी में परिवादी से संपर्क करने का निर्देश दिया था। परिवादी ने भी अपने परिवाद याचिका में कथन नहीं किया है कि परिवाद याचिका दाखिल करने के पहले उसने सी॰ बी॰ आई॰ प्राधिकारी को अथवा किसी अन्य प्राधिकारी को सूचित किया है। अत:, यह अत्यंत आश्चर्यजनक है कि परिवादी से किसी सूचना के बिना सी॰ बी॰ आई॰ प्राधिकारी किस प्रकार परिवाद याचिका दाखिल किए जाने के एक दिन पहले अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए टीम गठित करने का निर्देश दिया। यह अभियोजन मामले पर संदेह उत्पन्न करता है।

10. श्री पति ने प्रतिवाद किया है कि विचारण न्यायालय अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा धन की मांग, स्वीकृति और बरामदगी के संबंध में गवाहों के साक्ष्य में विरोधाभास पर विचार करने में विफल रहा।

11. सी॰ बी॰ आई॰ के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री खान ने निवेदन किया है कि अभियोजन ने अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध अभिकथन सिद्ध किया है क्योंकि स्वतंत्र गवाहों ने अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा अवैध परितोषण की मांग और इसको स्वीकार करने के बारे में विनिर्दिष्टत: कथन किया है। आगे इंगित किया गया है कि अभियोजन को केवल ट्रैप पूर्व, और ट्रैप पश्चात औपचारिकताओं को सिद्ध करना है जिसे इस मामले में समुचित रूप से किया गया है। इसके अतिरिक्त, कलंकित राशि की बरामदगी ट्रैप पूर्व ज्ञापन में उल्लिखित करेंसी नोटों की संख्या के साथ मेल खाती थी। अत:, आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

12. गवाहों के साक्ष्य का और मामले के दस्तावेजों का भी परिशीलन किया। अभिलेख से मैं पाती हूँ कि अ॰ सा॰ 9, जिसे वर्ष 1994 के दौरान वरीय संपदा अधिकारी, राजस्व, बोकारो स्टील प्लांट के रूप में पदस्थापित किया गया था, ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट कथन किया है कि शास्ति किराया और विद्युत

प्रभारों को त्यक्त करने की शक्ति केवल प्रबंध निदेशक को है जिन्हें आवेदन दिया जा सकता है अथवा इसे डी॰ जी॰ एम॰, टी॰ ए॰ के माध्यम से भी भेजा जा सकता है। पैरा 6 में, उसने यह भी कहा था कि टी॰ ए॰ विभाग के फाइनल सेटलमेंट सेल द्वारा मांग प्रमाण पत्र तैयार नहीं किया गया था। पैरा 7 में उसके साक्ष्य से प्रतीत होता है कि वकील शरण सिंह वर्ष 1994 में टी॰ ए॰ विभाग मे फाइनल सेटलमेंट सेल में सहायक था। उसका कर्तव्य गृह किराया, विद्युत प्रभारों और फिक्सचर को नुकसानी की बरामदगी, वार्ड बुक से मीटर रीडिंग के मामले के संबंध में पृथक कर्मचारियों का एन॰ डी॰ सी॰ (नो डिमांड सर्टिफिकेट) तैयार करना था। उसने प्रति परीक्षण में अपने साक्ष्य में आगे कथन किया है कि वकील शरण सिंह ने दिनांक 16.6.1994 को 'नो ड्यूज सर्टिफिकेट' तैयार किया है और दिनांक 25.5.94 का एडवाइस नं॰ 746 रिकार्ड सेल से प्राप्त किया है अत:, स्पष्ट है कि अभियुक्त अपीलार्थी नगर प्रशासन विभाग में कार्यरत था। साक्ष्य यह भी दर्शाता है कि वह फाइनल सेटलमेंट सेल में कार्यरत था। अ॰ सा॰ 9 के साक्ष्य से यह भी प्रतीत होता है कि अभियुक्त–अपीलार्थी का कर्तव्य विद्युत प्रभारों की मांग को तैयार करना है यद्यपि उसने केवल अभिलेख के आधार पर और मीटर रीडिंग, जिसे अन्य संबंधित कर्मचारी द्वारा किया जाता है, के आधार पर प्रभार लगाया है। अत:, साक्ष्य दर्शाता है कि अभियुक्त अपीलार्थी संबंधित दस्तावेज तैयार करने के प्रभार में था और विद्युत प्रभारों की वसूली के मामले से जुड़ा था। अ॰ सा॰ 9 ने अपने साक्ष्य में यह कथन भी किया है कि कोई प्रत्यक्षत: प्रबंध निदेशक को आवेदन दे सकता है अथवा डी॰ जी॰ एम॰ (टी॰ ए॰) के माध्यम से भी आवेदन दे सकता है। प्रासंगिक समय पर अभियुक्त नगर प्रशासन विभाग का कर्मचारी था। वह विद्युत प्रभारों की मांग के काम से भी जुड़ा था। इस स्थिति में स्वाभाविक है कि विद्युत प्रभारों की अधित्यक्त करने के मामले के संबंध में कोई अभियुक्त अपीलार्थी के पास जा सकता है। अत:, यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त अपीलार्थी विद्युत प्रभारों के मामले से बिल्कुल संबंधित नहीं है। इस प्रकार, इस संबंध में दिए गए तर्क मान्य नहीं हैं और अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत पूर्वोक्त निर्णय इस मामले में प्रयोज्य नहीं है।

13. स्वीकृत रूप से, प्राथमिकी की विषय वस्तु दर्शाती है कि ट्रैप टीम गठित करने का निर्देश दिनांक 24.8.94 को अर्थात परिवाद याचिका (प्रदर्श 6) दाखिल करने के एक दिन पहले, क्योंकि परिवादी द्वारा परिवाद याचिका दिनांक 25.8.94 को दाखिल की गयी थी, दिया गया था। प्राथमिकी के विषय वस्तु भी नहीं दर्शाते हैं कि सी॰ बी॰ आई॰ पदधारियों ने कहाँ से परिवादी से अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा अवैध परितोषण की मांग के संबंध में सूचना प्राप्त किया था क्योंकि परिवाद याचिका में भी उल्लिखित नहीं किया गया है कि परिवादी ने दिनांक 24.8.94 को अथवा उस तिथि के पहले किसी सी॰ बी॰ आई॰ पदधारी को कोई सूचना दिया था। नि:संदेह, यह अभियोजन मामले पर गम्भीर संदेह उत्पन्न करता है।

14. अभिलेख से, मैं पाती हूँ कि रसोई कैंटीन हॉल के एक कोने में था और धन की मांग और स्वीकृति के संबंध में संपूर्ण प्रसंग रसोई में हुआ था और दोनों स्वतंत्र गवाह प्रासंगिक समय पर कैंटीन हॉल में थे। उनमें से कोई परिवादी के साथ रसोई में नहीं गया था। इसके अतिरिक्त, किसी स्वतंत्र गवाह ने कथन नहीं किया है कि वे कैंटीन के हॉल में ऐसी अवस्था में थे कि वे अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा धन की मांग और स्वीकृति को सुन देख सकते थे बल्कि अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य में पैरा 41 और 42 में आया है कि वह और डी॰ एस॰ पी॰ (अ॰ सा॰ 11) बेंच पर बैठे थे जो हॉल की पश्चिमी दीवार से जुडा पश्चिमी हिस्से पर था (अर्थात् रसोई के बिल्कुल विपरीत) जब परिवादी और अभियुक्त अपीलार्थी उक्त रसोई के भीतर थे। तत्पश्चात, परिवादी अपने हाथ में कागज लिए रसोई से बाहर आया किंतु अ॰ सा॰ 1 नहीं कह

सका था कि उक्त कागज पर क्या लिखा था। चूँकि हॉल पर्याप्त रूप से बड़ा था और अनेक व्यक्ति वहाँ चाय पी रहे थे और एक-दूसरे से बात कर रहे थे, अ॰ सा॰ 1 और डी॰ एस॰ पी॰ (अ॰ सा॰ 11) के लिए धन संव्यवहार को सुनना-देखना बिल्कुल संभव नहीं है। अ॰ सा॰ 1 का साक्ष्य स्पष्टत: सिद्ध करता है कि वह और डी॰ एस॰ पी॰ संव्यवहार की प्रासंगिक अवधि पर हॉल में बैठे थे।

15. अ॰ सा॰ 5 ने कहा है कि अभियुक्त अपीलार्थी को नियुक्त करने वाला सक्षम प्राधिकारी होने के नाते उसने अपने समक्ष प्रस्तुत किए गए अभिलेखों और दस्तावेजों का परिशीलन करने के बाद उसका अभियोजन करने की मंजूरी प्रदान किया है। अत:, मंजूरी आदेश (प्रदर्श 6A) में अवैधता नहीं है।

16. सत्यापन के संबंध में अपीलार्थी की ओर से दिए गए तर्क पर यह सत्य है कि किसी प्राधिकारी द्वारा सत्यापन नहीं किया गया था। अभिलेख में न तो सत्यापन रिपोर्ट है और न ही सी॰ बी॰ आई॰ पदधारियों द्वारा प्राथमिकी दर्ज करने के पहले उस व्यक्ति का परीक्षण किया गया है जिसने इस मामले में सत्यापन किया है। जैसा उपर चर्चा की गयी है कि मामले के अभिलेखों और गवाहों के साक्ष्य से सामने आने वाले तथ्य स्पष्टत: दर्शाते हैं कि परिवाद याचिका दाखिल करने के पहले अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध किसी सत्यापन के बिना सी॰ बी॰ आई॰ पदधारियों द्वारा ट्रैप टीम गठित की गयी थी और इसके अलावा राशि की मांग, स्वीकरण और बरामदगी के संबंध में गवाहों के साक्ष्य में अनेक विरोधाभास हैं और सी॰ बी॰ आई॰ इंस्पेक्टर श्री पाणिग्रही के अपरीक्षण जो ट्रैप टीम का सदस्य था, पर यह नहीं कहा जा सकता है कि संपूर्ण अभियोजन मामला और अभियोजन पक्ष द्वारा संचालित ट्रैप संदेह मुक्त है।

17. इस प्रकार, मेरे दृष्टिकोण में अभियोजन अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए पूर्वोक्त आरोपों को समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है। तद्नुसार, संदेह का लाभ देते हुए मैं अपीलार्थी को दोषमुक्त करता हूँ और दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त करता हूँ। अपीलार्थी को उसके जमानत बंधपत्र के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

18. तद्नुसार, यह अपील अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t;k jk;] U;k;efr

कमलेश कुमार सिंह

cuke

सुधा देवी एवं एक अन्य

F.A. No. 884 of 2006. Decided on 23rd August, 2012.

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955—धाराएँ 24 एवं 25—भरण-पोषण—अंतरिम भरण पोषण बढ़ाने के लिए दावा—मासिक निर्वाहिका 3000/- रुपयों से 5000/- रुपयों प्रतिमाह तक बढ़ाया गया—प्रत्यर्थी को धारा 25 के अधीन समुचित आवेदन देने की स्वतंत्रता दी गयी।

(पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.—Mr. Manish Kumar, For the Petitioner; Mr. S. L. Agarwal, For the Respondents.

आदेश

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलार्थी को रजिस्टर्ड पोस्ट के माध्यम से सूचना देकर दिनांक 23 जुलाई, 2012 के आदेश के बारे में सूचित किया गया था। किंतु, उस रजिस्टर्ड

डाक को इस पृष्ठांकन के साथ वापस कर दिया गया था कि प्रेषित उस पते पर निवास नहीं कर रहा है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि उसने स्वयं अपीलार्थी से बात किया था और उसको दिनांक 23 जुलाई, 2012 के आदेश और प्रत्यर्थी को 20,000/- रुपयों का मुकदमा खर्च का भुगतान करने के निर्देश के बारे में सूचित किया था किंतु उसने उससे संपर्क नहीं किया था।

2. उक्त कारणों से अपीलार्थी की अपील गैर अभियोजन और दिनांक 23 जुलाई, 2012 के आदेश के अननुपालन के कारण खारिज कर दी गयी थी। किंतु स्पष्ट किया गया है कि प्रत्यर्थी इस न्यायालय द्वारा दिनांक 23 जुलाई, 2012 को अधिरोपित मुकदमा खर्च की राशि वसूल करने की हकदार होगी।

3. निर्वाहिका बढ़ाए जाने के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 124 के अधीन दाखिल अंतर्वर्ती आवेदन आई॰ ए॰ सं॰ 4015 वर्ष 2009 और एक अन्य अंतर्वर्ती आवेदन आई॰ ए॰ सं॰ 2192 वर्ष 2012 पर प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि विचारण न्यायालय ने दिनांक 22 जुलाई, 2002 के आदेश के तहत प्रत्यर्थी को 4000/- रुपया प्रतिमाह अंतरिम भरण-पोषण अधिनिर्णीत किया। किंतु, अपीलार्थी की रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6502 वर्ष 2002 में दिनांक 24.6.2004 के आदेश के तहत इस राशि को 4000/- रुपयों से 3000/- रुपयों तक घटा दिया गया है। तत्पश्चात, प्रत्यर्थी-पत्नी ने 3000/- रुपयों से 4000/- रुपयों तक निर्वाहिका बढ़ाने के लिए एक अन्य याचिका दाखिल किया क्योंकि अपीलार्थी पति का वेतन बढ़ा दिया गया था और जीवन यापन खर्च भी बढ़ गया था। किंतु प्रत्यर्थी-पत्नी की उस याचिका को विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 19 अप्रिल, 2007 के आदेश के तहत इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि याची-पति ने पहले ही उच्च न्यायालय के समक्ष एल॰ पी॰ ए॰ दाखिल किया था और मामला विचाराधीन था।

5. अपीलार्थी ने स्पष्टत: डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6502 वर्ष 2002 में पारित दिनांक 24.6.2004 के आदेश के विरुद्ध खंडपीठ के समक्ष एल॰ पी॰ ए॰ दाखिल किया है। चाहे जो भी हो, दिनांक 24 जुलाई, 2004 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी 3000/- रुपया प्रतिमाह के भरण-पोषण की हकदार थी। अब प्रत्यर्थी का प्रतिवाद है कि अपीलार्थी 25000/- रुपया प्रतिमाह वेतन पा रहा है। उक्त बयान दिनांक 22 दिसंबर, 2009 को दाखिल आई॰ ए॰ सं॰ 4015 वर्ष 2009 में दिया गया था। किंतु, उसी अनुतोष के लिए बाद में दिनांक 22 जुलाई, 2012 को दाखिल आवेदन में प्रत्यर्थी पत्नी ने निवेदन किया कि उसने कर्ज लेकर, क्योंकि उसे 4,00,000/- लाख रुपया खर्च करना पड़ा था, वर्ष 2004 और 2008 में अपनी दो पुत्रियों का विवाह किया था। किंतु एक पुत्री का विवाह सफल नहीं था और उसकी एक पुत्री प्रत्यर्थी के साथ रह रही है। विवाह में अपीलार्थी ने एक पैसा योगदान नहीं किया था। निवेदन किया गया है कि अब अपीलार्थी अपने नियोक्ता टाटा मोटर्स लि॰, जमशेदपुर से 50,000/- रुपया प्रतिमाह ग्रॉस आय पा रहा है और उसकी शेष सेवा अवधि सात वर्ष है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि उसका वेतन शायद 50,000/- रु॰ प्रतिमाह से अधिक हो गया है। निवेदन किया गया है कि सेवानिवृत्त होने पर अपीलार्थी सेवा निवृत्ति लाभों के रूप में 30-40 लाख रुपया पाएगा। इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में, निवेदन किया गया है कि अंतरिम भरण-पोषण बढ़ाया जा सकता है।

6. अपीलार्थी द्वारा उक्त तथ्य विवादित नहीं किए गए हैं और स्वयं इस आदेश द्वारा अपीलार्थी की अपील खारिज कर दी गयी है। अत:, इस आदेश द्वारा इस अपील की खारिजी की सीमा तक हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन अंतरिम भरण पोषण प्रदान करने पर विचार कर सकते हैं और प्रत्यर्थी को इस अंतरिम भरण पोषण, जिसे इसे आदेश द्वारा दिया जा रहा है, से प्रतिकूलता के बिना समुचित

भरण–पोषण प्रदान करने के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के अधीन समुचित आवेदन देने की स्वतंत्रता दी जाती है।

7. मामले के तथ्यों को देखते हुए कि प्रत्यर्थी दिनांक 24.6.2004 से 3000/- रुपया प्रतिमाह अंतरिम भरण–पोषण पा रही थी, अत:, हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 24 के अधीन दाखिल इस अपील में हम निर्वाहिका को 3000/- रुपयों से 5000/- रुपया तक दिनांक 22.12.2009 से बढ़ाना समुचित समझते हैं जिस तिथि पर प्रत्यर्थी पत्नी द्वारा पहला आवेदन (आई॰ ए॰ सं॰ 4015 वर्ष 2009) दाखिल किया गया था। अत:, अभिनिर्धारित किया जाता है कि प्रत्यर्थी दिनांक 22.12.2009 से इस अपील के निर्णय तक 5000/- रुपयों के अंतरिम भरण–पोषण की हकदार होगी और प्रत्यर्थी को हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के अधीन समुचित आवेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता दी जाती है यदि प्रत्यर्थी लाभ लेना चाहती है। प्रत्यर्थी द्वारा अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन दाखिल करने पर विचारण न्यायालय इस आदेश द्वारा भरण–पोषण के अधिनिर्णय से प्रभावित हुए बिना इस पर विचार करेगा।

8. तद्नुसार, दोनों अंतर्वर्ती आवेदनों को निपटाया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

मनेश्वरी देवी उर्फ मनिकेश्वरी देवी

cuke

झारखंड राज्य, राज्य निगरानी के माध्यम से

Cr. M. P. No. 1130 of 2012. Decided on 3rd September, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 471, 120B एवं 109—भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 13(1) (d) एवं 13(2)—छल, कूटरचना एवं षडयंत्र–संज्ञान–जब संपत्ति का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा यद्यपि यह उसकी संपत्ति नहीं है किंतु वह यह दावा भी नहीं कर रहा है कि वह किसी अन्य द्वारा प्राधिकृत है अथवा वह कोई और है, दस्तावेज निष्पादित किया जाता है, ऐसे दस्तावेज का निष्पादन झूठा दस्तावेज नहीं कहा जा सकता है–जब याची ने उन व्यक्तियों जिनके नामों में जमाबंदी सृजित की गयी है, से भूमि खरीदा और तब खरीदी गयी भूमि के विरुद्ध अपना नाम नामांतरित करवाया, उसने छल का अपराध नहीं किया है–संज्ञान का आदेश अभिखंडित किया गया। (पैराएँ 14 से 19)

निर्णयज विधि.–(2009)8 SCC 751—Applied.

अधिवक्तागण.–Mr. B. K. Jha, For the Petitioner; Mr. T. N. Verma, For the Vigilance.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और निगरानी के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह आवेदन निगरानी केस सं॰ 33 वर्ष 2002 (विशेष केस सं॰ 38 वर्ष 2002) की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित तत्कालीन विशेष न्यायाधीश, निगरानी, राँची द्वारा पारित दिनांक 18.11.2009 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन याची सहित अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420/423/424/467/468/469/471/477/201/120B/109 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराओं 13(1) (d) सह–पठित धारा 13(2) के अधीन नयी दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया गया है।

3. इस आवेदन को उद्भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि मौजा आरगोरा अवस्थित खाता सं॰ 268, भूखंड सं॰ 2983 से संबंधित 1.8 एकड़ मापवाली कतिपय भूमि अधिकार अभिलेख में गैर मजरूआ मालिक के रूप में दर्ज की गयी थी। किंतु, वर्ष 1970-71 में सामू साव के नाम में उस भूमि के विरूद्ध दो किराया रसीद जारी किए गए थे। उसकी मृत्यु के बाद, उसके पुत्र चंदन साव ने विरासत में संपत्ति पाया और वर्ष 1982-83 में पूर्वोक्त भूमि के विरुद्ध अपना नाम नामांतरित करवाया।

4. कालक्रम में, चंदन साव ने वर्ष 1988-91 में जय भवानी सहकारी सोसाइटी के तत्कालीन सचिव महावीर काशी को पृथक रूप से 0.49 एकड़ और 0.59 एकड़ भूमि बेची थी जिसने खरीदी गयी भूमि के विरुद्ध अपना नाम नामांतरित करवाया। महावीर काशी ने दिनांक 29.4.1991 को इस याची सहित दस व्यक्तियों को भूमि बेचा जिसने अपना नाम नामांतरित करवाया और तद्नुसार उसके नाम में रजिस्टर II खोला गया था।

5. चूँकि आरंभ में भूमि को गैर-मजरूआ मालिक के रूप में दर्ज किया गया था, विभिन्न व्यक्तियों को उक्त भूमि का अंतरण अवैध माना गया था और, इसलिए, इस अभिकथन पर कि उन समस्त व्यक्तियों ने कूटरचना, छल और दुर्विनियोग, आदि अपराध किया है, इस याची सहित 23 व्यक्तियों के विरुद्ध इंस्पेक्टर, निगरानी द्वारा मामला दर्ज किया गया था।

6. आरोप-पत्र की दाखिली पर पूर्वोक्तानुसार याची के विरुद्ध दिनांक 18.11.2009 के आदेश के तहत अपराध का संज्ञान लिया गया था जो चुनौती के अधीन है।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यद्यपि आरंभ में भूमि गैर-मजरूआ मालिक के रूप में दर्ज की गयी थी किंतु उस भूमि के संबंध में किराया रसीद सामू साव के पक्ष में जारी किए गए थे। उसकी मृत्यु के बाद, उसके पुत्र चंदन साव ने विरासत में संपत्ति पाया और उस भूमि के विरुद्ध अपना नाम नामांतरित करवाया और उसके नाम में रजिस्टर II भी खोला गया था। उस पर, उसने जय भवानी सहकारी सोसाइटी के तत्कालीन सचिव महावीर काशी को भूमि अंतरित किया जिसने बदले में इस याची सहित विभिन्न व्यक्तियों को भूमि बेचा और तद्द्वारा याची को छल, कूटरचना अथवा दुर्विनियोग का अपराध करता नहीं कहा जा सकता है और न ही यह कहा जा सकता है कि उसने सरकारी पदधारी को दांडिक अवचार का अपराध करने के लिए दुष्प्रेरित किया और तद्द्वारा याची को भारतीय दंड संहिता के अधीन अथवा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने का जिम्मेदार अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है।

8. आगे निवेदन किया गया था कि किस प्रकार याची सामू साव के नाम में किराया रसीदों को जारी करवाने में सहायक हो सकता है जब वह उस समय पर विवाद में था ही नहीं। आगे निवेदन किया गया है कि याची ने यह जानने के बाद कि भूमि जय भवानी सहकारी सोसाइटी के सचिव के नाम में दर्ज की गयी है, इसे खरीदा और तद्द्वारा उसने कोई अपराध नहीं किया है जिसके लिए संज्ञान लिया गया है अतः संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडन योग्य है।

9. इसके विरुद्ध निगरानी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री टी॰ एन॰ वर्मा निवेदन करते हैं कि स्वीकृत रूप से प्रश्नगत भूमि गैर-मजरूआ मालिक के रूप में दर्ज की गयी थी जिस भूमि को सामू साव के नाम बंदोबस्त कभी नहीं किया गया था, फिर भी सामू साव उस भूमि के विरुद्ध अपने पक्ष में किराया रसीद जारी करवाने में सफल रहा और तब सरकारी पदधारियों की मौनानुकूलता से प्रश्नगत भूमि

के विरुद्ध अपना नामांतरित करवाया। यही मामला पश्चातवर्ती अंतरितियों का और याची का है और तद्द्वारा याची के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया है जिस पर अपराधों का संज्ञान लिया गया है जिसे तथ्यों और परिस्थितियों में अवैध नहीं कहा जा सकता है।

10. आगे निवेदन किया गया था कि सरकारी पदधारियों सहित समस्त अभियुक्तगण की सह-अपराधिता इस तथ्य से स्पष्ट होगी कि प्रासंगिक अभिलेख गायब है।

11. इन परिस्थितियों में, प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या प्राथमिकी में किए गए अभिकथन छल, कूटरचना, दुर्विनियोग का अपराध अथवा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध गठित करते हैं?

12. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर उस तरीके को विस्तारपूर्वक दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है जिस तरीके से याची को भूमि अंतरित की गयी थी सिवाए इस तथ्य के कि याची खरीदार है जिसके नाम पर भूमि नातांतरित की गयी है और कि याची ने उन व्यक्तियों से भूमि खरीदा था जिनके नाम पर जमाबंदी सृजित की गयी थी और इन परिस्थितियों के अधीन किस प्रकार याची को कूटरचना का अपराध कारित करते हुए कहा जा सकता है। इस संबंध में, मैं **मोहम्मद इब्राहिम एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, (2009)8 SCC 751)** (2009)4 JLJR (SC) 75 मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ, जिसमें माननीय न्यायाधीश ने कूटरचना से संबंधित भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 470 में अंतर्विष्ट प्रावधान को और अन्य प्रावधान को ध्यान में रखने के बाद निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:-

> *^^èkkjk vk 467 vkj 471 d vèkhu vijkèk dh ijkHkk0; 'kr dVjpuk gA dVjpuk dh ijkHkk0; 'kr >Bk nLrkot (vFkok >B byDVkfud fjdkM vFkok mldk Hkkx) cukuk gA ;g ekeyk fdlh >B byDVkfud fjdkM l lcfèkr ugh gA vr% ç'u ;g g fd D;k igyk vfHk;Dr vU; vfHk;Dr d lkFk njfHklfèke lifUk dk rkRif;r :i l cprg, nk foØ; foy[kk dk fu"ikfnr vkj jftLVj dju e (Hky gh ;g mièkkfjr fd;k tkrk g fd ;g mldh ugh Fkh) >Bk nLrkot cukrk vkj fu"ikfnr djrk dgk tk ldrk gA***

13. न्यायालय ने आगे संप्रेक्षित किया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 464 का विश्लेषण दर्शाता है कि यह झूठे दस्तावेजों को निम्नलिखित तीन कोटियों में विभक्त करती है:-

> *^^igyk og g tgk 0;fDr ;g fo'okl dkfjr fnyku d vk'k; d lkFk fd ,lk nLrkot fdlh vU; 0;fDr }kjk vFkok fdlh vU; 0;fDr d çkfèkdkj }kjk] ftld }kjk vFkok ftld çkfèkdkj }kjk og tkurk g fd ;g cuk;k vFkok fu"ikfnr ugh fd;k x;k Fkk] cuk;k vFkok fu"ikfnr fd;k x;k Fkk] xj bekunkj :i l vFkok diViod nLrkot cukrk g vFkok fu"ikfnr djrk gA*
>
> *nljk og g tgk 0;fDr Lo; vFkok fdlh vU; 0;fDr }kjk bl cuk, tku vFkok fu"ikfnr dju d ckn xj bekunkj :i l vFkok diViod] jídj.k vFkok vU;Fkk }kjk] fofèki.k çkfèkdkj d fcuk] fdlh rkRkod Hkkx e nLrkot ifjofrr djrk gA*
>
> *rhljk og g tgk 0;fDr xj bekunkj :i l vFkok diV iod fdlh 0;fDr dk nLrkot ij gLrk{kj bl fu"ikfnr vFkok ifjofrr djuk dkfjr djrk g Hkyh Hkkfr ;g tkurg, fd ,lk 0;fDr*
>
> *(a) fof{kIrrk] (b) u'kiu(vFkok*
>
> *(c) mld lkFk dh x;h çopuk d dkj.k l nLrkot dk fo"k;oLr vFkok ifjoru dh çÑfr tku ugh ldrk FkkA*

l{ki e] 0;fDr dk ^>Bk c;ku nrk dgk tkrk g ;fn (i) og dkb vkj gku vFkok fdlh vU; }kjk çkfèkÑr cuku dk nkok djr g, nLrkot cuk;k vFkok fu"ikfnr fd;k] vFkok (ii) mlu nLrkot ifjofrr fd;k gk vFkok ble gjQj fd;k gk(vFkok (iii) mlu çopuk djd vFkok ml 0;fDr l tk viu gk'kkgokl e ugh Fkk nLrkot çkIr fd;kA*

*çFke vihykFkh }kjk fu"ikfnr foØ; foy[k Li"Vr% ^^>B c;ku** dh nljh vkj rhljh dkfV e ugh vkr gA vr%] ;g n[kuk ckdh g fd D;k ifjoknh dk nkok fd çFke vfHk;Dr tk Hkfe d lkFk fdlh çdkj l lcfèkr ugh Fkk d }kjk foØ; foy[kk dk fu"iknu ifjoknh dh Hkfe dk dCtk yu d vk'k; d lkFk nLrkot dh dVjpuk d rY; gvk (vkj fd vfHk;Dr 2 l 5 u [kjhnnkj] xokg] y[kd vkj LVki oMj d :i e mDr foØ; foy[kk d fu"iknu vkj jftLV'ku e çFke vfHk;Dr d lkFk nfjHkl fèk fd;k) ekey dk çFke dkfV d vèkhu yk,xkA*

*;g nkok djr g, fd gLrkrfjr lifÙk mldh lifÙk g foØ; foy[k fu"ikfnr dju oky 0;fDr vkj Lokeh dk çfr#i.k djd vFkok Lokeh dh vkj l foy[k fu"ikfnr dju d fy, Lokeh }kjk çkfèkÑr vFkok l'kDr gku dk >Bk nkok djd foØ; foy[k fu"ikfnr dju oky 0;fDr d cho ey fHkUUkrk gA tc dkb 0;fDr lifÙk dk viuh lifÙk d :i e of.kr djd gLrkrfjr dju okyk nLrkot fu"ikfnr djrk g] nk lHkkouk, gk ldrh gA igyh ;g g fd og lnHkkoiod fo'okl djrk g fd lifÙk oLrr% mldh gA nljh ;g g fd og diViod vFkok xj bekunkj :i l bldk mldk gku dk nkok dj jgk g Hky gh og tkurk g fd ;g mldh lifÙk ugh gA fdr ^^>B nLrkot** dh çFke dkfV d vèkhu vku d fy, ;g i;kIr ugh g fd nLrkot diViod vFkok xj bekunkj :i l fu"ikfnr fd;k x;k gA vkx ;g vko';drk g fd bl ;g fo'okl dkfjr dju d vk'k; d lkFk fd;k tkuk pkfg, fd ,lk nLrkot ml 0;fDr }kjk vFkok fdlh 0;fDr d çkfèkdkj }kjk cuk;k vFkok fu"ikfnr fd;k x;k Fkk ftld }kjk vFkok ftld çkfèkdkj }kjk og tkurk g fd ;g cuk;k vFkok fu"ikfnr ugh fd;k x;k FkkA*

*tc dkb nLrkot lifÙk tk mldh ugh g dk nkok djr g, fdlh 0;fDr }kjk fu"ikfnr fd;k tkrk g] og nkok ugh dj jgk g fd og dkb vkj g vkj u gh og ;g nkok dj jgk g fd ml fdlh vU; }kjk çkfèkÑr fd;k x;k gA bl çdkj] ,l nLrkot dk fu"iknu (dN lifÙk dk rkRif;r :i l gLrkrfjr djr g,) >B nLrkot dk fu"iknu ugh g tlk lfgrk dh èkkjk 464 d vèkhu ifjHkkf"kr fd;k x;k gA ;fn tk fu"ikfnr fd;k x;k g] >Bk nLrkot ugh g] dkb dVjpuk ugh gA ;fn dVjpuk ugh g] rc u rk èkkjk 467 vkj u gh èkkjk 471 vkÑ"V gkrh gA***

14. इस प्रकार, यह स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया गया है कि जब संपत्ति यद्यपि यह उसकी संपत्ति नहीं है, का दावा करते हुए व्यक्ति द्वारा दस्तावेज निष्पादित किया जाता है किंतु जब वह दावा नहीं कर रहा है कि उसे किसी अन्य द्वारा प्राधिकृत किया गया है अथवा वह कोई और है, ऐसे दस्तावेज का ऐसा निष्पादन भारतीय दंड संहिता की धारा 464 के निबंधनानुसार झूठा दस्तावेज नहीं कहा जा सकता है और यदि यह झूठा दस्तावेज नहीं है, तब धाराओं 467, 468 और 471 के अधीन अपराध करने का प्रश्न ही नहीं है।

15. पूर्वोक्त मामलों में अधिकथित निर्णयाधार इस मामले पर बराबर रूप से लागू होता है क्योंकि अंतरकों, जिन्होंने सदैव संपत्ति का अपना होने का दावा किया, को इस याची को विक्रय विलेख के माध्यम से भूमि अंतरित करके कूट रचना का अपराध करता कभी नहीं कहा जा सकता है और तद्द्वारा इस याची द्वारा कूटरचना का अपराध करने का प्रश्न कभी उद्भूत नहीं होता है।

16. मामले में आगे जाते हुए, कोई शायद ही कल्पना कर सकता है कि किस प्रकार भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 423 और 424 के अधीन अपराध बनता है जब प्रतिफल का झूठा बयान अंतर्विष्ट करने वाले अंतरण विलेख के गैर ईमानदार अथवा कपटपूर्ण निष्पादन का मामला नहीं है और न ही संपत्ति को गैर ईमानदार रूप से अथवा कपटपूर्वक हटाने अथवा छुपाने का मामला नहीं है।

17. इसी तरह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जब याची ने उन व्यक्तियों से भूमि के खरीदार जिनके नाम में जमाबंदी सृजित की गयी थी और तब खरीदी गयी भूमि के विरुद्ध अपना नाम नामांतरित करवाया, उसे छल का अपराध करता कभी नहीं कहा जा सकता है जैसा भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के अधीन परिभाषित किया गया है जो भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन दंडनीय है।

18. आगे, इन तथ्यों और परिस्थितियों में, जैसा उपर गौर किया गया है, याची को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(d) के अधीन अपराध दुष्प्रेरित करता नहीं कहा जा सकता है।

19. इन परिस्थितियों के अधीन, निगरानी केस सं॰ 33 वर्ष 2002 (विशेष केस सं॰ 38 वर्ष 2002 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही दिनांक 18.11.2009 के संज्ञान लेने वाले आदेश सहित एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है जहाँ तक याची का संबंध है।

20. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

जीरा कुमारी एवं अन्य

cuke

भारत संघ एवं एक अन्य

W.P. (S) No. 2493 of 2011. Decided on 22nd August, 2012.

सेवा विधि–पेंशन–मृतक-कर्मचारी की संतान के रूप में सेवा अभिलेख में नामों की अप्रविष्टि के कारण पारिवारिक पेंशन से इनकार–उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए कैट द्वारा निर्देश के बावजूद सिविल न्यायालय द्वारा प्रमाण पत्र प्रदान नहीं किया गया–सिविल न्यायालय द्वारा पारित आदेश अपील योग्य था–याचीगण को सही प्रकार से उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्राप्त करने का निर्देश दिया गया था–उत्तराधिकार मामले में पारित आदेश को चुनौती देने के लिए याचीगण को स्वतंत्रता के साथ रिट याचिका खारिज की गयी। (पैराएँ 4 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Ramit Satender, For the Petitioners; Md. Mokhtar Khan, For the Respondent.

आदेश

रिट याचीगण के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार याचीगण का पिता भारतीय सर्वेक्षण विभाग में कर्मचारी था और खलासी का पद धारण कर रहा था। सेवारत रहते उसकी मृत्यु दिनांक 11.11.2001 को हो गयी। तत्पश्चात याचीगण की माता को पारिवारिक पेंशन दिया गया था और दिनांक 30.5.2003 को उसकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात, याचीगण को मृतक कर्मचारी की संतान के रूप में सेवा अभिलेख में उनके नामों की गैर-प्रविष्टि के कारण पारिवारिक पेंशन से इनकार किया गया था।

3. अत:, याचीगण ओ॰ ए॰ सं॰ 46 वर्ष 2007 दाखिल करके केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, सर्किट बेंच, राँची (संक्षेप में 'कैट') के पास गए। कैट ने प्रत्यर्थीगण को यह पता करने कि क्या अपीलार्थीगण रिट याचीगण के नाम मृतक कर्मचारी के सेवा अभिलेख में है और यदि नामों को सेवा अभिलेख में नहीं पाया जाता है तब याचीगण को सक्षम सिविल न्यायालय से आवश्यक उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्राप्त करने का निर्देश दिया जा सकता है, के निर्देश के साथ उक्त ओ॰ ए॰ सं॰ 46 वर्ष 2007 को निपटाया। यदि ऐसा उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्राप्त किया जाता है, प्रत्यर्थीगण उक्त प्रमाण पत्र पर विचार करेंगे और नियमों के अधीन आवश्यक आदेश जारी करेंगे। ओ॰ ए॰ सं॰ 46 वर्ष 2007 में पारित दिनांक 23 जून, 2007 के आदेश के बाद आवदेकगण ने उत्तराधिकार मामला सं॰ 41 वर्ष 2008 दाखिल करके उत्तराधिकार प्रमाण पत्र के लिए आवेदन दिया। आवेदकगण का उक्त आवेदन इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 372 (3) के मुताबिक मृतक के कर्ज और प्रतिभूतियों के संबंध में उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्रदान किया जा सकता है किंतु इस मामले में मृतका का कर्ज या प्रतिभूति नहीं है बल्कि पेंशन का बकाया है जो मृतक की अवयस्क पुत्रियों को प्रोद्भूत हो सकता है। विद्वान उप न्यायाधीश I हजारीबाग ने अभिनिर्धारित किया है कि चूँकि मृतक का कर्ज और प्रतिभूति नहीं है, पेंशन की बकाया राशि के लिए आवेदकगण को उत्तराधिकार प्रमाण पत्र जारी करने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है और उस कारण से उत्तराधिकार आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था।

4. इस स्थिति से सामना होने पर याची ने कैट के समक्ष पुनर्विलोकन याचिका दाखिल किया और याचीगण ने प्रार्थना किया कि ओ॰ ए॰ सं॰ 46 वर्ष 2007 में पारित दिनांक 23 जून, 2008 के आदेश को शब्द स्थानीय अधिकारिता के अंचलाधिकारी के कार्यालय से प्राप्त होने वाले ''पारिवारिक अभिलेख'' से प्रतिस्थापित करके उपांतरित किया जा सकता है ताकि आवेदक अंचलाधिकारी के कार्यालय से पारिवारिक अभिलेख प्रस्तुत करके पारिवारिक पेंशन पा सकता है। दिनांक 24.6.2010 के आदेश के तहत परिसीमा के आधार पर पुनर्विलोकन आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था। अत:, रिट याचिका दाखिल की गयी है।

5. उपर निर्दिष्ट तथ्यों से स्पष्ट है कि अधिकरण ने पहले ही उत्तराधिकार प्रमाणपत्र के लिए आवेदन दिया और सिविल न्यायालय द्वारा उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्रदान नहीं किया गया था। याचीगण ने उत्तराधिकार प्रमाण पत्र के लिए आवेदन दिया था तथा सिविल न्यायालय द्वारा उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं किया गया था। किंतु, सिविल न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 19.8.2009 का आदेश अपील योग्य था और याचीगण उप न्यायाधीश I, हजारीबाग द्वारा पारित उक्त आदेश को चुनौती दे सकते थे। उक्त उत्तराधिकार मामले में अंतर्ग्रस्त विवाद्यक यह था कि क्या आवेदकगण की माता के पारिवारिक पेंशन का बकाया कर्ज की परिभाषा के अंतर्गत आता है या नहीं?

6. चाहे जो भी हो, हमारा सुविचारित मत है कि याचीगण को सही प्रकार से उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्राप्त करने का निर्देश दिया गया था। याची का अपनी माता जो पेंशन पा रही थी तथा पिता जो कर्मचारी था का उत्तराधिकारी होने का विवाद्यक केवल उत्तराधिकार मामले में विनिश्चित किया जा सकता था। अत:, भले ही पुनर्विलोकन याचिका खारिज कर दी गयी थी, हमारा सुविचारित मत है कि इस रिट याचिका को ग्रहण करने से कोई प्रयोजन पूरा नहीं होगा।

7. उक्त कारणों की दृष्टि में, रिट याचीगण को उप न्यायाधीश I, हजारीबाग द्वारा उत्तराधिकार मामला सं॰ 41 वर्ष 2008 में पारित दिनांक 19.8.2009 के आदेश को चुनौती देने की स्वतंत्रता के साथ यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

8. रिट याचीगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, मृतक कर्मचारी की मृतक पत्नी के संतानों की आयु नौ और छह वर्ष है। यह निवेदन किया गया है कि याची सं॰ 1 और 2 अवयस्क थे और पारिवारिक पेंशन के हकदार थे और उनका प्रतिनिधित्व उनके भाई द्वारा किया गया था।

9. चाहे जो भी हो, अब याचीगण परिसीमा अधिनियम की धारा 14 के अधीन और धारा 5 के अधीन भी समुचित आवेदन दाखिल करके विलंब की माफी की प्रार्थना के साथ उत्तराधिकार मामला सं॰ 41 वर्ष 2008 में पारित दिनांक 19.8.2009 के आदेश को चुनौती दे सकते हैं जिस पर दावा की प्रकृति और रिट याची सं॰ 1 और 2 की आयु को दृष्टि में रखते हुए अपीलीय प्राधिकारी द्वारा सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जा सकता है।

---

ekuuh; vkykd flg] U;k;efr

बेबी कुमारी

cuke

भारत कोकिंग कोल लि॰ एवं अन्य

W.P. (S) No. 5240 of 2009. Decided on 31st July, 2012.

सेवा विधि–अनुकंपा पर नियुक्ति–18 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर ही अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन दिया जा सकता है–परिसीमा की अवधि की गणना याची के वयस्कता प्राप्त करने की तिथि से और न कि उसके पिता की मृत्यु की तिथि से करनी होगी–उसने अपने माता-पिता को खो दिया है और उसका आय का अन्य स्रोत नहीं है–अनुकंपा पर नियुक्ति एकमात्र आशा एवं विकल्प है–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 7 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. S. K. Lalit, For the Petitioner; Mr. Anoop Kumar Mehta, For the BCCL.

आदेश

याची भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन दिनांक 5.9.2009 के आदेश का विरोध करते हुए इस न्यायालय के पास आयी है जिसके द्वारा अनुकंपा पर नियुक्ति इप्सित करने वाला याची का आवेदन अस्वीकार कर दिया गया है।

2. अन्य बातों के साथ वर्तमान मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि याची का पिता स्व॰ राम स्नेही बेलदार डंपर ऑपरेटर के रूप में कार्यरत था जिसकी मृत्यु दिनांक 11.7.2000 को सेवारत रहते हुए अपनी पुत्र याची को अपने पीछे छोड़ते हुए हो गयी। निर्विवादत: याची ने दिनांक 27.11.2000 को प्रत्यर्थी सं॰ 3 के समक्ष अपनी अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन दिया था जिस पर इस तथ्य के कारण विचार नहीं किया जा सका था कि याची आवेदन की तिथि पर अवयस्क थी। पुन:, याची ने राष्ट्रीय कोयला मजदूरी अधिनियम सं॰ VI के प्रावधानों के मुताबिक वयस्कता प्राप्त करने के बाद दिनांक 28.10.2004 को नया आवेदन दिया जिसे प्रत्यर्थी द्वारा दिनांक 27.12.2004 को दिनांक 25/26-11.2004 के परिपत्र के निबंधनानुसार यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया गया था कि आश्रित के नियोजन के लिए उसका आवेदन कर्मचारी की मृत्यु की तिथि से अठारह माह बाद दिया गया था जिसे ग्रहण नहीं किया जा सकता है। अस्वीकृति के आदेश से व्यथित होकर, याची इस न्यायालय के समक्ष डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 1711/2005 में आयी जिसमें दिनांक 27.12.2004 का अस्वीकृति आदेश दिनांक 22.7.2009 के निर्णय के तहत अभिखंडित कर दिया गया था और प्रत्यर्थीगण को दो माह के भीतर नए सिरे से याची के आवेदन पर विचार करने और तार्किक एवं सकारण आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था।

3. तद्नुसार, याची ने दिनांक 27.7.2009 को प्रत्यर्थी सं॰ 3 के समक्ष नया अभ्यावेदन (परिशिष्ट 9) दिया जिसे भी दिनांक 5.9.2009 को प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है, अत: यह रिट याचिका दाखिल की गयी है।

4. मैंने याची के विद्वान अधिवक्ता श्री एस॰ के॰ लायक और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री अनूप कुमार मेहता को सुना है और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है।

5. यह स्वीकृत तथ्य है कि अपने पिता की मृत्यु की तिथि पर याची पंद्रह वर्षीया अवयस्क थी, अत: समय के उस बिंदु पर आश्रित के नियोजन के लिए दिनांक 27.11.2000 का उसका आवेदन ग्रहण नहीं किया जा सकता था।

6. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि राष्ट्रीय कोयला मजदूरी करार-IV के प्रावधान के मुताबिक संबंधित कर्मकार के ऐसे अवयस्क पुरुष आश्रित को लाइव रोस्टर पर रखा जाएगा जो 15 वर्ष और अधिक आयु का है और उसकी दक्षता और अहर्त्ता के अनुकूल नियोजन प्रदान किया जाएगा जब वह 18 वर्ष का हो जाता है जबकि स्त्री आश्रित के लिए लाइव रोस्टर का प्रावधान नहीं है। तद्नुसार, स्त्री आश्रित के लिए ऐसे प्रावधान की अनुपस्थिति में याची को वयस्कता की आयु प्राप्त करने पर अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन देने के लिए कहा गया था। याची ने दिनांक 8.8.2003 को 18 वर्ष आयु पूरा किया। किंतु, याची ने 15 माह बाद दिनांक 1.11.2004 को अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन दिया। इस प्रकार, अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन स्व॰ आर॰ एस॰ बेलदार की मृत्यु की तिथि अर्थात् दिनांक 11.7.2000 से लगभग चार वर्ष चार माह बाद दिया गया था जो दिनांक 24.7.2009 की कंपनी के परिपत्र की आवश्यकता के विपरीत है जब आवेदन की प्रस्तुति की समय अवधि 18 माह नियत की गयी थी। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे प्रतिवाद किया गया है कि वयस्कता प्राप्त करने के बाद 15 माह के विलंब के लिए याची द्वारा कोई कारण नहीं दिया गया था।

7. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि याची, जब वह अवयस्क थी, ने अपने पिता की मृत्यु की तिथि से पाँच माह के भीतर दिनांक 27.11.2000 को आवेदन दिया था, किंतु उसे इस आश्वासन के साथ नियुक्ति नहीं दी गयी थी कि उसे वयस्कता की आयु प्राप्त करने के बाद आवेदन देना चाहिए। तत्पश्चात्, उसने वयस्कता की आयु प्राप्त करने से 15 माह के भीतर दिनांक 1.11.2004 को अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन दिया। अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन केवल 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद दिया जा सकता है, अत:, परिसीमा की अवधि की गणना तद्नुसार उस दिन से करनी होगी जब उसने वयस्कता प्राप्त किया था और न कि उसके पिता की मृत्यु की तिथि से।

8. बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ से युक्तियुक्त रूप से कृत्य करने की उम्मीद दी जाती है। वर्तमान मामले के विचित्र तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में कि याची की माता की मृत्यु के बाद याची के पिता की भी सेवारत रहते हुए अपने पीछे अवयस्क पुत्री छोड़ते हुए मृत्यु हो गयी, उसे भूखा मरने के लिए नि:सहाय नहीं छोड़ देना चाहिए। उसने माता-पिता खो दिया है और उसके पास आय का अन्य स्रोत नहीं है। उसके लिए अनुकंपा पर नियुक्ति एकमात्र आशा और विकल्प है।

9. वर्तमान मामले के विचित्र तथ्यों और परिस्थितियों में हाइपर टेक्निकल आधार पर अनुकंपा पर नियुक्ति का अनुरोध अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था।

10. अत:, वर्तमान याचिका अनुज्ञात की जाती है। प्रत्यर्थीगण को आज के दिन से 60 दिन के भीतर याची के आवेदन पर नया निर्णय लेने का निर्देश दिया जाता है और यदि याची अन्यथा अर्हित और पात्र है, उसे उसकी अर्हता और पात्रता के अनुसार रोजगार प्रदान किया जाएगा।

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

सीता देवी जायसवारा

cuke

शंकर राम जायसवारा एवं अन्य

W.P. (C) No. 6534 of 2010. Decided on 23rd July, 2012.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VI, नियम 17—वादपत्र का संशोधन–टंकण गलती सुधारने के लिए आवेदन की अस्वीकृति–संशोधन के लिए प्रार्थना विनिश्चित करते हुए न्यायालय को हाइपर टेक्निकल रवैया अख्तियार नहीं करना चाहिए–विलंबित संशोधन से इनकार नहीं किया जा सकता है यदि यह पक्षों के बीच वास्तविक विवाद विनिश्चित करने के लिए आवश्यक है–याची की प्रार्थना अनुचित नहीं है–आक्षेपित आदेश अपास्त–व्यय भुगतान के अध्यधीन याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 3, 4, 6 एवं 7)

निर्णयज विधि.–(2007)1 SCC 765;—Relied; (2004)3 SCC 392; AIR 1996 SC 642; (1997)11 SCC 457; (2012)2 SCC 300 **: 2012 (2) JLJ 215 (SC);** (1996)1 SCC 90; (1997)11 SCC 457; (2004)3 SCC 392—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Jai Prakash, Yogesh Modi, For the Petitioner; M/s V. Shivnath, Birendra Kumar, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका हक अपील सं॰ 81 वर्ष 2010 में विद्वान अपर जिला न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट–V धनबाद द्वारा पारित दिनांक 27.11.2010 के आदेश को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए समुचित रिट/आदेश/निर्देश जारी करने के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने टंकण गलती, जिसे वाद पत्र में 1993 के बजाए 1983 के रूप में गलत रूप से टंकित किया गया था, को सुधारने की सीमा तक वाद पत्र के संशोधन के लिए सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 6 नियम 17 सह–पठित धारा 151 के अधीन याची (मूल वादी) द्वारा दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया है।

2. याची के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री जय प्रकाश ने मामले के तथ्यों का वर्णन करते हुए निवेदन किया कि वर्ष 1943 में याची के पिता ने रजिस्टर्ड विक्रय विलेख द्वारा 34 डिसमिल माप वाला अनुसूची 'A' संपत्ति खरीदा। याची अर्थात् राम दुलार जायसवारा के पिता का परिवार उसके पिता भगलू राम और माता लखी देवी से गठित था और वे संयुक्त रूप से रहते थे। राम दुलार जायसवारा ने अनुसूची 'A' संपत्ति के उपर निर्माण किया और ऐसे निर्माण पर धनबाद नगरपालिका द्वारा होल्डिंग सं॰ 313/268 दिया गया था।

रामदुलार जायसवारा की माता की मृत्यु के बाद भगलू राम ने विवाहित महिला बसंती देवी के साथ अंतरंग सम्बन्ध बना लिया। प्रत्यर्थी सं॰ 1 बसंती देवी का उसके पहले पति से हुआ पुत्र है। कालक्रम में रामदुलार जायसवारा ने विभिन्न रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को अनुसूची 'A' संपत्ति में से 10 डिसमिल भूमि बेचा जिसके बाद रामदुलार जायसवारा के पास 34 डिसमिल शेष रहा जिसे वादपत्र की अनुसूची 'B' में वर्णित किया गया है।

बसंती देवी के उकसावे से परिवार में मतभिन्नता हो गयी और अनेक मुकदमें लड़े गए थे जैसा वादपत्र में वर्णित किया गया है।

रामदुलार जायसवारा, जो भलगोरा कोलियरी का कर्मचारी था, की मृत्यु रहस्यमय परिस्थितियों में हो गयी। याची ने अपने पिता के स्थान पर वर्ष 1993 में अनुकंपा पर नियुक्ति पाया और वर्ष 1993

में भलगोरा रहने चली गयी जिसके बाद प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने याची और उसकी माता के लिए अनेक मुसीबत खड़ा किया और अनुसूची 'B' संपत्ति के किराएदारों को उकसाना शुरू किया अत: उन किराएदारों को वाद में प्रतिवादी/द्वितीय पक्ष बनाया गया था। उन किराएदारों में से कुछ वर्ष 1993 से स्वयं अपना अधिकार अभिनिश्चित करने लगे।

वर्ष 1993 में इन घटनाओं के कारण याची और उसकी माता ने वाद पत्र की अनुसूची 'B' में दिए गए वाद संपत्ति के संबंध में कब्जा की संपुष्टि और हक की घोषणा के लिए और विकल्प में कब्जा की सम्पुष्टि के लिए प्रतिवादी/प्रथम पक्ष के रूप में प्रत्यर्थी सं॰ 1 और प्रतिवादी/द्वितीय पक्ष के रूप में प्रत्यर्थीगण सं॰ 2 से 7 के विरुद्ध दिनांक 23.1.2002 को हक वाद सं॰ 8 वर्ष 2002 दाखिल किया और दिनांक 26.2.2010 के निर्णय के तहत वादी के पक्ष में वाद डिक्री किया गया था। उक्त निर्णय के विरुद्ध प्रत्यर्थी ने हक अपील सं॰ 81/2010 दाखिल किया और उक्त अपील में याची ने केवल वर्ष 1983 को वर्ष 1993 के रूप में शुद्ध करने के लिए वाद पत्र के पैरा 36 में टंकण गलती को सुधारने की सीमा तक वादपत्र के संशोधन के लिए सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 6 नियम 17 सह-पठित धारा 151 के अधीन आवेदन दाखिल किया। दिनांक 27.11.2010 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय यह अधिमूल्यन करने में विफल रहा है कि इप्सित संशोधन बिल्कुल औपचारिक प्रकृति का था चूँकि याची (मूल वादी) ने टंकण गलती के संबंध में संशोधन इप्सित किया है।

आगे निवेदन किया गया है कि वर्ष 1993 की पूर्वोक्त घटना याची और उसकी माता द्वारा वाद दाखिल करने का कारण था। किंतु टंकण गलती के कारण वाद पत्र के पैरा 36 में वाद का वाद हेतुक वर्ष 1993 के बजाए वर्ष 1983 उल्लिखित किया गया है। वाद पत्र में किए गए प्रकथन को निर्दिष्ट करते हुए इंगित किया गया कि वाद पत्र के अधिकांश भाग में वर्ष 1993 के रूप में निर्दिष्ट किया गया है किंतु पैरा 36 में टंकण गलती की गयी थी और वर्ष 1993 के बजाए वर्ष 1983 टंकित किया गया था।

आगे निवेदन किया गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2002 (2002 का 22) द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता में संशोधन को विचार में लिया जिसने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के अधीन संशोधन किया जिसके अनुसार विचारण आरंभ हो जाने के बाद संशोधन के लिए आवेदन अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं आता है कि सम्यक तत्परता के बावजूद पक्ष विचारण आरंभ होने के पहले मामला नहीं उठा सकता था।

विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय अवगत था कि उक्त संशोधन दिनांक 1.7.2002 को प्रभाव में आया किंतु सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2002 की धारा 16 (2) (b) को ध्यान में लेने में विफल रहा जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *"(b) flfoy çfØ;k lfgrk (l'kkèku) vfèkfu;e] 1999 dh èkkjk 16 vkj bl vfèkfu;e dh èkkjk 7 }kjk ;FkkfLFkfr foykfir] vUr%LFkkfir ;k çfrLFkkfir çFke vulph d vkn'k 6 d fu;e 5, 15, 17 vkj 18 d micUèk flfoy ifØ;k lfgrk ¼l'kkèku½ vfèkfu;e] 1999 dh èkkjk 16 rFkk bl vfèkfu;e dh èkkjk 7 d ikjEHk d io nkf[ky vfHkopuk ij ykx ugh gkxA**"*

उक्त संशोधन वर्तमान मामले पर प्रयोज्य नहीं है क्योंकि वाद पत्र दिनांक 1.7.2002 को उक्त संशोधन के प्रभाव में आने से पहले दिनांक 23.1.2002 को दाखिल किया गया था।

द्वितीयत: विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा अपने लिखित कथन के पैरा 30 में दिए गए बयान पर विचार नहीं किया था अथवा निर्दिष्ट नहीं किया था जहाँ प्रतिवादी ने कथन किया है कि वर्ष 1993 में वाद हेतुक उद्भूत नहीं हुआ और वाद हेतुक नहीं होने, अधित्यजन, विवंध और उपमति द्वारा वर्जित होने के कारण वाद पोषणीय नहीं होने के संबंध में प्रत्येक लिखित कथन के आरंभिक पैरा में दिए गए अलंकृत बयानों पर कुछ अधिक जोर दिया।

विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय यह विचार में लेने में विफल रहा कि पक्षगण इस स्पष्ट समझ के साथ वाद में अग्रसर हुए कि वाद हेतुक वर्ष 1993 में उद्भूत हुआ जो पक्षों के अभिवचनों से प्रकट है।

यह सुनिश्चित है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI नियम 17 का प्रयोजन और उद्देश्य किसी पक्ष को उस तरीके और उन निबंधनों पर जो न्यायोचित हो सकते हैं अपने अभिवचनों को परिवर्तित अथवा संशोधित करने की अनुमति देता है। अत: याची की प्रार्थना अनुचित प्रार्थना नहीं कही जा सकती है।

यह भी सुस्थापित है कि न्यायालयों को संशोधन के लिए प्रार्थना पर निर्णय करते हुए एक अति तकनीकी दृष्टिकोण अपनाना नहीं चाहिए। उदारतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाना सामान्य नियम है एवं विधि की तकनीकी पेचीदगियों को पक्षकारों के बिच न्याय करने में अड़चन डालने नहीं दिया जाना चाहिए।

4. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थीगण (मूल प्रतिवादीगण) के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय ने अपने समक्ष किए गए निवेदनों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद आदेश पारित किया जिसके द्वारा सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VI, नियम 17 में अंतर्विष्ट प्रावधान पर समुचित रूप से विचार किया गया है और तद्द्वारा, आवेदन जिसे विलंबित चरण पर दिया गया था, को अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है। आगे निवेदन किया गया है कि यह आवेदन तर्क के समापन के बाद दिया गया था जब मामला निर्णय के लिए रखा गया था। प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा इंगित किया गया है कि वाद पत्र में दो प्रार्थनाएँ थी और जहाँ तक संशोधित प्रार्थना खंड (a) का संबंध है, वादी ने विक्रय विलेख जिसे दिनांक 29.8.1974 को निष्पादित किया गया था, के संबंध में घोषणा इप्सित किया है, अत: वाद और अपील जिसे प्रत्यर्थीगण द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से असंतुष्ट और व्यथित होकर दाखिल किया गया है, को विनिश्चित करने के लिए परिसीमा का प्रश्न अत्यन्त निर्णायक है। आगे निवेदन किया गया है कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 58 और 59 विद्वान अवर न्यायालय के समक्ष इस विवाद्यक को विनिश्चित करने के प्रयोजन से अत्यन्त प्रासंगिक है क्योंकि उक्त अनुच्छेद के अधीन विहित परिसीमा दस्तावेज के निष्पादन की तिथि से तीन वर्ष है।

यह निवेदन किया गया है कि टंकण गलती के बहाने याची ने यह न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया कि वाद समय के भीतर था। प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने संशोधन इप्सित करते हुए अवर न्यायालय के समक्ष वर्तमान याची (मूल वादी) द्वारा दिए गए आवेदन को निर्दिष्ट करते हुए इंगित किया कि उक्त आवेदन में पहली बार वादी ने प्रकथन किया कि उसे वाद परिसर से वर्ष 1993 में बेदखल कर दिया गया था। प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने वाद पत्र के अनेक पैराग्राफों को निर्दिष्ट करते हुए इंगित किया कि वाद पत्र में याची (मूल वादी) द्वारा कोई विनिर्दिष्ट प्रकथन नहीं किया गया है और इसलिए, विद्वान अवर न्यायालय ने आवेदन अस्वीकार करते हुए सुविचारित दृष्टिकोण अपनाया है कि प्रत्यर्थीगण (मूल प्रतिवादीगण) ने लिखित कथन में अभिवचन किया है कि वादपत्र समय वर्जित है। प्रत्यर्थीगण (मूल प्रतिवादीगण) के विद्वान वरीय अधिवक्ता के अनुसार, अपीलीय न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त

दृष्टिकोण सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 6 नियम 17 में अंतर्विष्ट विधिक प्रतिपादना के अनुकूल है और इसलिए, अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश में इस न्यायालय को छेड़छाड़ करने की आवश्यकता नहीं है और याची (मूल वादी) द्वारा दाखिल वर्तमान रिट याचिका खारिज की जा सकती है।

5. प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने **(2004)3 SCC 392; AIR 1996 SC 642; (1997)11 SCC 457; (2012)2 SCC 300** में प्रकाशित अनेक निर्णयों को निर्दिष्ट किया है और इन पर विश्वास किया है।

6. पूर्वोक्त परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और आक्षेपित आदेश के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि इस प्रभाव का संशोधन इप्सित करते हुए कि चूँकि वाद पत्र के पैरा 36 में टंकण गलती थी, याची (मूल वादी) को इस प्रभाव कि वर्ष 1983 को वर्ष 1993 के रूप में पढ़ा जा सकता है, याची द्वारा संशोधन के लिए आवेदन दिया गया था। वादपत्र के पैरा 29, 30 तथा 31 के कोरे पठन से, यह प्रतीत होता है कि वस्तुत: वाद हेतुक वर्ष 1993 में उद्भूत हुआ था जब याची भलगोरा चली गयी थी। किंतु पैरा 36 में उल्लिखित किया गया है कि वाद हेतुक वर्ष 1983 में उद्भूत हुआ और अभिवचन में कहीं नहीं प्रतीत होता है कि उस वर्ष में एकल कृत्य किया गया था, अत: कहा जा सकता है कि पैरा 30 में टंकण गलती थी; अत: संशोधन औपचारिक प्रकृति का प्रतीत होता है। लिखित कथन के पैरा 30 में प्रत्यर्थीगण ने भी स्वीकार किया है कि वाद हेतुक वर्ष 1993 में उद्भूत नहीं हुआ था।

आक्षेपित आदेश के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने तथ्य का गलत अधिमूल्यन किया है और इस निष्कर्ष पर आया कि यदि संशोधन अनुज्ञात किया जाता है, यह वाद हेतुक बदल देगा। वाद हेतुक आरंभ होने की तिथि संपूर्ण वादपत्र के पठन से निकाली जानी चाहिए और न कि केवल एक पैरा को पढ़कर और वाद पत्र के पठन से प्रकट होता है कि वस्तुत: वाद हेतुक वर्ष 1993 में उद्भूत हुआ था किंतु पैरा 36 में टंकण गलती के कारण वर्ष 1983 लिखा गया है।

जहाँ तक प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए परिसीमा के संबंध में आधार का संबंध है, यह सुनिश्चित है कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 6 नियम 17 के अधीन विलंबित संशोधन से इनकार नहीं किया जा सकता है यदि यह पाया जाता है कि यह पक्षों के बीच वास्तविक विवाद विनिश्चित करने के लिए आवश्यक है और इसे व्यय के भुगतान पर अनुज्ञात किया जा सकता है।

वर्तमान मामले में संशोधन अधिनियम, 2002 की प्रयोज्यता के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **हैदराबाद स्टेट बैंक बनाम नगरीय नगरपालिका परिषद्, (2007)1 SCC 765** में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

"5. lfgrk d vkn'k 6 fu;e 17 dk iBu fuEufyf[kr gS%

*^^U;k;k;; nkuk e l fdlh Hkh i{kdkj dk dk;okfg;k d fdlh Hkh çØe ij vuKk n ldxk fd og viu vfHkopuk dk ,lh jhfr l vkj ,l fucèkuk ij] tk U;k; lxr gk] ifjofrr dj ;k l'kkfèkr dj vkj lHkh ,l l'kkèku fd, tk,x tk i{kdkjk d chp fooknxLr okLrfod ç'uk d voèkkj.k d ç;ktu d fy, vko';d gkA***

6. mll lyXu ijUrd flfoy çfØ;k lfgrk (l'kkèku) vfèkfu;e] 2002 }kjk tkMk x;k Fkk tk fnukd 1.7.2002 l çHkko e vk;kA bldk iBu fuEufyf[kr gS%&

*^^ijUr fopkj.k d çkjEHk gku d mijkUr l'kkèku dh çkFkuk ij vuefr rc rd ugh nh tk,xh tc rd fd U;k;ky; bl fu.k; ij u igp fd mfpr rRijrk d mijkUr Hkh i{kdkj fopkj.k çkjEHk gku l io ekeyk ugh mBk ldk FkkA***

7. 2002 dh l'kkèkudkjh vfèkfu;e dh èkkjk 6 (2) dk iBu fuEufyf[kr g%&

^^16. (2) bl vfèkfu;e d ikoèkkuk d iHkko e vku ;k mi&èkkjk (1) d vèkhu fujflr fd, tku d okctn rFkk lkekU; [kM vfèkfu;e] 1897 dh èkkjk 6 d ikoèkkuk dh 0;kidrk ij dkb ifrdy iHkko Mky fcuk&

*(a) * * **

*(b) flfoy ifØ;k lfgrk ¼l'kkèku½ vfèkfu;e] 1999 dh èkkjk 16 }kjk ;k blh vfèkfu;e dh èkkjk 7 }kjk foykfir ;k ;FkkfLFkfr vr%LFkkfir ;k ifrLFkkfir iFke lph d vkn'k d fu;e 5, 15, 17 ,o 18 d ikoèkku flfoy ifØ;k lfgrk ¼l'kkèku½ vfèkfu;e] 1999 dh èkkjk 16 ,o blh vfèkfu;e dh èkkjk 7 d ikjEHk d io nkf[ky fdlh vfHkopu d lEcUèk e ykx ugh gkx(***

*8. mDr çkoèkku dh nf"V e dkb Hkh lng ugh gk ldrk g fd okn o"k 1998 e nkf[ky fd, tku d dkj.k lfgrk dk vkn'k 6 fu;e 17 dk ijUrd ykx ugh gkxkA***

उपर दिए गए कारणों से, मैं याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में बल पाता हूँ कि सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा आदेश 6 नियम 17 में किया गया संशोधन इस मामले पर लागू नहीं होगा क्योंकि यह मामला दिनांक 1.7.2002 को उक्त संशोधन के प्रवर्तन में आने के पहले दिनांक 23.1.2002 को दाखिल किया गया है।

मैंने प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए निर्णय का परिशीलन भी किया है। **मुनि लाल बनाम ओरियेंटल फायर एण्ड जेनरल इंश्योरेंस कं॰ लि॰, (1996)1 SCC 90** में निर्णय के परिशीलन से प्रतीत होता है कि वादी विनिर्दिष्ट राशि के भुगतान के लिए आज्ञापक व्यादेश का वैकल्पिक अनुतोष पुर:स्थापित करना इप्सित कर रहा था।

(1997)11 SCC 457 मामले में वाद घोषणा और व्यादेश के लिए दाखिल किया गया था और तत्पश्चात इसे विनिर्दिष्ट पालन के वाद में संपरिवर्तन के लिए संशोधन इप्सित किया गया था।

टी॰ एन॰ एल्वॉय फाउंड्री कं॰ लि॰ बनाम तमिलनाडु विद्युत बोर्ड, (2004)3 SCC 392, मामले में अपीलार्थी ने संशोधन के रूप में नुकसानी के लिए अपना दावा बढ़ाना इप्सित किया।

पूर्वोक्त मामलों के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि इन मामलों के तथ्य वर्तमान मामले से भिन्न हैं, अत: उन मामलों में विकसित किए गए सिद्धांत वर्तमान मामले पर लागू नहीं होते हैं।

प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने **जे॰ सैमुअल बनाम गट्टू महेश, (2012) 2 SCC 300, [:(2012)2 JLJ 215 (SC)]** में निर्णय पर विश्वास किया और निवेदन किया कि टंकण गलती के मामलों पर मामले के तथ्यों के आलोक में विचार करने की आवश्यकता है और यदि पाया जाता है कि दावा सुआधारित है, केवल तब ऐसा संशोधन अनुज्ञात किया जा सकता है। याची के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता ने भी इसी निर्णय का आश्रय लिया और निवेदन किया कि चूँकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय

ने यह संप्रेक्षित करके उक्त निर्णय विनिश्चित किया है कि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में टंकण गलती पर विचार करने की आवश्यकता होती है और याची के मामले में गलती शुद्धत: टंकण गलती है।

मैंने उक्त निर्णय के पैरा 21 का परिशीलन भी किया है जो कि मुद्रण/टंकण प्रक्रिया के दौरान मुद्रित/टंकित सामग्री में की गयी गलती के रूप में टंकण गलती को परिभाषित करता है जो मेकेनिकल विफलता या हाथ की चूक से हुई गलती सम्मिलित करता है।

मेरे मत में, वर्तमान मामले में की गयी गलती टंकण गलती प्रतीत होती है जैसा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा परिभाषित किया गया है।

मैं याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क में सार पाता हूँ कि अवर न्यायालय ने सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 6 नियम 17 के संशोधित प्रावधान पर और इस निमित्त वादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अवर न्यायालय के समक्ष किए गए निवेदन पर समुचित रूप से विचार नहीं किया है। इसके अतिरिक्त, इप्सित संशोधन पक्षों के बीच वास्तविक विवाद को विनिश्चित करने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

7. उक्त चर्चा की दृष्टि में, इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि संशोधन के लिए आवेदन अस्वीकार करते हुए अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है। संशोधन के लिए आवेदन अस्वीकार करते हुए अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश अभिखंडित और अपास्त किया गए। यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है जो 250/- रुपयों के व्यय जमा करने के अध्यधीन है।

8. यह स्पष्ट किया जाता है कि प्रत्यर्थीगण आगे उत्तर दाखिल करने और गुणागुण पर अपील लड़ने के लिए स्वतंत्र होंगे और प्रत्यर्थीगण को इस संबंध में खंडन के लिए साक्ष्य देने की अनुमति दी जाएगी।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

झारखंड राज्य, मुख्य सचिव के माध्यम से एवं अन्य

cuke

सूर्यदेव प्रसाद

L.P.A. No. 481 of 2010. Decided on 22nd August, 2012.

झारखंड सेवा संहिता, 2000—धारा 58(a)—प्रोन्नति–धनीय लाभ–इस आधार पर सम्यक प्रोन्नति से इनकार कि याची सेवानिवृत्त हो गया है, बिल्कुल अवैध है–राज्य को विभागीय प्रोन्नति कमिटि की अनुशंसा मनमाने रूप से अस्वीकार करने का अधिकार नहीं है–नियम 58 (a) उन मामलों पर प्रयोज्य नहीं है जहाँ कर्मचारी के किसी दोष के बिना कर्मचारी को प्रोन्नत नहीं किया गया हो–अपील खारिज। (पैरा 9 से 14)

निर्णयज विधि.–(2000)7 SCC 210—Relied on; 1995 Supp. (1) SCC 1; (2009)16 SCC 146—Distinguished.

अधिवक्तागण.–M/s Navin Kumar Singh, For the Appellants; Mr. Sumeet Gadodia, For the Respondent.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह लेटर्स पेटेन्ट अपील दिनांक 20.4.2010 के निर्णय के विरुद्ध है जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थीगण को रिट याचिका के प्रत्यर्थी सं॰ 2 के समक्ष विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय की प्रमाणित प्रति की तिथि की प्रस्तुति से चार माह की अनुबंधित अवधि के भीतर रिट याची को मुख्य अभियंता के पद पर प्रोन्नति प्रदान करने के लिए और समस्त वित्तीय सेवानिवृत्ति पूर्व और पश्चातवर्ती लाभों की संगणना करने के लिए निर्देश देते हुए रिट याची की रिट याचिका को अनुज्ञात किया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह आदेश भी दिया कि यदि अगले छह सप्ताह के भीतर भुगतान नहीं किया जाता है, तब समस्त बकाया राशि पर, जिसे दिनांक 22.4.2006 के बाद की अवधि के लिए रिट याची के प्रति बकाया पाया गया है, उस स्थिति से जिस पर राशि देय हो गयी, वास्तविक भुगतान की तिथि तक 8% वार्षिक ब्याज देना होगा।

3. राज्य ने इस लेटर्स पेटेन्ट अपील को दाखिल किया है और अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि झारखंड सेवा संहिता के नियम 58 (a) की दृष्टि में कर्मचारी, जिसने पद का कर्तव्य ग्रहण नहीं किया है, उस पद से संबंधित वेतन अथवा वेतन भत्ता पाने का हकदार नहीं है जिस पर उसे प्रोन्नत किया गया था। अत:, निवेदन किया गया है कि डी॰ पी॰ सी॰ की अनुशंसा को प्रभाव देने से पहले तबसे सेवानिवृत्त याची–प्रत्यर्थी नियम 58(a) की दृष्टि में मुख्य अभियंता के पद से संबद्ध वेतन और भत्तों का हकदार नहीं है। उक्त के अतिरिक्त, निवेदन किया गया है कि डी॰ पी॰ सी॰ ने केवल अधीक्षण अभियंता के पद से मुख्य अभियंता के पद पर याची की नियुक्ति की अनुशंसा की थी, किंतु वह अनुशंसा नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी पर बाध्यकारी नहीं थी और नियुक्ति करने वाला प्राधिकारी अनुशंसा से भिन्न दृष्टिकोण अपना सकता था। इस मामले में नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी ने याची को प्रोन्नति से इस कारण इनकार किया है क्योंकि याची को दो बार दंडित किया गया था, एक बार उसे निंदा के दंड से दंडित किया गया था और दूसरे अवसर पर उसके पेंशन का 10% रोक दिया गया था।

4. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने **भारत संघ एवं अन्य बनाम एन॰ पी॰ धमनला एवं अन्य, 1995 (Supp)1 SCC 1** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर विश्वास किया जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि कैबिनेट की नियुक्ति कमिटि बी॰ पी॰ एस॰ सी॰ द्वारा आहूत डी॰ पी॰ सी॰ की अनुशंसा से असहमत हो सकती है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया कि **अभिजीत घोष दस्तीदार बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2009)16 SCC 146,** मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में, चूँकि याची ने प्रोन्नति वाले पद पर योगदान नहीं दिया था, अत: वह धनीय लाभ का हकदार नहीं है।

5. रिट याची–प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि डी॰ पी॰ सी॰ द्वारा मुख्य अभियंता के पद पर प्रत्यर्थी की प्रोन्नति के मामले पर विचार किया गया था और तत्पश्चात दिनांक 18/19 अप्रिल, 2006 की बैठक में उसका नाम प्रोन्नति के लिए अनुशंसित किया गया था। इस अनुशंसा को दिनांक 22.4.2006 की संसूचना के तहत राज्य सरकार को संसूचित किया गया था। बाद में, प्रत्यर्थी पर दिनांक 15.5.2006 को विभागीय जाँच का आदेश तामील किया गया था। अत:, प्रत्यर्थी के विरुद्ध किसी विभागीय जाँच को आरंभ करने के पहले प्रोन्नति के लिए प्रत्यर्थी–याची पर पहले ही विचार किया था और डी॰ पी॰ सी॰ ने उसकी प्रोन्नति अनुशंसित किया था। अत:, निवेदन किया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने **दिल्ली जल बोर्ड बनाम महिन्दर सिंह, 2000(7) SCC 210,** मामले में माननीय सर्वोच्च

न्यायालय के निर्णय पर सही प्रकार से विश्वास किया जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि डी॰ पी॰ सी॰ के अनुमोदन के बाद यदि विभागीय कार्यवाही आरंभ की जाती है, यह विभाग को मुहरबंद प्रक्रिया अपनाने का हकदार नहीं बनाएगा, प्रोन्नति से इनकार की बात तो दूर। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया कि डी॰ पी॰ सी॰, जिसने दिनांक 24.4.2006 की अपनी संसूचना और बाद में दिनांक 14.11.2009 की अनुशंसा के तहत दो बार प्रत्यर्थी का नाम अनुशंसित किया, की अनुशंसा के आधार पर प्रत्यर्थी के प्रोन्नति का विवाद्यक एक या दूसरे बहाने मुख्य अभियंता के पद पर प्रोन्नति से प्रत्यर्थी को इनकार किया गया है। याची-प्रत्यर्थी को रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 530 वर्ष 2007 दाखिल करके इस न्यायालय के पास आना पड़ा था जिसमें भी प्रत्यर्थी के पूर्विक दंड का अभिवचन किया गया था और प्रत्यर्थी की उक्त रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 530 वर्ष 2007 में दिनांक 27.8.2008 के निर्णय के तहत विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि डी॰ पी॰ सी॰ ने पहले ही प्रत्यर्थी याची के पूर्विक प्रोन्नति पर विचार किया है और पूर्व के वर्षों की रिक्तियों में प्रोन्नति देने से इनकार किया है। उन दंडों पर विचार करने के बाद और विशेष तिथि से प्रोन्नति के लिए प्रत्यर्थी की हकदारी के तथ्य पर विचार करने के बाद मुख्य अभियंता के पद पर प्रोन्नति अनुशंसित किया। तत्पश्चात्, विद्वान एकल न्यायाधीश ने उक्त रिट याचिका में विनिर्दिष्टत: अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी को विभागीय कार्यवाही, जिसे मुख्य अभियंता के पद पर प्रत्यर्थी की प्रोन्नति के लिए विभागीय प्रोन्नति कमिटि द्वारा अनुशंसा किए जाने के बाद आरंभ किया गया था, में समस्त आरोपों से विमुक्त कर दिया गया है, और इसलिए, मामले में तुरन्त निर्णय लेने के लिए अपीलार्थी की ओर से कोई रूकावट नहीं है। उन निष्कर्षों को दर्ज करने के बाद मुख्य अभियंता के पद पर प्रत्यर्थी की प्रोन्नति के मामले पर निर्णय लेने के लिए अपीलार्थी सचिव, पथ निर्माण विभाग, झारखंड को विनिर्दिष्ट निर्देश दिया गया था।

6. रिट याची-प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि जब प्रत्यर्थी को प्रोन्नति नहीं दी गयी थी, प्रत्यर्थी ने अवमान याचिका दाखिल किया था जिसमें अपीलार्थी राज्य ने स्पष्टत: उपदर्शित किया था कि एक अन्य डी॰ पी॰ सी॰ द्वारा प्रत्यर्थी के मामले पर पुन: विचार किया गया था और दिनांक 14.11.2009 को प्रत्यर्थी की प्रोन्नति की अनुशंसा राज्य सरकार को की गयी थी। उक्त कारण की दृष्टि में, अवमान याचिका निपटायी गयी थी।

7. अब, विभाग के आक्षेपित आदेश में, जिसमें प्रत्यर्थी को प्रोन्नति से इनकार किया गया है, लिया गया एकमात्र आधार यह है कि चूँकि प्रत्यर्थी सेवानिवृत्त हो गया है, वह प्रोन्नति का हकदार नहीं था। यह निवेदन किया गया है कि झारखंड सेवा संहिता का नियम 58(a) मामले के तथ्यों पर प्रयोज्य नहीं है जैसा विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है। उक्त तथ्य की दृष्टि में कि उक्त नियम उन व्यक्तियों पर लागू होता है जो स्वेच्छापूर्वक पद का प्रभार और कर्तव्य ग्रहण नहीं करते हैं, तब वे उक्त पद से संबद्ध वेतन और भत्ता के हकदार नहीं हैं जिसका प्रभार कर्मचारी ने नहीं लिया है।

8. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन पर विचार किया है और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया है।

9. डी॰ पी॰ सी॰ की बैठक में पुन: दिए गए कारणों, जिनकी प्रति इस एल॰ पी॰ ए॰ के साथ परिशिष्ट-1 के रूप में अपीलार्थी-राज्य द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत की गयी है, की दृष्टि में यह विवादित नहीं है कि डी॰ पी॰ सी॰ ने याची की चरित्र पुस्तिका पर विचार किया और पाया कि वर्ष 1988-89 के लिए याची की चरित्र पुस्तिका में प्रतिकूल प्रविष्टि के चलते याची तीन वर्षों के लिए अर्थात् दिनांक

31.3.2002 तक प्रोन्नति का हकदार नहीं हो सकता है। किंतु, प्रत्यर्थी–याची दिनांक 1.4.2002 से प्रोन्नति का हकदार होगा। डी॰ पी॰ सी॰ ने यह विचार भी किया कि वर्ष 1996 के लिए प्रत्यर्थी पर आरोप–पत्र तामील किया गया था और विभागीय कार्यवाही में उसे दंडित किया गया था, और इसलिए, आगे तीन वर्षों के लिए प्रत्यर्थी प्रोन्नति का हकदार नहीं होगा और तद्द्वारा उसे दिनांक 31 मार्च, 2005 तक प्रोन्नति नहीं दी गयी थी। किंतु, जहाँ तक पश्चातवर्ती वर्षों में उसकी प्रोन्नति का संबंध है, कोई रूकावट नहीं है और इन कारणों से डी॰ पी॰ सी॰ ने प्रोन्नति की अनुशंसा की।

10. अत:, विभाग के आक्षेपित आदेश में याची–प्रत्यर्थी को याची–प्रत्यर्थी के किसी अवचार के कारण प्रोन्नति से इनकार नहीं किया गया है। किंतु, आक्षेपित आदेश में, प्रोन्नति से इनकार करने हेतु दिया गया एकमात्र कारण यह है कि चूँकि याची सेवानिवृत्त हो गया है, अत:, याची को प्रोन्नति नहीं दिया जा सकता है।

11. हमारे मत में, आदेश बिल्कुल अवैध है और सही प्रकार से विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा अपास्त किया गया है क्योंकि प्रत्यर्थी, जिसके विरुद्ध प्रासंगिक निर्धारण वर्षों के लिए कोई प्रतिकूल प्रविष्टि नहीं थी, के विरुद्ध डी॰ पी॰ सी॰ की अनुशंसा के बाद विभागीय जाँच की शुरूआत डी॰ पी॰ सी॰ की अनुशंसा को प्रभावित नहीं कर सकती है, अत:, प्रत्यर्थी याची को मुख्य अभियंता के पद पर प्रोन्नति से इनकार नहीं किया जा सकता था। चाहे जो भी हो, बाद में उन विभागीय कार्यवाही को भी छोड़ दिया गया था। अत: प्रत्यर्थी याची प्रोन्नति का हकदार था।

12. राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि डी॰ पी॰ सी॰ की अनुशंसा राज्य सरकार पर बाध्यकारी नहीं है। ऐसे निवेदन का इस तथ्य की दृष्टि में विधिक आधार नहीं है कि राज्य यह अभिवचन नहीं कर सकता है कि राज्य ने दंड के आधार पर प्रत्यर्थी–याची की उम्मीदवारी को अस्वीकार कर दिया है जिसने पूर्व के वर्षों में याची की प्रोन्नति से इनकार किया था और प्रत्यर्थी याची को प्रोन्नति प्रदान करने के प्रयोजन से प्रासंगिक नहीं था जिसके लिए डी॰ पी॰ सी॰ द्वारा अनुशंसा की गयी है। स्वयं डी॰ पी॰ सी॰ ने प्रत्यर्थी–याची को उसके विगत दंड के कारण प्रोन्नति से इनकार किया है। राज्य को भी डी॰ पी॰ सी॰ की अनुशंसा को मनमाने रूप से अस्वीकार करने का अधिकार नहीं है और भले ही यह उपधारित किया जाता है कि कैबिनेट की अनुमोदन कमिटि डी॰ पी॰ सी॰ की अनुशंसा से असहमत हो सकती थी, अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए **भारत संघ एवं अन्य बनाम एन॰ पी॰ दमनला एवं अन्य (उपर)** में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मुताबिक भी इसे केवल कारणों के आधार पर किया जा सकता था और असहमत होने के लिए उन कारणों को दर्ज करना ही होगा यद्यपि उन कारणों को संबंधित अधिकारी को संसूचित नहीं किया जा सकता था और राज्य उन कारणों को न्यायालय को दिखा सकता था, किंतु इस अभिवचन के सिवाए कि प्रत्यर्थी–याची झारखंड सेवा संहिता के नियम 58(a) के मुताबिक और प्रत्यर्थी याची को पूर्विक वर्षों में पहले दंडित किया गया था जो उस वर्ष जिसके लिए डी॰ पी॰ सी॰ द्वारा अनुशंसा की गयी थी में प्रोन्नति प्रदान करने के प्रयोजन से प्रासंगिक नहीं था, वेतन और भत्ता का हकदार नहीं था, प्रोन्नति से इनकार के लिए राज्य द्वारा कोई अन्य कारण नहीं दिया गया था। अत:, रिट याची–प्रत्यर्थी को प्रोन्नति से इनकार करने के लिए राज्य के पास दोनों आधार उपलब्ध नहीं थे और इसलिए, जब प्रत्यर्थी याची को प्रोन्नति से इनकार करने के लिए आक्षेपित आदेश में विगत दंड का कारण नहीं है, उस कारण पर विचार करने पर भी आपत्ति में गुणागुण नहीं है।

13. जहाँ तक नियम 58(a) का संबंध है, यह स्पष्ट है कि यह उन मामलों पर प्रयोज्य है जहाँ कर्मचारी स्वयं अपने कृत्य अथवा लोप के कारण प्रभार ग्रहण करने में विफल रहा, तब वह पद से संबद्ध वेतन और भत्ता का हकदार नहीं होगा। यह उन मामलों पर प्रयोज्य नहीं है जहाँ कर्मचारी को कर्मचारी के दोष के बिना प्रोन्नत तक नहीं किया गया था। प्रत्यर्थी याची को मात्र इस कारण से किसी लाभ से इनकार नहीं किया जा सकता था जिसके लिए वह विधिपूर्वक हकदार था जब वह सेवा में था क्योंकि वह सेवानिवृत्त हो गया है। अत: मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए निर्णय प्रयोज्य नहीं हैं।

14. उक्त उल्लिखित कारणों से इस लेटर्स पेटेन्ट अपील में गुणागुण नहीं है। अत:, यह एल॰ पी॰ ए॰ खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

श्याम नारायण सिंह एवं एक अन्य

cuke

आयुक्त, दक्षिण छोटानागपुर डिविजन एवं अन्य

W.P. (C) No. 6170 of 2004. Decided on 8th August, 2012.

छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धारा 71A—भूमि का पुनर्स्थापन—रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के निबंधनों द्वारा भूमि को छप्परबंदी भूमि में संपरिवर्तित किया गया—धारा 71A उस भूमि पर प्रयोज्य नहीं है जिसे रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के माध्यम से छप्परबंदी में संपरिवर्तित किया गया है—इसके अतिरिक्त, 41 वर्षों का विलंब अयुक्तियुक्त है—41 वर्षों के विलंब के बाद पुनर्स्थापन की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है—आक्षेपित आदेश अपास्त—याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 10)

निर्णयज विधि.—(2000)5 SCC 141; (2004)8 SCC 340—Relied on; 1987 BLT (Rep.) 332 (Pat) (RB); (2000)5 SCC 141; (2004)8 SCC 340—Referred.

अधिवक्तागण.—M/s P.K. Prasad, Ayush Aditya, Sidhant Suman, For the Petitioners; J.C. to S.C. (L&C), For the Respondent Nos. 1 to 3; M/s Bharat Kumar, Ashish Jha, For the Respondent No. 4.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए और आक्षेपित आदेश का परिशीलन किया गया।

2. वर्तमान रिट याचिका एस॰ ए॰ आर॰ पुनरीक्षण सं॰ 179 वर्ष 1998 में प्रत्यर्थी सं॰ 1 अर्थात पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 10.11.2004 के आदेश (परिशिष्ट-4) को अभिखंडित करने के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात किया गया है और विशेष अधिकारी अर्थात प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा पारित दिनांक 26.6.1989 का मूल आदेश और अपीलीय प्राधिकारी अर्थात प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा पारित दिनांक 9.10.1998 का अपीलीय आदेश अपास्त कर दिया गया है।

3. इस मामले में आरंभ में प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने खाता सं॰ 93, मौजा मोराबादी, पी॰ एस॰ सं॰ 192, जिला राँची के अधीन आर॰ एस॰ भूखंड सं॰-1272 (57 डिसमिल), 1273 (5 डिसमिल) और 1274 (55 डिसमिल) के अंतर्गत गठित भूमि के पुनर्स्थापन का दावा करते हुए उपायुक्त, राँची के समक्ष एक आवेदन दाखिल किया था तथा उक्त आवेदन के आधार पर विशेष अधिकारी, अनुसूचित क्षेत्र विनियमन के न्यायालय में एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 108/87-88 दर्ज किया गया था। विद्वान एस॰ ए॰ आर॰ अधिकारी ने दिनांक 28.6.1989 के निर्णय के निबंधनों द्वारा पुनर्स्थापन आवेदन इस आधार अस्वीकार कर दिया

कि अधिनियम के प्रावधान उस भूमि पर प्रयोज्य नहीं थे जिसे दिनांक 10.10.1947 के रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के निबंधनानुसार छप्परबंद में संपरिवर्तित कर दिया गया है।

प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने दिनांक 26.6.1989 के आदेश को चुनौती देते हुए अपर कलक्टर, राँची के समक्ष एस॰ ए॰ आर॰ अपील सं॰ 9R15/89-90 दाखिल किया और विद्वान अपर कलक्टर ने दिनांक 9.10.1998 के निर्णय के निबंधनानुसार अपील को मुख्यत: तीन आधारों पर खारिज कर दिया: प्रथमत: इस आधार पर कि चूँकि दिनांक 10.10.1947 के रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के द्वारा भूमि छप्परबंदी में संपरिवर्तित कर दी गयी थी अत: सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के प्रावधान प्रयोज्य नहीं थे; द्वितीयत: इस आधार पर कि पुनर्स्थापन आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित था और तृतीयत: इस आधार पर कि भूमि के अंतरण की तिथि अर्थात दिनांक 27.9.1946 को जहाँ तक अनुसूचित जनजाति के परस्पर अंतरण का संबंध है, कोई निर्बंधन नहीं था अत: अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन का प्रश्न नहीं था।

अपर कलक्टर द्वारा पारित आदेश के विरूद्ध प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने प्रत्यर्थी सं॰ 1 के समक्ष एस॰ ए॰ आर॰ पुनरीक्षण 179/98 दाखिल किया और प्रत्यर्थी सं॰ 1 ने दिनांक 10.11.2004 के निबंधनानुसार पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात किया और विशेष अधिकारी के दिनांक 26.6.1989 और अपर कलक्टर के दिनांक 9.10.1998 के आदेशों को अपास्त करके भूमि के पुनर्स्थापन का आदेश दिया।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने मुख्यत: तीन बिंदुओं को उठाया है। प्रथम बिंदु अभिलिखित रैयत द्वारा अन्य आदिवासियों को भूमि के अंतरण के संबंध में है और इस संदर्भ में उन्होंने निवेदन किया कि प्रश्नगत भूमि वर्ष 1947 से पहले दिनांक 27.9.1946 के रजिस्टर्ड विक्रय विलेख सं॰ 6231 के फलस्वरूप आदिवासी पांडे कुजुर के पुत्र अलफेस कुजुर को अंतरित की गयी थी, अत: संशोधनकारी अधिनियम, जो अंतरण के पहले उपायुक्त की पूर्वानुमति लेने का प्रावधान बनाती है, द्वारा अधिरोपित प्रतिषेध वर्तमान मामले पर लागू नहीं होगा। अपने प्रतिवाद के समर्थन में याची के विद्वान अधिवक्ता ने **पतरास ओराँव बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (1991)2 BLJR 1084** में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया और इस पर विश्वास किया जहाँ दोनों पक्षगण अनुसूचित जनजाति हैं और संव्यवहार वर्ष 1944 में किया गया था, अत: संशोधनकारी अधिनियम 1947 द्वारा अधिरोपित निषेध लागू नहीं होगा क्योंकि इसे भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया गया था।

उक्त निर्णय को निर्दिष्ट करके याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि पुनरीक्षण प्राधिकारी समुचित परिप्रेक्ष्य में विधि के इस प्रश्न का अधिमूल्यन करने और इस पर विचार करने में विफल रहे हैं। आगे निवेदन किया गया है कि सक्षम प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी ने याचीगण के पक्ष में विवाद्यक विनिश्चित किया है किंतु पुनरीक्षण प्राधिकारी विधि के इस बिंदु का अधिमूल्यन करने में विफल रहे हैं और तद्द्वारा पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात करने में गलती की।

5. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया एक अन्य बिंदु छप्परबंदी भूमि के प्रति छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A की प्रयोज्यता के संबंध में है। उन्होंने निवेदन किया कि दिनांक 10.10.1947 को प्रश्नगत भूमि छप्परबंदी भूमि में संपरिवर्तित कर दी गयी थी और इसलिए सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के प्रावधान आकृष्ट नहीं होंगे। इस संदर्भ में, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने **अश्विनी कुमार रॉय बनाम बिहार राज्य, 1987 BLT (Rep) 332 (Pat) RB,** में प्रकाशित निर्णय को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है और निवेदन किया है कि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A छप्परबंदी भूमि पर प्रयोज्य नहीं है और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा इस महत्वपूर्ण बिंदु पर विचार बिल्कुल नहीं किया गया है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलीय प्राधिकारी ने इस विवाद्यक पर विचार किया है किंतु पुनरीक्षण प्राधिकारी इस बिंदु पर विचार करने में विफल रहे हैं।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया अंतिम बिंदु यह है कि पुनर्स्थापन के लिए आवेदन परिसीमा विधि द्वारा वर्जित है क्योंकि मामला बेदखली के 41 वर्ष बाद दाखिल किया गया था। अपने तर्क

के समर्थन में उन्होंने (i) **जयमंगल ओराँव बनाम मीरा नायक (श्रीमती) एवं अन्य, (2000)5 SCC 141,** और (ii) **सीतू साहू एवं अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य, (2004)8 SCC 340,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है और इन पर विश्वास किया है।

याची के निवेदन के संबंध में मैंने अभिलेख का परिशीलन किया और पाया कि विरोधी पक्ष को दिनांक 27.9.1946 को भूमि से बेदखल किया गया जिस तिथि पर अभिलिखित अभिधारियों ने किसी पांडे कुजुर के पुत्र अलफेस कुजुर को रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के फलस्वरूप भूमि अंतरित किया और पुनर्स्थापन आवेदन वर्ष 1987 में बेदखली के 41 वर्ष बाद दाखिल किया गया था। मैंने याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों का भी परिशीलन किया है।

जयमंगल ओराँव बनाम मीरा नायक, (2000)5 SCC 141, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A में दिए गए शब्दों ''यदि किसी समय पर'' की व्याख्या करते हुए पैरा 16 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:–

> *"16..... bldk vFk ;g ugh fy;k tk ldrk g fd le; lhek d fdlh fcn d fcuk lkekU; fofèk vkj ifjlhek fofèk d vèkhu bl chp vftr i{kk d vfèkdkjk dk è;ku e fy, fcuk yxHkx pkyhl o"k ckn tlk bl ekey e g] mu 'kfDr;k dk ç;kx fd;k tk ldrk FkkA vr%] ge bu dk;okfg;k e ,l fdlh çfrokn dk xg.k djuk vufpr le>r gA***

सीतू साहू बनाम झारखण्ड राज्य, (2004)8 SCC 340, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 11 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

> *"11. vr%] gekjk nf"Vdk.k g fd èkkjk 71A e ç;Dr 'kCn** fdlh le; ij** vfèkfu;e dh lkekftd&vkfFkd uhfr d fØ;kUo;u vFkkr vufHkK] vui< vkj fiNM ukxfjdk d vfèkdkjk e lèk yxku dk jkdu d fy, mik;Dr dk i;kIr yphykiu nu d foèkk;h vk'k; dk]krd gA bl çdkj] tgk mik;Dr èkkjk 71A d vèkhu viuh 'kfDr dk ç;kx djuk purk g] ;g çfrokn djuk fujFkd gkxk fd ifjlhek vfèkfu;e d vèkhu ifjlhek dh vofèk dk volku gk x;k gA ifjlhek vfèkfu;e d vèkhu ifjlhek dh vofèk flfoy U;k;ky;k e yk, x, oknk dk oftr dju d fy, vk'kf;r g tgk i{k Lo; vpy lifUk dk iuLFkkiu bfllr djr g, viu vfèkdkj dk ç;kx djuk purk gA fdr] tgk lkekftd&vkfFkd dkj.kk l i{k Lo; viu vfèkdkjk d çfr voxr ugh gk ldrk g] foèkkueMy u jkT; d vfèkdkjh dk i;kIr 'kfDr ndj lkekftd U;k; dju d fy, ftEenkj cuku dk dne mBk;k gA fdr] ,lh 'kfDr dk ç;kx Hkh v;fDr;Dr :i l ych vofèk d ckn ugh fd;k tk ldrk g ftld nkjku rrh; i{k d fgr çHkko e vk ldr FkA vr%] dlkVh ;g ugh g fd D;k 1963 d vfèkfu;e d vèkhu fofgr ifjlhek vofèk dk volku gk x;k Fkk cfYd ;g g fd D;k v;fDr;Dr foyc d ckn èkkjk 71A d vèkhu 'kfDr dk ç;kx bfllr fd;k x;k FkkA***

पूर्वोक्त मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए मार्गदर्शक सिद्धांतों से मेरा दृष्टिकोण यह है कि 41 वर्ष के विलंब के बाद वर्तमान मामले को अयुक्तियुक्त मानना होगा और 41 वर्ष के विलंब के बाद पुनर्स्थापन की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

7. पूर्वोक्त चर्चा की दृष्टि में, इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि पुनरीक्षण प्राधिकारी ने वर्तमान मामले में अंतर्ग्रस्त विवाद्यक पर समुचित रूप से विचार नहीं किया है और इसे विनिश्चित नहीं किया है और तद्द्वारा पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात करने में गलती की है। यह भी प्रतीत होता है कि सक्षम प्राधिकारी ने और अपीलीय प्राधिकारी ने भी समुचित रूप से विवाद्यक पर विचार किया है और इसे याचीगण के पक्ष में विनिश्चित किया है।

8. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश का समर्थन करते हुए याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क का जोरदार विरोध किया किंतु प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को इस मामले में की गयी पूर्वोक्त चर्चा की दृष्टि में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

9. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में, इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 10.11.2004 का आदेश विधि के प्रावधान के अनुरूप नहीं है और इस प्रकार इसे विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है और यह अपास्त करने योग्य हैं। अत:, पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 10.11.2004 का आदेश अपास्त किया जाता है।

10. तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o vij'k dekj flg] U;k;efr

मारवाड़ी काँवर संघ धरमशाला, बैद्यनाथधाम, देवघर

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (T) No. 2716 of 2006. Decided on 5th September, 2012.

बिहार नगरपालिका अधिनियम, 1922—धारा 84(2)—धृति कर भुगतान करने का दायित्व—याचीगण की धर्मशाला बिहार हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 के प्रावधानों के अधीन पुरी तरह नियंत्रित है—इसे धार्मिक न्यास के रूप में रजिस्टर्ड किया गया है—याची की धर्मशाला धारा 84(2) के अधीन छूट प्राप्त है—आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 9 एवं 10)

अधिवक्तागण.—M/s. Rajeeva Sharma, S. Akhtar, For the Appellant; Mr. Anil Kumar Jha, For the Respondent No.3.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. रिट याची मारवाड़ी काँवर संघ धर्मशाला विविध केस सं॰ 9/2003-04 में उपायुक्त, देवघर द्वारा पारित दिनांक 30 अप्रिल, 2004 के आदेश के विरूद्ध व्यथित है, जिसके द्वारा उक्त प्राधिकारी ने अभिनिर्धारित किया कि रिट याची धार्मिक निकाय नहीं है और अभिनिर्धारित किया कि याची बिहार नगरपालिका अधिनियम, 1922 के प्रावधानों के अधीन और विनिर्दिष्टत: वर्ष 1922 के उक्त अधिनियम की धारा 84(2) के अधीन धृति कर का भुगतान करने का दायी है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची प्रारम्भ में डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 119/2002 दाखिल करके इस न्यायालय के पास आया जिसे दिनांक 19 सितम्बर, 2003 को प्रत्यर्थी प्राधिकारी को नए सिरे से प्रश्न विनिश्चित करने के निर्देश के साथ निपटाया गया था कि क्या याची वस्तुत: पूर्त संस्थान के रूप में दर्ज न्यास है और इसलिए विशेषाधिकारों का हकदार है जो ऐसे संस्थान बिहार नगरपालिका अधिनियम के प्रावधानों के अधीन पाते हैं। यह निवेदन किया गया है कि याची ने उक्त प्राधिकारी के समक्ष यह उपदर्शित करते हुए पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत किया कि याची बिहार हिंदू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 के प्रावधानों के अधीन रजिस्टर्ड पूर्त सोसाइटी है और पूर्त संस्थान होने के नाते इसने अपने दाताओं के लिए दानों के आयकर के भुगतान से आयकर अधिनियम के अधीन छूट प्रमाण-पत्र पाया और कि यह संस्थान तीर्थयात्रियों के लाभ के लिए धर्मशाला चलाती है जो बाबा बैद्यनाथ मंदिर आते

हैं और तीर्थयात्रियों को अन्य सुविधाओं के साथ रियायती किराए पर कमरा दे रहे हैं और गरीब तीर्थयात्रियों के लिए वे शुल्कमुक्त आश्रय दे रहे हैं और कि याची सामाजिक संगठनों द्वारा आयोजित सामाजिक कार्यों के प्रयोजन से स्थान दे रहे है और इसके पास वर्ष 2002-03 के लिए 11,27,354.31/- रुपयों का अधिशेष अतिशेष है। आगे निवेदन किया गया है कि इन तथ्यों पर विचार किए बिना और अभिलेख पर किसी प्रति तथ्य के बिना उक्त प्राधिकारी ने याची को गैर-धार्मिक संस्थान/न्यास घोषित किया और 1922 अधिनियम की धारा 84(2) में अंतर्विष्ट प्रावधान, जिसमें स्पष्टत: प्रावधानित किया गया है कि धार्मिक मिलन स्थल अथवा धर्मशाला धृति कर के भुगतान से मुक्त है, को अनदेखा करते हुए अभिनिर्धारित किया कि याची 50% छूट के साथ धृति कर का भुगतान करने का दायी है।

4. नगर निगम के विद्वान अधिवक्ता ने इस्टर्न लॉ हाउस द्वारा प्रकाशित ए॰ सी॰ सेन द्वारा रचित धार्मिक एवं पूर्त न्यास की हिंदू विधि, पंचम संस्करण के पृष्ठ 31 के पैरा 1.41 में दी गयी धर्मशाला की परिभाषा पर विश्वास किया और निवेदन किया कि याची ने कहीं नहीं कथन किया है कि यह तीर्थयात्रियों को ''नि:शुल्क'' भोजन एवं आश्रय देता धर्मशाला है और इसलिए, याची 1922 अधिनियम की धारा 84(2) के प्रावधान के मुताबिक धृति भुगतान से मुक्त था।

5. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया बिहार नगरपालिका अधिनियम, 1922 की धारा 84(2) का पठन निम्नलिखित है:–

"84. ekfr;k ij dj d vfèkjki.k ij fu;=.k&(1).....

*(2) dkb ekfr ftldk mi;kx vuU; :i l lkotfud itk vFkok ekkfed feyu LFky d :i e vFkok eke'kkyk d :i e] vFkok 'koxg d :i e fd;k tkrk g vFkok tk nQuku vFkok tyku dh vke Hkkfe d :i e èkkjk 248 d vèkhu lE;d :i l jftLVM dh x;h g dk ekfr ij dj l NV nh tk,xhA***

6. दिनांक 30 अप्रिल, 2004 के आक्षेपित आदेश में प्राधिकारी द्वारा ध्यान में लिए गए तथ्य ये हैं कि याची रजिस्टर्ड धार्मिक सोसाइटी है और बिहार हिंदू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 के अधीन रजिस्टर्ड की गयी है, उक्त न्यास ने आयकर अधिनियम की धारा 80G के अधीन छूट प्रमाण-पत्र प्राप्त किया है; यह रियायती किराए पर तीर्थयात्रियों का आश्रय देती है और गरीब तीर्थयत्रियों को मुफ्त आश्रय देती है; यह धार्मिक समारोह के लिए भी अपना भवन देती है और इसके पास दुकानें है जिन्हें किराए पर दिया जाता है और किन्तु तीन वर्षों से न्यास के पास अधिशेष निधि है और वर्ष 2002-03 में इसके पास 11,27,354.31/- रुपया अतिशेष है।

7. इन समस्त तथ्यों को दर्ज करने के बाद और यह परीक्षण किए बिना कि क्या प्रश्नगत संपत्ति धर्मशाला है और कोई कारण दिए बिना प्राधिकारी ने सीधे-सीधे घोषित किया कि यह धार्मिक न्यास नहीं है, वह भी इस तथ्य के बावजूद कि यह पहले से ही विधि के सांविधिक प्रावधान के अधीन धार्मिक न्यास के रूप में रजिस्टर्ड है और इसे आयकर अधिनियम के अधीन, विनिर्दिष्टत: धारा 80G के अधीन छूट प्रमाण-पत्र मिला हुआ है। प्राधिकारी ने निर्धारिती के अभिवचन कि यह रियायती किराए पर तीर्थयात्रियों को और गरीब तीर्थयात्रियों को किसी किराए के बिना आश्रय देता है, को अस्वीकार किए बिना अभिनिर्धारित किया कि याची के भवन को धारा 84(2) के अधीन कर के भुगतान से छूट नहीं है।

8. बिहार नगरपालिका अधिनियम, जैसा झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया है, मैं शब्द ''धर्मशाला'' को परिभाषित नहीं किया गया है। किंतु, हम इस तथ्य का न्यायिक ध्यान लेता है कि किसी मंदिर विशेष का भ्रमण करने वाले तीर्थयात्रियों का आश्रय देने वाला भवन प्रथम दृष्टया धर्मशाला के रूप में माना जा सकता है किंतु इस शर्त के अध्यधीन कि धर्मशाला चलाने के पीछे का हेतु लाभ नहीं होना चाहिए। जहाँ तक इस्टर्न लॉ हाउस द्वारा प्रकाशित ए॰ सी॰ सेन की पुस्तक धार्मिक एवं पूर्त न्यास की हिंदू विधि, पंचम संस्करण में दी गयी परिभाषा का संबंध है, पृष्ठ 31 पर दी गयी उस परिभाषा को उद्धृत करना समुचित होगा जो निम्नलिखित है:–

*"1.41. èke'kkyk-&èke'kkyk] foJke xg vkj lrjkl tk çfrJk; d uke l tku tkr g] eB d ln'k gfl;r j[kr g vkj o lkekU; r% ;kf=;k vkj lrk d ykHk d çfr lefir gA cguh ijku çfrJk; xg d lei.k dk fuEu rjhd l of.kr djrk g% vrghu èkkfed eèkk çnku dju oky vkj lfoèkk tud dejk l ;Dr] ljf{kr] lykLVj l vkPNkfnr lfHkUu fpUg j[krk ogr vkxu vkj etcr LrHkk d lkFk iDdh bVk l cuk ifo= vkj vkjkeng vkJ; 'ko vkj o".ko lrk dk lefir dh tkuh pkfg,A ifo= njoktk okyk vkj 'k) i; ty vkj Hkktu l ;Dr ifo=] vkjkenk;d vkj lnj Hkou dk xjhc] vlgk; vkj ;kf=;k d çfr lefir djuk pkfg,A** ; lc turk vFkok turk d dfri; ox d ykHk d fy, vk'kf;r g vkj dkb fofufn"V vknkrk ugh g ft l l migkj Lohdkj djuk gA***

9. उक्त पुस्तक में दी गयी परिभाषा का कोरा परिशीलन उपदर्शित करता है कि यह धर्मशाला का सर्वांगीण परिभाषा नहीं है। इसने धर्मशाला के कार्य करने के पुराने तरीकों से मदद लिया है जो कालक्रम में काफी बदल गए हैं। किंतु, इस परिभाषा में, कहीं नहीं दिया गया है कि धर्मशाला को 'निःशुल्क' भोजन और आश्रय सबों का प्रदान करना चाहिए। अतः, हम प्रत्यर्थी के निवेदन में सार नहीं पाते हैं कि वर्तमान भवन को धर्मशाला के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि याची द्वारा प्रतिवाद नहीं किया गया है कि यह तीर्थयात्रियों को ''मुफ्त'' भोजन और आश्रय दे रहा है। इस धर्मशाला का विशिष्ट लक्षण यह है कि समूचे देश में हिंदूओं के अत्यंत महत्वपूर्ण धार्मिक मंदिर बाबा बैद्यनाथ मंदिर का भ्रमण करने वाले तीर्थयात्रियों का आश्रय देने के प्रयोजन से इसके पास भवन है और कि यह तीर्थयात्रियों को रियायती किराए पर और गरीब तीर्थयात्रियों को मुफ्त आश्रय देता है और सामाजिक कार्य के लिए भी यह अपना भवन देता है। प्राधिकारीगण शायद याची धर्मशाला के पास पड़े अधिशेष कोष से प्रभावित हुए होंगे और इसलिए इसने संप्रेक्षित किया है कि इसे लाभ के लिए चलाया जा रहा है। किसी धार्मिक संस्थान को स्वयं अपने प्रयोजनों के कुछ कोष रखने की आवश्यकता होती है जो भविष्य में कीमत वृद्धि के तत्व को ध्यान में लेकर रियायती दर पर भोजन देना सम्मिलित करता है और स्वयं इसके बढ़ाये जाने के प्रयोजन से भी है किंतु वह अधिशेष केवल विधि के अनुरूप हो सकता है। याची धर्मशाला बिहार हिंदू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 के प्रावधानों के अधीन पूर्णतः नियंत्रित है और आयकर विभाग के जांच के अधीन भी है। इसके पास अधिशेष कोष होने के तथ्य मात्र से यह निष्कर्षित नहीं किया जा सकता है कि याची धर्मशाला का उद्देश्य लाभ कमाना है। अतः, हमारा सुविचारित मत है कि उक्त प्राधिकारी के पास यह घोषणा करने का कारण नहीं था कि याची धार्मिक न्यास नहीं है जो निष्कर्ष पूर्णतः अधिकारिताहीन है और प्रासंगिक राज्य अधिनियम के अधीन धार्मिक न्यास के रूप में इसके रजिस्ट्रीकरण के विपरीत है और इसलिए इस निष्कर्ष को संपोषित नहीं किया जा सकता है।

10. सार संक्षेप में, उक्त प्राधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्ष अभिलेख, विनिर्दिष्टः स्वयं आक्षेपित आदेश में उपलब्ध तथ्यों के विपरीत है और 1922 अधिनियम की धारा 84(2) के अधीन याची धर्मशाला को छूट से इनकार करते हुए उक्त प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है और अपास्त किए जाने का दायी है और इसलिए, अभिनिर्धारित किया जाता है कि याची की धर्मशाला को 1922 अधिनियम की धारा 84(2) के अधीन छूट प्राप्त है। तद्नुसार, याची का रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

मो॰ जुलफर अंसारी एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 3342 of 2006. Decided on 11th September, 2012.

रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1908—धारा 68—विक्रय विलेख रजिस्टर करने से इनकार—रजिस्ट्रार धारा 68 के अधीन शक्ति के प्रयोग में सब-रजिस्ट्रार को यह निर्देश नहीं दे सकता है कि वह रजिस्ट्रीकरण के लिए प्रस्तुत दस्तावेज को रजिस्टर न करे यदि दस्तावेज सांविधिक आवश्यकताओं और औपचारिकताओं को पूरा करता हो—याची को सब-रजिस्ट्रार के पास जाने की अनुमति दी गयी। (पैराएँ 9 से 12)

निर्णयज विधि.—LPA No. 08 of 2007; 1988 PLJR 671—Relied on.

अधिवक्तागण.—Mr. V. Shivnath, For the Petitioner; J.C. to S.C. (L&C), For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. इस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान मूल रिट याची मुस्लिम अंसारी को उसके विधिक उत्तराधिकारियों अर्थात वर्तमान याचीगण अर्थात मो॰ जुलफर अंसारी एवं अन्य द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। वर्तमान याचीगण उनकी ओर से प्रस्तुत विक्रय विलेख को रजिस्टर करने से प्रत्यर्थी सं॰ 3 जिला सब रजिस्ट्रार, राँची के इनकार करने से व्यथित है। प्रश्नगत विक्रय विलेख रिट याचिका का परिशिष्ट-3 है।

3. याची का प्रतिवाद यह है कि मौजा पनडग के थाना सं॰ 228 के खेवट सं॰ 2 के खाता सं॰ 383 के भूखंड सं॰ 718 क्षेत्रफल 5 एकड़, भूखंड सं॰ 496 क्षेत्रफल 1 एकड़ से संबंधित भूमि को भूतपूर्व मध्यवर्ती बड़ा लाल कंदर्प नाथ सहदेव के 'गैरमजरूआ मालिक भूमि' के रूप में दर्ज किया गया था। प्रतिवादी का दावा है कि भूतपूर्व जमीन्दार के रजिस्टर्ड कबूलियत द्वारा शेख सहमत और शेख अजमत के पक्ष में दिनांक 5.2.1948 के 'हुकुमनामा' के आधार पर भूमि को कब्जा देने के साथ उनके नाम पर बंदोबस्त किया गया था और लगान रसीदों को भी जारी किया गया था। जमींदारी निहित किए जाने के समय पर जमींदार द्वारा दाखिल रिटर्न में उक्त रैयतों को कौलदारों के रूप में दर्शाया गया था। मृत मूल याची मुस्लिम अंसारी ने उक्त शेख सहमत और शेख अजमत की संतति होने के कारण उक्त रैयती भूमि को विरासत में पाया था और रजिस्टर II में दर्ज उक्त रैयतों के नाम पर जमाबंदी खोली गयी थी और वर्ष 1983-84 में सुधार पर्ची भी जारी की गयी थी। जब अंचलाधिकारी, रातू अंचल (अब नगरी) ने मूल याची को लगान रसीद देने से इनकार किया, वह डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2496 वर्ष 2002 में इस न्यायालय के पास आने के लिए मजबूर हुआ। दावा पर विचार करने के लिए मामला अपर कलक्टर को भेजा गया था और सकारण आदेश पारित करके अंतिम निर्णय लिया गया था। तत्पश्चात, दिनांक 12.12.2005 के आदेश द्वारा अपर कलक्टर ने याची का दावा अस्वीकार कर दिया और जमाबंदी रजिस्टर में उसके नाम के रद्दकरण की अनुशंसा की। मूल याची ने व्यथित होकर विविध केस सं॰ 2 वर्ष 2005 में अपर कलक्टर, राँची द्वारा पारित दिनांक 12.12.2005 के आदेश का अभिखंडन इप्सित करते हुए और प्रश्नगत भूमि के संबंध में लगान रसीदों को जारी किया जाना इप्सित करते हुए एक अन्य रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1119 वर्ष 2006 दाखिल किया। दिनांक 9.8.2006 के निर्णय के तहत इस न्यायालय द्वारा

उक्त रिट याचिका अनुज्ञात की गयी थी और संबंधित अंचलाधिकारी रातू (अब नगरी) को मूल याची मुस्लिम उर्फ मो॰ मुस्लिम अंसारी को लगान रसीद जारी करने का निर्देश दिया गया था क्योंकि उसका नाम वर्ष 1983-84 से रजिस्टर II में पाया गया था। पूर्वोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैरा 6 और 7 निम्नलिखित है:–

*^^ijk 6&tc fnukd 20.7.2006 dk ekeyk iu% luk x;k Fkk] fo}ku LFkk;h vfèkoDrk (Hkfe vfèkdre lhek) Jh ety çlkn u U;k;ky; e dFku fd;k fd lcfèkr vpy dk;ky; e ,lk dkb vfHky[k miyCèk ugh gA pfd vij dyDVj u mfYyf[kr fd;k Fkk fd mUgku dl l0 4R8(II) o"k 1983-84 d vfHky[k dh ryuk dh Fkh] mUg Lo; mifLFkr gku dk vkj mDr vfHky[k ftl mUgku ;kph dh çfof"V dh ryuk dh Fkh vkj ftld vkèkkj ij vk{kfir vkn'k ikfjr fd;k x;k g] dk çLrr dju dk fun'k fn;k x;k FkkA vij dyDVj] jkph vkt Lo; mifLFkr g, vkj dN jftLVj dk çLrr fd;k ftudk oreku ekey l lcèk ugh gA fo}ku vij dyDVj dl l0 4R8(II) o"k 1983-84 d vfHky[k dk çLrr dju e foQy jg ftl mUgku vfHkdfFkr :i l jftLVj II e ;kph dh çfof"V dh ryuk dh Fkh vkj bl lngkLin ik;k FkkA bl çdkj] çR;Fkhx.k ml vkèkkj dk çLrr dju e foQy jg ftld vkèkkj ij vk{kfir vkn'k ikfjr fd;k x;k gA vkèkkjghu gku d dkj.k ;g vfHkfuèkkfjr dju d vykok fodYi ugh g fd vk{kfir vkn'k foÑr vkj vlik"k.kh; g vkj rnulkj ,lk vfHkfuèkkfjr fd;k tkrk gA fnukd 12.12.2005 dk vk{kfir vkn'k (ifjf'k"V&11) vfHk[kfMr fd;k tkrk gA vfHkfuèkkfjr fd;k x;k g fd ;kph] ftldk uke o"k 1983-84 l jftLVj II e g] yxku d Hkxrku ij yxku jlhnk dk çkIr dju dk gdnkj gA çR;Fkh l0 3 dk xko iuMx d [kkrk l0 383 d Hk[kM l0 71 vkj 496 d lcèk e yxku Lohdkj dju vkj ;kph dk lefpr jlhn çnku dju dk fun'k fn;k tkrk g tc rd ml uke e mDr tekcnh voèk vfHkfuèkkfjr ugh dh tkrh g vFkok l{ke vfèkdkfjrk d U;k;ky; }kjk vFkok fofèk }kjk LFkkfir çfØ;k }kjk jnn ugh fd;k tkrk gA***

^^ijk 7:-fo}ku vfèkoDrk Jh ihO f'koukFk u fuonu fd;k fd ;kph viuh mDr Hkfe d lcèk e yxku d li.k cdk;k dk Hkxrku dju d fy, r;kj gA ;fn ;kph yxku d cdk;k@pky yxku dk Hkxrku djrk g] bl Lohdkj fd;k tk,xk vkj ml rjUr lefpr jlhn dk tkjh fd;k tk,xkA

*mDr fun'k d lkFk ;g fjV vkonu vuKkr fd;k tkrk gA***

4. डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 1119 वर्ष 2006 में दिनांक 9.8.2006 के उक्त निर्णय के विरूद्ध झारखंड राज्य द्वारा दाखिल अपील एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 474 वर्ष 2006 भी दिनांक 2.11.2006 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गयी थी। याची का प्रतिवाद है कि तत्पश्चात लगान रसीद जारी किया गया है जब याची ने विक्रय विलेख मुख्य रिट याचिका का परिशिष्ट–3, के फलस्वरूप एक अन्य व्यक्ति के पक्ष में उक्त भूमि बेचना चाहा, प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा इसे इनकार किया गया है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 3.7.2007 के एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 8 वर्ष 2007 में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्णय पर भी विश्वास किया है जिसमें इस आधार पर कि प्रश्नगत भूमि 'गैरआबाद भूमि' है, दस्तावेज रजिस्टर करने से सब–रजिस्ट्रार, धनबाद के इनकार के कारण समरूप विवाद्यक उठाया गया था। किंतु, प्रत्यर्थी राज्य के पूर्वोक्त प्रतिवाद को राज्य के अधिवक्ता द्वारा अपनाए गए स्पष्ट दृष्टिकोण की दृष्टि में ठुकराया गया था जैसा दिनांक 3.7.2007 के निर्णय में निर्दिष्ट किया गया है जिसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

^^iokDr vkn'k d vulj.k e] fty lc&jftLVkj] èkuckn }kjk vU; ckrk d lkFk ;g dFku djr g, dkj.k crkvk nkf[ky fd;k x;k g fd mlu fnukd 29.5.2007 dk in xg.k fd;k Fkk vkj ml d in ioorh u oLrr% bl vkèkkj ij fd ç'uxr Hkfe xj vkckn Hkfe g] nLrkot jftLVj dju l budkj dj fn;k FkkA

jkT; dh vkj l mifLFkr gku oky fo}ku vfèkoDrk u fuonu fd;k fd nLrkot dk jftLVj dju l budkj djr g, rRdkyhu lc&jftLVkj dh dkjokb fcYdy fofèk fo:) Fkh vkj mUgku bl U;k;ky; dk vk'oklu fn;k fd Hkfo"; e bl nkgjk;k ugh tk,xkA Jh ety çlkn vkx fuonu djr g fd dBkjrkiod fofèk d vu:i vkj fu.k;k dh J[kyk e bl U;k;ky; d fun'k d erkfcd Hkh ÑR; dju d fy, leLr lc jftLVkjk dk egkfèkoDrk d dk;ky; l vko';d vun'k tkjh fd;k tk,xkA Jh çlkn vkx fuonu djr g fd tl gh vkj tc Hkh çR;Fkhx.k fjV ;kph lc&jftLVkj d le{k mifLFkr gkr g vkj nLrkotk dk çLrr djr g] bUg mlh fnu ij jftLVj fd;k tk,xkA**

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि प्रतिशपथ–पत्र के परिशिष्ट–A के रूप में संलग्न मेमो सं॰ 1203/गोपनीय/12.7.2004 में अंतर्विष्ट उपायुक्त द्वारा पारित आदेश बिल्कुल अवैध है और वह मात्र इस आधार पर कि भूमि का उक्त टुकड़ा अभिकथित रूप से 'गैरमजरूआ भूमि'' है, विक्रय विलेख के दस्तावेज को रजिस्टर नहीं करने का सब–रजिस्ट्रार को निर्देश नहीं दे सकते थे।

7. किंतु प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि राज्य के हित के संरक्षण के लिए उपायुक्त–सह–जिला रजिस्ट्रार द्वारा पारित दिनांक 12.7.2004 के आदेश के अनुसरण में आक्षेपित कार्रवाई की गयी है और सब–रजिस्ट्रार ने उपायुक्त जो जिला रजिस्ट्रार भी हैं के आदेश के अनुरूप कृत्य किया।

8. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और आक्षेपित आदेश सहित प्रासंगिक दस्तावेजों का परिशीलन भी किया है। यह प्रतीत होता है कि प्रश्नगत भूमि संबंधित रैयतों, जिनसे मूल याची अपना हक पाता है, के पक्ष में भूतपूर्व जमींदार द्वारा बंदोबस्त की गयी थी और वर्ष 1983-84 में उक्त रैयतों के नाम में 'जमाबंदी' खोली गयी थी। किंतु, इसका लगान रसीद जारी करने से इनकार करने पर मूल याची इस न्यायालय के पास आया था जिसमें इस न्यायालय ने डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ 1119 वर्ष 2006 में पारित दिनांक 9.8.2006 के निर्णय (पूरक शपथपत्र का परिशिष्ट–4) के तहत संबंधित प्रत्यर्थी, अंचलाधिकारी, रातू अंचल (अब नगरी) को उक्त याची के पक्ष में लगान रसीद जारी करने का निर्देश दिया। तत्पश्चात्, परिशिष्ट 3 के रूप में संलग्न विक्रय विलेख के फलस्वरूप उक्त भूमि के भाग को बेचने के प्रयास पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा विक्रय विलेख को रजिस्टर करने से इनकार करने की आक्षेपित कार्रवाई की गयी है।

9. झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम श्री मोहिनी मोहन दास एवं अन्य, एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 8 वर्ष 2007 में इस न्यायालय की खंड पीठ के पास इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर था जिसमें प्रत्यर्थी जैसा याची के अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया है राज्य के विनिर्दिष्ट दृष्टिकोण के आधार पर दर्ज किया गया था कि विक्रय विलेख का रजिस्ट्रेशन इस आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता है कि प्रश्नगत भूमि 'गैर आबाद भूमि' थी। अत:, यह प्रतीत होता है कि उपायुक्त के निर्देश पर आधारित विक्रय विलेख को रजिस्टर करने से इनकार करने वाला सब–रजिस्ट्रार का निर्णय विवेक के समुचित इस्तेमाल के बिना और याची के विनिर्दिष्ट मामले पर विचार किए बिना किया गया है जिसे वर्तमान रिट याचिका में अभिलेख पर लाया गया है।

10. याची के विद्वान अधिवक्ता ने **बिहार डीड राइटर्स एशोसिएशन एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** 1988 PLJR पृष्ठ 671, मामले में दिए गए पटना उच्च न्यायालय के खंडपीठ के निर्णय पर विश्वास किया है और निवेदन किया है कि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के प्रावधान के अधीन

रजिस्ट्रार को सब रजिस्ट्रार के उपर अधीक्षण एवं नियंत्रण का प्रयोग करना है। जैसा उक्त निर्णय के पैरा 5 में अधिकथित किया गया है, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 68 के अधीन रजिस्ट्रार शक्ति के प्रयोग में सब-रजिस्ट्रार को रजिस्ट्रेशन के लिए प्रस्तुत दस्तावेज को रजिस्टर नहीं करने का निर्देश नहीं दे सकता है यदि दस्तावेज सांविधिक आवश्यकताओं और औपचारिकताओं का अनुपालन करता हो।

11. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में, यदि याची समस्त आवश्यक सांविधिक आवश्यकताओं और औपचारिकताओं, जैसा रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के प्रावधानों के अधीन अनुध्यात किया गया है, को परिपूर्ण करता है, याची को प्रश्नगत विक्रय विलेख के रजिस्ट्रेशन के लिए अपने मामले पर विचार करने के लिए सब-रजिस्ट्रार, राँची के पास जाने की स्वतंत्रता दी जाती है।

12. पूर्वोक्त संप्रेक्षण और निर्देश के साथ यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh; vkjï vkjï çlkn] U;k;efr

सत्येन्द्र नाथ तिवारी उर्फ सत्येंद्र तिवारी

cuke

भारत संघ, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से

Cr.M.P. No. 1376 of 2011. Decided on 21st September, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 468 एवं 471 सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराएँ 13 (2) एवं 13(1) (d)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—बिटुमिन स्कैम—संज्ञान—पथ निर्माण विभाग के अभियंताओं और ठेकेदारों द्वारा अभिकथित रूप से अपराध किया गया—किसी अभिकथन कि याची निदेशक होने के नाते प्रभार में था अथवा कंपनी के दैनिक कार्यकलाप के प्रति जिम्मेदार था, की अनुपस्थिति में याची अभियोजित किया जा रहा है जो बिल्कुल अवैध है—कोई व्यक्ति जो निदेशक है, उसे कंपनी द्वारा अपराध किए जाने के लिए दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है—यदि याची को विचारण की कठोरता का सामना करने की अनुमति दी जाती है, यह विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग के तुल्य होगा और घोर अन्याय होगा—दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 8, 13, 15 एवं 16)

निर्णयज विधि.—(2008) 5 SCC 662; (2008) 5 SCC 668—Relied.

अधिवक्तागण.—M/s B.P. Pandey, V.K. Sharma, For the Petitioner; Mr. Khan, For the C.B.I.

आदेश

यह आवेदन आर॰ सी॰ केस सं॰ 1(A) वर्ष 2010-R की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित दिनांक 28.4.2011 को मामले में दाखिल आरोप-पत्र (परिशिष्ट-2) और दिनांक 21.5.2011 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन विद्वान विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, राँची ने याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120B सह-पठित धाराओं 420, 468 और 471 के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) सह-पठित धारा 13 (1) (d) के अधीन भी दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया, के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है।

2. डब्ल्यू॰ पी॰ (पी॰ आई॰ एल॰) सं॰ 803 वर्ष 2009 में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में सी॰ बी॰ आई॰ ने पथों के निर्माण में लिए बिटुमिन मुहैया कराने के मामले में पथ निर्माण विभाग के अभियंताओं और ठेकेदारों द्वारा की गयी अनियमितता के संबंध में आरंभिक जाँच किया। सी॰

बी॰ आई॰ ने बिटुमिन मुहैया कराने के मामले में गंभीर अनियमितता पाए जाने पर मामला दर्ज किया जिसे इस अभिकथन पर कि मेसर्स कलावती कंस्ट्रक्शन (प्रा॰) लि॰ को 1,32,83,679/- रुपयों की मूल्यांकित राशि पर बालूमठ–हरहरगंज पंकी रोड के विशेष मरम्मत के लिए संविदा अधिनिर्णीत की गयी थी, आर॰ सी॰ केस सं॰ 1(A) वर्ष 2010R के रूप में दर्ज किया गया था।

3. करार के मुताबिक, कार्यपालक अभियंता द्वारा किए गए तलब पर सरकारी कंपनी से बिटुमिन मुहैया कराने की आवश्यकता थी। तद्नुसार, काम के निष्पादन में उपयोग किए जाने के लिए ठेकेदारों द्वारा भारत सरकार की तेल कंपनियों से 141 एम॰ टी॰ बिटुमिन उठाने के लिए तलब जारी किया गया था। समय क्रम में, मेसर्स कलावती कंस्ट्रक्शन (प्रा॰) लि॰ ने काम के निष्पादन के लिए उन बीजकों के अधीन बिटुमिन मुहैया कराने का दावा करते हुए 13 बीजकों को दाखिल किया। किंतु जाँच के दौरान, 224.25 एम॰ टी॰ आच्छादित करने वाले 11 बीजकों को कूटरचित/नकली पाया गया था। इसके बावजूद, कनीय अभियंता द्वारा माप–पुस्तिका में प्रविष्टि की गयी थी जिस पर सहायक अभियंता द्वारा प्रति हस्ताक्षर किया गया था और तब ठेकेदार को बिलों को भुनाने की अनुमति दी गयी थी और तद्द्वारा समस्त अभियुक्तगण ने सरकार को 55,41,979/- रुपयों की सीमा तक हानि पहुँचाया।

4. ऐसे अभिकथन पर, आर॰ सी॰ केस सं॰ 1(A) वर्ष 2010R के रूप में मामला दर्ज किया गया था। अन्वेषण पूरा करने के बाद, न केवल कंपनी के विरुद्ध बल्कि इस याची जो कंपनी का निर्देशक हुआ करता था के विरुद्ध भी और कंपनी के अन्य निदेशकों और कर्मचारियों के विरुद्ध भी और साथ–साथ पथ निर्माण विभाग के अभियंताओं के विरुद्ध भी आरोप–पत्र दाखिल किया गया था।

5. आरोप–पत्र दाखिल करने पर दिनांक 21.5.2011 के आदेश के तहत अपराध का संज्ञान लिया गया था जो चुनौती के अधीन है।

6. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बी॰ पी॰ पांडे ने निवेदन किया कि याची मेसर्स कलावती कंस्ट्रक्शन (प्रा॰) लि॰ का निदेशक हुआ करता था जिसे बालूमठ–हरहरगंज पंकी पथ की मरम्मती के लिए संविदा अधिनिर्णीत की गयी थी। जाँच के दौरान, जब यह पाया गया है कि 11 नकली/कूटरचित बीजकों के अधीन आच्छादित राशि का भुगतान ठेकेदार द्वारा प्राप्त किया गया है, न केवल कंपनी के विरुद्ध बल्कि इस याची के विरुद्ध भी जो कंपनी का निदेशक हुआ करता था और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध भी यह दर्शाने के लिए किसी सामग्री के बिना कि यह याची ने कंपनी का निदेशक होने के नाते छल, कूटरचना अथवा दुर्विनियोग का अपराध गठित करने वाला कोई कृत्य किया था, मामला दर्ज किया गया था।

7. इस संबंध में, आगे निवेदन किया गया था कि पक्षों का मामला यह रहा है कि कंपनी को संविदा अधिनिर्णीत किए जाने पर कंपनी ने कंपनी के निदेशकों में से एक बिजय कुमार तिवारी के माध्यम से करार किया जिस पर कंपनी के पक्ष में कार्य आदेश जारी किया गया था और मेसर्स कलावती कंस्ट्रक्शन (प्रा॰) लि॰ द्वारा उसके पक्ष में निष्पादित मुख्तारनामा के बूते पर कोई उदय शंकर तिवारी द्वारा कंपनी के काम की देखभाल की जा रही थी। अन्वेषण के दौरान यह भी आया है कि वह एच॰ पी॰ सी॰ एल॰, राँची से बिटुमिन मुहैया कराने के काम का देखभाल भी कर रहा था और वस्तुतः, उसी का हस्ताक्षर 11 कूटरचित बीजकों पर है और कि कूटरचित बीजकों के आधार पर बिलों को दिया गया था और कंपनी को भुगतान किया गया कहा जाता है। इसके बावजूद, इस याची को मात्र इस कारण से अभियुक्त बनाया गया है कि वह कंपनी मेसर्स कलावती कंस्ट्रक्शन (प्रा॰) लि॰ का निदेशक हुआ करता था।

8. इस प्रकार, इस आधार पर कि याची कंपनी द्वारा किए गए अपराध के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी है, याची को किसी अभिकथन की अनुपस्थिति में अभियोजित किया जा रहा है कि याची निदेशक होने के नाते कंपनी के दैनिक कार्यकलाप के प्रभार में था अथवा इसके प्रति जिम्मेदार था जो बिल्कुल अवैध है।

9. अपने निवेदन के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **एस॰ के॰ अलघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2008)5 SCC 662** के मामले में और **मकसूद सैयद बनाम गुजरात राज्य, (2008)5 SCC 668** के मामले में भी दिए गए निर्णयों को निर्दिष्ट किया है।

10. आगे निवेदन किया गया है कि कोई अभिकथन नहीं है कि याची ने किसी तरीके से अपने लिए लाभ प्राप्त किया था अथवा किसी तरीके से अन्य अभियुक्तगण को लाभ पहुँचाया था और तद्द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(d) के अधीन भी अपराध आकृष्ट नहीं होता है।

11. इन परिस्थितियों के अधीन, संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है जहाँ तक याची का संबंध है।

12. इसके विरुद्ध, सी॰ बी॰ आई॰ के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री खान ने निवेदन किया कि यह सत्य है कि मेसर्स कलावती कंस्ट्रक्शन (प्रा॰) लि॰ को संविदा अधिनिर्णीत की गयी थी जिसके निदेशकों में से एक यह याची है जिसने बोली के दस्तावेजों को अपने हस्ताक्षर के अधीन दाखिल किया था और कंपनी के दैनिक कार्य को करने के लिए उदय शंकर तिवारी के पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित किया था और काम के निष्पादन में सरकारी कंपनी से 13 बीजकों के माध्यम से बिटुमिन मुहैया कराया गया दर्शाया गया था जिनमें से 11 बीजकों को कूटरचित पाया गया था जिन पर उदय शंकर तिवारी का हस्ताक्षर था और इसलिए, याची कंपनी का निदेशक होने के नाते अभियोजित किए जाने का दायी है जब कंपनी अथवा इसके कर्मचारियों द्वारा कतिपय अपराध किया गया पाया गया है जिसके द्वारा सरकार को 55,41,979.52/- रुपयों की सीमा तक हानि पहुँचायी गयी है जबकि याची को कंपनी का निदेशक होने के नाते लाभार्थी कहा जा सकता है और तद्द्वारा उसे सही प्रकार से अभियोजित किया जा रहा है।

13. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर दोनों पक्षों का मामला से यह प्रतीत होता है कि पथ निर्माण विभाग द्वारा मेसर्स कलावती कंस्ट्रक्शन (प्रा॰) लि॰ को संविदा अधिनिर्णीत की गयी थी जिसका याची निदेशकों में से एक है जिसने कंपनी के दैनिक कामों की देखभाल के लिए उदय शंकर तिवारी के पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित किया था और उसे एच॰ पी॰ सी॰ एल॰, राँची से बिटुमिन मुहैया कराने का काम भी न्यस्त किया गया था। उक्त उदय शंकर चौधरी ने बीजकों के अधीन बिटुमिन मुहैया कराने का दावा किया और इन्हें दाखिल किया जिन पर उसका हस्ताक्षर है। उनमें से, 11 बीजकों को कूटरचित पाया गया था जिनके आधार पर बिल तैयार किए गए थे, राशि निकाली गयी थी और कंपनी को भुगतान किया गया था। इस प्रकार, संपूर्ण प्रक्रिया में याची का नाम दो जगह आया है जिसके द्वारा कहा गया है कि बोली लगाने के दस्तावेज को इस याची द्वारा दाखिल किया गया है और कि उसने कंपनी के दैनिक कार्यों की देखभाल के लिए उदय शंकर तिवारी के पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित किया गया है किंतु काम के निष्पादन अथवा बिटुमिन मुहैया कराने अथवा कूटरचित बिलों के आधार पर भुगतान लेने के मामले में इस याची द्वारा किया गया कोई कृत्य अभिकथित नहीं किया गया है, फिर भी इस याची को मात्र इस कारण से कि वह कंपनी का निदेशक हुआ करता था, वह भी किसी अभिकथन की अनुपस्थिति में कि वह कंपनी के दैनिक कार्यकलाप के प्रभार में था अथवा इसके प्रति जिम्मेदार था, संभवत: प्रतिनिधिक दायित्व के सिद्धांत की आड़ में अभियोजित किया जा रहा है। किंतु इस कारण मात्र कि वह निदेशक हुआ

करता था, उसे कंपनी द्वारा अपराध किए जाने के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है।

14. इस संबंध में, मैं **एस॰ के॰ अलघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (उपर)** के मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें पैरा 21 में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया है:–

*^^bl lcèk e] ge xkj dj ldr g fd vko';d oLr vfèkfu;e] ijØkE; fy[kr vfèkfu;e] depkjh Hkfo"; fufèk vkj çdh.k micèk vfèkfu;e] vkfn u , l çfrfufèkd nkf;Ro dk lftr fd;k gA ;g xkj djuk fnypLi g fd 1952 vfèkfu;e dh èkkjk 14A diuh }kjk depkfj;k l dkVh x;h jkf'k d lcèk e U;kl d nkfMd Hkx dk vijkèk fofufn"Vr% lftr djrh gA Hkkjrh; nM lfgrk dh èkkjk 405 d lkFk lyXu Li"Vhdj.k d fucèkukuklkj bl çHkko dh fofèkd dYiuk lftr dh x;h g fd fu;kDrk dk U;kl d nkfMd Hkx dk vijkèk djrk le>k tk,xkA tcfd diuh d dk;dyki d çHkkjh vkj ml ij fu;=.k j[ku oky 0;fDr dk diuh d lkFk diuh }kjk fd, x, vijkèk d fy, çfrfufèkd :i l nk;h cuk;k x;k g fdr Hkkjrh; nM lfgrk dh èkkjk 406 d vèkhu vku oky ekey e Hkh çfrfufèkd nkf;Ro dk diuh d fun'kdk vFkok vfèkdkfj;k rd foLrkfjr fd, tku ;kX; vfHkfuèkkfjr ugh fd;k gA***

15. उक्त कथित परिस्थितियों के अधीन, यदि याची को विचारण की कठोरता का सामना करने की अनुमति दी जाती है, यह निश्चय ही विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग के तुल्य होगा और घोर अन्याय होगा।

16. तद्नुसार, दिनांक 21.5.2011 के आदेश सहित आर॰ सी॰ केस सं॰ 1(A) वर्ष 2010R की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

17. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

टिस्को का प्रबंधन (ट्यूब डिविजन), जमशेदपुर

cuke

पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, पटना एवं अन्य

C.W.J.C. No. 11045 of 1998. Decided on 28th August, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

श्रम एवं औद्योगिक विधि–सेवा समाप्ति–श्रम न्यायालय ने पूरी मजदूरी के साथ पुनर्बहाली का निर्देश दिया–प्रत्यर्थी-कर्मकार को लेखा प्रशिक्षु के रूप में नियुक्त किया गया था–कर्मकार ने अपनी नियुक्ति की तिथि से पाँच वर्ष की अवधि के भीतर आई॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ अर्हता पूरा नहीं किया गया था–नियोक्ता संविदा के अधीन सेवा पूरी होने पर कर्मकार के सेवा समाप्त करने का हकदार है–ऐसी सेवा समाप्ति छँटनी के अर्थ के अंतर्गत नहीं आएगी–आक्षेपित अधिनिर्णय अपास्त। (पैराएँ 10 से 14)

निर्णयज विधि.–(2006)13 SCC 28; (2006)6 SCC 516; (2006)13 SCC 15; (2007)1 SCC 533; 1996 LIC 416—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajiv Ranjan, For the Petitioner; Mr. Prabhash Kumar, For the Respondent No. 2.

अपरेश कुमार सिंह, न्यायमूर्ति.—पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. प्रबंधन-याची निर्देश केस सं॰ 1/1994/81/1994 में पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, बेली रोड, पटना द्वारा दिनांक 21.9.1998 को उद्घोषित दिनांक 14.5.1998 के अधिनिर्णय का अभिखंडन इप्सित कर रहा है जिसके द्वारा श्रम न्यायालय निर्देश का उत्तर देते हुए यह अभिनिर्धारित करने के लिए अग्रसर हुआ कि वर्तमान प्रत्यर्थी सं॰ 2 लेखा प्रशिक्षु श्री आर॰ पी॰ वर्मा की सेवा समाप्ति विधिक और वैध नहीं है बल्कि भेदभावपूर्ण है और परिणामस्वरुप प्रबंधन को याची को समस्त स्वीकार्य पारिणामिक लाभों के साथ पूरी पिछली मजदूरी के साथ पुनर्बहाल करने का निर्देश देते हुए दिनांक 22.12.1988 का सेवा समाप्ति का आदेश अपास्त कर दिया है।

3. याची-प्रबंधन का मामला यह है कि दिनांक 15.9.1983 के पत्र के तहत मेसर्स इंडियन ट्यूब कंपनी लि॰, जमशेदपुर के प्रधान प्रबंधक द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 2-कर्मकार को लेखा प्रशिक्षु के रूप में नियुक्त किया गया था और उसने दिनांक 1.10.1983 को पदग्रहण किया। उक्त कंपनी मेसर्स इंडियन ट्यूब कंपनी लि॰ टिस्को में विलीन हो गयी और तत्पश्चात इसका ट्यूब डिविजन बन गयी। दिनांक 21.5.1983 के परिशिष्ट 3 को निर्दिष्ट करते हुए आगे निवेदन किया गया है कि 'लेखाकार प्रशिक्षण योजना' के अधीन प्रशिक्षण के लिए विचार किए जाने के लिए कंपनी के स्थायी कर्मचारियों के पात्र आश्रितों से आवेदन आमंत्रित करते हुए नोटिस जारी की गयी थी। यह कथन किया गया है कि परिशिष्ट-3 में विनिर्दिष्टत: उपदर्शित किया गया था कि चयनित उम्मीदवारों को जमशेदपुर में लेखा विभाग के अधीन कार्य प्रशिक्षण लेने की और पाँच वर्ष की अवधि के भीतर आई॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ अर्हता प्राप्त करने की आवश्यकता होगी, जिसमें विफल रहने पर प्रशिक्षण समाप्त कर दिया जाएगा। आगे उपदर्शित किया गया था कि ज्योंही वे प्रशिक्षण आरंभ होने से पाँच वर्षों के भीतर आई॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ की अर्हता प्राप्त कर लेते हैं, उनका प्रशिक्षण संपुष्ट किया जाएगा किंतु किसी भी स्थिति में प्रशिक्षण आरंभ होने के डेढ़ वर्ष पहले नहीं जो प्रशिक्षण का न्यूनतम अनुबंधित समय है।

4. आगे कथन किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 को दिनांक 15.9.1983 के परिशिष्ट-4 में अंतर्विष्ट आदेश के तहत नियुक्त किया गया था जिसमें स्पष्टत: कथन किया गया था कि प्रशिक्षु को प्रशिक्षण आरंभ होने से पाँच वर्षों की अवधि के भीतर आई॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ अर्हता अर्जित करनी होगी जिसमें विफल रहने पर प्रशिक्षण समाप्त कर दिया जाएगा। यह निवेदन किया गया है कि याची दिनांक 1.10.1998 तक पाँच वर्षों की अनुबंधित अवधि के भीतर अंतिम परीक्षा में उत्तीर्ण होकर आई॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ अर्हता पूरा करने में विफल रहा और, इसलिए, दिनांक 27.12.1988 पूर्वोक्त के परिशिष्ट-9 में अंतर्विष्ट आदेश द्वारा उसका दिनांक 1.10.1998 के प्रभाव से समाप्त कर दिया गया था जिसमें स्पष्टत: कथन किया गया था कि वह दिनांक 30.9.1998 तक पाँच वर्षों की अवधि के भीतर आई॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ पूरा करने में विफल रहा है। आगे निवेदन किया गया है कि याची प्रशिक्षण अवधि के दौरान भी नियमित तौर पर अनुपस्थित रहा था और वस्तुत: दिनांक 1.6.1988 से वह कर्तव्य पर कभी नहीं उपस्थित हुआ और परिशिष्ट-9 के तहत सेवा समाप्त किए जाने तक अपने काम में पूरी तरह अनुपस्थित रहा। तत्पश्चात याची ने औद्योगिक विवाद उठाया और सुलह कार्यवाही की विफलता पर मूलत: पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, जमशेदपुर के समक्ष निम्नलिखित निबंधनों में निर्देश किया गया था:-

> *^^D;k Jh vkj0 ih0 oek] y[kk çf'k{k] e l l fVLdk (V;c fMfotu) te'knij dh lok lekflr lefpr g\ ;fn ugh] rk D;k mI dke ij iucgky fd;k tkuk pkfg, vFkok@,o evkotk fn;k tkuk pkfg,***

5. तत्पश्चात, पक्षगण उपस्थित हुए और अपना लिखित कथन दाखिल किया और कर्मकार तथा प्रबंधन की ओर से साक्ष्य और दस्तावेज भी दिए गए थे, जिसके बाद मामला विद्वान पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, पटना के समक्ष जून, 1994 में मामला अंतरित किया गया था जिन्होंने यह अभिनिर्धारित

करते हुए कि कर्मकार की सेवा समाप्ति विधिक और वैध नहीं थी, दिनांक 14.5.1998 का आक्षेपित अधिनिर्णय दिया और समस्त ग्रहणीय पारिणामिक लाभों और पूरी पिछली मजदूरी के साथ उसको पुनर्बहाल करने का निर्देश प्रबंधन को देते हुए उसकी सेवा समाप्ति अपास्त कर दी गयी थी।

6. प्रबंधन याची की ओर से आक्षेपित अधिनिर्णय का विरोध करने के आधार ये हैं कि प्रत्यर्थी सं० 2 स्वीकृत रूप से आवेदन आमंत्रित करने वाली नोटिस के मुताबिक और दिनांक 15.9.1983 के नियुक्ति पत्र के निबंधनानुसार प्रशिक्षु था और आगे कर्मकार और प्रबंधन के बीच करार के निबंधनों और शर्तों के अनुसार यह विनिर्दिष्टत: उल्लिखित किया गया था कि कर्मकार को लेखा विभाग, जमशेदपुर में 5 वर्षों का प्रशिक्षण पूरा करना था और अपनी नियुक्ति की तिथि से पाँच वर्षों के भीतर आई० सी० डब्ल्यू० ए० अर्हता प्राप्त करना था जिसमें विफल होने पर प्रशिक्षण समाप्त कर दिया जाएगा। प्रशिक्षु ने स्वीकृत रूप से वर्ष 1987 में केवल आई० सी० डब्ल्यू० ए० का इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण किया, किंतु दिनांक 30.9.1988 तक अर्थात् 5 वर्ष पूरा होने के पहले अंतिम परीक्षा में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण नहीं हो पाया था।

7. अत:, प्रबंधन याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि नियुक्ति के विनिर्दिष्ट निबंधनों की दृष्टि में, जो पक्षों के बीच सेवा संविदा का शर्त अनुबंधित करता है, यदि कोई कर्मकार अपनी नियुक्ति की तिथि से 5 वर्षों की अवधि के भीतर आई० सी० डब्ल्यू० ए० का प्रशिक्षण पूरा करने में विफल रहता है, प्रबंधन को केवल नियुक्ति के निबंधन का अवलंब लेना और कर्मकार की सेवा समाप्त करने की आवश्यकता थी जो पूरी तरह से औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(oo)(bb) के अनुकूल है और उक्त अधिनियम के अधीन छँटनी के अर्थ के अंतर्गत नहीं आता है। इसके अतिरिक्त, कर्मकार केवल प्रशिक्षु था और सेवा में उसे संपुष्ट कभी नहीं किया गया था और लिखित कथन के रूप में अभिलेख पर लाए गए तथ्यों से वह समय-समय पर नियमित अनुपस्थित रहा था और अंतत: दिनांक 1.6.1988 से नोटिस के बिना अथवा उसके पक्ष में अवकाश की मंजूरी के बिना पूरी तरह काम छोड़ चुका था। प्रबंधन-याची की ओर से निवेदन किया गया था कि इन परिस्थितियों में विद्वान श्रम न्यायालय नियुक्ति और प्रत्यर्थी कर्मकार और प्रबंधन के बीच सेवा संविदा के निबंधनों और शर्तों को ध्यान में लेने में पूरी तरह विफल रहा और यह अभिनिर्धारित करके कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25(f) के प्रावधानों को एक माह का नोटिस दिए बिना लागू नहीं किया गया है अथवा कि याची की तरह समस्थित व्यक्तियों को सेवा में संपुष्ट किया गया है यद्यपि उन्होंने भी केवल आई० सी० डब्ल्यू० ए० इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण किया है, किंतु याची को संपुष्टि से इनकार किया गया है। निवेदन किया गया है कि निर्देश के निबंधनों ने स्पष्टत: उपदिर्शत किया कि विद्वान श्रम न्यायालय को विचार करना था कि क्या कर्मकार की सेवा समाप्ति समुचित थी या नहीं जिसे यहाँ उपर कथित कर्मकार और प्रबंधन के बीच सेवा संविदा के निबंधनों और शर्तों के संबंध में विचार किया जा सकता था जो स्पष्टत: अनुबंधित करता है कि यदि प्रशिक्षु अपनी नियुक्ति की तिथि से पाँच वर्षों के भीतर आज्ञापक आई० सी० डब्ल्यू० ए० अर्हता पूरी करने में विफल रहता है, उसकी सेवा समाप्त कर दी जाएगी। आगे निवेदन किया गया है कि कर्मकार-प्रत्यर्थी संपुष्ट कर्मचारी नहीं था, अत:, प्रबंधन ने उसकी ओर से कर्तव्य से नियमित रूप से अनुपस्थित रहने की तरह की अन्य चूकों के लिए आरोप-पत्र जारी करके विभागीय जाँच आरंभ करके उसके विरुद्ध अग्रसर होना नहीं चुना था, बल्कि केवल नियुक्ति और सेवा संविदा के निबंधनों और शर्तों का अवलंब लेना चुना जिसके अधीन परिशिष्ट-9 में अंतर्विष्ट सेवा समाप्ति आदेश जारी किया गया था। आगे निवेदन किया गया है कि विद्वान श्रम न्यायालय ने प्रासंगिक तथ्यों को विचार में लिया और अन्य व्यक्तियों के मुकाबले भेदभाव की

अवधारणा पुर:स्थापित किया जिनका मामला विद्वान श्रम न्यायालय के समक्ष नहीं था और न ही तथ्यों का पर्याप्त रूप से अभिवचन किया गया था और साक्ष्य के रूप में अभिलेख पर लाया गया था। औद्योगिक न्यायनिर्णयन के मामलों में कर्मकार के मामले पर कठोरतापूर्वक औद्योगिक विधि शास्त्र के सिद्धांतों के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत विचार करना होगा जिसमें लोक विधि की धारणा को राज्य और इसके कर्मचारियों के रूप में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रतिवाद के समर्थन में **भोजपुर-सहकारी चीनी मिल एवं अन्य बनाम हरमेश कुमार, (2006)13 SCC 28; नगरपालिका परिषद् समरला बनाम सुखविंदर कौर, (2006)6 SCC 516; कर्नाटक हैंडलूम विकास निगम लि॰ बनाम श्री महादेविया लक्ष्मण रावल, 2006 (13) SCC 15; गंगाधर पिल्ले बनाम साइमंस लि॰, 2007 (1) SCC 533** और **अरिंदम चटर्जी बनाम कोल इंडिया लि॰ एवं अन्य, 1996 LIC 416** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों पर विश्वास किया है।

9. दूसरी ओर, कर्मकार के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि कर्मकार परिशिष्ट-8 पर अंतर्विष्ट करार के निबंधनों के मुताबिक संबंधित अवधि के लिए छुट्टी जैसे 4 दिन के त्योहार छुट्टी और 1 दिन के मेडिकल छुट्टी और प्रशिक्षण के प्रतिवर्ष एक माह के अवकाश छुट्टी का हकदार था। प्रत्यर्थी कर्मकार की ओर से पक्षों के बीच परिशिष्ट-8 में अंतर्विष्ट करार के खंड K को निर्दिष्ट करते हुए आगे निवेदन किया गया है कि यदि नियोक्ता प्रबंधन द्वारा प्रशिक्षु की सेवा समाप्ति की जानी थी, उसको एक माह का पूर्व नोटिस अथवा ऐसे नोटिस के बदले प्रशिक्षु को भुगतान योग्य वेतन अथवा अन्य देयों को दिया जाना था। आगे निवेदन किया गया है कि पूर्वोक्त शर्तों को लागू करने में विफलता औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25 (f) के प्रावधान आकृष्ट करती थी। विद्वान श्रम न्यायालय ने यह भी ध्यान में लिया कि अन्य व्यक्ति जिन्हें भी लेखा प्रशिक्षु के रूप में नियुक्त किया गया था को इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद भी संपुष्टि दी गयी थी और प्रबंधन ने उसके विरुद्ध सेवा समाप्ति का आदेश पारित करके संपुष्टि के मामले में कर्मकार के साथ भेदभाव किया था। आगे प्रतिवाद किया गया है कि विद्वान श्रम न्यायालय ने सही प्रकार से निर्देश की कार्यवाही के दौरान कर्मकार के विरुद्ध प्रबंधन द्वारा किए गए अनुपस्थिति के अभिकथन को विचार में नहीं लिया है क्योंकि यह निर्देश के निबंधनों के परे था और यह निष्कर्ष पर आया कि प्रबंधन ने समस्थित व्यक्तियों के मुकाबले कर्मकार के विरुद्ध उसकी सेवा समाप्त करने में भेदभाव किया था। प्रत्यर्थी-कर्मकार की ओर से यह निवेदन भी किया गया है कि दिनांक 27.12.1988 का सेवा-समाप्ति का आदेश भूतलक्षी रूप से अर्थात् दिनांक 1.10.1988 के प्रभाव से प्रयोज्य नहीं हो सकता था क्योंकि यह सेवा विधि शास्त्र के सुनिश्चित सिद्धांतों के विपरीत था। पूर्वोक्त निवेदन के आधार पर कर्मकार के विद्वान अधिवक्ता ने प्रबंधन को कर्मकार को पूरी पिछली मजदूरी और पारिणामिक लाभों के साथ पुनर्बहाल करने का निर्देश देने वाले आक्षेपित अधिनिर्णय को न्यायोचित ठहराया है।

10. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है और आक्षेपित अधिनिर्णय सहित अभिलेख का परिशीलन किया है। स्वीकृत तथ्य ये हैं कि प्रबंधन द्वारा जारी दिनांक 21.5.1983 के नोटिस के आधार पर प्रत्यर्थी-कर्मकार को लेखा प्रशिक्षु के रूप में नियुक्त किया गया था जिसके बाद दिनांक 15.9.1983 के नियुक्ति पत्र के तहत दिनांक 1.10.1983 को पदग्रहण करने की अनुमति दी गयी थी। यह भी विवादित नहीं है कि दिनांक 21.5.1983 का नोटिस और दिनांक 15.9.1983 का नियुक्ति पत्र

विनिर्दिष्ट अनुबंध अंतर्विष्ट करता था कि कर्मकार को लेखा प्रशिक्षु होने के नाते पाँच वर्षों की अवधि के भीतर आई॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ अर्हता पूरी करने की आवश्यकता थी जिसमें विफल रहने पर प्रशिक्षण समाप्त कर दिया जाएगा। दिनांक 21.5.1983 की नोटिस और दिनांक 15.9.1983 के नियुक्ति पत्र के प्रासंगिक अंश को यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

^^fnukd ***21.5.1983*** *dk ukfVl%&çf'k{k.kkFkhZ&p;fur mEehnokjk dk y[kk foHkkx] te'knij e dke ij çf'k{k.k dju dh vkj ikp o"k dh vofèk d Hkhrj vkbZ lhO MCY;O ,O vgrk çkIr dju dh vko';drk gkxh ftle foQy jgu ij çf'k{k.k lekIr dj fn;k tk,xkA ;fn çf'k{k.k vofèk d nkjku le; d fdlh fcn ij çcèku d è;ku e yk;k tkrk g fd mEehnokj u ijh{kk e mifLFkr gkuk NkM fn;k g] m ldk çf'k{k.k rjUr d çHkko l lekIr dj fn;k tk,xkA çf'k{kvk dk li"V fd;k tk,xk T;kgh o çf'k{k.k vkjHk gku l ikp o"kk dh mDr vofèk d Hkhrj vkbZ lhO MCY;O ,O vgrk çkIr dj yr g] fdr fdlh Hkh fLFkfr e çf'k{k.k vkjHk gku d M< o"k igy ugh tk çf'k{k.k dh U;ure vucfèkr vofèk gA**"*

^^fnukd ***15.9.1983*** *dk fu;fDr i=%&çf'k{k.k vofèk d nkjku vkidk othQk 50/- #i;k dh okf"kd of) d lkFk 1000/-#i;k çfrekg gkxkA*

*vki M< o"kk dh U;ure vofèk d fy, çf'k{k.k ij jgx ftld ckn vkidh lok li"V dh tk,xh T;k gh vki vkbZ lhO MCY;O ,O dh vfre ijh{kk e mÙkh.k gk tkr gA ;fn vki M< o"k dh vofèk d Hkhrj vkbZ lhO MCY;O ,O dh vfre ijh{kk e mÙkh.k gkr g] vkidk M< o"kk dh U;ure vucfèkr çf'k{k.k vofèk ijk dj yu ij rjUr li"V fd;k tk,xkA vkil vkidk çf'k{k.k vkjHk gku l ikp o"k dh vofèk d Hkhrj viuh vkbZ lhO MCY;O ,O ijh{kk ijh dj yu dh vi{kk dh tkrh g ftle foQy jgu ij vkidk çf'k{k.k lekIr dj fn;k tk,xkA**"*

11. यह भी स्वीकृत तथ्य है कि कर्मकार ने नियुक्ति की तिथि से पाँच वर्ष की अवधि के भीतर अर्थात् दिनांक 1.10.1988 तक आई॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ अर्हता पूरा नहीं किया था। छँटनी और मामलों जिन्हें छँटनी की परिभाषा से अपवादित कर दिया गया है से संबंधित औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधान धारा 2(oo) में अंतर्विष्ट है जिन्हें यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

^^èkkjk *2(oo).—^^NVuh** l fu;ktd }kjk fdlh dedkj dh lok dk ,l i;olku vfHkçr g] tk vu'kklu lcèkh dk;okgh d :i e fn, x, nM l fHkUu fdlh Hkh dkj.k l fd;k x;k gk] fdUr bld vUrxr fuEufyf[kr ugh vkr%&*

(a) dedkj dh LoPN;k fuofÙk(vFkok

(b) vfèkokf"kdh vk; dk gk tku ij dedkj dh ml n'kk e fuofÙk ftle fu;ktd vkj lijd dedkj d chp gbZ fdlh fu;ktu lfonk e ml fufeÙk dkbZ vucUèk vUrfo"V gk(vFkok

(bb) fu;ktd vkj lEiDr dedkj d chp gbZ fu;ktu lfonk d lekIr gk tku ij mld uohdj.k u fd, tku ;k fu;ktu lfonk e ml fufeÙk vUrfo"V fdlh vucèk d vèkhu ,lh lfonk dk i;olku fd, tku d QyLo#i fdlh dedkj dh lok dk i;olku%

*(c) bl vkèkkj ij dedkj dh lok dk i;olku fd mldk LokLF; cjkcj [kjkc jgk g(**"*

12. औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(oo) (bb) के प्रावधान के मुताबिक नियोक्ता सेवा संविदा के अधीन सेवा के निबंधनों के पूरा होने पर कर्मकार की सेवा समाप्त करने का हकदार है और सेवा समाप्ति छँटनी के अर्थ के अंतर्गत नहीं आती है।

किंतु, कर्मकार के अधिवक्ता द्वारा प्रतिवाद किया गया है कि कर्मकार और प्रबंधन के बीच करार के निबंधनों और शर्तों के मुताबिक, विनिर्दिष्टत: उसके खंड K के मुताबिक, संबंधित प्रशिक्षु की सेवा समाप्ति के पहले एक माह का नोटिस अथवा इसके बदले वेतन देने की आवश्यकता होती है जो उस मामले पर प्रयोज्य है जहाँ पाँच वर्षों की अवधि के भीतर उसके नियोजन के दौरान प्रशिक्षण समाप्त करना इप्सित किया गया है। किंतु वर्तमान मामला ऐसा नहीं है जहाँ उस आधार पर पाँच वर्षों के भीतर प्रशिक्षु की सेवा समाप्त की गयी है जहाँ औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25 (f) के प्रावधानों के मुताबिक कर्मकार पर एक माह का पूर्व नोटिस तामील करने की आवश्यकता है। इसके विपरीत, प्रशिक्षु की सेवा अपनी नियुक्ति के पाँच वर्ष के भीतर अर्थात् दिनांक 1.10.1988 तक आई॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ अर्हता को पूरा करने में विफलता के कारण समाप्त की गयी है। अत:, प्रबंधन ने कर्मचारी की सेवा समाप्त करने के लिए उक्त प्रावधान का अवलंब लिया। यह एक भिन्न मामला है कि कर्मकार दिनांक 1.6.1988 से लगातार अनुपस्थित रहा था और दिनांक 27.12.1988 को अपनी सेवा समाप्ति के आदेश तक पद ग्रहण नहीं किया था। किंतु, प्रबंधन ने उसके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही के लिए आरोप पत्र जारी करके किसी अवचार के लिए कर्मकार के विरुद्ध अग्रसर होना नहीं चुना था। बल्कि इसने कर्मकार के लिए संविदा के विनिर्दिष्ट निबंधनों को अनुबंधित करने वाले नियुक्ति पत्र के प्रावधान का अवलंब लिया। विद्वान श्रम न्यायालय ने इसको निर्दिष्ट विवाद्यक पर विचार करने के लिए पक्षों के बीच संविदा के विनिर्दिष्ट निबंधनों को विचार में लिए बिना उन कारकों को ध्यान में लेते हुए अग्रसर हुआ जो कर्मकार की सेवा समाप्ति से संबंधित प्रश्न पर विचार करने के प्रयोजन से अप्रासंगिक हैं। इसने उन अभिवचनों और दस्तावेजों को ग्रहण किया जो कर्मकार की सेवा समाप्ति के आदेश के साथ संबंधित नहीं थे बल्कि अन्य कर्मचारियों की संपुष्टि से संबंधित थे और भेदभाव का सिद्धांत लागू किया जो पूर्णत: निर्देश के निबंधनों के परे था जिसके अधीन अधिकरण अथवा श्रम न्यायालय संविधि का सृजन होने के नाते अपनी अधिकारिता पाता है। इसने औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25 (f) के प्रावधान, जो वर्तमान मामले में स्पष्टत: अप्रयोज्य है, पर विश्वास करके स्वयं को अपनिर्देशित किया। प्रत्यर्थी की सेवा पक्षों के बीच करार के निबंधनों के खंड K, जहाँ इप्सित सेवा समाप्ति एक माह का पूर्व नोटिस अथवा इसके बदले वेतन देकर समाप्त की जाएगी, का अवलंब लेकर समाप्त नहीं की गयी थी, बल्कि नियुक्ति पत्र द्वारा मार्गदर्शित सेवा के निबंधनों और शर्तों के मुताबिक कर्मकार की सेवा समाप्त की गयी थी जिसमें उसे पाँच वर्षों के भीतर आई॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ अर्हता पूरी करनी थी जैसा करने में वह विफल रहा। चूँकि, कर्मचारी काफी पहले की तिथि अर्थात् दिनांक 1.6.1988 से ही अनुपस्थिति रहा था, दिनांक 1.10.1988 के बाद सेवा समाप्ति का आदेश दोषपूर्ण नहीं पाया जा सकता था क्योंकि कर्मकार स्वयं सक्रिय कर्तव्य पर नहीं था और उस पर नोटिस तामील किया जा सकता था यदि वह नियमित उपस्थित रहता। चूँकि, सेवा संविदा पाँच वर्षों के भीतर अर्थात् दिनांक 1.10.1988 तक आई॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ अर्हता पूरी करने में प्रत्यर्थी कर्मकार की विफलता पर समाप्त की जा सकती थी, प्रबंधन सेवा समाप्ति का आदेश जारी करके उक्त निबंधनों और शर्तों का अवलंब लेने में पूर्णत: न्यायोचित था जिसे अवैध, मनमाना अथवा औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों में से किसी के विपरीत अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। नियोक्ता ने जानबूझकर प्रत्यर्थी कर्मकार की आदतवश अनुपस्थिति के कृत्यों पर दंड की प्रकृति में कोई सेवा समाप्ति आदेश जारी करना नहीं चुना था बल्कि प्रबंधन ने इस तथ्य को ध्यान में लेते हुए कि कर्मकार प्रशिक्षु था और असंपुष्ट कर्मकार था और जिसकी सेवा स्वयं परिवीक्षा पर थी जिस अवधि के दौरान वह

अध्यपेक्षित अर्हता पाने में विफल रहा, कर्मकार की सेवा समाप्त करते हुए नियुक्ति आदेश के निबंधनों और शर्तों का अवलंब लेना चुना था। अत: प्रत्यर्थी कर्मकार का प्रतिवाद निरर्थक है। **भोजपुर सहकारी चीनी मिल एवं अन्य बनाम हरमेश कुमार, 2006 (13) SCC 28,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रति निर्देश किया गया है जिसका पैरा 11 प्रासंगिक है जिसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

> *"ijk 11.—mle vrfo"V mI fufeÙk fd, x, vucèk d vèhu fu;fDr dh ,lh lfonk d volku vFkok lekflr ij fu;ktu dh lfonk d xj uohdj.k d ifj.kkeLo#i dedkj dh lok lekflr 'kCn ^^NVuh** dh ifjHkk"kk vkÑ"V ugh djxhA**"*

13. विद्वान श्रम न्यायालय ने सामग्रियों जो इसके समक्ष निर्देश में उठाए गए विवाद्यकों के विनिश्चयकरण से निकट रूप से संबद्ध नहीं थे को विचार में लेकर गलती की। अत:, आक्षेपित अधिनिर्णय विधि और तथ्यों की गंभीर गलती से पीड़ित है। विद्वान श्रम न्यायालय निर्देश के निबंधनों के परे चला गया है जिसे अधिकारिता के परे का कृत्य कहा जा सकता है जो विधि और तथ्यों में असंपोषणीय है। पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में और ऊपर दिए गए कारणों से इस न्यायालय के उत्प्रेषण अधिकारिता के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग में आक्षेपित अधिनिर्णय में हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

14. तद्नुसार, आक्षेपित अधिनिर्णय अपास्त किया जाता है और रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। पक्षों को अपना व्यय स्वयं वहन करने के लिए कहा जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t;k jk;] U;k;efr

अनुपम फूड प्राइवेट लिमिटेड

cuke

बिहार राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 400 of 2002. Decided on 14th August, 2012.

लेटर्स पेटेन्ट के खंड 10 के अधीन एक अपील के मामले में।

राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951—धाराएँ 29 एवं 30—बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000—धाराएँ 45 एवं 47—प्रतिभूत आस्तियों की नीलामी–जब लेनदार ने विधिपूर्वक कब्जा के अधिग्रहण के लिए पहले ही कार्यवाही आरंभ किया है और इकाई का कब्जा अधिग्रहित कर लिया है और याची को अपना प्रस्ताव देने अथवा किसी उपयुक्त खरीददार को लाने का प्रस्ताव भी दिया है, उस स्थिति में राज्य सरकार ऐसे लेनदार के हित के प्रति हानिकर कृत्य नहीं कर सकता है जिसे कब्जा और प्रबंधन लेने की शक्ति के साथ निहित किया गया है और संपत्ति की नीलामी का अधिकार दिया गया है–अपील खारिज। (पैराएँ 13 एवं 14)

अधिवक्तागण.–M/s. V. Shivnath, Birendra Kumar, Darshan Poddar, Piyush Poddar, For the Appellant; JC to A.G., For the State of Jharkhand; Mr. Amit Kumar Das, For the Respondent Nos. 4 to 7; M/s Kalyan Roy, Vijay Kumar Roy, For the Respondent No. 8.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची–अपीलार्थी विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 5 जुलाई, 2002 के निर्णय के विरुद्ध व्यथित है जिसके द्वारा राज्य वित्तीय निगम अधिनियम की धारा 29 के अधीन बिसिको द्वारा जारी दिनांक 4 फरवरी, 2002 की नोटिस को चुनौती देने वाली रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (पी॰) सं॰ 1777 वर्ष 2002 खारिज कर दी गयी है।

3. आक्षेपित निर्णय से यह प्रतीत होता है कि विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष अनेक प्रश्न उठाए गए थे किंतु, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार वे प्रश्न प्रासंगिक नहीं थे और, इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश याची की रिट याचिका में अंतर्ग्रस्त तथ्यों और विवाद्यकों का अधिमूल्यन नहीं कर सके थे और, इसलिए, उन विवाद्यकों पर विचार नहीं कर सके थे जो वस्तुत: रिट याचिका में अंतर्ग्रस्त हैं और रिट याची द्वारा उठाए गए हैं।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, याची की औद्योगिक इकाई कंपनी निगमित करके और इसे दिनांक 21 जनवरी, 1983 को भारतीय कंपनी अधिनियम के अधीन रजिस्टर्ड करके स्थापित की गयी थी। दिनांक 30 नवंबर, 1986 को याची कंपनी ने 60 लाख रुपयों के कर्ज के लिए बिहार राज्य वित्तीय निगम (संक्षेप में बी॰ एस॰ एफ॰ सी॰) से वित्तीय सहायता के लिए आवेदन दिया। किंतु बी॰ एस॰ एफ॰ सी॰ ने दिनांक 12 जनवरी, 1987 की संसूचना के तहत केवल 53.40/- लाख रुपयों का अवधि कर्ज दिया। याची ने बिहार राज्य क्रेडिट एवं निवेश निगम (संक्षेप में बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰) से वित्तीय सहायता के लिए भी आवेदन दिया। बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ ने दिनांक 10 अक्टूबर, 1988 को 20.64/- लाख रुपयों का अवधि कर्ज मंजूर किया किंतु 20.64/- लाख रुपयों की उक्त राशि को क्रमश: 16.51/- लाख रुपयों और 4.13 लाख रुपयों के दो किस्तों में दिनांक 25.5.1989 को मंजूरी की तिथि से आठ माह बाद संवितरित किया। याची के अनुसार कर्ज राशि के संवितरण में विलंब के कारण याची की इकाई को भारी नुकसान हुआ और इसकी हानि प्रत्यक्षत: बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ को अधिरोपणीय है क्योंकि बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ की निष्क्रियता के कारण याची इकाई बीमार हो गयी। अत:, याची ने इस घोषणा के लिए कि याची कंपनी बीमार इकाई है, उद्योग निदेशालय, बिहार सरकार को आवेदन दिया। दिनांक 7 जून, 1999 को याची कंपनी को बीमार घोषित किया गया था। याची ने पुनर्वास के लिए योजना प्रस्तुत किया और बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ के बोर्ड ने दिनांक 16 मार्च, 1998 की अपनी बैठक में याची का प्रस्ताव अनुमोदित किया और संकल्प किया कि 41 लाख रुपयों का पुनर्वास अवधि कर्ज मंजूर किया जाए जिसे भारतीय स्टेट बैंक द्वारा दिया जाना था किंतु, कंपनी के प्रबंधन में पर्याप्त वित्तीय पृष्ठभूमि वाले उपयुक्त व्यक्ति को लाने और मार्जिन धन के लिए समान योगदान लाने के शर्त पर। यह संकल्प दिनांक 7 अप्रिल, 1998 के प्रबंध निदेशक, बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ के पत्र के तहत याची को संसूचित किया गया था। किंतु संकल्प को प्रभाव नहीं दिया गया था और 41 लाख रुपयों का कर्ज एस॰ बी॰ आई॰ द्वारा याची को संवितरित नहीं किया गया था अत:, याची पुनर्वास नहीं कर सका था।

5. चाहे जो भी हो, रिट याचिका के अनुसार, तत्कालीन बिहार राज्य द्वारा याची कंपनी को बीमार इकाई घोषित करने के बजाए याची इकाई का पुनर्वास नहीं किया गया था और पुनर्वास योजना के निबंधनानुसार, याची कंपनी को वित्तीय सहायता नहीं दी गयी थी और अंतत: बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 द्वारा बिहार राज्य से झारखंड राज्य पृथक किया गया था। वर्ष 2000 के अधिनियम के बाद, याची ने झारखंड राज्य की सक्षम कमिटि से पुनर्वास योजना का अनुमोदन पाने के लिए झारखंड राज्य के समक्ष आवेदन दिया। जब याची का मामला झारखंड राज्य के समक्ष विचाराधीन था, प्रत्यर्थी बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ ने बिहार वित्तीय अधिनियम, 1951 की धाराओं 29 और 30 के अधीन याची पर नोटिस तामील

किया और तब दिनांक 4 फरवरी, 2002 का लोक नोटिस जारी करके याची की औद्योगिक इकाई को नीलामी के लिए रखा और दिनांक 11 मार्च, 2002 को 1,21,00,101/- रुपयों के प्रतिफल के लिए याची की इकाई नीलाम कर दिया। याची इकाई वर्तमान रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1777 वर्ष 2002 दाखिल करके इस न्यायालय के पास आया जिसमें अंतरिम आदेश पारित किया गया था किंतु बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ द्वारा कथन किया गया है कि दिनांक 15 मार्च, 2002 को नीलामी खरीददार को याची इकाई का कब्जा सौंप दिया गया था। नीलामी खरीददार रिट याचिका में और लेटर्स पेटेन्ट अपील में प्रत्यर्थी सं॰ 8 है।

6. याची–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, प्रथमत: बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ कंपनी अधिनियम, 1951 के अधीन रजिस्टर्ड कंपनी है और 'राज्य' नहीं है और, इसलिए, उक्त कंपनी के आस्ति और दायित्व बिहार राज्य के आस्ति और दायित्व नहीं हैं। तत्कालीन बिहार राज्य द्वारा दिए गए कर्ज एवं अग्रिम के लिए अधिनियम 2000 की धारा 45 के अधीन शक्ति का प्रयोग करके बिहार राज्य द्वारा वसूली शुरू की जा सकती थी। किंतु, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार चूँकि बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ 'राज्य' नहीं है, अत:, इसे अधिनियम, 2000 की धारा 45 के अधीन शक्ति का अवलंब लेने का अधिकार नहीं है। अत:, विद्वान एकल न्यायाधीश ने उस तरीके जिस तरीके से इस पर विचार किया गया था से मामले के इस पहलू पर विचार करने में गलती की। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि वस्तुत: बिहार राज्य ने बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ को धाराओं 29 और 30 के अधीन शक्ति देने के लिए केंद्रीय सरकार को कहा था, स्पष्टत: ताकि बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ बिहार वित्तीय अधिनियम, 1951 की धाराओं 29 और 30 के अधीन शक्ति का प्रयोग करके अपना कर्ज वसूल सके। किंतु इस शक्ति का प्रयोग बिहार राज्य के क्षेत्र के अंतर्गत किया जा सकता था। किंतु, बाद में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि भले ही एस॰ एफ॰ सी॰ अधिनियम की धाराओं 29 और 30 के अधीन केंद्र सरकार द्वारा बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ को प्रदत्त की गयी शक्ति विधिपूर्वक प्रदत्त की गयी थी, तब रिट याची–अपीलार्थी का एकमात्र प्रतिवाद यह है कि बीमार औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 की धारा 22 की दृष्टि में बीमार इकाई घोषित किए जाने के बाद कोई कार्यवाही आरंभ नहीं की जा सकती थी और यदि आरंभ की गयी थी, किसी कर्ज राशि की वसूली के लिए अग्रसर नहीं की जा सकती थी। अत:, केवल इस आधार मात्र पर, एस॰ एफ॰ सी॰ अधिनियम की धारा 29 और 30 के अधीन बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ द्वारा आरंभ की गयी कार्यवाही बिलकुल अवैध है। यह कथन भी किया गया है कि अन्यथा भी, तत्कालीन बिहार राज्य और जिसे झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया है, की वर्ष 1953 की औद्योगिक नीति की दृष्टि में, तकनीकी और आर्थिक रूप से इसकी जीवन क्षमता के लिए किसी इकाई पर विचार लंबित रहने के दौरान उस इकाई की संपत्तियों को नीलामी नहीं की जा सकती थी। किंतु याची का मामला अधिक बेहतर स्थिति में है क्योंकि याची उद्योग को दो बार बीमार इकाई घोषित किया गया था जब यह बिहार राज्य की क्षेत्रीय अधिकारिता के अधीन था। न केवल यह, एस॰ एफ॰ सी॰ अधिनियम की धाराओं 29 और 30 के अधीन अभिकथित कार्यवाही के बाद भी और इकाई की नीलामी के बाद भी झारखंड राज्य ने दिनांक 19 अप्रिल, 2002 के अपने आदेश (परिशिष्ट 22) के तहत याची इकाई को बीमार इकाई घोषित किया था। दिनांक 19 अप्रिल, 2002 को बीमार इकाई के रूप में याची के उद्योग की घोषणा स्पष्टत: प्रदर्शित करती है कि अपनी इकाई को पुनर्जीवित करने के लिए याची के प्रस्ताव के संबंध में राज्य सरकार के समक्ष मामला विचाराधीन था। उस तथ्यपरक स्थिति में, बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ याची इकाई की नीलामी नहीं कर सकता था। यह निवेदन भी किया गया है कि याची इकाई को बीमार इकाई के रूप में घोषित करने के लिए की गयी समस्त कार्यवाही में बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ पक्ष था। उक्त कारणों की दृष्टि में, बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ उन बैठकों में लिए गए स्वयं अपने निर्णय से बाध्य था जिसमें बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ की सहमति से संकल्प पारित किया गया था।

7. प्रत्यर्थी बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ ने निवेदन किया कि वस्तुत: तत्कालीन बिहार के समय पर पुनर्वास के लिए याची के मामला पर विचार किया गया था तथा उस प्रयोजन से निर्णय लिया गया था किंतु जहाँ तक इसके क्रियान्वयन का संबंध है, निर्णय रिट याची अपीलार्थी के असहयोग के कारण क्रियान्वित नहीं किया गया था। यह निवेदन भी किया गया है कि पूरी निष्पक्षता से बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ ने स्वयं विज्ञापित नीलामी नोटिस में स्पष्टत: उपदर्शित किया कि याची की इकाई के लिए प्रस्ताव देने और बोली लगाने के अंतिमकरण के समय पर याची स्वयं अपनी बोली लगा सकता है अथवा इकाई की खरीद के लिए अच्छा खरीददार दे सकता है जिसमें याची ने भाग नहीं लिया था और इकाई खरीदने का प्रस्ताव नहीं दिया था अथवा किसी अन्य खरीददार को आगे नहीं लाया था। प्रत्यर्थी बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि वस्तुत: याची व्यतिक्रमी था और विपुल राशि के विरुद्ध याची केवल 5% से भी कम राशि का भुगतान कर सकता था, अत: उस स्थिति में बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ के समक्ष रिट याची की इकाई को नीलामी करने के सिवाए कोई और विकल्प नहीं था जब याची पुनर्वास पैकेज की शर्त का अनुपालन करने में भी विफल रहा। प्रत्यर्थी बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि जहाँ तक झारखंड सरकार के समक्ष की गयी कार्यवाही का संबंध है, यह बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ की उपस्थिति में नहीं हुई थी और बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ बीमार इकाई के रूप में याची की इकाई को घोषित करने के किसी प्रस्ताव से कभी नहीं सहमत हुआ था। यह निवेदन भी किया गया है कि याची बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ की जानकारी में नहीं लाया था कि वह झारखंड राज्य के समक्ष अपने मामले का अनुसरण कर रहा है और यह तथ्य बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ को नीलामी के समय पर और इसके पहले और तत्पश्चात भी, और रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान भी जिसमें याची ने उल्लिखित नहीं किया था कि याची बीमार इकाई के रूप में घोषित किए जाने के बारे में झारखंड राज्य का अनुमोदन पाने के लिए झारखंड राज्य के समक्ष अपने मामले का अनुसरण कर रहा है, याची की अपनी संसूचना से प्रकट है। अत: दिनांक 19 अप्रिल, 2002 को राज्य सरकार का आदेश बिल्कुल अप्रासंगिक है जहाँ तक प्रत्यर्थी बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ की नीलामी का संबंध है।

8. निजी प्रत्यर्थी-इकाई के खरीददार के विद्वान अधिवक्ता ने बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क का समर्थन किया है।

9. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और आक्षेपित निर्णय में दिए गए कारणों का परिशीलन किया है।

आक्षेपित निर्णय से यह प्रतीत होता है कि विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष अनेक विवाद्यक उठाए गए थे जो बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 45 पर और राज्य वित्तीय अधिनियम, 1951 की धारा 46 पर भी आधारित थे और यह प्रतीत होता है कि विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष उठाया गया प्रश्न यह पता लगाने के लिए बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ के हैसियत के संबंध में था कि क्या बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ 'राज्य' है अथवा बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ राज्य का अभिकरण है अथवा बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ परिभाषा में अन्य प्राधिकरण है ताकि इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अधीन आच्छादित किया जा सके और क्या एस॰ एफ॰ सी॰ अधिनियम के अधीन बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ को वित्तीय संस्थान के रूप में घोषित करवाने के लिए केंद्र सरकार को किया गया अनुरोध वैध था और यदि एस॰ एफ॰ सी॰ अधिनियम के अधीन बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ को वित्तीय संस्थान के रूप में घोषित करवाने के लिए केंद्र सरकार का आदेश वैध था, तब क्या बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ बिहार राज्य की क्षेत्रीय अधिकारिता के परे शक्ति का प्रयोग कर सकता है; ये मुख्य विवाद्यक थे जिन्हें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विनिश्चित किया गया था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार करने का कारण नहीं है कि विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष ऐसे विवाद्यक नहीं उठाए गए थे। अभिवचन पूर्णत: उपदर्शित करते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष ऐसे अभिवचन किए

गए थे। आगे याची के इस प्रतिवाद को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि लेटर्स पेटेन्ट अपील में यह अभिवचन करने के पहले पुनर्विलोकन याचिका दाखिल करके विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष ऐसा प्रतिवाद किया जा सकता था। किंतु, चूँकि हमारे समक्ष तर्क किया गया है कि केंद्र सरकार द्वारा एस॰ एफ॰ सी॰ अधिनियम की धाराओं 29 और 30 के अधीन बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ को शक्ति से निहित किया जा सकता था और बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ उस शक्ति के फलस्वरुप बिहार राज्य के क्षेत्र के परे अवस्थित संपत्तियों के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है, तब, याची–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, इस तथ्य की दृष्टि में कि बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ की उपस्थिति में याची इकाई को बीमार इकाई घोषित किया गया था और बीमार औद्योगिक कंपनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1985 के प्रावधान के अधीन याची को धारा 22 के अधीन संरक्षित किया गया था, बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ रिट याची के विरुद्ध कार्यवाही करने का हकदार विधिपूर्वक नहीं था। केवल यही नहीं, याची राज्य औद्योगिक नीति के अधीन और पैकेज जिसे सर्वोच्च निकाय द्वारा सम्यक रूप से अनुमोदित किया गया था, के अधीन लाभ पाने का हकदार था।

10. आरंभ में, हम यहाँ संपेक्षित कर सकते हैं कि बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 45 स्पष्टत: प्रावधानित करती है कि नियत दिन के पहले उस राज्य के अंतर्गत क्षेत्र में किसी स्थानीय निकाय, सोसाइटी, कृषक अथवा अन्य व्यक्ति को दिए गए किसी कर्ज अथवा अग्रिम की वसूली करने का विद्यमान बिहार राज्य का अधिकार उत्तरजीवी राज्य को प्राप्त होगा जिसमें उस क्षेत्र को उस दिन सम्मिलित किया जाता है और धारा 45 की उपधारा (2) के मुताबिक नियत दिन के पहले उस राज्य के बाहर किसी व्यक्ति अथवा संस्थान को दिए गए किसी कर्ज अथवा अग्रिम की वसूली के लिए विद्यमान बिहार राज्य का अधिकार बिहार राज्य को प्राप्त होगा। अत:, धारा 45 केवल बिहार राज्य द्वारा और न कि बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ की तरह कंपनी द्वारा दिए गए कर्ज एवं अग्रिम पर विचार करती है।

बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 47 भी विद्यमान बिहार राज्य के आस्तियों और दायित्वों पर विचार करती है और इसलिए विवाद विनिश्चित करने के लिए धारा 47 का यह प्रावधान भी प्रासंगिक नहीं है। अधिनियम 2000 की धारा 65 प्रावधानित करती है कि अधिनियम 2000 के नौवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट कंपनी उस क्षेत्र में काम करना जारी रखेगी जिसमें यह कट ऑफ तिथि अर्थात् 15 नवंबर, 2000 के तुरन्त पहले काम कर रहा था। नौवीं अनुसूची में बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ का नाम प्रविष्टि सं॰ 45 पर है। अत:, बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ धारा 65 (1) सह–पठित नौवीं अनुसूची के फलस्वरुप उस क्षेत्र में अपनी गतिविधि जारी रख सकता है जहाँ यह काम कर रहा था। किंतु, यह हमारे प्रयोजन से अत्यंत प्रासंगिक नहीं है।

11. विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या इन तथ्यों और परिस्थितियों में बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ याची कंपनी की संपत्तियों को बेचने के लिए अग्रसर हो सकता था।

अभिलेख पर प्रस्तुत तथ्यों के मुताबिक, यह स्पष्ट है कि याची इकाई ने 60 लाख रुपया कर्ज के लिए बी॰ एस॰ एफ॰ सी॰ के समक्ष आवेदन दिया था जिसके विरुद्ध इसे दिनांक 12 जनवरी, 1987 को 53.40/- लाख रुपया मंजूर किया गया था। जहाँ तक बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰, जिसके कहने पर याची की इकाई नीलाम की गयी थी का संबंध है, याची ने 20.64/- लाख रुपयों के कर्ज के लिए इसके समक्ष आवेदन दिया था जिसे दिनांक 10 अक्टूबर, 1988 को सम्यक रूप से मंजूर किया गया था और वस्तुत: 16.51/- लाख रुपयों और 4.13/- लाख रुपयों की दो किश्तों में याची को इसका भुगतान किया गया था। अत:, ऐसा अभिकथन नहीं है कि बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ ने याची अपीलार्थी को संपूर्ण कर्ज राशि संवितरित नहीं किया था। याची का कुल बकाया, जैसा आक्षेपित निर्णय में गौर किया गया है और बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ द्वारा जारी दिनांक 4 फरवरी, 2002 के नोटिस में दर्शाया गया है, 115.20/- लाख रुपयों का है। वह रिट याची की वित्तीय दायित्व था। याची के मामले पर बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ सहित समस्त संबंधित पक्षों द्वारा सम्यक रूप से विचार किया गया था ताकि याची

इकाई का पुनर्वास किया जा सके और सर्वोच्च निकाय द्वारा लिए गए निर्णय द्वारा याची को विपुल वित्तीय लाभ का प्रस्ताव दिया गया था, किंतु इस शर्त के साथ कि उस प्रयोजन से याची को पर्याप्त वित्तीय पृष्ठभूमि वाले उपयुक्त व्यक्ति को लाना होगा जो पर्याप्त निधि का निवेश कर सकता है और जो याची को इकाई उत्तरजीवित करने में सहायता दे सकता है और समान राशि ला सकता है। याची ने उस प्रस्ताव को पूर्णत: स्वीकार किया और दिनांक 1 जून, 2000 के पत्र के तहत अपनी सहमति संसूचित किया जिसकी प्रति दिनांक 7 मई, 2003 को दाखिल शपथ पत्र के साथ रिट याची द्वारा वर्तमान लेटर्स पेटेन्ट अपील में दाखिल की गयी है। किंतु यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि वस्तुत: याची ने दिनांक 1 जून, 2000 के पत्र में दी गयी प्रतिबद्धता पर कृत्य किया और वित्तीय समान योगदान का प्रस्ताव दिया अथवा वह सर्वोच्च कमिटि के संतोषानुसार किसी सह-प्रोमोटर को लाया। उस तथ्यपरक स्थिति में यदि प्रत्यर्थी बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ याची की संपत्ति की औद्योगिक इकाई को नीलाम करने के लिए अग्रसर हुआ, बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ ने कोई गलती नहीं किया क्योंकि रिट याची के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करने के पहले प्रत्यर्थी बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ ने दो वर्षों तक इंतजार किया क्योंकि नीलामी नोटिस दिनांक 2 फरवरी, 2002 को जारी किया गया था।

12. जहाँ तक दिनांक 19 अप्रिल, 2002 के आदेश के तहत याची की इकाई को बीमार इकाई घोषित करने का संबंध है, वह आदेश झारखंड राज्य द्वारा पारित किया गया था, जिसमें बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ के अनुसार बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ पक्ष नहीं था। दिनांक 19 अप्रिल, 2002 का आदेश विचित्र आदेश है क्योंकि दिनांक 19 अप्रिल, 2002 के पहले याची इकाई पहले ही दिनांक 2 फरवरी, 2002 के लोक नोटिस द्वारा नीलामी पर रख दी गयी थी और वस्तुत:, दिनांक 11 मार्च, 2002 को इसे 121/- लाख रुपयों से अधिक रुपयों के प्रतिफल के लिए नीलाम कर दिया गया था और याची इकाई पर ताला लगा कर प्रत्यर्थी बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ द्वारा पहले ही कब्जा ले लिया गया था और यह कथन करके कि बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ द्वारा केवल सांकेतिक कब्जा लिया गया है, रिट याचिका में, रिट याची द्वारा इस तथ्य को स्वीकार किया गया है। सांकेतिक कब्जा कब्जा लेने के ढंग में से एक है किंतु यहाँ वर्तमान मामले में यह याची इकाई पर ताला लगाकर वास्तविक कब्जा लेने का मामला था। इन तथ्यों को झारखंड राज्य और संबंधित विभाग के ध्यान में नहीं लाया गया था और, इसलिए, झारखंड राज्य द्वारा दिनांक 19 अप्रिल, 2002 को आदेश जारी किया गया था। अत:, दिनांक 19 अप्रिल, 2002 का आदेश परिणामहीन है बल्कि किसी प्रयोजन से बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ के विरुद्ध इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है जब लेनदार ने पहले ही इकाई का कब्जा ले लिया है और इसे नीलामी पर रखा है और एस॰ एफ॰ सी॰ अधिनियम, 1951 की धाराओं 29 और 30 के अधीन शक्ति का प्रयोग करके तृतीय पक्ष को कब्जा सौंप दिया है, राज्य सरकार याची इकाई को बीमार इकाई घोषित नहीं कर सकती थी।

13. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस चरण पर निवेदन किया कि यह राज्य सरकार की जानकारी में था कि याची इकाई को पहले ही दिनांक 2 फरवरी, 2002 को बी॰ आई॰ सी॰ आई॰ सी॰ ओ॰ द्वारा नीलामी के लिए रख दिया गया था और दिनांक 11 मार्च, 2002 को इसे नीलाम कर दिया गया था और दिनांक 15 मार्च, 2002 को नीलामी खरीददार को इसका कब्जा सौंप दिया गया था। यदि यह सही है, तब हमारा सुविचारित मत है कि दिनांक 19 अप्रिल, 2004 का आदेश इस सरल कारण से बिल्कुल शून्य है क्योंकि जब लेनदार ने एस॰ एफ॰ सी॰ अधिनियम, 1951 की धाराओं 29 और 30 के सांविधिक प्रावधानों के अधीन विधिपूर्वक कब्जा लेने के लिए कार्यवाही पहले ही आरंभ कर दिया है और इकाई का कब्जा ले लिया है और अपना प्रस्ताव देने अथवा उपयुक्त खरीददार को लाने का प्रस्ताव भी याची को दिया है, तब उस स्थिति में राज्य सरकार ऐसे लेनदार के हित के प्रतिकूल कृत्य नहीं कर

सकती थी जिसे कब्जा और प्रबंधन लेने की शक्ति से निहित किया गया है और संपत्ति नीलाम करने का अधिकार दिया गया है।

14. उक्त कारणों की दृष्टि में, हमारा सुविचारित मत है कि हमारे समक्ष उठाए गए विवाद्यकों में गुणागुण नहीं है और इसलिए इस लेटर्स पेटेन्ट अपील को खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

शत्रुघन मिश्रा उर्फ शत्रुघु मिश्रा

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr.M.P. No. 125 of 2012. Decided on 8th October, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 144, 145 एवं 482—भूमि विवाद–कब्जा की घोषणा और पुनर्स्थापन–जब कार्यवाही आरंभ करने के पहले बेदखली के मामले में भी दंडाधिकारी पुनर्स्थापन का आदेश पारित करता है, यदि कार्यवाही के दौरान भूमि से एक पक्ष को बेदखल किया जाता है, पुनर्स्थापन का आदेश पारित करने के लिए दंडाधिकारी की शक्ति पर कोई निर्बंधन नहीं होना चाहिए–यदि किसी को सूचना प्राप्त करने की तिथि के पहले अथवा कार्यवाही आरंभ करने के आदेश की तिथि से दो माह के भीतर भूमि से बेदखल किया जाता है, दंडाधिकारी पुनर्स्थापन का आदेश पारित करने के लिए सक्षम हैं–दंडाधिकारी की यह शक्ति स्वयं प्रावधान में अंतर्निहित है। (पैराएँ 15 से 18)

अधिवक्तागण.–Mr. Deepak Kumar Bharti, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. Deepak Kumar, For the O.P. Nos. 2 to 4.

आदेश

यह आवेदन दांडिक पुनरीक्षण सं० 139 वर्ष 2006 में पारित दिनांक 20.12.2011 के आदेश को अभिखंडित करने के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा पंचम अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग ने दिनांक 21.8.2006 के उस आदेश को अभिपुष्ट किया जिसके द्वारा और जिसके अधीन कार्यपालक दंडाधिकारी, हजारीबाग ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में प्रश्नगत भूमि के उपर विरोधी पक्षकार सं० 2 से 4 (प्रथम पक्ष) का कब्जा घोषित किया और विरोधी पक्षकारों के कब्जा के पुनर्स्थापन का आदेश भी पारित किया क्योंकि उन्हें मामले की कार्यवाही के दौरान भूमि से बेदखल कर दिया गया था।

2. नगरपालिका वार्ड सं० 15 के अधीन भूखंड सं० 289 से संबंधित हजारीबाग अवस्थित टाइल्ड घर सहित भूमि के टुकड़े के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन कार्यवाही आरंभ की गयी थी। बाद में वह कार्यवाही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में संपरिवर्तित कर दी गयी थी।

3. प्रथम पक्ष (विरोधी पक्षकार सं० 2 से 4) का मामला यह है कि नगरपालिका वार्ड सं० 15 (पुराना वार्ड सं० 8), हजारीबाग के अधीन भूखंड सं० 289 वाला टाइल्ड घर सहित भूमि का टुकड़ा श्रीमती मुंद्रिका देवी द्वारा वर्ष 1952 में रजिस्टर्ड विलेख द्वारा खरीदा गया था। अपने पीछे अपने पति जगदीश मिश्रा और दो पुत्रियों चंचला देवी और पूर्णिमा देवी को छोड़ते हुए मुंद्रिका देवी की मृत्यु वर्ष 1974 में हो गयी। जब

जगदीश मिश्रा की मृत्यु हो गयी, दोनों पुत्रियों ने मौखिक रूप से संपत्तियों का बँटवारा कर लिया जिसके द्वारा प्रश्नगत भूमि चंचला देवी के हिस्से में आयी जिसने किराया और धृति कर का भुगतान करना शुरू किया। जब चंचला देवी उक्त भूमि पर निर्माण करने लगी, द्वितीय पक्ष के चाचा ब्रज किशोर मिश्रा ने छेड़छाड़ किया जिसका परिणाम दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन कार्यवाही में हुआ। किंतु, चंचला देवी के पक्ष में आदेश पारित किया गया था। जब चंचला देवी की मृत्यु हो गयी, उसका पति विनोद बिहारी मिश्रा और उसकी दो पुत्रियाँ और दो पुत्र भूमि पर काबिज हुए किंतु द्वितीय पक्ष के सदस्यों ने प्रथम पक्ष के शांतिपूर्ण कब्जा में छेड़छाड़ करना शुरू किया और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 144 के अधीन कार्यवाही शुरू की गयी।

4. द्वितीय पक्ष का मामला यह है कि उन्होंने मुंद्रिका देवी (प्रथम पक्ष की नानी) के नाम में संयुक्त रूप से संपत्ति खरीदा था। मुंद्रिका देवी ने किसी तेतरी देवी को भूमि बेच दिया था जिसने प्रथम पक्ष को घर में निवास करने की अनुमति दी।

5. प्रथम पक्ष का मामला यह भी है कि कार्यवाही के दौरान द्वितीय पक्ष के सदस्य जबरन भूमि में घुस गए।

6. पक्षों ने अपना–अपना मौखिक साक्ष्य दिया। प्रथम पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्य भी दिया जबकि द्वितीय पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्य नहीं दिया। पक्षों की ओर से दिए गए साक्ष्य को विचार में लेने पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि प्रथम पक्ष ने कब्जा द्वारा अपना मामला सिद्ध किया है और इसलिए, प्रश्नगत भूमि के उपर प्रथम पक्ष का कब्जा घोषित किया और प्रथम पक्ष के कब्जा के पुनर्स्थापन के लिए आदेश भी पारित किया क्योंकि कार्यवाही के दौरान प्रथम पक्ष को भूमि से बेदखल कर दिया गया था।

7. पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष उस आदेश को चुनौती दी गयी थी जिसने आदेश में अवैधता नहीं पाया और इसलिए, कार्यपालक दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश अभिपुष्ट किया।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री भारती द्वारा उठाया गया प्रश्न यह है कि क्या दंडाधिकारी ने प्रथम पक्ष को भूमि का कब्जा पुनर्स्थापित करने के लिए आदेश पारित करने में अवैधता किया था क्योंकि प्रथम पक्ष का मामला यह कभी नहीं था कि उन्हें पुलिस द्वारा रिपोर्ट दाखिल करने अथवा दंडाधिकारी को सूचना दिए जाने अथवा तिथि, जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के निबंधनानुसार आदेश पारित किया गया था, के पहले दो माह के भीतर गलत रूप से बेदखल कर दिया गया था।

9. विद्वान अधिवक्ता धारा 145 की उपधारा (4) के परन्तुक को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन करते हैं कि केवल दंडाधिकारी द्वारा सूचना की प्राप्ति की तिथि से अथवा उस तिथि, जब धारा 145(1) के अधीन आदेश पारित किया गया था, से पहले दो माह के भीतर बेदखली के मामले में दंडाधिकारी के पास कब्जा के पुनर्स्थापन का आदेश पारित करने की शक्ति है यदि किसी पक्ष को उस अवधि के दौरान बेदखल कर दिया गया है।

10. किंतु वर्तमान मामले में, प्रथम पक्ष के अनुसार, उन्हें मामले की कार्यवाही के दौरान प्रश्नगत भूमि से बेदखल कर दिया गया था और इस प्रकार, न्यायालय ने प्रश्नगत भूमि के उपर प्रथम पक्ष के कब्जा के पुनर्स्थापन का आदेश पारित करने में गलती किया।

11. इसके विरुद्ध, प्रथम पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री दीपक कुमार निवेदन करते हैं कि संहिता के प्रावधान के अधीन जब दंडाधिकारी पाता है कि सूचना की प्राप्ति की तिथि से अथवा कार्यवाही आरंभ किए जाने की तिथि से दो माह के भीतर किसी को बेदखल कर दिया गया है, बेदखल पक्ष को काबिज समझा जाएगा और तद्द्वारा दंडाधिकारी कब्जा के पुनर्स्थापन का आदेश पारित कर सकता है। अतः, यदि किसी को बेदखल किया जाता है, कार्यवाही आरंभ करने के पहले भी उसका कब्जा पुनर्स्थापित किया जाता है, तब उस स्थिति में, जब कार्यवाही के दौरान किसी को बेदखल किया जाता है, दंडाधिकारी को पुनर्स्थापन का आदेश पारित करने की प्रत्येक शक्ति होगी और इसलिए जब दंडाधिकारी ने पाया कि कार्यवाही के दौरान प्रथम पक्ष को भूमि से बेदखल किया गया था, उन्होंने कब्जा के पुनर्स्थापन का आदेश पारित किया और तद्द्वारा अवैधता नहीं की गयी थी। इन निवेदनों की दृष्टि में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 में अंतर्विष्ट प्रावधान को ध्यान में लेने की आवश्यकता है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

*^^èkkjk 145. **tgk Hkfe ;k ty l lc) fooknk l ifj'kkfUr Hkx gkuk lHkko; g ogk çfØ;k-**&(1) tc dHkh fdlh dk;ikyd eftLVV dk] ifyl vfèkdkjh dh fjikV l ;k vU; bfÙkyk ij lekèkku gk tkrk g fd mldh LFkkuh; vfèkdkfjrk d vnj fdlh Hkfe ;k ty ;k mldh lhekvk l lc) ,lk fookn fo|eku g] ftll ifj'kkfUr Hkx gkuk lEHkko; g] rc og viuk ,lk lekèkku gku d vkèkkjk dk dFku djr g, vkj ,l fookn l lc) i{kdkjk l ;g vi{kk djr g, fyf[kr vkn'k nxk fd o fofufn"V rkjh[k vkj le; ij Lo; ;k lyhMj }kjk mld U;k;ky; e gkftj gk] vkj fookn dh fo"k;oLr ij okLrfod dCt d rF; d ckj e viu&viu nkok dk fyf[kr dFku i'k djA*

*(2) bl èkkjk d ç;ktuk d fy, ^^Hkfe ;k ty** in d vUrxr Hkou] cktkj] ehu{k=] Qly] Hkfe dh vU; mit vkj ,lh fdlh lEifÙk d HkkVd ;k ykHk Hkh gA*

(3) bl vkn'k dh ,d çfr dh rkehy bl lfgrk }kjk leuk dh rkehy d fy, micfUèkr jhfr l ,l 0;fDr ;k 0;fDr;k ij dh tk,xh] ftUg eftLVV fufn"V dj] vkj de l de ,d çfr fookn dh fo"k;oLr ij ;k mld fudV fdlh lgtn'; LFkku ij yxkdj çdkf'kr dh tk,xhA

(4) eftLVV ij fookn dh fo"k;oLr dk i{kdkjk e l fdlh d Hkh dCt e j[ku d vfèkdkj d xq.kkx.k ;k nko d çfr fun'k fd, fcuk mu dFkuk dk] tk ,l i'k fd, x, g] ifj'khyu djxk] i{kdkjk dk lkuxk vkj ,lk lHkh lk{; yxk tk mud }kjk çLrr fd;k tk,] ,lk vfrfjDr lk{;] ;fn dkb gk(yxk tlk og vko';d le> vkj ;fn lHko gk rk ;g fofuf'pr djxk fd D;k mu i{kdkjk e l dkb mièkkjk (1) d vèkhu mld }kjk fn, x, vkn'k dh rkjh[k ij fookn dh fo"k;oLr ij dCtk j[krk Fkk vkj ;fn j[krk Fkk rk og dku lk i{kdkj Fkk%

ijUr ;fn eftLVV dk ;g çrhr gkrk g fd dkb i{kdkj ml rkjh[k d] ftldk ifyl vfèkdkjh dh fjikV ;k vU; bfÙkyk eftLVV dk çklr gb] Bhd io nk ekl d vUnj ;k mlk rkjh[k d i'pkr vkj mièkkjk (1) d vèkhu mld vkn'k dh rkjh[k d io cykr vkj lnk"k :i l cdCtk fd;k x;k g rk og ;g eku ldxk fd ml çdkj cdCtk fd;k x;k i{kdkj mièkkjk (1) d vèkhu mld vkn'k dh rkjh[k dk dCtk j[krk FkkA

(5) bl èkkjk dh dkb cktr] gkftj gksu d fy, ,l vif{kr fdlh i{kdkj dk ;k fdlh vU; fgrc) 0;fDr dk ;g nf'kr dju l ugh jkdxh fd dkb iokDr çdkj dk fookn orekku ugh g ;k ugh jgk g vkj ,lh n'kk e eftLVV viu mDr vkn'k dk jí dj nxk vkj ml ij vkx dh lc dk;okfg;k jkd nh tk,xh fdUr mièkkjk (1) d vèkhu eftLVV dk vkn'k ,l jídj.k d vèkhu jgr g, vfUre gkxkA

(6) (a) ;fn eftLVV ;g fofu'p; djrk g fd i{kdkjk e l ,d dk mDr fo"k;oLr ij ,lk dCtk Fkk ;k mièkkjk (4) d ijUrd d vèkhu ,lk dCtk ekuk tkuk pkfg,] rk og ;g ?kk"k.kk dju okyk fd ,lk i{kdkj ml ij rc rd dCtk j[ku dk gdnkj g tc rd ml fofèk d lE;d] vuØe e cn[ky u dj fn;k tk, vkj ;k fu"kèk dju okyk fd tc rd ,lh cn[kyh u dj nh tk, rc rd ,l dCt e dkb fo?u u Mkyk tk,] vkn'k tkjh djxk(vkj tc og mièkkjk (4) d ijUrd d vèkhu dk;okgh djrk g rc ml i{kdkj dk] tk cykr vkj lnk"k cdCtk fd;k x;k g] dCtk ykVk ldrk gA

(b) bl mièkkjk d vèkhu fn;k x;k vkn'k mièkkjk (3) e vfèkdfFkr jhfr l rkehy vkj çdkf'kr fd;k tk,xkA

... ...

... ...

12. संहिता के अध्याय X, जो लोक व्यवस्था और शांति बनाए रखने पर विचार करती है, के अधीन धारा 145 सम्मिलित की गयी है जिसके अधीन यदि सद्‌भावपूर्ण भूमि विवाद के कारण पक्षों द्वारा शांति भंग किए जाने की संभावना है, दंडाधिकारी को प्रश्नगत भूमि के उपर पक्षों के वास्तविक कब्जा का प्रश्न विनिश्चित करने के लिए धारा 145 के अधीन कार्यवाही आरंभ करने के लिए सशक्त बनाया गया है। आगे, धारा 145 की उपधारा (4) का परन्तुक अनुबंधित करता है कि तिथि, जब शांति भंग में परिणत होने वाले सद्‌भावपूर्ण विवाद की सूचना दंडाधिकारी द्वारा प्राप्त की जाती है, के पहले दो माह के भीतर अथवा धारा 145 (1) के अधीन कार्यवाही के आरंभ होने की तिथि के पहले दो माह के भीतर यदि किसी व्यक्ति को भूमि से बेदखल किया जाता है, उसे काबिज समझा जाएगा। उस स्थिति में दंडाधिकारी के पास उस व्यक्ति, जिसे गलत रूप से बेदखल किया गया है, का कब्जा पुनर्स्थापित करने के लिए धारा 145 की उपधारा (6) के अधीन शक्ति है।

13. उठाया गया प्रश्न यह है कि क्या दंडाधिकारी के पास पुनर्स्थापना का आदेश पारित करने की शक्ति है जब किसी पक्ष को मामले की कार्यवाही के दौरान बेदखल किया गया है।

14. पक्षों की ओर से किए गए निवेदन पूर्णतः भ्रामक हैं और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के प्रावधानों की आत्मा के विरुद्ध हैं जो लोक व्यवस्था और शांति से संबंधित है।

15. धारा 145 की उपधारा (4) के परन्तुक के अधीन दंडाधिकारी पुनर्स्थापन का आदेश पारित करने के लिए सक्षम हैं यदि किसी को सूचना की प्राप्ति की तिथि से अथवा कार्यवाही आरंभ करने की तिथि से पहले दो माह के भीतर बेदखल किया जाता है।

16. इस प्रकार, जब दंडाधिकारी कार्यवाही आरंभ करने के पहले बेदखली के मामले में भी आदेश पारित कर सकता है, पुनर्स्थापन का आदेश पारित करने के लिए दंडाधिकारी की शक्ति निर्बंधित क्यों होनी चाहिए यदि किसी पक्ष को कार्यवाही के दौरान बेदखल किया जाता है। यदि याची का प्रतिवाद स्वीकार किया जाता है कि उसे कब्जा पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता है जिसे कार्यवाही के दौरान बेदखल किया

गया है, धारा 145 का संपूर्ण प्रावधान अर्थहीन हो जाएगा क्योंकि उस स्थिति में नैतिकताहीन व्यक्ति काबिज नहीं होने पर भी कार्यवाही के दौरान जबरन कब्जा ले लेता है, उसे काबिज बने रहने की अनुमति दी जाएगी जबतक उसे सक्षम सिविल न्यायालय के आदेश द्वारा बेदखल नहीं कर दिया जाता है। निश्चय ही प्रावधान, जैसा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 में अंतर्विष्ट है जो लोक व्यवस्था और शांति बनाए रखने से संबंधित है, बनाते हुए विधान मंडल का आशय यह कभी नहीं होगा।

17. एक अन्य कोण से मामले को देखते हुए कथन किया जाए कि यदि दंडाधिकारी द्वारा सूचना पाने की तिथि के पहले अथवा कार्यवाही आरंभ करने की तिथि से दो माह के भीतर किसी व्यक्ति को बेदखल किया जाता है, बेदखल किए गए व्यक्ति को काबिज समझा जाएगा और इस आधार पर उस व्यक्ति, जिसे बेदखल कर दिया गया है, के कब्जा के पुनर्स्थापन के लिए आदेश पारित किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में, यदि किसी को बेदखल किया गया है, कार्यवाही आरंभ करने के पहले भी उसका कब्जा पुनर्स्थापित किया जा सकता है, तब क्यों उस व्यक्ति, जिसे कार्यवाही के दौरान बेदखल किया गया है, को कब्जा के पुनर्स्थापन से इनकार किया जा सकता है। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि दंडाधिकारी की यह शक्ति स्वयं प्रावधान में अंतर्निहित है।

18. इन परिस्थितियों के अधीन, मैं याची की ओर से किए गए निवेदन में सार नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, यह आवेदन गुणागुण रहित होने के कारण खारिज किया जाता है।

---

ekuuh;k t ;k jk;] U;k;efr

जेम्स ग्रिगोरी इंदवर

cuke

झारखंड राज्य, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से

Criminal Appeal (S.J.) No. 55 of 2006. Decided on 12th September, 2012.

आर॰ सी॰ केस सं॰ 32 वर्ष 1984 में विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, राँची द्वारा पारित दिनांक 19.12.2005 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धाराएँ 13(2) एवं 13(1)(d) सह-पठित धारा 19—भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 468 एवं 471—बैंक कर्मचारी द्वारा कूट रचना–बैंक को धोखा देने के लिए कूटरचित चेकों का उपयोग–दोषसिद्धि–अभियुक्त अपीलार्थी ने प्राथमिकी दाखिल किए जाने के काफी पहले अपना त्यागपत्र दे दिया था–वह अपने विरुद्ध केस दर्ज किए जाने के समय पर लोक सेवक बिल्कुल नहीं था–अभियुक्त अपीलार्थी को अभियोजित करने के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं है–गवाहों ने अभियोजन मामला सिद्ध किया है–अपीलार्थी द्वारा किया गया कपट दर्शाने वाले दस्तावेज गवाहों द्वारा सिद्ध किए गए–अभियुक्त ने अपने पदीय हैसियत का दुरुपयोग करके भ्रष्ट और अवैध साधनों द्वारा स्वयं के लिए अनुचित धनीय लाभ प्राप्त करने का दांडिक अवचार किया–अपील खारिज। (पैराएँ 21 से 28)

निर्णयज विधि.–(1997)(1) SCC 283; (2006)1 SCC 294—Referred; (1999)5 SCC 690—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s. Afaque Ahmad, Altaf Hussain, For the Appellant; Mr. Md. Mokhtar Khan, For the Respondent.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थी ने यह अपील आर॰ सी॰ केस सं॰ 32 वर्ष 1984 में विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, राँची द्वारा पारित दिनांक 19.12.2005 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त करवाने के लिए दाखिल किया है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन ढाई वर्षों का कठोर कारावास भुगतने के लिए दोषसिद्ध किया गया है और उसे आगे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 468/471 के अधीन दो वर्षों का कठोर कारावास भुगतने के लिए दंडादेश दिया गया है और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 471 के अधीन एक वर्ष का कठोर कारावास आगे पी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 5 (2) सह–पठित 5(1) (d), धारा 13 (2) सह–पठित धारा 13 (1) (d) के तत्सम, के अधीन ढाई वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन और पी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 13 (2) और 13 (1) (d) के तत्सम धारा 5 (2) सह–पठित धारा 5 (1) (d) के अधीन प्रत्येक गणना पर 3500/- रुपया जुर्माना का भुगतान करने का भी दंडादेश दिया गया है। जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में प्रत्येक दोषसिद्ध को 15 दिन के लिए सामान्य कारावास भुगतान होगा। समस्त दंडादेश साथ–साथ चलेंगे।

2. इस अपील में दोनों पक्षों ने विस्तृत लिखित तर्क दाखिल किया है जो अभिलेख पर हैं।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि अपीलार्थी अर्थात् जे॰ सी॰ इंदवर, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, राँची शाखा का रुटीन अधिकारी ने अन्य व्यक्तियों के साथ षडयंत्र करके नकली और कूटरचित चेकों, जिन्हें तात्पर्यित रूप से मई और जून, 1982 की अवधि के दौरान खाताधारी द्वारा जारी किया गया था, के बूते पर बैंक को 2.18 लाख रुपयों के लिए कपट वंचित किया। आगे अभिकथित किया गया है कि उक्त दांडिक षडयंत्र को अग्रसर करने में जे॰ जी॰ इंदवर और उसके सहयोगियों ने दिनांक 28.5.82 को क्रमश: 41,500/- रुपयों और 37,500/- रुपयों के लिए चुराए गए चेक सं॰ 060121 और 060122 से श्री जगदीश लाल माथुर के सुषुप्त एस॰ बी॰ खाता सं॰ 2690 के डेबिट को बी॰ पी॰ ए॰ आर॰ खाता में 79000/- रु॰ क्रेडिट में डलवा दिया और दिनांक 29.5.82 को बी॰ पी॰ ए॰ आर॰ खाता 78,990/- रुपयों का क्रेडिट करके उलट दिया गया था और शेष 10/- रुपया पे आर्डर जारी करने के लिए आय खाता कमीशन में क्रेडिट कर दिया गया था। पे आर्डर सं॰ 5915 , 41,295/- रुपयों के लिए और 37,295/- रुपयों के लिए पे आर्डर सं॰ 5916 जारी किया गया था। पे आर्डर कपटपूर्वक दीपक आनंद के नाम में झूठे एस॰ बी॰ खाता सं॰ 6570 और धीरेन्द्र प्रधान एवं मालती देवी के नाम में झूठे एस॰ बी॰ खाता सं॰ 4636 के नाम में क्रेडिट कर दिया गया था। दिनांक 9.6.82 को अपर्याप्त शेष के विरुद्ध अशोक कुमार चौधरी के सुप्त एस॰ बी॰ खाता सं॰ 3313 के डेबिट को चेक सं॰ 085161 के माध्यम से 57000/- रुपयों की राशि नगद निकाल ली गयी थी। 81910/- रुपयों के लिए डिमांड ड्राफ्ट सं॰ 139/9/663 को कपटपूर्वक बनाया गया था और शेष 90/- रुपया श्री आनन्द कुमार सिन्हा के सुप्त खाता सं॰ 3244 के डेबिट के आय लेखा में अपर्याप्त निधि के विरुद्ध क्रेडिट कर दिया गया था। डिमांड ड्राफ्ट श्री धीरेन्द्र प्रधान के पक्ष में था और यह नागपुर मुख्य शाखा पर भुगतान योग्य था। स्रोत सूचना के आधार पर दिनांक 31.10.1984 को श्री के॰ एन॰ सिन्हा, पुलिस इस्पेक्टर, सी॰ बी॰ आई॰, एस॰ पी॰ ई॰, पटना द्वारा अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध मामला संस्थापित किया गया था और अन्वेषण किया गया था। सम्यक अन्वेषण के बाद इस अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया था। तद्नुसार, भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 120B, 420, 468, 477 और पी॰ सी॰ अधिनियम, 1947 की धारा 5(1)(d) सहपठित 5 (2), पी॰ सी॰ अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(d) सहपठित धारा 13(2) के तत्सम, के अधीन दिनांक 29.8.86 को संज्ञान लिया गया था और अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध समन जारी किया गया था। इस मामले को माननीय झारखंड उच्च न्यायालय की दिनांक 7.5.2002 की अधिसूचना सं॰ 91A के तहत विशेष न्यायाधीश, पटना के न्यायालय से विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, राँची के न्यायालय को अंतरित किया गया था।

4. अभियोजन ने इस मामले में कुल सोलह गवाहों का परीक्षण किया है। वे हैं: अ॰ सा॰ 1 कमल ओराँव, अ॰ सा॰ 2 बी॰ रॉय, अ॰ सा॰ 3 के॰ एन॰ सिन्हा, अ॰ सा॰ 4 मो॰ नौशाद, अ॰ सा॰ 5 एस॰ एन॰ कुमार, अ॰ सा॰ 6 अमरनाथ, अ॰ सा॰ 7 सरवर जावेद, अ॰ सा॰ 8 अमित कुमार रे, अ॰ सा॰ 9 इंद्रदेव नारायण तिवारी, अ॰ सा॰ 10 रमेश प्रभु, अ॰ सा॰ 11 जगरनाथ पाल, अ॰ सा॰ 12 राम सुमेर सिंह, अ॰ सा॰ 13 सतीश चंद्र सिन्हा, अ॰ सा॰ 14 वी॰ जी॰ एस॰ भटनागर, अ॰ सा॰ 15 ज्योति कुमार और अ॰ सा॰ 16 डी॰ मजूमदार।

5. अभियोजन ने अनेक दस्तावेजों को प्रस्तुत किया है जिन्हें प्रदर्शों के रूप में चिन्हित किया गया है अर्थात् प्रदर्श 1, प्राथमिकी, प्रदर्श 2 से 2/B खाता सं॰ 2690, 6436/82 और 6370/80- के तीन लेजर शीट, प्रदर्श 3 चेक बुक डिलीवरी रजिस्टर के दो शीट, प्रदर्श 4 से 4/E विथड्रावल स्लिप पर अभियुक्त का लेखन और हस्ताक्षर, प्रदर्श 5 से 5/2 तीन चेकों पर लेखन एवं हस्ताक्षर, प्रदर्श 6 और 6/A स्पेसिमेन (नमूना) हस्ताक्षर कार्ड पर अभियुक्त का लेखन और हस्ताक्षर, प्रदर्श 7 से 7/B जमा किए गए वाउचर पर अभियुक्त का लेखन एवं हस्ताक्षर, प्रदर्श 8 से 8/A खाता डेबिट वाउचर के दो अंशों पर अभियुक्त का लेखन एवं हस्ताक्षर, प्रदर्श 9 और 9A खाता खोलनेवाले फॉर्म पर अभियुक्त का लेखन और हस्ताक्षर, प्रदर्श 10, चेकों के पिछले हिस्से पर अभियुक्त की पत्नी का हस्ताक्षर, प्रदर्श 11 और 11/A पे आर्डर पर अभियुक्त का लेखन एवं हस्ताक्षर, प्रदर्श 12 अभियुक्त के दिनांक 9.6.82 के डेबिट/ वाउचर के दो अंशों पर लेखन एवं हस्ताक्षर, प्रदर्श 13 दिनांक 10.7.82 के ड्राफ्ट बनाने के वाउचर के दो अंशों पर अभियुक्त का लेखन एवं हस्ताक्षर, प्रदर्श 14 चेक प्रामिसरी शीड्यूल प्रदर्श 15 जमा पर्ची पर लेखन एवं हस्ताक्षर, प्रदर्श 16 से 16/33 अभियुक्त का नमूना हस्ताक्षर एवं लेखन, प्रदर्श 17 खाता खोलने के फॉर्म प्रदर्श 9 पर सरवर जावेद का हस्ताक्षर, प्रदर्श 17/A प्रदर्श 9/A पर श्री पी॰ आर॰ प्रभु का हस्ताक्षर, प्रदर्श 18 खाता सं॰ 7737 का खाता शीट, प्रदर्श 19 छह शीट में विवरण, प्रदर्श 20 अभिग्रहण सूची पर अमित कुमार राय का हस्ताक्षर, प्रदर्श 21 बौंड इशू पर ग्वालियर रॉय के चालू खाता का विवरण, प्रदर्श 22 और 22/1 जे॰ जी॰ इंदवर और श्रीमती रोज इंदीवर का बचत पासबुक, प्रदर्श 23 जे॰ जी॰ इंदवर और श्रीमती रोज इंदवर का खाता खोलने का हस्ताक्षर कार्ड, प्रदर्श 24, 24/1 और 24/ 2 दिनांक 17.10.83, 18.11.83 और 13.3.84 का श्रीमती रोज इंदवर के नाम में क्रेडिट पर्ची, प्रदर्श 25, श्रीमती रोज इंदवर के इलाहाबाद बैंक के बचत खाता का विवरण, प्रदर्श 25/1 अभियुक्त जे॰ जी॰ इंदवर के इलाहाबाद बैंक के एस॰ बी॰ खाता 'सी॰' का विवरण, प्रदर्श 26 से 26/2 दिनांक 11.3.85 का अभिग्रहण मेमो, प्रदर्श 27 सुरेश प्रसाद के नाम में खाता खोलने वाला फॉर्म, प्रदर्श 28 और 28/ 1 यूनियन बैंक ऑफ इंडिया की आंतरिक सलाह, प्रदर्श 29 जे॰ जी॰ इंदवर के अधिकारी नियुक्ति का आवेदन, प्रदर्श 30 दीपक आनंद के नाम में तैयार ड्राफ्ट क्रमांक 113460 का प्रतिपर्ण, प्रदर्श 31 यूनियन बैंक ऑफ इंडिया के डिमांड ड्राफ्टों क्रमांक 113401-113500 का प्रतिपर्ण, प्रदर्श 31/1 यू॰ बी॰ आई॰ राँची के डिमांड ड्राफ्ट क्रमांक 094601-094700 का प्रतिपर्ण, प्रदर्श 30/1 यू॰ बी॰ आई॰ राँची के डिमांड ड्राफ्ट सं॰ 094663 का प्रतिपर्ण, प्रदर्श 32 दिनांक 31.10.85 का जी॰ ई॰ क्यू॰ डी॰ को पत्र सं॰ 8343/31/32/84 पटना, प्रदर्श 33 रोज इंदवर का नमूना हस्ताक्षर और लेखन, प्रदर्श 34 जी॰ ई॰ क्यू॰ डी॰ का मत, प्रदर्श 35 संतोष सिंह सरकारी परीक्षक का फॉरवर्डिंग लेटर, प्रदर्श 36 मत सं॰ DXC 218/85 दिनांक 21.11.85 का कारण, प्रदर्श 37 निगेटिव के साथ वैलेट, प्रदर्श 38 नमूना लेखन के फोटो के 27 बढ़ाए गए शीट, प्रदर्श 39 जी॰ ई॰ क्यू॰ डी॰ को भेजा गया फॉरवर्डिंग लेटर, प्रदर्श 40 से 40/2 दिनांक 8.5.84, 31.5.84 और 1.8.84 के तीन इंटीरियर रिपोर्ट और तात्विक प्रदर्श 1 और 1/ 1 चेक पिन अप के दो फटे टुकड़े को अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किया गया है और प्रदर्श 2 आरंभिक ओवर लेजर शीट को बचाव की ओर से प्रदर्श A चिन्हित किया गया है।

6. बचाव पक्ष ने अपनी ओर से किसी गवाह का परीक्षण नहीं किया है। अभियुक्त अपीलार्थी का बचाव आरोपों से पूरा इनकार और झूठा आलिप्त किए जाने का है। अभियुक्त अपीलार्थी ने निवेदन किया

है कि वह पोर्ट फोलियों के बिना रुटीन अधिकारी था और उसके पास किसी राशि को निकालने का अवसर नहीं था। निवेदन किया गया है जब अभियुक्त अपीलार्थी यू॰ पी॰ एस॰ सी॰ परीक्षा में सफल हुआ और अपना त्याग पत्र देने के बाद उसने रक्षा सेवा ग्रहण किया, तब केवल शिकायत और दुश्मनी के कारण उसे इस मामले में आलिप्त किया गया था।

7. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि प्राथमिकी में कोई स्रोत प्रकट नहीं किया गया है। अत:, किसी सूचना स्रोत के बिना दर्ज प्राथमिकी विधि की दृष्टि में प्राथमिकी के रूप में नहीं मानी जा सकती है। आगे, विलंब के कारण का स्पष्टीकरण दिए बिना प्राथमिकी दर्ज करने में लगभग 2 वर्ष 4 माह का अत्यधिक विलंब है। आगे प्रतिवाद किया गया है कि किसी खाता धारक का परीक्षण नहीं किया गया है और न ही किसी खाता धारक द्वारा कोई परिवाद दर्ज किया गया था और न ही वे गवाह हैं। चूँकि खाता धारकों को अथवा बैंक को कोई हानि कारित नहीं की गयी थी, यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा कोई कपट किया गया था। यह कथन भी किया गया है कि सी॰ बी॰ आई॰ के आई॰ ओ॰ ज्योति कुमार के प्रति परीक्षण के दौरान यह पूछे जाने पर कि वह किस प्रकार से इस निष्कर्ष पर आया कि तीन खातों में कपट किया गया था, उसने केवल यह कथन किया कि उसने श्री डी॰ मजूमदार के जाँच रिपोर्ट पर विश्वास किया है और श्री डी॰ मजूमदार ने भी सुप्त खाता धारकों से परिप्रश्न नहीं किया है। यह प्रतिवाद भी किया गया है कि किसी लेखा परीक्षा रिपोर्ट के बारे में कोई चर्चा नहीं है जो दर्शाता है कि इस मामले में बैंक द्वारा कोई लेखा परीक्षा नहीं की गयी थी। सामान्यत: बैंक में प्रत्येक वित्तीय वर्ष वार्षिक रूप से लेखा परीक्षा की जाती है और यदि बैंक ने हानि सहा होता, यह वार्षिक लेखा परीक्षा रिपोर्ट में आया होता। उन्होंने आगे इंगित किया है कि इस संबंध में लेखाकार अ॰ सा॰ 10 ने प्रति परीक्षण में अपने साक्ष्य के पैरा 5 में कथन किया है कि उसे बैंक से जानकारी मिली कि कूटरचना की गयी है। उसने आगे कथन किया है कि उसे लेखा परीक्षा रिपोर्ट के बारे में जानकारी नहीं है। अपीलार्थी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है बैंक के निगरानी अधिकारी श्री डी॰ मजूमदार को इस मामलें में अन्वेषण अधिकारी के रूप में अधिकारिक रूप से प्राधिकृत नहीं किया गया था। इसके अलावा, अभियोजन द्वारा सूचक का परीक्षण नहीं किया गया है।

8. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **बिनय कुमार सिंह एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य, (1997)1 SCC 283,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उद्धृत किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है:–

> *^^nM çfØ;k lfgrk] 1973 èkkjk 154 çkFkfedh fdlh l] tk lK; vijkèk fd, tkus d ckj e dkb iDdh tkudkjh çdV ugh djrk g] x< lpuk dh vko';drk çkFkfedh nt dju d fy, i;kIr ugh gkxhA***

9. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि अभियोजन द्वारा परीक्षित गवाहों के साक्ष्य में अनेक विरोधाभास हैं। अ॰ सा॰ 5 ने यद्यपि उसने विथड्रावल पर्ची और तीन चेकों पर अभियुक्त अपीलार्थी का हस्ताक्षर सिद्ध किया है, उसने अपने प्रति परीक्षण में कथन किया है कि उसकी उपस्थिति में कोई हस्ताक्षर नहीं लिया गया था। अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा लिखा गया कागज उसके पास नहीं है। चूँकि उसकी उपस्थिति में न तो हस्ताक्षर लिए गए थे और न ही उसके पास अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा लिखा कागज था, इसलिए उसका दावा कि उसने विथड्रावल पर्ची और चेकों पर अभियुक्त का हस्ताक्षर सिद्ध किया है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

10. विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रतिवाद किया है कि अ॰ सा॰ 6 अमर नाथ, जिसने दावा किया है कि उसकी उपस्थिति में अभियुक्त अपीलार्थी का लेखन और हस्ताक्षर लिया गया था और उसने लेजर सिद्ध किया है, ने अपने प्रति परीक्षण के पैरा 2 पर कथन किया है कि यह वह हस्ताक्षर और नमूना नहीं है जो उसकी उपस्थिति में लिया गया था।

11. अपीलार्थी के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि बैंक के निगरानी अधिकारी डी॰ मजूमदार अन्वेषण अधिकारी के तौर पर आधिकारिक रूप से प्राधिकृत/नियुक्त नहीं थे और अभियोजन द्वारा इस संबंध में कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया है। आगे कथन किया गया है कि यह पता चला है कि अनेक दस्तावेजों को विनष्ट कर दिया गया है और चूँकि श्री मजूमदार मामले का अन्वेषण कर रहे थे, दस्तावेजों के विनष्टीकरण का भार उन पर आना चाहिए और उन्हें इसके लिए जिम्मेदार बनाया जाना चाहिए।

12. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे इंगित किया है कि इस मामले में मंजूरी प्राप्त नहीं की गयी थी, अत:, मंजूरी आदेश की अनुपस्थिति में संपूर्ण विचारण दूषित हो जाना चाहिए।

13. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अपीलार्थी को केवल शाखा प्रबंधक के कारण इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है जो अपीलार्थी से इर्ष्या करता था और उसके प्रति पूर्वाग्रह ग्रस्त था। इसके अतिरिक्त, चूँकि अपीलार्थी यू॰ पी॰ एस॰ सी॰ परीक्षा में सफल हुआ था और अप्रिल, 84 में अपना त्यागपत्र दे दिया था, अत: केवल दुश्मनी के कारण उसके विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। यह प्रतिवाद भी किया गया है कि बैंक को कारित किसी हानि की अनुपस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त अपीलार्थी ने बैंक के साथ कपट किया था और इसलिए, वह दोषमुक्ति का हकदार है।

14. सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित होने वाले श्री खान ने निवेदन किया है कि सी॰ बी॰ आई॰ इंस्पेक्टर के॰ एन॰ सिन्हा अ॰ सा॰ 3 ने प्रदर्श 1 के रूप में प्राथमिकी सिद्ध किया है और उसने प्राथमिकी दर्ज किया है और उसने आगे कथन किया था कि उसने स्रोत सूचना पर प्राथमिकी दर्ज किया था और सी॰ बी॰ आई॰ इंस्पेक्टर ज्योति कुमार अ॰ सा॰ 15 ने अन्वेषण किया था।

15. श्री खान ने आगे प्रतिवाद किया है कि अ॰ सा॰ 5 एस॰ एस॰ कुमार दिनांक 21.4.1981 से दिनांक 19.4.1984 के दौरान यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुख्य शाखा, राँची का रुटीन अधिकारी था। उसने कथन किया है कि जे॰ जी॰ इंदवर (अभियुक्त) भी रुटीन अधिकारी के रूप में पदस्थापित था। उसने प्रदर्श 2/A और 2/B के रूप में खाता सं॰ 6436/82 और 6570/82 के लेजर शीट को सिद्ध किया है। उसने प्रदर्श 3 के रूप में चेक बुक डिलीवरी रजिस्टर सिद्ध किया है। उसने आगे कथन किया है कि उसके पास जे॰ जी॰ इंदवर के साथ काम करने का अवसर था और वह उसका लेखन और हस्ताक्षर जानता है। उसने आगे तीन विथड्रावल पर्चियों पर जे॰ जी॰ इंदवर का हस्तलेखन और हस्ताक्षर सिद्ध किया हैं जिन्हें प्रदर्श 4, 4/A और 4/B के रूप में चिन्हित किया गया है। उसने आगे प्रदर्श 5, 5/A, 5/B के रूप में तीन चेकों पर जे॰ जी॰ इंदवर के हस्तलेखन और हस्ताक्षर को सिद्ध किया है। उसने प्रदर्श 7, 7/A, 7/B के रूप में तीन जमा पर्चियों पर जे॰ जी॰ इंदवर का लेखन सिद्ध किया है। उसने प्रदर्श 8 और 8/A के रूप में दो खाता डेबिट वाउचरों पर इंदवर के लेखन को सिद्ध किया है। उसने प्रदर्श 9 और 9/A के रूप में चिन्हित दो खाता खोलने के फॉर्म पर अभियुक्त अपीलार्थी का हस्तलेखन और हस्ताक्षर सिद्ध किया है। उसने आगे दिनांक 17.11.1983 के चेक के पीछे जे॰ जी॰ इंदवर की पत्नी रोज इंदवर का हस्ताक्षर सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श 10 के रूप में चिन्हित किया गया है।

16. श्री खान ने आगे प्रतिवाद किया है कि अ॰ सा॰ 7 सरवर जावेद ने कथन किया है कि वह वर्ष 1981 से वर्ष 1994 तक यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुख्य शाखा में अधिकारी के रूप में कार्यरत था। उसने खाता सं॰ 7737 और 7738 के संबंध में लेजर सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श 18 के रूप में चिन्हित किया गया है। उसने आगे छह शीट में विवरण जो उसके हस्तलेखन और हस्ताक्षर में है, को सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श 19 के रूप में चिन्हित किया गया है। उन्होंने आगे प्रतिवाद किया कि अ॰ सा॰ 8 अमित कुमार रॉय, चूँकि वह बैंक ऑफ इंडिया क्लब साइड शाखा के शाखा कार्यालय का प्रभारी था, ने दिनांक 18.5.1985 को अभिग्रहण सूची में उल्लिखित तमाम कागजातों को अंतरित किया था और अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी और उसने अपना हस्ताक्षर किया था जिसे प्रदर्श 20 के रूप में चिन्हित किया गया था।

17. श्री खान ने आगे प्रतिवाद किया कि अ॰ सा॰ 10 आर॰ रमेश प्रभु (जुलाई, 1980 से सितंबर, 1984 तक) यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुख्य शाखा, राँची में लेखाकार) ने खाता खोलने के फॉर्म का पहचान किया है जिसे यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, धर्मतला शाखा, कोलकात्ता में खाता सं॰ 7738 के रूप में दीपक आनंद के नाम में खोला गया था। उसने आगे कथन किया कि खाता खोलने के फॉर्म में इस गवाह का परिचयकर्ता के रूप में कूटरचित हस्ताक्षर है जिसे प्रदर्श 9/A चिन्हित किया गया है।

18. श्री खान ने आगे प्रतिवाद किया है कि अ॰ सा॰ 11 जगरनाथ पाल (अगस्त/सितंबर, 1984 से अप्रिल/मई, 1987 तक यूको बैंक, राँची शाखा में सहायक प्रबंधक) ने यूनाइटेड कमर्शियल बैंक, राँची में रेयंड ग्वालियर बनोर के नाम में खाता सं॰ 1954 का खाता विवरण सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श 21 के रूप में चिन्हित किया गया है। अ॰ सा॰ 12 राम सुमेर सिंह वर्ष 1985 में इलाहाबाद बैंक, राँची में शाखा प्रबंधक था। उसने प्रदर्श 22 के रूप में चिन्हित खाता सं॰ 9171 वाले इलाहाबाद बैंक में जे॰ जी॰ इंदवर के बचत बैंक पासबुक को और प्रदर्श 22/1 के रूप में चिन्हित खाता सं॰ 9083 वाले जे॰ जी॰ इंदवर की पत्नी रोज इंदवर के नाम में पासबुक को सिद्ध किया है।

19. श्री खान ने आगे प्रतिवाद किया है कि अ॰ सा॰ 13 सतीश चंद्र सिन्हा (डी॰ जी॰ एम॰ यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, नयी दिल्ली) ने कथन किया है कि वर्ष 1983 में वह यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुख्य शाखा, राँची में पदस्थापित था जहाँ जे॰ जी॰ इंदवर भी पदस्थापित था और इसलिए वह जे॰ जी॰ इंदवर के हस्तलेखन और हस्ताक्षर को जानता है। उसने संपुष्ट किया है कि प्रदर्श 2 (खाता सं॰ 2690 का लेजर शीट) के परिशीलन से प्रतीत होता है कि जे॰ जी॰ इंदवर ने 41,500/- रुपयों और 37,500/- रुपयों के दो विथड्रावल फॉर्म के माध्यम से सुप्त खाता सं॰ 2690 जो जगदीश लाल माथुर के नाम में थी, से 79,000/- रुपया निकाला। लेजर के खाता विवरण प्रदर्श 2/A के परिशीलन से वह संपुष्ट करता है कि बैंक चेक से 5/- रुपया काटने के बाद 41,495/- क्रेडिट किया गया था और बाद में जे॰ जी॰ इंदवर ने धीरेन्द्र प्रधान के नाम में खाता खोलने के बाद धीरेन्द्र प्रधान के खाता में अपने हस्ताक्षर द्वारा 5000/-, 950/-, 30,000/- और तब 5045/- रुपया अंतरित किया। इस गवाह (अ॰ सा॰ 13) ने अभियोजन मामला सिद्ध किया है और विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया है कि किस प्रकार अभियुक्त अपीलार्थी ने कपट किया।

20. अंत में श्री खान ने निवेदन किया कि स्वीकृत रूप से अभियुक्त अपीलार्थी ने दिनांक 3.4.1984 को अपना त्याग पत्र दिया है और प्राथमिकी दिनांक 31.10.1984 को दर्ज की गयी थी, अतः, स्वीकृत रूप से, प्राथमिकी दाखिल किए जाने के समय पर अपीलार्थी लोक सेवक नहीं था और इस प्रकार दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 और पी॰ सी॰ अधिनियम के अधीन मंजूरी की आवश्यकता नहीं है चूँकि वर्तमान मामला भारतीय दंड संहिता और पी॰ सी॰ अधिनियम की पूर्वोक्त धाराओं के अधीन अपराध के लिए संस्थापित किया गया था। यह निवेदन भी किया गया है कि अधिनियम के अधीन संपुष्ट शक्ति और राज्य सरकार द्वारा दी गयी सहमति और कार्यालय ज्ञापन भी सी॰ बी॰ आई॰ पॉलिसी डिविजन, नॉर्थ ब्लॉक, नयी दिल्ली द्वारा दिनांक 12.1.2010 को जारी किया गया है जिसमें समस्त बैंक कपट मामलों को दर्ज करना आज्ञापक बनाया गया है। इस संबंध में श्री खान ने दो निर्णयों अर्थात्:–

(i) ***(1999)5 SCC 690*** ***djy jkT; cuke ohO ineukHku uk;jA***

(ii) ***(2006)1 SCC 294*** ***jke'k yky tu cuke ufxUnj flg jk.kk ,o vU;*** *dk m)r fd;k gA*

21. अभिलेख से, मैं पाता हूँ कि स्वीकृत रूप से अभियुक्त अपीलार्थी ने इस मामले की प्राथमिकी दर्ज किए जाने के काफी पहले अपना त्यागपत्र दे दिया है और इस प्रकार वह अपने विरुद्ध मामला दर्ज

किए जाते समय लोक सेवक बिल्कुल नहीं था। श्री खान द्वारा उद्धृत मामले, **केरल राज्य बनाम वी॰ पद्मनाभन नायर, (1999)5 SCC 690,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है:–

> *"6. vr%] lgh fofèkd voLFkk ;g g fd ih0 lh0 vfèkfu;e d vèkhu vijkèk d fy, vfHk;ktu dk lkeuk dj jgk vfHk;Dr etjh dh deh d vkèkkj ij fdlh mUeDrrk dk nkok ugh dj ldrk g ;fn og ml frfFk ij ykd lod ugh jgrk g tc U;k;ky; u mDr vijkèkk dk lKku fy;k FkkA bl çdkj mPp U;k;ky; vfHk;ktu dk;okgh vfHk[kfMr dju e gj rjhd l xyr Fkk tgk rd o ih0 lh0 vfèkfu;e d vèkhu vijkèk l lcfèkr FkA*
>
> *7. bld vfrfjDr] çR;Fkh dk çfrokn fd HkkO n0 l0 dh èkkjkvk 406 vkj 409 lg&ifBr èkkjk 120B d vèkhu vijkèk d fy, lfgrk dh èkkjk 197 d vèkhu etjh vfHk;ktu vkjHk dju dh ijkHkk0; 'kr g] leku :i l xyr gA bl U;k;ky; u JhdfB;k je;;k] efUuiYyh cuke ckEc jkT; e vkj vejhd flg cuke ill jkT; e Hkh lgh fofèkd voLFkk dk dFku fd;k g fd ykd lod }kjk fd; x; çR;d vijkèk d fy, vkj u gh mld }kjk fd, x, iR;d ÑR; d fy, lfgrk dh èkkjk 197 d vèkhu vfHk;ktu d fy, etjh dh vko';drk gkrh g tc og okLrfod :i l viu vkfèkdkfjd dr0;k d ikyu e yxk gvk FkkA mDr fofèkd voLFkk dk vulj.k djr g, gfjgj çlkn (SCC P. 115 Para 66) e fuEufyf[kr vfHkfuèkkfjr fd;k x;k Fkk%*
>
> *^^tgk rd Hkkjrh; nM lfgrk dh èkkjk 120B lg&ifBr èkkjk 409 d vèkhu nMuh; nkfMd "kM;= d vijkèk dk lcèk g vkj tgk rd Hk"Vkpkj fuokj.k vfèkfu;e dh èkkjk 5(2) dk Hkh lcèk g] mUg nM çfØ;k lfgrk dh èkkjk 197 e mfYyf[kr çÑfr dk ugh dgk tk ldrk gA l{ki e viu vkfèkdkfjd dr0; dk fuogu djr g, nkfMd "kM;= djuk vFkok nkfMd vopkj e fylr gkuk ykd lod d dr0; dk Hkkx ugh gA vr%] n.M çfØ;k lfgrk dh èkkjk 197 d vèkhu etjh dh deh otuk ugh gA***

अत:, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में श्री खान ने सही प्रकार से निवेदन किया है कि अभियुक्त अपीलार्थी को अभियोजित करने के लिए वर्तमान मामले में मंजूरी की आवश्यकता नहीं है।

22. गवाहों के साक्ष्य, और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों तथा आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया और इनका सावधानीपूर्वक संवीक्षण करते हुए मैं अभिलेख से पाता हूँ कि प्रदर्श 40 से 40/2 स्पष्टत: दर्शाता है कि डी॰ मजूमदार, अधीक्षक, जोनल निगरानी कोष्ठ, कलकत्ता द्वारा किए गए अन्वेषण पर अप्रिल, 1984 के प्रथम सप्ताह के दौरान राँची मुख्य शाखा बिहार का कपट प्रकाश में आया। तत्पश्चात् संबंधित बैंक से, जाँच पूरा होने के बाद, पूर्वोक्त तीन रिपोर्ट (प्रदर्श 40, 4/1, 4/2) दाखिल किया गया था और केवल तब सी॰ बी॰ आई॰ अधिकारी श्री के॰ एन॰ सिन्हा द्वारा दिनांक 31.10.1984 को प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राथमिकी किसी तर्कपूर्ण कारण के बिना अत्यधिक विलंब के बाद दर्ज की गयी थी। सूचना के स्रोत के संबंध में उठाए गए बिंदु के संबंध में मैं अभिलेख से पाता हूँ कि सी॰ बी॰ आई॰ इंस्पेक्टर अ॰ सा॰ 3 के॰ एन॰ सिन्हा ने डी॰ मजूमदार द्वारा तीन विस्तृत जाँच रिपोर्ट प्रदर्श 40 से 40/2 को प्रस्तुत करने के बाद प्राथमिकी दर्ज किया है और तत्पश्चात सी॰ बी॰ आई॰ इंस्पेक्टर ज्योति कुमार अ॰ सा॰ 15 द्वारा अन्वेषण किया गया था। समस्त तीनों गवाहों अ॰ सा॰ 3 के॰ एन॰ सिन्हा, अ॰ सा॰ 15 ज्योति कुमार और अ॰ सा॰ 16 डी॰ मजूमदार ने अभियोजन मामला और अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों को सिद्ध किया है। सूचक के॰ एन॰ सिन्हा का परीक्षण अभियोजन द्वारा अ॰ सा॰ 3 के रूप में किया गया है किंतु बचाव

ने उसका प्रति–परीक्षण करने से इनकार किया है और इसलिए, अभियुक्त द्वारा किया गया अभिवचन कि अभियोजन द्वारा सूचक का परीक्षण नहीं किया गया है, सही नहीं है।

23. अ॰ सा॰ 16 श्री डी॰ मजूमदार (उप महाप्रबंधक, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया) ने कथन किया है कि वर्ष 1984 के दौरान वह बिहार राज्य के पूरे क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले अधीक्षक, जोनल निगरानी, कोलकाता के रूप में पदस्थापित था। उसने आगे कथन किया है कि उसने अधीक्षक की हैसियत से यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, राँची मुख्य शाखा के साथ कपट का अन्वेषण किया जिसमें उसने पाया कि 2.18 लाख रुपयों का कपट था और अन्वेषण के दौरान, उसने जे॰ जी॰ इंदवर के विरुद्ध अपराध में फँसाने वाला और निर्णायक साक्ष्य पाया और यह भी पाया कि जे॰ जी॰ इंदवर ने अपने अधिकारिक हैसियत का दुरुपयोग किया और उक्त सुप्त एस॰ बी॰ खाता से गलत रूप से डेबिट किया गया अंतरिम खाता में बी॰ पी॰ ए॰ आर॰ (बिल प्रोसिड्स अवेटिंग रेमिटैंस) में इन राशियों को अंतरित करके तीन सुप्त एस॰ बी॰ खाता से कपटपूर्वक डेबिट करके 2.18 लाख रुपयों का कपट किया। तत्पश्चात, उक्त राशि मुख्यत: दो खातों में क्रेडिट और अंतरित की गयी थी जिनकी पहचान संदेहास्पद है। उसने आगे कथन किया कि इस कारण बैंक को भारी नुकसान हुआ। यह गवाह अपने प्रति परीक्षण में भी दृढ़ बना रहा। इस प्रकार, उसने अभियोजन मामला का समर्थन किया और इसे सिद्ध किया।

24. अभिलेख से, मैं पाती हूँ कि अ॰ सा॰ 5 एस॰ एस॰ कुमार दिनांक 21.4.1981 से दिनांक 19.4.1984 तक यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, मुख्य शाखा राँची में रुटीन अधिकारी था। उसने कथन किया है कि जे॰ जी॰ इंदवर भी रुटीन अधिकारी के रूप में पदस्थापित था। उसने प्रदर्श 2/A और 2/B के रूप में खाता सं॰ 6436/82 और 6470/82 का लेजर शीट सिद्ध किया है। उसने चेक बुक डिलीवरी रजिस्टर भी प्रदर्श 3 के रूप में सिद्ध किया है। उसने आगे कथन किया है कि उसके पास जे॰ जी॰ इंदवर के साथ काम करने का अवसर था और वह उसका लेखन और हस्ताक्षर जानता है। उसने तीन विथड्रावल पर्चियों पर जे॰ जी॰ इंदवर का लेखन और हस्ताक्षर सिद्ध किया है जिन्हें प्रदर्श 4, 4/A, 4/B के रूप में चिन्हित किया गया है। उसने आगे प्रदर्श 5, 5/A, 5/B के रूप में तीन चेकों पर जे॰ जी॰ इंदवर के हस्तलेखन और हस्ताक्षर को सिद्ध किया है। उसने प्रदर्श 7, 7/A, 7/B के रूप में तीन जमा पर्चियों पर जे॰ जी॰ इंदवर का लेखन सिद्ध किया है। उसने प्रदर्श 8 और 8/A के रूप में दो खाता डेबिट वाउचर पर इंदवर के लेखन को सिद्ध किया है। उसने प्रदर्श 9 और 9/A के रूप में चिन्हित दो खाता खोलने के फॉर्म पर अभियुक्त का हस्ताक्षर और हस्तलेखन सिद्ध किया है। उसने आगे प्रदर्श 10 के रूप में चिन्हित दिनांक 17.11.1983 के चेक के पीछे जे॰ जी॰ इंदवर की पत्नी रोज इंदवर का हस्ताक्षर सिद्ध किया है। अत:, भले ही अ॰ सा॰ 5 के पास अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा लिखा गया कागज नहीं है और अभियुक्त अपीलार्थी ने उसकी उपस्थिति में हस्ताक्षर नहीं किया है, वह बहुत अच्छे से अभियुक्त अपीलार्थी के हस्ताक्षर को पहचान और सिद्ध कर सकता है क्योंकि दोनों ने लंबे समय तक रुटीन क्लर्क के रूप में साथ काम किया था।

25. चार गवाहों, जो डाक चपरासी अर्थात् अ॰ सा॰ 1 कमल ओराँव, अ॰ सा॰ 2 भुनेश्वर राय, अ॰ सा॰ 4 मो॰ नौशाद और अ॰ सा॰ 9 इंद्रदेव नारायण तिवारी हैं, ने भी कथन किया है कि उन्होंने क्षेत्र में दीपक आनंद, धीरेन्द्र प्रधान और मालती देवी नामक कोई व्यक्ति नहीं पाया था और न ही डिलीवरी के लिए उन्होंने कोई डाक संसूचना प्राप्त किया था, अत: स्पष्ट है कि बैंक खाता में दिए गए पतों पर रहने वाले वे व्यक्ति वास्तविक नहीं थे।

26. दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन दिए गए बयान में अभियुक्त–अपीलार्थी ने उन सब चीजों के बारे में कथन किया है जिन पर इस अपील में उसके अधिवक्ता द्वारा तर्क किया गया है। किंतु अभियोजन द्वारा प्रस्तुत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन उसके द्वारा किए गए बचाव के बिल्कुल विरोधाभासी है।

27. इस प्रकार, गवाहों ने अभियोजन मामला सिद्ध किया है और अपने प्रति–परीक्षण में भी वे दृढ़ बने रहे हैं। दस्तावेजों, जिन्हें इस मामले में प्रदर्श बनाया गया है और गवाहों द्वारा सिद्ध किया गया

है, भी अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा किए गए कपट के बारे में कहते हैं और यह भी दर्शाते हैं कि अभियुक्त ने अपने आधिकारिक हैसियत का दुरुपयोग करके भ्रष्ट और अवैध साधनों द्वारा स्वयं के लिए अनुचित धनीय लाभ पाने के लिए दांडिक अवचार किया।

28. संपूर्ण मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के परिशीलन और संवीक्षण के बाद और विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए विस्तृत निर्णय पर विचार करते हुए मैं पाती हूँ कि अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध पूर्वोक्त आरोपों को सिद्ध किया है। मैं इस अपील में गुणागुण नहीं पाती हूँ। तद्नुसार, अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

जय ज्योति सामंता

cuke

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 1314 of 2011. Decided on 3rd October, 2012.

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 406, 409, 420, 467, 468, 471, 477 (A), 120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल, कूटरचना एवं षडयंत्र—संज्ञान—नरेगा की राशि का दुर्विनियोग—संग्रहित की गयी सामग्री याची को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी—प्रोग्राम अधिकारी होने के नाते याची नरेगा योजना के अधीन कतिपय कामों को निष्पादित करने के लिए निष्पादन एजेंसियों को अग्रिम धन देने के लिए कर्तव्यबद्ध था—यदि कर्तव्य के निर्वहन में याची ने निष्पादन एजेंसियों को अग्रिम धन दिया था जिन्होंने कामों को निष्पादित नहीं किया था, तो ऐसे किसी अभिकथन कि याची ने काम करवाए बिना षड्यंत्र अग्रसर करने में राशि का दुर्विनियोग कर लिया कि अनुपस्थिति में याची को अपराधों का दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है—संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित—आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 6, 7, 9 एवं 10)

(ख) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—संज्ञान—जब याची के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए कोई सामग्री बिल्कुल नहीं है, तब यह विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा यदि याची को विचारण की कठोरता का सामना करने की अनुमति दी जाती है—मात्र इसलिए कि अभियुक्त के पास आरोपों को विरचित किए जाने के समय पर यह अभिवचन करने का अधिकार है कि आरोपों को विरचित करने के लिए सामग्री नहीं है, वह समय के आरंभिक बिंदु पर, जब दंडाधिकारी ने संज्ञान लिया है, न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लेने से वर्जित नहीं है। (पैरा 9)

निर्णयज विधि.—(1998)7 SCC 698; (1977)2 SCC 699—Relied.

अधिवक्तागण.—M/s P.P.N. Roy, Pratiyush Lala, Pan Roy, For the Petitioner; Mr. Gouri Shankar Prasad, For the State.

आदेश

याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. आरंभ में, यह आवेदन बलियापुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 88 वर्ष 2009 की प्राथमिकी के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी थी। बाद में, दिनांक 18.2.2012 के आदेश, जिसके अधीन आरोप दाखिल

किए जाने पर याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406, 409, 420, 467, 468, 471, 477(A), 120B के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया गया था, को दोषपूर्ण बताते हुए चुनौती दी गयी है।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ पी॰ एन॰ रॉय निवेदन करते हैं कि प्राथमिकी इस अभिकथन पर दर्ज की गयी थी कि नरेगा योजना के अधीन कामों को निष्पादित करने के लिए विभिन्न एजेंसियों को चेकों के माध्यम से अग्रिम राशि दी गयी थी। निष्पादन एजेंसियों ने उस सीमा तक जिसके लिए अग्रिम राशि दी गयी थी, कामों को पूरा किए बिना राशि को अपने पास रख लिया और तद्द्वारा उन्हें राशि का दुर्विनियोग करता अभिकथित किया गया है। जहाँ तक इस याची का संबंध है, प्राथमिकी में केवल यह कथन किया गया है कि इस याची ने प्रोग्राम ऑफिसर होने के नाते नरेगा के अधीन विभिन्न योजनाओं के कार्य निष्पादित करने के लिए अनेक निष्पादन एजेंसियों को अग्रिम धन दिया था। ऐसे अभिकथन पर, मामला याची के विरुद्ध दर्ज नहीं किया गया प्रतीत होता है। फिर भी, अन्वेषण अधिकारी ने मामले का अन्वेषण करने के बाद याची के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया जिस पर अपराधों का संज्ञान लिया गया है यद्यपि यह दर्शाने के लिए संपूर्ण केस डायरी में कोई सामग्री बिल्कुल नहीं है कि याची ने किसी तरीके से अभिकथित अपराध में स्वयं को अंतर्ग्रस्त किया था और तद्द्वारा न्यायालय ने याची के विरुद्ध अपराधों का संज्ञान लेने में अवैधता किया।

4. याची की ओर से आगे निवेदन किया गया है कि अन्वेषण के दौरान अन्वेषण अधिकारी ने पाया कि इस याची ने निष्पादन एजेंसियों को अग्रिम धन दिया था जिन्होंने उस सीमा तक जिसके लिए अग्रिम धन दिया गया था, कामों को निष्पादित नहीं किया था किंतु वह अभिकथन इस याची को किसी दांडिक कृत्य में अंतर्ग्रस्त कभी नहीं करता है बल्कि स्वयं योजना के अधीन याची से काम के निष्पादन के लिए अग्रिम का भुगतान करने की अपेक्षा की जाती थी। इसके अतिरिक्त, यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि इस याची ने अन्य अभियुक्तगण के साथ षडयंत्र करके और इसे अग्रसर करने में निष्पादन एजेंसियों के साथ राशियों का दुर्विनियोग किया और ऐसी परिस्थिति के अधीन संज्ञान लेने वाला आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

5. इसके विरुद्ध, राज्य के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि मामला दर्ज किए जाने के बाद अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण किया था और अन्वेषण के दौरान यह आया है कि इस याची ने प्रोग्राम ऑफिसर होने के नाते निष्पादन एजेंसियों को अग्रिम धन दिया था जिन्होंने उस सीमा तक काम को निष्पादित कभी नहीं किया था जिस तक इस याची द्वारा उन्हें अग्रिम धन दिया गया था। वह आगे निवेदन करते हैं कि इसके अतिरिक्त याची के विरुद्ध अन्वेषण के दौरान कुछ भी नहीं आया है।

6. पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर यह प्रतीत होता है कि याची प्रोग्राम अधिकारी होने के नाते नरेगा योजना के अधीन कतिपय कामों को निष्पादित करने के लिए निष्पादन एजेंसियों को अग्रिम धन देने के लिए कर्तव्यबद्ध था और यदि अपने कर्तव्य के निर्वहन में इस याची ने निष्पादन एजेंसियों को अग्रिम धन दिया था जिन्होंने काम को निष्पादित नहीं किया था, तो इस याची को ऐसे किसी अभिकथन कि इस याची ने काम करवाए बिना षडयंत्र को अग्रसर करने में राशि का दुर्विनियोग किया, की अनुपस्थिति में अपराधों के लिए दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है।

7. इन परिस्थितियों के अधीन, संग्रहित की गयी सामग्री इस याची को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। फिर भी प्रश्न यह होगा कि क्या न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482

के अधीन अपनी अधिकारिता के प्रयोग में सामग्री की पर्याप्तता अथवा अपर्याप्तता पर विचार करेगा अथवा अपने उन्मोचन के लिए सामग्री की अपर्याप्तता का विवाद्यक उठाने के लिए याची को संबंधित न्यायालय के पास भेज देगा। **अशोक चतुर्वेदी एवं अन्य बनाम शितुल एच॰ चंचानी एवं एक अन्य, (1998)7 SCC 698** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि मात्र इसलिए कि अभियुक्त को आरोप विरचित किए जाने के समय यह अभिवचन करने का अधिकार है कि आरोपों को विरचित करने के लिए सामग्री नहीं है, वह उसे समय के आरंभिक बिंदु पर, जब दंडाधिकारी द्वारा संज्ञान लिया गया है, न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लेने से वर्जित नहीं किया गया है।

8. पहले भी, **कर्नाटक राज्य बनाम मुनिस्वामी एवं अन्य, (1977)2 SCC 699,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इसी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया था।

9. इस प्रकार, उक्त कथित तथ्यों और परिस्थितियों में, जब याची के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए कोई सामग्री बिल्कुल नहीं है, यह विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा यदि याची को विचारण की कठोरता का सामना करने की अनुमति दी जाती है। अत: मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद के न्यायालय में लंबित बलियापुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 88 वर्ष 2009, जी॰ आर॰ सं॰ 2988 वर्ष 2009 के तत्सम, की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अपराधों का संज्ञान लेने वाले दिनांक 18.2.2012 के आदेश सहित एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

10. परिणामस्वरुप, यह आदेश अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t;k jk;] U;k;efr

रबिन्द्र कुमार सिन्हा एवं एक अन्य (272 में)

अरूण कुमार मिश्रा एवं अन्य (296 में)

गिरिडिह क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (320, 327, 328 में)

cuke

नवीन कुमार एवं अन्य (272 में)

बिकास कुमार सहाय एवं अन्य (296, 320 में)

नवीन कुमार एवं अन्य (327 में)

प्रदीप कुमार पाठक एवं अन्य (328 में)

L.P.A. No. 272, 296, 320, 327 with 328 of 2004. Decided on 2nd August, 2012.

सेवा विधि–नियुक्ति–बैंकिंग सेवा–नियोक्ता ''वरीयता-सह-मेधा'' का मानक ढंग विहित कर सकता है और पद के लिए आवश्यक न्यूनतम मेधा और वह तरीका जिससे इसका आकलन किया जाएगा भी विहित कर सकता है–जब एक बार नियोक्ता द्वारा ऐसा मापदंड विहित किया जाता है, उन्हें अयुक्तियुक्त नहीं होना होगा जो निर्बंधनात्मक बन जाए–लिखित परीक्षा में न्यूनतम उत्तीर्णांक 60 अंकों का 40% विहित किया जाना और विहित 45% कुल योग वरीय प्रबंधक एवं क्षेत्र प्रबंधक के पदों की दृष्टि में आधिक्य में नहीं है। (पैराएँ 16, 18, 19 एवं 20)

निर्णयज विधि.–AIR 2010 SC 787—Distinguished; (2010)1 SCC 335—Relied on; (2006)12 SCC 574; (1998)6 SCC 720; 2000 (1) PLJR 251—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s G. Mustafa, Arvind Kumar Mehta, Arshad Hussain, Sharif Mustafa (in 272 & 296), For the Appellant; M/s Anil Kumar Sinha, Sameer Saurabh (in all), For the Respondents; M/s M.M. Pal, Mahua Palit, Leena Mukherjee (in 320, 328, 327), For the Appellant-Bank.

प्रकाश तातिया, मुख्य न्यायाधीश.–पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. इन अपीलों को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक द्वारा और रिट याचीगण द्वारा भी डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 1284 वर्ष 2002, डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 1639 वर्ष 2002 और डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 1671 वर्ष 2002 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 15 मार्च, 2004 के निर्णय को चुनौती देने के लिए दाखिल किया गया है। बैंक रिट याचिका में गैर–याची था।

3. इन एल॰ पी॰ ए॰ में अंतर्ग्रस्त विधि का प्रश्न निम्नलिखित है:–

> *^^D;k ekey d rF;k vkj ifjfLFkfr;k e] ^ojh;rk&lg&eèkk* d fofgr <x d vèkhu Ldy I l Ldy 2 ink ij vfèkdkfj;k dk çkUufr çnku dju e viuk, x, ekinM }kjk cd u eèkk dk çkFkfedrk nu e voèkrk fd;k g vFkok ojh;rk dk fcYdy vun[kk djd xHkhj voèkrk fd;k g*

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि कर्मचारीगण, जो स्केल I में प्रबंधक (कार्मिक) के पद से स्केल II के पद पर प्रोन्नति के लिए पात्र उम्मीदवार थे, ने स्केल II में चयन के लिए स्पर्धा किया जिसके लिए पूर्व नियमावली अर्थात् क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (नियुक्ति एवं अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारीगण की प्रोन्नति) नियमावली, 1988 को अधिक्रांत करते हुए दिनांक 2 फरवरी, 2001 को अधिसूचित नियमावली के अनुसार बैंक द्वारा प्रक्रिया संचालित की गयी थी। बैंक के निदेशक बोर्ड ने दिनांक 17 मई, 2000 की अपनी बैठक में शाखाओं के कोटिकरण से उद्भूत होने वाली रिक्तियों के लिए स्केल I से स्केल II में अधिकारियों की प्रोन्नति के लिए प्रोन्नति नियमावली' अनुमोदित किया। किंतु, यह प्रतीत होता है कि खंड 'जे॰' के अधीन प्रोन्नति के लिए प्रक्रिया विहित की गयी है जो निम्नलिखित है:–

> *(j) çkUufr d fy, p;u çfØ;k %*
>
> *uhp fn, x, vdk d foHkktu d erkfcd p;u fyf[kr ijh{kk vkj lk{kkRdkj e çn'ku vkj iooorh ikp o"kk d çn'ku vkdyu fjikV d vkèkkj ij fd;k tk,xk%*
>
> *(A) fyf[kr ijh{kk % 60 vd(*
>
> *(B) lk{kkRdkj % 20 vd(*
>
> *(C) çn'ku vkdyu fjikV % 20 vd*
>
> *dy vd : 100*
>
> *(A) fyf[kr ijh{kk (60 vd)*
>
> *mEehnokj dk nk Hkkxk vFkkr cfdx fofèk ,o cfdx ifjikVh vkPNkfnr dju oky Hkkx (A) vkj çkFkfedrk lDVj] vFk'kkL= vkj çcèku lfgr ØfMV ikfylh] ØfMV eutesV vkPNkfnr dju oky Hkkx (B) l xfBr fyf[kr ijh{kk e mifLFkr gku dh vko';drk gkxhA*
>
> *(B) lk{kkRdkj% (20 vd):*
>
> *lk{kkRdkj d fy, U;ure vgrk vd ugh gkxkA*
>
> *(C) çn'ku vkdyu fjikV (20 vd)*

çkUufr d fy, vd vfèkfu.kZr dju d ç;ktu l ioorh ikp o"kk d çn'ku vkdyu fjikV ij fopkj fd;k tk,xkA

5. रिट याचीगण का प्रतिवाद था कि उक्त प्रक्रिया प्रोन्नति 'वरीयता-सह-मेधा' मापदंड को अपवर्जित करता था और इसे केवल मेधा प्रोन्नति में परिवर्तित कर दिया था। निवेदन किया गया था कि प्रोन्नति प्रदान करने की इस प्रक्रिया में वरीयता के लिए कोई अंक विहित नहीं किया गया है। उम्मीदवारों को केवल मेधा के आधार पर चयनित किया गया है और वह भी 30 अंक प्रत्येक से गठित विषयों के दो संवर्ग में लिखित परीक्षा में 40% न्यूनतम उत्तीर्णांक आवश्यक बनाते हुए 60 अंक की लिखित परीक्षा संचालित करके; साक्षात्कार के लिए 20 अंक और प्रदर्शन आकलन रिपोर्ट के लिए 20 अंक हैं। अत: चयनित उम्मीदवारों को प्रत्यर्थीगण द्वारा दी गयी प्रोन्नतियाँ बिल्कुल अवैध है।

6. विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रोन्नति को चुनौती देने वाले याची के निवेदन में गुणागुण पाया और अभिनिर्धारित किया कि बैंक ने प्रोन्नति के मापदंड अर्थात् 'वरीयता-सह-मेधा' के उल्लंघन में प्रोन्नति दिया है और वस्तुत: केवल 'मेधा' के आधार पर प्रोन्नति दिया है। अत:, बैंक और रिट याचिकाओं में प्रत्यर्थीगण ने इन एल॰ पी॰ ए॰ को दाखिल किया है।

7. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह मुद्दा **राजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम सम्युत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एवं अन्य (2010) 1 SCC 335** में प्रकाशित माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त निर्णय की दृष्टि में अब अनिर्णित विषय नहीं है। जिसका अनुशरण **रूपा रानी रक्षित एवं अन्य बनाम झारखंड ग्रामीण बैंक एवं अन्य, AIR 2010 Supreme Court 787** में किया गया है, जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि ''वरीयता-सह-मेधा'' के मापदंड के अधीन प्रोन्नति देने के लिए भी नियोक्ता न्यूनतम मेधा अंक विहित कर सकता है और तद्द्वारा वरीयता आँक सकता है और वरीयता के अनुसार प्रोन्नति दे सकता है। वर्तमान मामले में, बैंक द्वारा इसी प्रक्रिया का अनुसरण किया गया है और बैंक ने बैंक की प्रबंधकीय हैसियत में उच्च पद के लिए उम्मीदवारों की मेधा आँकने के लिए कतिपय मापदंडों को विहित किया है और तब उनके अंकों, जिनको उन्होंने न्यूनतम मेधा आँकने की प्रक्रिया में प्राप्त किया, को विचार में लिए बिना चयनित उम्मीदवारों की परस्पर वरीयता के अनुसार प्रोन्नति दिया है।

8. रिट याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने भी बैंक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए प्रतिवादों का समर्थन किया है। रिट याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि **भगवान दास तिवारी एवं अन्य बनाम देवास शाजापुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एवं अन्य, 2006 (12) SCC 574,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि पर विचार किया गया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बी॰ वी॰ सिवैया एवं अन्य बनाम के॰ अद्दांकी बाबू एवं अन्य, (1998)6 SCC 720,** मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व निर्णय पर विश्वास किया और अभिनिर्धारित किया कि ''वरीयता-सह-मेधा'' के आधार पर प्रोन्नति के मामले में वरीयता पर अधिक जोर देने की आवश्यकता है यद्यपि यह एकमात्र विनिश्चयकारी कारक नहीं हो सकता है। उन मामलों में, प्रोन्नति प्रदान करने के लिए न्यूनतम मेधा आँकने के लिए कुछ न्यूनतम अंक दिए गए थे और उसे ''वरीयता-सह-मेधा'' पर आशयित प्रोन्नति की कोटि में प्रोन्नति देने के मापदंडों का उल्लंघनकारी पाया गया था। **भगवानदास तिवारी** मामले में इस दृष्टिकोण का अनुसरण किया गया था और रिट याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि पटना उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने भी **राँची क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक बनाम डी॰ पी॰ सिंह,** (2000 (1) PLJR 251,

जिसमें भी ''वरीयता-सह-मेधा'' के आधार पर प्रोन्नति प्रदान करते हुए वरीयता की तुलना में मेधा को प्राथमिकता दी गयी थी, मामले में अपना निर्णय दिया और पूर्ण पीठ ने उन प्रोन्नतियों को अपास्त कर दिया। **राँची क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (ऊपर)** मामले में दिए गए पटना उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रूपारानी रक्षित मामले में विचार किया गया था और **राँची क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (उपर)** के उक्त पूर्णपीठ के निर्णय के आधार पर रूपा रानी रक्षित मामले में झारखंड उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को मान्य ठहराया गया है। अत:, विद्वान एकल न्यायाधीश ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया कि बैंक द्वारा अपनाया गया मापदंड ''वरीयता-सह-मेधा'' प्रक्रिया के कोटि के अधीन प्रोन्नति देने की प्रक्रिया के विपरीत थी।

9. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया और मामले के तथ्यों और पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए निर्णयों का परिशीलन किया।

10. राजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव के मामले पर विचार करना समुचित होगा क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में अनेक अन्य निर्णयों के अतिरिक्त **बी॰ वी॰ सिवैया (उपर)** और **भगवानदास तिवारी (उपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्व निर्णयों पर विचार किया। राजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव के मामले में, जैसा निर्णय के पैराग्राफ 3 में कथन किया गया है, प्रोन्नति की प्रक्रिया निम्नलिखित है:-

> *^^Hkkjr ljdkj d fnukd 23.9.1988 d i= vkj u'kuy cd d fnukd 7.10.1996 d i= l0 823 e vrfo"V ekxn'kd fl)krk ij fopkj dju d ckn] ckM u ldYi ikfjr fd;k fd Ldy II ink ij çkUufr dh p;u çfØ;k e fiNy rhl o"kk d nkjku fd, x, dk; d vèkkj ij 60 vd fn, tk, ,o lk{kkRdkj d fy, 40 vd fn, tk, vkj bl rjhd l çkUufr çfØ;k ijh dh tkuh pkfg,A bl fufeÙk lpuk u'kuy cd dk Hkh nh tk,A***

11. उक्त मामले के तथ्यों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दो प्रश्नों को निरुपित किया गया था जो निम्नलिखित हैं:-

> *(i) D;k foxr çn'ku vkj lk{kkRdkj d fuèkkj.k d fy, U;ure vgrk vd fofgr fd, tk ldr Fk tgk çkUufr ojh;rk&lg&eèkk fl)kr ij dh tkuh g*
>
> *(ii) D;k çFke çR;Fkh cd çkUufr d fy, U;ure vgrk vd (U;ure eèkk) d :i e mPp çfr'kr (78%) fu;r dju e U;k;kfpr Fkk*

12. उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बी॰ वी॰ सिवैया** के मामले सहित अनेक अन्य मामलों पर विचार करने के बाद पैरा 13 पर निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:-

> *"13. bl çdkj ;g Li"V g fd çfØ;k] ft ld }kjk QhMj in e U;ure vko';d eèkk j[ku oky ik= mEehnokjk dk igy vfHkfuf'pr fd;k tkrk g vkj rRi'pkr mul tk U;ure vko';d vgrk j[kr g chp l dBkjrkiod ojh;rk d vulkj çkUufr dh tkrh g] dk ^ojh;rk&lg&eèkk* fl)kr dk vuikyu dju oky fl)kr d :i e ekU;rk nh x;h g vkj Lohdkj fd;k x;k gA ojh;rk&lg&eèkk d fu;e dk mYy?ku dju okyh çfØ;k og g tgk vko';d U;ure eèkk dk*

fuèkkj.k dju d ckn U;ure vko';d vgrk j[ku oky mEehnokjk e l (ojh;rk d ctk,) eèkk d vkèkkj ij çkUufr;k nh x;h gA ;fn U;ure vko';d eèkk d fuèkkj.k d fy, viuk;k x;k ekinM lnHkkoi.k g vkj v;fDr;Dr ugh g] bl ojh;rk&lg&eèkk d fl)kr d fo#) gku d ukr pukrh nu dh NV ugh gA vr% ge rnulkj vfHkfuèkkfjr djr g fd mPprj in d dr0;k d fuogu d fy, vko';d U;ure eèkk vfHkfuf'pr dju d fy, U;ure vgrk vd fofgr djuk ojh;rk&lg&eèkk }kjk çkUufr dh èkkj.kk dk mYy?ku ugh djrk gA

(tkj fn;k x;k)

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **राजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव के मामले** में प्रश्न सं॰ 2 पर विचार करते हुए, जो लिखित परीक्षा में अंक सहित न्यूनतम अर्हता अंक विहित करने से संबंधित था, पैरा 16 में अभिनिर्धारित किया कि ''जहाँ न्यूनतम मेधा का निर्धारण लिखित परीक्षा के विपरीत, पूर्व प्रदर्शन अभिलेख (वार्षिक गोपनीय अभिलेख) और/अथवा साक्षात्कार के संदर्भ में है, न्यूनतम के रूप में 78% का विहितकरण अयुक्तियुक्त रूप से उच्च के रूप में नहीं माना जाएगा।''

14. भगवान दास तिवारी के मामले में और **बी॰ वी॰ सिवैया के मामले** में अभिनिर्धारित किया गया है कि ''वरीयता-सह-मेधा'' के सिद्धांत धारणात्मक रूप से भिन्न हैं और कि ''वरीयता-सह-मेधा'' में ज्यादा जोर वरीयता पर है यद्यपि यह एकमात्र विनिश्चयकारी कारक नहीं हो सकता है। उक्त मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि न्यूनतम अर्हता अंक के रूप में 75% नियत करते हुए उसमें अपनायी गयी पद्धति ''वरीयता-सह-मेधा'' सिद्धांत का उल्लंघन करती है। उक्त दो मामलों अर्थात् **भगवान दास तिवारी (उपर)** और **बी॰ वी॰ सिवैया (उपर)** पर विचार करने के बाद माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि साक्षात्कार के लिए 100 अंकों में से 50 अंक का न्यूनतम विहित करना वरीयता के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं करता था और **सिवैया मामले** के पैराग्राफ 37 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मेधा निर्धारण के लिए विहित न्यूनतम अंक वरीयता-सह-मेधा सिद्धांत से विचलन नहीं करते हैं। जैसा हमने पहले ही गौर किया है कि **भगवान दास तिवारी के मामले** में न्यूनतम अर्हता अंक 75% पर नियत किया गया था और इसलिए **राजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव के मामले** में अभिनिर्धारित किया गया है कि जब कभी न्यूनतम अर्हता अंक 75% से अधिक नियत किया जाता है, यह ''वरीयता-सह-मेधा'' सिद्धांत का उल्लंघन करेगा।

15. प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या उम्मीदवारों को लिखित परीक्षा देने के लिए कहा जा सकता है जिस पर याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आपत्ति की गयी है कि यदि बैंक ने ''प्रदर्शन आकलन रिपोर्ट'' के आधार पर और ''सेवा काल'' के आधार पर न्यूनतम मेधा आँका होता, यह ''वरीयता-सह-मेधा'' कोटि के अधीन चयन का उल्लंघन नहीं कर सकता था जैसा अनेक मामलों में किया गया है जिन पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था और ऐसे मामले में जहाँ लिखित परीक्षा के लिए न्यूनतम अंक विहित किए गए थे, तब चयन को ''वरीयता-सह-मेधा'' के मूल सिद्धांत का उल्लंघनकारी घोषित किया गया था। **राजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव के मामले** में पैराग्राफ (11) पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसका उत्तर दिया गया है जो निम्नलिखित है:-

*11. ;g Hkh lfuf'pr g fd çkUufr d fy, ojh;rk&lg&eèkk dk fl)kr ^^ojh;rk** d fl)kr vkj ^^eèkk&lg&ojh;rk** d fl)kr l fHkUu gA tc çkUufr doy ojh;rk d vkèkkj ij g] eèkk dkb Hkfedk ugh fuHkk,xhA fdr tgk çkUufr ojh;rk&lg&eèkk d fl)kr ij g] çkUufr doy ojh;rk d lnHk e Lor% ugh gA eèkk Hkh eg?oi.k Hkfedk fuHkk,xhA ojh;rk&lg&eèkk dh ekud i)fr (fofgr*

*'k{kf.kd vgrk vkj lokofèk j[ku oky) QhMj xM e leLr ik= mEehnokjk dk fofufn"V U;ure vko';d eèkk d fuèkkj.k dh çfØ;k d vè;èkhu djuk g vkj rc mu mEehnokjk dk çkUur djuk g ftUg dBkjrkiod eèkkØe e U;ure vko';d eèkk okyk ik;k x;k gA in d fy, vko';d U;ure eèkk mEehnokjk dk fyf[kr ijh{kk vFkok lk{kkRdkj d vè;èkhu djd vFkok io o"kk d nkjku mud dk;ikyu d fuèkkj.k }kjk vFkok iokDr i)fr d nk vFkok rhuk i)fr;k }kjk fuèkkfjr fd;k tk ldrk gA dkb dBkj fu;e ugh g fdl çdkj U;ure eèkk vfHkfuf'pr dh tkuh gA tc rd çkUufr vrr# ojh;rk ij vkèkkfjr g] ey vko';drk d :i e U;ure vko';d eèkk vfHkfuf'pr dju dh dkb çfØ;k ojh;rk&lg&eèkk d fl)kr d fo#) ugh tk,xhA** (tkj fn;k x;k)*

16. उक्त निर्णय का कोरा परिशीलन स्पष्ट करेगा कि नियोक्ता 'वरीयता-सह-मेधा' चयन की मानक पद्धति विहित कर सकता है और पद के लिए आवश्यक न्यूनतम मेधा भी विहित कर सकता है और उस तरीके को भी विहित करता है जिस तरीके से इसे आँका जाएगा। उस प्रक्रिया में उम्मीदवारों को लिखित परीक्षा अथवा साक्षात्कार देने के लिए कहा जा सकता है अथवा विगत में सेवावधि के दौरान उनके प्रदर्शन के अनुसार उनका काम निर्धारित किया जा सकता है। नियोक्ता यह निर्णय भी कर सकता है कि क्या यह उक्त मापदंडों में से दो को चुनता है अथवा तीनों पूर्वोक्त पद्धतियों से गठित मापदंड अपना सकता है यानि लिखित परीक्षा, साक्षात्कार और विगत कार्यपालन। निर्धारण के इस ढंग के बाद प्रोन्नति अंतत: केवल वरीयता पर आधारित होनी चाहिए तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि जब एक बार कोई न्यूनतम 'अर्हता परीक्षा' उत्तीर्ण कर लेता है, तब उसे उसकी वरीयता के अनुसार प्रोन्नति दी जा सकती है और न कि न्यूनतम मेधा परीक्षा में प्राप्त अंक के आधार पर। इस मामले में बैंक ने इस ढंग को अपनाया है और इस विवाद्यक पर विवाद नहीं है। बैंक ने न्यूनतम मेधा परीक्षा के बाद उम्मीदवारों को उनकी वरीयता के अनुसार प्रोन्नति सूची में स्थापित किया।

17. अब प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या लिखित परीक्षा में 40% न्यूनतम अंक विहित करना ''वरीयता-सह-मेधा'' में उम्मीदवारों की कोटि के अधीन चयन के सिद्धांत का उल्लंघन कहा जा सकता है। **राजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव के मामले** के पैरा 19 पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस विवाद्यक का भी उत्तर दिया गया है और **भगवानदास तिवारी के मामले** पर विचार करने के बाद विनिर्दिष्टत: अभिनिर्धारित किया गया है कि जब कभी न्यूनतम अर्हता अंक 75% और अधिक नियत किया जाता है ''वरीयता-सह-मेधा'' नियम का उल्लंघन होगा। यहाँ इस मामले में लिखित परीक्षा में उम्मीदवार द्वारा प्राप्त करने के लिए आवश्यक कुल अंक 60 अंक का 40% था और समेकित 45% था अर्थात् लिखित परीक्षा, साक्षात्कार और प्रदर्शन आकलन रिपोर्ट में प्राप्त अंक। प्रश्नगत पद स्केल II अधिकारी का पद है जो बैंक के क्षेत्रीय प्रबंधक और वरीय प्रबंधक के लिए है और, इसलिए, पद को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि लिखित परीक्षा के लिए विहित न्यूनतम अंक 40% अयुक्तियुक्त अथवा अन्यायोचित है और यह वस्तुत: केवल मेधावी व्यक्तियों को प्राथमिकता देने के लिए अपनाया गया ढंग है। **रूपा रानी रक्षित मामले** में, **राजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव मामले** पर भी विचार किया गया था जिसे उसी वाल्यूम **(2010)1 SCC 345** में प्रकाशित किया गया है। **रूपा रानी रक्षित के मामले** के तथ्य भिन्न थे और उस मामले में निम्नलिखित मापदंड के अनुसार उम्मीदवार को आँकने के लिए प्रक्रिया अपनायी गयी थी:-

Øekd	fof'kf"V;k@fooj.k	U;ure vd
(i)	ojh;rk (lok dh çR;d i.k frekgh d fy, ,d vd)	40
(ii)	'k{kf.kd vgrk (Lukrd fMxh% 3 vd] Lukrdkùkj fMxh 2 vd] MkDVjV&1)	6
(iii)	çn'ku vkdyu (cgr vPNk (A) vkB vd(vPNk (B) 6 vd] vkIr (C) 5 vd] [kjkc (D)–0 vd	24
(iv)	lk{kkRdkj (lk{kkRdkj d fy, U;ure vgrk vd&10 vd	30
		dy vd = 100

18. उक्त प्रक्रिया को अवैध और ''वरीयता–सह–मेधा'' के अधीन चयन ढंग के विपरीत इस आधार पर पाया गया था कि बैंक ने चार मापदंडों सेवा विधि, शैक्षणिक अर्हता, तीन वर्षों के दौरान प्रदर्शन और साक्षात्कार के प्रति निर्देश में क्रमशः 40, 6, 24 और 30 अंक आवंटित करके उम्मीदवारों की परस्पर मेधा निर्धारित करने की प्रक्रिया अपनाया और तब उनको प्रोन्नत करने के लिए अग्रसर हुआ जिन्होंने मेधा में उच्चतम अंक पाया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि इस प्रकार प्रासंगिक नियमों का दो उल्लंघन हुआ हैः (i) मेधा–सह–वरीयता आधार पर और न कि ''वरीयता–सह–मेधा'' आधार पर उम्मीदवारों को प्रोन्नत करने में और (ii) अन्य बातों के साथ विभिन्न शैक्षणिक अर्हता के लिए आवंटित अंक के प्रति निर्देश में परस्पर मेधा का आकलन करने में। इन निष्कर्षों की दृष्टि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ऐसे तरीके से की गयी प्रोन्नति ''वरीयता–सह–मेधा'' के आधार पर नहीं थी यद्यपि तुलनात्मक मेधा के निर्धारण के लिए कारकों में से एक के रूप में सेवा अवधि पर भी विचार किया गया था। अतः **रूपा रानी रक्षित के मामले** के तथ्यों में वरीयता के लिए अंक संग्रहित किए गए थे, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वह प्रक्रिया भी ''वरीयता–सह–मेधा'' के अधीन प्रोन्नति के लिए विहित मापदंड के अंतर्गत नहीं थी।

19. अतः, यह मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है और हमारा सुविचारित मत है कि ''वरीयता–सह–मेधा'' के अधीन प्रोन्नति की कोटि में प्रोन्नति के प्रयोजन से न्यूनतम मेधा की आवश्यकता के लिए नियोक्ता न्यूनतम मेधा आँकने के लिए ढंग विहित कर सकता है। उस प्रक्रिया में नियोक्ता न्यूनतम मेधा को आँकने के प्रयोजन से कोई ढंग जैसे लिखित परीक्षा, साक्षात्कार और विगत सेवा का निर्धारण विहित कर सकता है और ढंगों में से किसी दो को चुन सकता है अथवा न्यूनतम मेधा आँकने के प्रयोजन से समस्त तीन ढंगों को चुन सकता है। जब एक बार नियोक्ता द्वारा ऐसा मापदंड विहित किया जाता है, उन्हें अयुक्तियुक्त नहीं होना होगा ताकि वे ''वरीयता–सह–मेधा'' के आधार पर प्रोन्नति का दावा करने वाले व्यक्ति के लिए निर्बंधनकारी न बन जायें और (मेधा के आधार पर उम्मीदवारों को मुख्य रूप से अपवर्जित न करे और लिखित परीक्षा में न्यूनतम अंक विहित करके, जैसे **भगवान दास तिवारी के मामले** में किया गया था जहाँ न्यूनतम अर्हता अंक 75% नियत किया गया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह ''वरीयता–सह–मेधा'' माप दंड का उल्लंघन करता है, न्यूनतम मेधा आँकने के लिए कठोर

मापदंड विहित करने का ढंग अपनाए। इस मामले में लिखित परीक्षा में न्यूनतम उत्तीर्ण अंक 60 अंक का 40% विहित करने और समेकित 45% विहित करने का प्रश्नगत पद, जो बैंक के क्षेत्रीय प्रबंधक और वरीय प्रबंधक का पद है, को देखते हुए अत्यधिक नहीं कहा जा सकता है।

20. उक्त कारणों की दृष्टि में, हमारा सुविचारित मत है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य हैं। अत: इसे अपास्त किया जाता है और रिट याचीगण रिट याचिकाएँ खारिज की जाती है और तद्नुसार एल॰ पी॰ ए॰ अनुज्ञात किए जाते हैं।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

अवध किशोर राजगढ़िया

cuke

झारखंड राज्य

Cri. Misc. Petition No. 4722 of 2001. Decided on 20th September, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 274 एवं 275 सह-पठित औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धाराएँ 27, 28 एवं 32—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 4 एवं 482—निम्न स्तरीय औषधियों का विक्रय–संज्ञान–अपमिश्रित औषधियों की विक्रय एवं आपूर्ति औषधि और प्रसाधन अधिनियम के प्रावधान के अधीन आच्छादित होगी–सामान्य विधि के अधीन अभियोजन अनुज्ञेय नहीं है–औषधि एवं प्रसाधन अधिनियम के अधीन अभियोजन केवल तब पोषित किया जा सकता है जब इसे इंस्पेक्टर द्वारा अथवा व्यथित व्यक्तियों द्वारा अथवा मान्यता प्राप्त उपभोक्ता संघ द्वारा दाखिल रिपोर्ट पर संस्थापित किया जाता है–अभियोजन इंस्पेक्टर द्वारा अथवा व्यथित व्यक्ति द्वारा आरंभ नहीं किया गया बल्कि इसे अपर उपायुक्त द्वारा आरंभ किया गया था जिस पर आरोप-पत्र दाखिल किया गया था और संज्ञान लिया गया था–संज्ञान लेने वाला आदेश दोषपूर्ण है–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 11 से 17)

अधिवक्तागण.–Mr. Ravindra Kumar Sinha, For the Petitioner; Mr. H.K. Shikarwar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह आवेदन चाईबासा सदर पी॰ एस॰ केस सं॰ 110 वर्ष 1993 (जी॰ आर॰ सं॰ 692 वर्ष 1993) की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित तत्कालीन मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, प्रभारी चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा पारित दिनांक 8.2.2001 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 274 और 275 के अधीन और औषधि एवं प्रसाधन अधिनियम, 1940 की धाराओं 27 और 28 के अधीन भी दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया।

3. याची की ओर से किए गए निवेदनों को ध्यान में लेने से पहले अभियोजन मामले को ध्यान में लेने की आवश्यकता है:–

4. अभियोजन मामला यह है कि सिविल सर्जन-सह-मुख्य चिकित्सा अधिकारी, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम के भंडार में नकली औषधियों की उपलब्धता के बारे में अफवाह था। ज्योंही सिविल

सर्जन-सह-मुख्य चिकित्सा अधिकारी को इसके बारे में पता चला, उन्होंने ड्रग इंस्पेक्टर, जमशेदपुर को भंडार का दौरा करने और नमूने जमा करने का अनुरोध किया। ऐसी सूचना पर, ड्रग इंस्पेक्टर दिनांक 17.4.1993 को उपायुक्त, पश्चिम सिंहभूम, चाईबासा के पी॰ ए॰ और अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति में सल्फागुएनाडाइन (बैच सं॰ 9001, निर्माण तिथि 3/91, अवसान तिथि 2/96) सहित अनेक औषधियों को संग्रहित किया। तत्पश्चात, उन औषधियों को इसकी परीक्षा के लिए सरकारी विश्लेषक, गाजियाबाद के पास भेजा गया था। विश्लेषक द्वारा औषधियों की परीक्षा किए जाने पर इन्हें निम्नस्तर गुणवत्ता का पाया गया था।

5. तत्पश्चात्, अपर उपायुक्त, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम ने प्रभारी-अधिकारी, सदर पुलिस थाना, चाईबासा के समक्ष लिखित रिपोर्ट दाखिल किया जिस पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 274 और 275 तथा औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धाराओं 27 और 28 के अधीन याची, जो पूर्वोक्त औषधियों का आपूर्तिकर्ता हुआ करता था, के विरुद्ध और निर्माता अर्थात् एवरॉन लेबोरेट्रीज, हुगली के विरुद्ध भी मामला दर्ज किया गया था।

6. आरोप-पत्र दाखिल किए जाने पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 274 और 275 के अधीन और औषधि एवं प्रसाधन अधिनियम, 1940 की धाराओं 27 और 28 के अधीन याची के विरुद्ध दिनांक 8.2.2001 के आदेश के तहत संज्ञान लिया गया था जो चुनौती के अधीन है।

7. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री सिन्हा निवेदन करते हैं कि औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के अधीन अभियोजन पोषित किया जा सकता है यदि मामला औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 32 में अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में इंस्पेक्टर द्वारा अथवा व्यथित व्यक्ति द्वारा अथवा मान्यता प्राप्त उपभोक्ता संघ द्वारा संस्थापित किया गया है और न कि व्यक्तियों में से किसी के द्वारा किंतु यहाँ वर्तमान मामले में लिखित रिपोर्ट, जिस पर मामला संस्थापित किया गया था, अपर उपायुक्त, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा दर्ज किया गया था जिस रिपोर्ट पर आरोप-पत्र दाखिल किया गया था और इसलिए औषधि और प्रसाधन अधिनियम के अधीन मामला कभी नहीं पोषित किया जा सकता है। जहाँ तक भारतीय दंड संहिता के अधीन आरोपों का संबंध है, वह भी पोषित नहीं किया जा सकता है क्योंकि 'अपमिश्रित औषधियों' से संबंधित कोई अपराध औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम के अधीन आच्छादित है जो विशेष विधान है जिसका दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 4 में अंतर्विष्ट प्रावधान के फलस्वरुप सामान्य विधि के उपर अध्यारोही प्रभाव होगा।

8. इन स्थिति के अधीन, संज्ञान लेने वाला आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

9. राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री शिकारवार निवेदन करते हैं कि ऐसा नहीं है कि अपर उपायुक्त, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा दर्ज मामला केवल औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के अधीन अपराध किए जाने के संबंध में है बल्कि यह भारतीय दंड संहिता की धाराओं 274 और 275 के अधीन अपराध किए जाने के कारण भी है और ऐसी स्थिति में अभियोजन आसानी से पोषित किया जा सकता है।

10. मैं राज्य की ओर से किए गए निवेदनों में कोई सार नहीं पाता हूँ।

11. यह विवादित नहीं किया गया है कि औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 उन औषधियों पर विचार करती है जो मिसब्रांडेड, अपमिश्रित अथवा नकली हैं और, इसलिए, अपमिश्रित औषधियों की विक्रय और आपूर्ति औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के अधीन आच्छादित होगी क्योंकि यदि ऐसा है, तब दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 4 में अंतर्विष्ट प्रावधान के फलस्वरुप सामान्य विधि के अधीन अभियोजन अनुज्ञेय नहीं है।

12. आगे, मैं पाता हूँ कि औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के अधीन अभियोजन पोषित किया जा सकता है, जब इसे केवल इंस्पेक्टर द्वारा अथवा व्यथित व्यक्ति द्वारा अथवा मान्यता प्राप्त उपभोक्ता संघ द्वारा दाखिल रिपोर्ट पर संस्थापित किया जाता है चाहे ऐसा व्यक्ति उस संघ का सदस्य हो या नहीं हो।

13. इस संबंध में, औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 32 के प्रावधान को ध्यान में लिया जाए जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *"32.* ***vijkèkk dk lKku-***&*(1) bl vè;k; d vèkhu dkb vfHk;ktu flok, bLiDVj }kjk [vFkok 0;fFkr 0;fDr }kjk vFkok ekU;rk çkIr miHkkDrk l?k }kjk pkg og 0;fDr l?k dk lnL; g ;k ugh g] lLFkkfir ugh fd;k tk,xkA*
>
> *(2) [eVkikfyVu eftLVV vFkok çFke J.kh d U;kf;d nMkfèkdkjh d U;k;ky;] l fuEu U;k;ky; bl vè;k; d vèkhu nMuh; vijkèk dk fopkj.k ugh djxkA*
>
> *(3) bl vè;k; e vrfo"V fdlh pht dk fdlh 0;fDr dk fdlh ÑR; vFkok yki tk bl vè;k; d vèkhu vijkèk xfBr djrk g] d fy, fdlh vU; fofèk d vèkhu vfHk;kftr dju l jkdrk gvk ugh le>k tk,xkA***

14. इस प्रकार, कोई संदेह नहीं बना रहता है कि औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के अधीन अभियोजन केवल तब पोषित किया जा सकता है जब कोई व्यक्ति जो पूर्वोक्त प्रावधान के अधीन सक्षम है, औषधि और प्रसाधन अधिनियम, 1940 के अधीन अभियोजन आरंभ करता है।

15. यहाँ, वर्तमान मामले में स्वीकृत रूप से अभियोजन इंस्पेक्टर द्वारा अथवा व्यथित व्यक्ति द्वारा कभी नहीं आरंभ किया गया था, बल्कि इसे अपर उपायुक्त, चाईबासा, पश्चिम सिंहभूम द्वारा आरंभ किया गया था जिस पर मामले का अन्वेषण किया गया था और आरोप-पत्र दाखिल किया गया था जिस पर अपराध का संज्ञान लिया गया था और इसलिए संज्ञान लेने वाला आदेश निश्चय ही दोषपूर्ण है।

16. तद्नुसार, चाईबासा सदर पी॰ एस॰ केस सं॰ 110 वर्ष 1993 (जी॰ आर॰ सं॰ 692 वर्ष 1993) की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित दिनांक 8.2.2001 का आदेश, जहाँ तक इस याची का संबंध है, एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

17. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

फ्रेडरिक तिर्के

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cri. Rev. No. 279 of 2003. Decided on 3rd October, 2012.

दांडिक अपील सं॰ 48 वर्ष 2000 में सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 7.1.2003 के निर्णय के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 341, 323 एवं 354—मर्यादा भंग करने का प्रयास–दोषसिद्धि–परिवीक्षा बंध निष्पादित करने का निर्देश–परिवादी द्वारा परिवाद मामला

दाखिल करने में चार माह का अत्यधिक विलंब हुआ है–भूमि विवाद के कारण घटना हुई थी–भले ही परिवादी द्वारा परीक्षित गवाहों ने अभियोजन मामले का समर्थन किया था, याची ने अभियोजन मामले पर सद्भावपूर्ण संदेह सृजित करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री लाया था–याची को संदेह का लाभ दिया गया और आरोप से दोषमुक्त किया गया–पुनरीक्षण याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Kashyap, Ravi Prakash, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

न्यायालय द्वारा.–याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ सुने गए। कार्यालय नोट्स से यह प्रतीत होता है कि परिवादी विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने नोटिस स्वीकार करने से इनकार कर दिया था।

2. याची परिवाद केस सं॰ C-184 वर्ष 1995/टी॰ आर॰ सं॰ 797 वर्ष 2000 में विद्वान सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, गुमला द्वारा पारित दिनांक 10.7.2000 के निर्णय से व्यथित है, जिसके द्वारा याची को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341, 323 और 354 के अधीन अपराध को दोषी पाया गया था और दंडादेश के बिंदु पर सुनवाई करने पर उन्होंने याची को शांति बनाए रखने के लिए और दो वर्षों की अवधि के लिए अच्छा आचरण के लिए समान राशि की एक प्रतिभूति के साथ 5000/- रुपयों का परिवीक्षा बंध पत्र देने का निर्देश दिया था। उक्त निर्णय के विरुद्ध दाखिल अपील भी दांडिक अपील सं॰ 48 वर्ष 2000 में दिनांक 7.1.2003 के निर्णय द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा खारिज कर दी गयी थी।

3. अभिलेख के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि वर्तमान परिवाद याचिका परिवादी बाल्मिकी उर्फ झरियो देवी द्वारा मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, गुमला के न्यायालय के समक्ष यह अभिकथन करते हुए दाखिल की गयी थी कि दिनांक 8.8.1995 को जब परिवादी और उसके परिवार के सदस्य रोपने के लिए धान के बिचड़ों को प्रश्नगत खेती की भूमि से उखाड़ रहे थे, अभियुक्त याची ने उन पर प्रहार किया था और उसकी मर्यादा भंग किया था। यह प्रतीत होता है कि परिवादी ने सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर दर्ज अपने बयान में याची के विरुद्ध अभिकथन का समर्थन किया था और गवाहों ने भी जाँच के चरण पर परिवादी के मामले का समर्थन किया था जिस पर याची के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला पाया गया था और उसके विरुद्ध आदेशिका जारी की गयी थी और अंततः उसका विचारण किया गया था।

4. अभिलेख दर्शाता है कि विचारण के क्रम में स्वयं परिवादी सहित कुल पाँच गवाहों का परिवादी की ओर से परीक्षण किया गया था। बचाव पक्ष ने भी इस मामले में तीन गवाहों का परीक्षण किया था और कुछ दस्तावेजों को सिद्ध किया गया था और उन्हें प्रदर्श चिन्हित किया गया था। अवर विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय से यह प्रतीत होता है कि बचाव पक्ष ने यह दर्शाने के लिए गवाहों का परीक्षण किया था और दस्तावेजों को सिद्ध किया था कि प्रश्नगत भूमि याची की है जिसे उसने अपने पत्नी के नाम पर खरीदा था और इसे उसके पक्ष में नामांतरित किया गया था। यह भी सिद्ध किया गया था कि दिनांक 8.8.1995 की घटना के लिए याची ने परिवादी के विरुद्ध दांडिक मामला दाखिल किया था। स्वयं अवर विचारण न्यायालय के निर्णय से प्रकट है कि वर्तमान परिवाद मामला उसी तिथि की घटना के लगभग चार माह के विलंब के बाद दाखिल किया गया था जिसके लिए याची ने परिवादी के विरुद्ध दांडिक मामला दाखिल किया था।

5. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर अवर विचारण न्यायालय ने याची को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341, 323 और 354 के अधीन अपराध के लिए दोषी पाया है और उसे इनके लिए दोषसिद्ध किया है। किंतु याची को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम का लाभ दिया गया था और परिवीक्षा बंध भरने के लिए कहा गया था और उक्त निर्णय के विरुद्ध दाखिल अपील भी विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गयी थी।

6. अवर न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णयों का परिशीलन करने पर प्रकट है कि परिवादी द्वारा परिवाद मामला दाखिल करने में अत्यधिक विलंब किया गया है क्योंकि परिवादी ने दिनांक 8.8.1995 की अभिकथित घटना के लिए दिनांक 21.12.1995 को परिवाद याचिका दाखिल किया था। इसके अतिरिक्त, याची ने इसी तिथि की घटना के लिए परिवादी के विरुद्ध दांडिक मामला दाखिल किया था। अवर न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णयों से भी प्रकट है कि घटना पक्षों के बीच प्रश्नगत भूमि के विवाद के कारण हुई थी और घटना प्रश्नगत कृषि भूमि से रोपे जाने के लिए धान के बिचड़ों को उखाड़ने के समय पर हुई थी। याची ने भी प्रश्नगत भूमि के उपर कब्जा का दावा किया था, जिसके लिए बचाव पक्ष द्वारा मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्य दिए गए थे।

7. मामले के उस दृष्टिकोण में, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि यद्यपि परिवादी द्वारा परीक्षित गवाहों ने अभियोजन मामले का समर्थन किया था, याची ने अभियोजन मामले पर सद्भावपूर्ण संदेह सृजित करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री लाया था और मामले के तथ्यों में याची कम से कम संदेह का लाभ पाने का हकदार है।

8. पूर्वोक्त चर्चा की दृष्टि में, परिवादी केस सं॰ C-184 वर्ष 1995/टी॰ आर॰ सं॰ 797 वर्ष 2000 में विद्वान सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, गुमला द्वारा पारित दिनांक 10.7.2000 का आक्षेपित निर्णय और दांडिक अपील सं॰ 48 वर्ष 2000 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 7.1.2003 का निर्णय भी एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। याची को संदेह का लाभ दिया जाता है और उसे आरोप से दोषमुक्त किया जाता है।

9. यह दांडिक पुनरीक्षण, तद्नुसार, अनुज्ञात किया जाता है। अवर न्यायालय अभिलेख को तुरन्त संबंधित न्यायालय के पास वापस भेजा जाए।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

अमिताभ कमल

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1881 of 2012. Decided on 3rd October, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 467, 468, 469, 471, 472, 406, 420 एवं 120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—न्यास का दांडिक भंग, छल एवं कूटरचना–संज्ञान–याची और अन्य अभियुक्तगण ने प्रतिफल धन स्वीकार करने पर न तो रजिस्टर्ड विक्रय विलेख निष्पादित किया और न ही भूमि का कब्जा दिया–संज्ञान लेने वाले आदेश का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित किया जा रहा है कि पक्षों ने अपने विवाद का समाधान कर मामले में सुलह कर लिया है और न्यायालय में सुलह याचिका दाखिल किया है–अभिकथन में सिविल विवाद के स्वर हैं जो निजी प्रकृति का है–संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित–आवेदन अनुज्ञात।
(पैराएँ 4 से 6)

निर्णयज विधि.–(2008)9 SCC 677; (2008)4 SCC 582—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s. I. Sinha, Bibhash Sinha, For the Petitioners; A.P.P., For the State; Mr. P.A.S. Pati, For the O.P. No.2.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. लोवर बाजार पी॰ एस॰ केस सं॰ 198 वर्ष 2012 के संबंध में पारित दिनांक 13.8.2012 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467, 468, 469, 471, 472, 406, 420 और 120B के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया गया है, का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित किया जा रहा है कि पक्षों ने मामले में सुलह करके अपना विवाद सुलझा लिया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि संपूर्ण अभिकथनों को सत्य मानने पर भी, जहाँ तक धाराओं 467, 468, 469, 471 और 472 के अधीन अपराधों का संबंध है, कोई मामला नहीं बनता है क्योंकि याची को कूटरचना का कृत्य करता हुआ कभी नहीं अभिकथित किया गया है और जहाँ तक धाराओं 406, 420 और 120B के अधीन अपराधों का संबंध है, पक्षों ने मामले में सुलह कर लिया है और इसलिए, **निखिल मर्चेन्ट बनाम केंद्रीय जाँच ब्यूरो एवं एक अन्य, (2008)9 SCC 677,** के मामले में और **मदन मोहन एबट बनाम पंजाब राज्य, (2008)4 SCC 582** मामले में भी दिए गए निर्णयों की दृष्टि में संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित किया जाए।

4. विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री पति सूचक की उपस्थिति में निवेदन करते हैं कि पक्षों ने अपने विवाद का समाधान कर लिया है और अवर न्यायालय के समक्ष संयुक्त सुलह याचिका दाखिल किया है और यहाँ प्रति शपथपत्र में पैराग्राफ 9 पर इन्हीं तथ्यों का कथन किया गया है।

5. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, यह प्रतीत होता है कि याची और अन्य अभियुक्तगण ने जब प्रतिफल धन स्वीकार करने पर न तो रजिस्टर्ड विक्रय विलेख का निष्पादन किया और न ही भूमि का कब्जा दिया, मामला दर्ज किया गया था जिसे भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467, 468, 469, 471, 472, 406, 420 और 120B के अधीन लोवर बाजार पी॰ एस॰ केस सं॰ 198 वर्ष 2012 के रूप में दर्ज किया गया था किंतु उक्त अभिकथनों में सिविल विवाद का स्वर है और यह निजी प्रकृति का है और कि पक्षों ने अपने विवाद का समाधान कर लिया है और तद्द्वारा सुलह याचिका दाखिल की गयी है और इसलिए, **निखिल मर्चेन्ट बनाम केंद्रीय जाँच ब्यूरो एवं एक अन्य (उपर)** और **मदन मोहन एबट बनाम पंजाब राज्य (उपर)** के मामलों में दिए गए निर्णयों की दृष्टि में अपराधों को संज्ञान लेने वाले दिनांक 13.8.2012 के आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

6. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o ç'kkUr dekj] U;k;efrx.k

सुनील ओराँव एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (DB) No. 648 of 2012. Decided on 1st October, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 389 (1)—दंडादेश का निलंबन–अपहरण और हत्या के लिए दोषसिद्धि–अपीलार्थीगण ने सूचक के पति का अपहरण किया जिसकी बाद में हत्या कर दी गयी थी–अभियोजन साक्षियों के अभिसाक्ष्य अपीलार्थीगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला गठित करते हैं–उस अपराध की गंभीरता, दंड की मात्रा और तरीका जिसमें अपीलार्थीगण अंतर्ग्रस्त है, की दृष्टि में न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश निलंबित करने का इच्छुक नहीं है–अपील खारिज। (पैराएँ 3 से 5)

अधिवक्तागण.–

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–वर्तमान अपील दिनांक 13 अगस्त, 2012 के आदेश के तहत ग्रहण की गयी है। एस॰ टी॰ सं॰ 5 वर्ष 2007 के साथ सत्र विचारण केस सं॰ 187 वर्ष 2006 के अभिलेखों और कार्यवाहियों को विचारण न्यायालय से मंगाया गया था ताकि अपीलार्थीगण के दंडादेश के निलंबन के तर्कों का अधिमूल्यन किया जा सके।

2. विचारण न्यायालय के अभिलेखों और कार्यवाहियों को प्राप्त किया गया है।

3. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य को देखने पर अपीलार्थीगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला पता चलता है। चूँकि दांडिक अपील लंबित है, हम अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का अधिक विश्लेषण नहीं कर रहे हैं किंतु इतना कहना पर्याप्त है कि अभियोजन गवाहों विशेषत: अ॰ सा॰ 1, अ॰ सा॰ 2, अ॰ सा॰ 3 और अ॰ सा॰ 4 के अभिसाक्ष्यों को देखते हुए अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला है। इन गवाहों के अभिसाक्ष्यों ने अ॰ सा॰ 15 डॉ॰ एन॰ के॰ सिन्हा द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य और अ॰ सा॰ 14 अन्वेषण अधिकारी के अभिसाक्ष्य से पर्याप्त संपुष्टि पाया है। इस प्रकार, पूर्वोक्त अभियोजन गवाहों के इन साक्ष्यों को देखते हुए अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला है।

4. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने अ॰ सा॰ 1, अ॰ सा॰ 2, अ॰ सा॰ 3 और अ॰ सा॰ 4 के अभिसाक्ष्यों के बारे में विस्तारपूर्वक तर्क किया है और इंगित किया है कि वे विश्वसनीय गवाह नहीं हैं। इस चरण पर, हम अ॰ सा॰ 1, अ॰ सा॰ 2, अ॰ सा॰ 3 और अ॰ सा॰ 4 द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्यों के विवरण में नहीं जा रहे हैं क्योंकि दांडिक अपील लंबित है, किंतु इतना कहना पर्याप्त है कि ये अभिसाक्ष्य अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला गठित करते हैं क्योंकि उन्होंने सूचक के पति का अपहरण किया था जिसकी हत्या बाद में कर दी गयी है।

5. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों, अपराध की गंभीरता, दंड की मात्रा और तरीका जिसमें अपीलार्थीगण अपराध में अंतर्ग्रस्त हैं, जैसा अभियोजन गवाहों द्वारा अभिकथित किया गया है, की दृष्टि में हम विचारण न्यायालय द्वारा इन अपीलार्थीगण को अधिनिर्णीत दंडादेश को निलंबित करने के इच्छुक नहीं हैं। इस प्रकार, दंडादेश के निलंबन की प्रार्थना में कोई सार नहीं है। तद्नुसार, इसे अस्वीकार किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

बर्नबास तिर्के

cuke

झारखंड राज्य

Cr.M.P. No. 557 of 2012. Decided on 1st October, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 70, 82 एवं 482—स्थायी गिरफ्तारी वारन्ट जारी किया जाना–किसी समन को तामील किए बिना पहला जमानती गिरफ्तारी वारंट और तब गैर जमानती वारंट जारी किया गया था और आगे गिरफ्तारी वारंट के निष्पादन से संबंधित रिपोर्ट के बिना याची को फरार घोषित किए जाने के बाद याची के विरुद्ध स्थायी गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया था–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Arun Kumar, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

आदेश

यह आवेदन दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 263 वर्ष 2011 में पारित दिनांक 6.1.2012 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसे दिनांक 17.6.2004 के आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा और जिसके अधीन पुनरीक्षण आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित होने के कारण खारिज कर दिया गया था।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची को कोई जानकारी नहीं थी कि उसके विरुद्ध कोई मामला दर्ज किया गया है। किंतु, आरोप–पत्र की प्रस्तुति पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 279 और 337 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था और तब याची के विरुद्ध समन जारी करने का आदेश दिया गया था। किसी समन को तामील किए बिना पहले याची के विरुद्ध जमानती गिरफ्तारी वारन्ट जारी किया गया था और तब गैर–जमानती वारन्ट जारी किया गया था। तत्पश्चात, गिरफ्तारी वारंट के निष्पादन के संबंध में किसी रिपोर्ट के बिना दिनांक 17.6.2004 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया था जिसके द्वारा और जिसके अधीन याची को फरार घोषित किए जाने के बाद याची के विरुद्ध स्थायी गिरफ्तारी वारंट होने के कारण अपास्त किए जाने योग्य है।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि दिनांक 17.6.2004 के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण आवेदन दाखिल किया गया था किंतु अवर न्यायालय ने उक्त कथित तथ्यों को ध्यान में लिए बिना यह अभिनिर्धारित करने के बाद कि आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित है, पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया था और इस प्रकार, वह आदेश अवैधता से पीड़ित है।

4. पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और इस आवेदन के साथ संलग्न ऑर्डर शीट सहित अभिलेख के परिशीलन पर यह प्रतीत होता है कि कोई समन तामील किए बिना पहले जमानती गिरफ्तारी वारंट और तब गैर जमानती वारंट जारी किया गया था और आगे गिरफ्तारी वारन्ट के निष्पादन के संबंध में किसी रिपोर्ट के बिना दिनांक 17.6.2004 का आदेश पारित किया गया है जिसके द्वारा याची को फरार घोषित करने के बाद याची के विरुद्ध स्थायी गिरफ्तारी वारंट जारी किया गया था।

5. इस प्रकार, समस्त आदेशों, जिनके अधीन जमानती गिरफ्तारी वारन्ट, गैर जमानती गिरफ्तारी वारन्ट जारी किया गया था और दिनांक 17.6.2004 का आदेश भी, विधि में दोषपूर्ण होने के कारण एतद् द्वारा अभिखंडित किए जाते हैं।

6. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

7. किंतु, याची को आज के दिन से तीन सप्ताह के भीतर अवर न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने का आदेश दिया जाता है जिसमें विफल रहने पर अवर न्यायालय को याची की गिरफ्तारी के लिए समस्त उपायों को करने की स्वतंत्रता होगी।

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o ç'kkUr dekj] U;k;efrx.k

चंगो बोद्रा एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (D.B.) No. 953 of 2003. Decided on 20th September, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 80 वर्ष 2002 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, (एफ॰ टी॰ सी॰ II), चाईबासा द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 21 जून, 2003 और दिनांक 23 जून, 2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/149—डायन प्रथा निवारण अधिनियम–धाराएँ 3/4/5—हत्या–दोषसिद्धि–अभिकथित जादू-टोना–बाल गवाहों ने घटना का विभिन्न विवरण दिया है–विभिन्न अभियोजन गवाहों द्वारा विभिन्न विवरण दिया गया–अभियोजन गवाहों के अभिसाक्ष्य विसंगतियों से पीड़ित हैं–चश्मदीद गवाह होने का दावा करने वाले व्यक्ति पर उपहति नहीं है–अभियोजन साक्षीगण विश्वसनीय गवाह नहीं हैं–अभियोजन अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप सिद्ध नहीं कर सका था–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त। (पैराएँ 14 से 19)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajesh Kumar, For the Appellant; Mr. D.K. Chakraborty, For the State.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति.–वर्तमान अपील मूल अभियुक्त–अपीलार्थीगण द्वारा बंदगाँव पी॰ एस॰ केस सं॰ 36 वर्ष 2001 से उद्भूत होने वाले सत्र विचारण सं॰ 80 वर्ष 2002 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश (एफ॰ टी॰ सी॰ II), चाईबासा द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 21 जून, 2003 और दिनांक 23 जून, 2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन समस्त अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 148/302/149 के अधीन अपराध के लिए तथा डायन प्रथा निवारण अधिनियम की धारा 3/4/5 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और उनमें से प्रत्येक को भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन अपराध के लिए तीन वर्षों का कठोर कारावास, धारा 302/149 के अधीन अपराध के लिए आजीवन कठोर कारावास और डायन प्रथा निवारण अधिनियम की धाराओं 3/4/5 के अधीन अपराध के लिए तीन माह की अवधि का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। किंतु समस्त दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश दिया गया है।

2. अभियोजन मामले के सामने आने वाले तथ्य निम्नलिखित हैं:–

अ॰ सा॰ 2 राम मुंडा सूचक है और उसके बयान के आधार पर पश्चिम सिंहभूम जिला के अंतर्गत बंदगाँव पुलिस थाना में मामला दर्ज किया गया था। उसके बयान के मुताबिक, घटना दिनांक 27 अक्टूबर, 2001 को रात्रि लगभग 11 बजे हुई थी और प्राथमिकी दिनांक 28 अक्टूबर, 2001 को दोपहर 3.30 बजे दर्ज की गयी थी। अभियोजन द्वारा अभिकथित किया गया है कि मत्रु बोद्रा उर्फ मुतारी बोद्रा (मूल अभियुक्त सं॰ 4 अपीलार्थी सं॰ 4) की पत्नी को देहांत घटना की तिथि से आखिरी माह में हो गया था और मत्रु बोद्रा उर्फ मुतारी बोद्रा इस धारणा के अधीन था कि सूचक की पत्नी, जो ''डायन'' है, के कारण उसकी पत्नी की मृत्यु हो गयी है। अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 27 अक्टूबर, 2001 को सायं लगभग 7 बजे अपीलार्थीगण-अभियुक्तगण घातक हथियारों से लैस होकर सूचक के घर आए और अभियुक्त दांगो बोद्रा ने सूचक की हत्या करने के आशय से अपने देशी पिस्तौल से गोली चलायी जिस

पर उसने अपनी दायीं हड्डी में उपहति पाया और खून बहने लगा। सूचक तुरन्त अपने घर के अंदर चला गया और दरवाजा बंद कर लिया ताकि वह अपना जीवन बचा सके। तब समस्त हमलावरों–अभियुक्तगण ने स्वयं को निकट के स्थान में छुपा लिया और रात्रि लगभग 11 बजे वे सूचक के घर आए, दरवाजा तोड़ दिया और सूचक एवं उसकी पत्नी को खोजने लगे। इस बीच, सूचक (मृतक) की माता सूचक और उसकी पत्नी को बचाने दरवाजा पर आयी जिस पर हमलावर उसकी माता अर्थात् लिपि मुंडारिन पर टांगी से प्रहार करने लगे। उपहतियाँ पाने पर सूचक की माता आंगन में दरवाजा के सामने गिर गयी। सूचक की माता (लिपि मुंडारिन) पर कारित उपहतियों की परिणति उसकी मृत्यु में हुई, तत्पश्चात्, समस्त अभियुक्तगण भाग गए। घटना रात्रि लगभग 11 बजे हुई थी। तत्पश्चात, सूचक अपने ससुराल चला गया और अगले दिन दोपहर लगभग 3.30 बजे बंदगाँव पुलिस थाना को घटना की सूचना दी। उसके अनुसरण में, प्राथमिकी दर्ज की गयी थी।

3. प्राथमिकी दर्ज किए जाने के बाद, अन्वेषण किया गया था और अन्वेषण पूरा करने के बाद दिनांक 12 जनवरी, 2002 को पुलिस द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147/148/302/149/307 के अधीन, आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन और डायन प्रथा निवारण अधिनियम की धाराओं 3/4/5 के अधीन अपराध के लिए समस्त अपीलार्थीगण–अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप–पत्र दाखिल किया गया था।

4. तत्पश्चात् मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया था जिसे सत्र विचारण सं॰ 80 वर्ष 2002 के रूप में दर्ज किया गया था और विचारण आरंभ किया गया था। विचारण न्यायालय अर्थात् अपर सत्र न्यायाधीश (एफ॰ टी॰ सी॰ II), चाईबासा ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का अधिमूल्यन करने के बाद समस्त अपीलार्थीगण–अभियुक्तगण को मुख्यत: भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सह–पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उनको आजीवन कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया।

5. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि अभियोजन मामला पूरी तरह से मनगढ़ंत मामला है और अपराधों को युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध नहीं किया गया है, क्योंकि इसमें मुख्य लोप एवं विरोधाभास हैं जिनका विचारण न्यायालय द्वारा समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है और इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का आपेक्षित निर्णय और दंडादेश दोनों अपास्त और अभिखंडित किए जाने योग्य है।

6. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि अपने प्रति परीक्षण में अ॰ सा॰ 2 अर्थात राम मुंडा, जो इस मामले का सूचक है, ने कथन किया है कि उसने पूरी घटना को कभी नहीं देखा है बल्कि सूचना पाने पर उसे प्रहार के बारे में पता चला। इसके अलावा, घटनास्थल पर रोशनी नहीं थी। अभियोजन मामला के मुताबिक, पूरी घटना आंगन में हुई थी अर्थात् घर के बाहर। आगे निवेदन किया गया है कि तथाकथित चश्मदीद गवाह, जो अ॰ सा॰ 2 है और जो स्वयं का घायल गवाह होने का दावा कर रहा है, ने अपने प्रति परीक्षण में कथन किया है कि वह घर में था और अन्य व्यक्तियों से सूचना एकत्रित करने पर उसे प्रहार के बारे में जानकारी हुई और इसके अतिरिक्त अ॰ सा॰ 2 को कारित उपहति से संबंधित उपहति प्रमाण पत्र अभियोजन द्वारा कभी प्रस्तुत नहीं किया गया है। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 2 विश्वसनीय गवाह नहीं है और उसकी तथाकथित उपहति सिद्ध नहीं की गयी है।

7. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे कथन किया गया है कि अ॰ सा॰ 3, जो अ॰ सा॰ 2 की पत्नी बिरसी बोद्रा है, ने अपने अभिसाक्ष्य में कथन किया है कि वह भी घर में थी और घर के बाहर प्रकाश नहीं था। उसने आगे कथन किया है कि घर के बाहर कई बड़े पेंड़ हैं। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि अपीलार्थीगण में से एक द्वारा गोली चलाए जाने का अभिकथन है, किंतु किसी के उपर अर्थात् न तो अ॰ सा॰ 2 और न ही मृतक के उपर, आग्नेयास्त्र उपहति नहीं है। अपने प्रति परीक्षण में, इस गवाह (अ॰ सा॰ 3) ने यह कथन भी किया है कि गाँव वालों द्वारा उसे घटना के बारे में सूचित किया गया था। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 3 भी चश्मदीद गवाह नहीं है और इसलिए, विश्वसनीय गवाह नहीं है।

8. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे आग्रह किया गया है कि अ॰ सा॰ 6 अर्थात् शिव शंकर बोद्रा अपना बयान देने की तिथि पर नौ वर्षीय बालक था और घटना की तिथि पर और भी कम उम्र का था। वह बाल गवाह और मृतक का पोता है। यह बाल गवाह सपक्षी गवाह है। इस बाल गवाह ने अपने प्रतिपरीक्षण में कथन किया है कि घटना सूर्यास्त के पहले शाम में हुई थी। इस गवाह ने कथन किया है कि संपूर्ण घटना घर में हुई थी जबकि अन्य गवाह कह रहे हैं कि घटना घर के बाहर और रात्रि के दौरान लगभग 11 बजे हुई थी। अत: यह गवाह भी विश्वसनीय गवाह नहीं है।

9. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया है कि अ॰ सा॰ 7 अर्थात् लिपि मुंडारिन सूचक (अ॰ सा॰ 2) की अवयस्क पुत्री है। इस गवाह के अभिसाक्ष्य के मुताबिक, उसके घर से सड़क 20 फीट दूर है। उसने कथन किया है कि प्रकाश था, इसलिए, उसने पूरी घटना को देखा है। यह गवाह हत्या के समय को बदल रही है। इसके अतिरिक्त, इस गवाह ने कथन किया है कि पहले घटना दिन के 2 बजे हुई थी। उसके द्वारा दिया गया समय भी सूचक द्वारा दिए गए समय से मेल नहीं खाता है। इस प्रकार, अभियोजन गवाहों के विवरण भिन्न-भिन्न हैं।

10. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि अ॰ सा॰ 2 ने कथन किया है कि संपूर्ण घटना घर में हुई थी और दो उपहतियाँ डैंगो बोद्रा द्वारा कारित की गयी थी जो मूल अभियुक्त सं॰ 5/अपीलार्थी सं॰ 5 है। आरंभ में उसने तेज धार वाले हथियार से उपहति कारित किया और, तत्पश्चात, इसी अभियुक्त द्वारा सूचक पर आग्नेयास्त्र उपहति भी कारित की गयी है। इस प्रकार, अभियोजन गवाहों के अभिसाक्ष्य में लोप और विरोधाभास हैं। वस्तुत:, वे घटना के चश्मदीद गवाह नहीं हैं। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि गवाहों ने अभिसाक्ष्य दिया है कि घटना रात में हुई है। सूचक की माता का मृत शरीर सड़क पर पड़ा था और वे अगले दिन सुबह तक घर में सो रहे थे और अगले दिन दोपहर 3.30 बजे पुलिस थाना में पुलिस को सूचित किया है। अभियोजन का यह आचरण स्वाभाविक नहीं है और इसलिए भी वे अविश्वसनीय गवाह हैं। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि पूर्वोक्त की दृष्टि में, दोष-सिद्धि का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है।

11. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने जोरदार निवेदन किया कि अभियोजन ने कुल मिलाकर 10 अभियोजन गवाहों का परीक्षण किया है जिसमें से चार चश्मदीद गवाह हैं जो अ॰ सा॰ 2, 3, 6 और 7 हैं। उन्होंने विस्तारपूर्वक घटना का विवरण दिया है। प्रारंभ में, प्रहार किया गया था तथा आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया गया था। अ॰ सा॰ 2 सूचक द्वारा आग्नेयास्त्र से उपहति प्राप्त की गयी थी।

तत्पश्चात्, अभियुक्तगण घर के अंदर रात्रि लगभग 11 बजे गए और अ॰ सा॰ 2 के घर का दरवाजा तोड़ दिया और वे अ॰ सा॰ 2 की पत्नी को खोज रहे थे। विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि समस्त अपीलार्थीगण तत्पश्चात सूचक के घर आए और दरवाजा तोड़ दिया और वे सूचक (अ॰ सा॰ 2) की पत्नी अ॰ सा॰ 3 को खोज रहे थे क्योंकि वह हमलावरों के मुताबिक ''डायन'' थी। इस बीच, सूचक (अ॰ सा॰ 2) की माता अपने परिवार के सदस्यों को बचाने बाहर आयी और उस पर प्रहार कारित किया गया था, जिसके परिणामस्वरुप उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार, अभियोजन गवाहों के बयानों में कोई विरोधाभास नहीं है। इसके अतिरिक्त, चिकित्सीय साक्ष्य भी अभियोजन गवाहों द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्यों से मेल खा रहा है और इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण को दोषसिद्ध करने में गलती नहीं की गयी है और, इसलिए, यह दांडिक अपील खारिज किए जाने योग्य है।

12. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का परिशीलन करते हुए प्रतीत होता है कि घटना दिनांक 27 अक्टूबर, 2001 को हुई थी। आरंभ में, सायं 7 बजे सूचक पर आग्नेयास्त्र द्वारा प्रहार कारित किया गया था जिसने आग्नेयास्त्र उपहतियों को प्राप्त किया और, तत्पश्चात्, पीड़ित (सूचक) घर के अंदर गया और हमलावर जो सूचक के घर के निकट छुपे हुए थे सूचक के घर आए और सूचक (अ॰ सा॰ 2) की पत्नी को खोजने लगे जो अभियुक्तगण 1 के मुताबिक ''डायन'' थी। जब सूचक की माता ने मध्यक्षेप किया, उस पर प्रहार किया गया था और उसकी हत्या कर दी गयी थी।

13. प्राथमिकी को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि इसे सूचक (अ॰ सा॰ 2) जो मृतका का पुत्र राम मुंडा है, द्वारा दिनांक 28 अक्टूबर, 2001 को दोपहर लगभग 3.30 बजे दर्ज किया गया था। प्राथमिकी को प्रदर्श 2 के रूप में चिन्हित किया गया है। प्राथमिकी के मुताबिक, मूल अभियुक्त सं॰ 5 दांगो बोद्रा ने मृतक पर उपहति कारित किया है जिसकी परिणति उसकी मृत्यु में हुई।

14. अ॰ सा॰ 2 द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य से, यह प्रतीत होता है कि उसने कथन किया है कि संपूर्ण घटना दिनांक 27.1.2001 को सायं काल के दौरान हुई और उसने यह कथन भी किया है कि समस्त अभियुक्तगण सूचक के घर आए थे और उसकी माता तथा उस पर भी उपहति कारित किया था। उसने दो भिन्न घटनाओं को नहीं बताया है; एक जो सायंकाल में हुई और दूसरी जो रात्रि लगभग 11 बजे हुई। उसके प्रति परीक्षण को देखते हुए, उसने कथन किया है कि उसने घटना नहीं देखा है बल्कि अन्य ने उसको घटना के बारे में सूचित किया है।

15. इसके अतिरिक्त, मृत शरीर दिनांक 28 अक्टूबर, 2001 को सायं लगभग 4 बजे बरामद किया गया था। अ॰ सा॰ 2 के मुताबिक, उसकी माता की हत्या दिनांक 27 अक्टूबर, 2001 को रात्रि लगभग 11 बजे हुई थी। पूरी रात और अगले दिन सायं 4 बजे तक इस अ॰ सा॰ 2 द्वारा मृत शरीर की देखभाल की गयी थी। इस गवाह के प्रति परीक्षण को देखते हुए इस न्यायालय को प्रतीत होता है कि वह विश्वसनीय गवाह नहीं है। आगे, उसने विवरण दिया है कि उसने आग्नेयास्त्र उपहति प्राप्त किया था जो अपीलार्थी द्वारा कारित किया गया था किंतु अ॰ सा॰ 4, जो डॉ॰ सुधीर कुमार है, द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य को देखते हुए, अ॰ सा॰ 2 (सूचक) द्वारा आग्नेयास्त्र उपहति प्राप्त नहीं की गयी है। इस प्रकार, वह विश्वसनीय गवाह नहीं है।

16. हमने अ॰ सा॰ 2 की पत्नी अ॰ सा॰ 3 बिरसी बोद्रा के अभिसाक्ष्य का भी परिशीलन किया है। उसके अभिसाक्ष्य को देखते हुए, उसने कथन किया है कि हमलावर उसके घर आए और उसकी सास पर प्रहार किया। उसने विवरण नहीं दिया है कि आरंभ में हमलावर आए और उसके पति पर प्रहार किया

और वे पुन: आए और उसकी सास पर प्रहार किया। घटना के बारे में उसका विवरण बिल्कुल भिन्न है। इसके अतिरिक्त, इस गवाह ने कथन किया है कि मृतका को केवल दो उपहतियाँ कारित की गयी थी किंतु अ॰ सा॰ 1 डॉ॰ उपेन्द्र प्रसाद द्वारा दिए गए चिकित्सीय साक्ष्य को देखते हुए, यह विवरण अ॰ सा॰ 3 द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य से मेल नहीं खाता है। अपने प्रति परीक्षण में, इस गवाह (अ॰ सा॰ 3) ने कथन किया है कि वह घर में थी; रोशनी नहीं थी और घर के इर्द गिर्द बड़े-बड़े पेंड़ थे। उसने यह विवरण भी दिया है कि उसको घटना के बारे में गाँववालों द्वारा सूचित किया गया था। इस प्रकार, घटनास्थल पर रोशनी नहीं थी। इसके अतिरिक्त, वह घर में थी और उसे गाँववालों द्वारा सूचित किया गया था और इसलिए वह घटना की चश्मदीद गवाह नहीं है। आगे, पूरी घटना के बारे में उसके विवरण को देखते हुए प्रतीत होता है कि वह विश्वसनीय गवाह नहीं है।

17. इसी प्रकार, सूचक के पुत्र अ॰ सा॰ 6 द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि जब उसका परीक्षण किया गया था, वह नौ वर्ष की आयु का था। अ॰ सा॰ 7 सूचक की पुत्री है जो की अवयस्क है। इन दोनों ने घटना का बिल्कुल भिन्न विवरण दिया है। अ॰ सा॰ 6 के मुताबिक घटना सायंकाल के दौरान सूर्यास्त के पहले हुई है जबकि अ॰ सा॰ 2 और अ॰ सा॰ 3 द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य के मुताबिक हत्या की घटना रात्रिकाल के दौरान लगभग 11 बजे हुई थी। इसी प्रकार से अ॰ सा॰ 7 ने भी विवरण दिया है कि घटना सायंकाल के दौरान हुई है। इस प्रकार, विभिन्न अभियोजन गवाहों द्वारा भिन्न-भिन्न विवरण दिए गए हैं। अ॰ सा॰ 7 ने अपने प्रति परीक्षण के दौरान कथन किया है कि घटना स्थल पर प्रकाश नहीं था। इस गवाह (अ॰ सा॰ 7) ने कथन किया है कि अभियुक्त सुखराम कंदिर (अपीलार्थी सं॰ 7) अपने हाथ में पिस्तौल लिए था जबकि सूचक कहता है कि अभियुक्त दांगो बोद्रा (अपीलार्थी सं॰ 5) अपने हाथ में पिस्तौल लिए था। इस प्रकार, अभियोजन गवाहों के अभिसाक्ष्यों में बहुत अंतर हैं।

18. इस प्रकार, अभियोजन गवाहों के संपूर्ण साक्ष्यों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि वे विशेषत: अ॰ सा॰ 2, 3, 6 और 7 विश्वसनीय गवाह नहीं हैं और उनके अभिसाक्ष्य विश्वास उत्पन्न नहीं करते हैं। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 2, जो चश्मदीद गवाह होने का दावा कर रहा है, पर आग्नेयास्त्र द्वारा कोई उपहति नहीं है। इस प्रकार, संपूर्ण घटना का विवरण अभिलेख पर उपलब्ध अन्य गवाहों के अभिसाक्ष्य के साथ मेल नहीं खाता है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इन पहलूओं का समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, इन गवाहों का व्यवहार इस तथ्य की दृष्टि में मजबूत होता है कि सूचक की माता का मृत शरीर दिनांक 27 अक्टूबर, 2001 को रात्रि 11 बजे से सड़क पर पड़ा हुआ था और सूचना दिनांक 28 अक्टूबर, 2001 को दोपहर लगभग 3.30 बजे पुलिस थाना में दी गयी थी और मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट के मुताबिक मृत शरीर सायं 4 बजे सूचक के घर के बाहर से बरामद किया गया था। इस प्रकार, अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण साक्ष्य को देखते हुए प्रतीत होता है कि अभियोजन मामले के तथाकथित चश्मदीद गवाह वस्तुत: चश्मदीद गवाह नहीं हैं और उनके अभिसाक्ष्यों में मुख्य विरोधाभास हैं।

19. पूर्वोक्त तथ्यों की दृष्टि में, अभियोजन अपीलार्थीगण-अभियुक्तगण के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध करने में विफल रहा है और इसलिए हम बंदगाँव पी॰ एस॰ केस सं॰ 36 वर्ष 2001 से उद्भूत सत्र विचारण सं॰ 80 वर्ष 2002 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश (एफ॰ टी॰ सी॰ II), चाईबासा द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 21 जून, 2003 और दिनांक 23 जून, 2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को एतद् द्वारा अभिखंडित और अपास्त करते हैं जिसके द्वारा समस्त अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 148/302/149 के अधीन और डायन प्रथा निवारण

अधिनियम की धाराओं 3/4/5 के अधीन भी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और उनमें से प्रत्येक को भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन तीन वर्षों का कठोर कारावास, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302/149 के अधीन आजीवन कठोर कारावास और डायन प्रथा निवारण अधिनियम की धाराओं 3/4/5 के अधीन अपराध के लिए तीन माह की अवधि का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। इसके परिणामस्वरुप, समस्त अपीलार्थीगण (सिवाए अपीलार्थी सं॰ 5 अर्थात् दांगो बोद्रा के सिवाए), जिन्हें पहले ही इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 15 सितंबर, 2003 के आदेश के तहत जमानत पर निर्मुक्त किया गया है, को उनके परस्पर जमानत बंधपत्रों के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है। जहाँ तक अपीलार्थी सं॰ 5 अर्थात् दांगो बोद्रा (मूल अभियुक्त सं॰ 5) का संबंध है, उसे तुरन्त न्यायिक अभिरक्षा से निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

---

ekuuh; ,p0 lh0 feJk] U;k;efr

पंचम सिंह

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 312 of 2004. Decided on 9th October, 2012.

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 379—खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957—धारा 21—पत्थरों और मॉरम का अवैध खनन–उन्मोचन आवेदन की अस्वीकृति–मामले का विचारण अभी भी समाप्त किया जाना बाकी है और यद्यपि पुलिस द्वारा कंपनी के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया है, विचारण न्यायालय अभी भी दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग कर सकता है और कंपनी के विरुद्ध भी अग्रसर हो सकता है–केवल इस आधार पर कि पुलिस द्वारा कंपनी के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया है, इस चरण पर याची को उन्मोचित नहीं किया जा सकता है। (पैरा 14)

(ख) खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957—धारा 21—भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 379—पत्थरों एवं मॉरम का अवैध खनन–उन्मोचन आवेदन की अस्वीकृति–पुलिस के समक्ष दाखिल प्राथमिकी दंडाधिकारी को किया गया परिवाद नहीं हो सकती है–दंडाधिकारी के समक्ष किए गए परिवाद के सिवाए इस अधिनियम अथवा इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान लेने के लिए एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम के अधीन स्पष्ट वर्जना है–याची का अभियोजन, जिसे पुलिस के समक्ष दर्ज प्राथमिकी के आधार पर संस्थापित किया गया है, जारी नहीं रखा जा सकता है और याची के विरुद्ध दांडिक अभियोजन अभिखंडित करने के लिए यह सुयोग्य मामला है–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 17 से 20)

निर्णयज विधि.–2009(3) JCR 261 (Jhr); (2009) 7 SCC 526—Applied.

अधिवक्तागण.–M/s. Indrajit Sinha, For the Petitioner; M/s.Md. Hatim, For the State.

आदेश

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.–याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची कोलबीरा पी॰ एस॰ केस सं॰ 43 वर्ष 1999 से उद्भूत होने वाले जी॰ आर॰ सं॰ 284 वर्ष 1999 में विद्वान सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, सिमडेगा द्वारा पारित दिनांक 14.4.2004/ 15.4.2004 के आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा उन्मोचन के लिए याची द्वारा दाखिल आवेदन अवर न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है।

3. याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन अपराध के लिए तथा खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 (इसमें इसके पश्चात् ''एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम'' के तौर पर निर्दिष्ट) की धारा 21 के अधीन जी॰ आर॰ सं॰ 284 वर्ष 1999 के तत्सम कोलेबीरा पी॰ एस॰ केस सं॰ 43 वर्ष 1999 में अभियुक्त बनाया गया है।

4. सहायक खनन अधिकारी, गुमला द्वारा दी गयी लिखित सूचना के आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गयी थी जिसमें उसने अभिकथित किया कि अवैध रूप से खनन किए गए पत्थरों और मोरम का उपयोग पथ निर्माण में किया गया था और घटनास्थल पर गिरफ्तार किए गए सह-अभियुक्त ने सूचित किया कि पथ का निर्माण ठेकेदार मेसर्स विजेता कंस्ट्रक्शन लि॰, मोराबादी, राँची द्वारा किया जा रहा था और पथ पर बिछाने के लिए पत्थरों और मोरम को ढोने के लिए ट्रैक्टर के 200 ट्रिप लगाए गए थे। सहायक खनन अधिकारी, गुमला द्वारा दी गयी लिखित सूचना के आधार पर गिरफ्तार किए गए अभियुक्त कमल कांत और ठेकेदार मेसर्स विजेता कंस्ट्रक्शन लि॰ के विरुद्ध पुलिस मामला संस्थापित किया गया था। याची उक्त मेसर्स विजेता कंस्ट्रक्शन लि॰ का अध्यक्ष है।

5. अवर न्यायालय अभिलेख से प्रतीत होता है कि अन्वेषण के बाद पुलिस ने इस मामले में मेसर्स विजेता कंस्ट्रक्शन लि॰ का स्वामी होने के नाते याची सहित उसमें नामित अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 379 और एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम की धारा 21 के अधीन आरोप के लिए आरोप-पत्र दाखिल किया। किंतु मेसर्स विजेता कंस्ट्रक्शन लि॰ के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया है।

6. याची ने अवर न्यायालय में उन्मोचन के लिए अपना आवेदन दाखिल किया और अन्य बातों के साथ कथन किया कि अंतिम बिल से याची की कंपनी से 8,96,570/- रुपयों की रॉयल्टी और 9,430/- रुपयों की पेनाल्टी वसूल की गयी थी, और तद्नुसार, यह कंपनी द्वारा किए गए अपराध के शमन के तुल्य है और इस प्रकार, याची के विरुद्ध कोई अपराध बनता नहीं कहा जा सकता है। किंतु, अवर न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर याची के विरुद्ध अपराध बनाया गया था, याची द्वारा दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था। आक्षेपित आदेश में यह कथन भी किया गया है कि याची ने पहले उच्च न्यायालय में याची के विरुद्ध संज्ञान लेने वाले आदेश सहित संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दांडिक विविध याचिका सं॰ 994 वर्ष 2003 दाखिल किया था और उक्त दांडिक विविध याचिका में पारित दिनांक 26.9.2003 का आदेश दर्शाता था कि उच्च न्यायालय हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं था।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि वर्तमान आवेदन दिनांक 14.4.2004/ 15.4.2004 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है, जिसके द्वारा अवर न्यायालय द्वारा उन्मोचन आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था। दांडिक विविध याचिका सं॰ 994 वर्ष 2003 में पारित दिनांक 26.9.2003 का आदेश अवर न्यायालय अभिलेख में उपलब्ध है, जो दर्शाएगा कि समुचित चरण पर विद्वान अवर न्यायालय के समक्ष समस्त बिंदुओं को उठाने की स्वतंत्रता के साथ उक्त आवेदन को वापस लेने की अनुमति दी गयी थी। याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया है कि संबंधित पथ के निर्माण के लिए राज्य सरकार द्वारा याची की कंपनी को संविदा प्रदान की गयी थी जिसमें पत्थरों

और मोरम का उपयोग किया गया था। निवेदन किया गया है कि दांडिक दायित्व से बचने के लिए याची ने पहले ही पेनाल्टी जमा कर दिया था जिसे राज्य सरकार द्वारा प्राप्त कर लिया गया है और तद्नुसार, याची के विरुद्ध कोई अपराध बनता हुआ नहीं कहा जा सकता है, जब एक बार याची से राज्य सरकार द्वारा रॉयल्टी और पेनाल्टी प्राप्त कर लिया गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि इस तथ्य की दृष्टि में कि एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम और उसके अधीन विरचित नियमावली के अधीन मोरम और पत्थरों, जो लघु खनिज हैं, के खनन के लिए विशेष प्रावधान है, भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन अपराध बनता हुआ नहीं कहा जा सकता है।

8. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि यह स्वीकृत मामला है कि अपराध, यदि किया गया है, कंपनी मेसर्स विजेता कंस्ट्रक्शन लि॰ द्वारा किया गया है जो कंपनी अधिनियम के अधीन निगमित कंपनी है, किंतु उक्त कंपनी को इस मामले में अभियुक्त नहीं बनाया गया है और तद्नुसार, याची जो कंपनी का अध्यक्ष है, को विचारण का सामना करने के लिए अभियुक्त नहीं बनाया जा सकता है। इस संबंध में याची के विद्वान अधिवक्ता ने **अनीता हादा बनाम गॉड फादर ट्रैवल्स एंड टूर्स प्रा॰ लि॰ (2012)5 SCC 661,** में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के हाल के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 के अधीन लगभग समरुप प्रावधान पर विचार कर रहा था। परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 141 की दृष्टि में अभिनिर्धारित किया गया था कि अन्य के प्रतिनिधिक दायित्व को आकृष्ट करने के लिए कंपनी द्वारा अपराध किया जाना अभिव्यक्त पुरोभाव्य शर्त है और इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब कंपनी को अभियोजित किया जा सकता है, केवल तब अन्य कोटियों में उल्लिखित व्यक्तियों को अपराध के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी माना जा सकता था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने इस निर्णय पर विश्वास करते हुए निवेदन किया है कि एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम की धारा 23 उन्हीं प्रावधानों के साथ कंपनियों द्वारा अपराध के साथ संबंधित है जैसा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 141 में है और भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि की दृष्टि में कंपनी जिसके विरुद्ध अपराध करने का प्रत्यक्ष अभिकथन है की अनुपस्थिति में याची को इस मामले में अभियुक्त नहीं बनाया जा सकता है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि केवल इस आधार पर याची के विरुद्ध संपूर्ण दांडिक अभियोजन बिल्कुल दूषित है और विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

9. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि स्वीकृत रूप से याची मेसर्स विजेता कंस्ट्रक्शन लि॰ का अध्यक्ष है, जिसको राज्य सरकार द्वारा पथ के निर्माण कार्य के लिए संविदा आवंटित की गयी थी और इसने एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन किया था और सड़क पर बिछाने के लिए ट्रैक्टर के लगभग 200 फेरों में मोरम और पत्थरों को अवैध रूप से ढोया था जिनका अवैध रूप से खनन किया गया था और तद्नुसार, भारतीय दंड संहिता की धारा 379 और एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम की धारा 21 के अधीन अपराध बनता है। विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन भी किया कि संपूर्ण कार्यवाही के अभिखंडन के लिए याची द्वारा दाखिल पहले की दांडिक विविध याचिका इस न्यायालय द्वारा पहले ही खारिज कर दी गयी थी और तद्नुसार, इस आवेदन में गुणागुण नहीं है जो खारिज किए जाने योग्य है।

10. एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम की धारा 23 कंपनियों द्वारा अपराध पर विचार करती है और इसका पठन निम्नलिखित है:–

*"23. **difu;k }kjk vijkèk.**—(1) ;fn bl vfèkfu;e vFkok bld vèkhu cuk, x, fdlh fu;e d vèkhu vijkèkdkjh 0;fDr diuh g] çR;d 0;fDr] tk*

vijkèk fd, tku d le; çHkkj e Fkk vkj diuh d 0;olk; d lpkyu d fy, diuh d çfr ftEeokj Fkk] dk vijkèk dk nk"kh le>k tk,xk vkj rnulkj og vfHk;kftr fd, vkj nfMr fd, tku dk nk;h gkxkA

*** ** ** "*

11. परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1981 की धारा 141 का पठन भी निम्नलिखित है:–

*"141. **difu;k }kjk vijkèk-**&(1) ;fn èkkjk 138 d vèkhu vijkèk dju okyk 0;fDr dkb diuh g rk ,lk iR;d 0;fDr tk ml vijkèk d fy, tku d le; ml diuh d dkjckj d lpkyu d fy, ml diuh dk Hkkj lkèkd vkj mld ifr mÙkjnk;h Fkk vkj lkFk gh og diuh d ,l vijkèk d fy, nk"kh le> tk,x vkj rnulkj viu fo:) dk;okgh fd, tku vkj nfMr fd, tku d Hkkxh gkxA*

**** *** ***"*

(tkj fn;k x;k)

12. इस प्रकार, दोनों प्रावधानों के सादे पठन पर स्पष्ट है कि ये दोनों प्रावधान बिल्कुल एक ही विषय में सम्बन्धित नहीं है। परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 141 में आने वाले शब्द ''कंपनी भी'' एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम की धारा 23 में नहीं है।

13. अनीता हादा के मामले (उपर) में सर्वोच्च न्यायालय ने शब्दों ''कंपनी भी'' पर विचार किया है और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

*"58. dBkj vFkkZo;u d fl)kr dk ykx djr g, gekjk lfopkfjr er g fd vU; d çfrfufèkd nkf;Ro dk vkÑ"V dju d fy, diuh }kjk vijkèk fd;k tkuk vfHk0;Dr ijkHkk0; 'kr gA bl çdkj] èkkjk e vku oky 'kCn ^^diuh Hkh** bl fcYdy fdlh xyrh d fcuk Li"V djr g fd tc diuh dk vfHk;kftr fd;k tkrk g] doy rc vU; dkfV;k e mfYyf[kr 0;fDr ;kfpdk e fd, x, çdFkuk vkj mld çek.k d vè;èkhu vijkèk d fy, çfrfufèkd :i l nk;h gk ldr FkA dkb bl rF; dk Hky ugh ldrk g fd diuh fofèkd 0;fDr g vkj bldh viuh çfr"Bk gA ;fn bld fo#) fu"d"k nt fd;k tkrk g] ;g mldh çfr"Bk dk èkfey djxkA ,lh fLFkfr;k gk ldrh g tc dkjikjV çfr"Bk çHkkfor gkrh g tc fun'kd dk vH;kjkfir fd;k tkrk gA** (tkj fn;k x;k)*

चूँकि शब्द **''कंपनी भी''** एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम की धारा 23 में नहीं है। यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि ये दोनों प्रावधान एक ही विषय में सम्बन्धित हैं जहाँ तक कंपनियों द्वारा किए गए अपराधों का संबंध है। इस प्रकार, **अनीता हादा के मामले (ऊपर)** में अधिकथित विधि एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम के अधीन अपराधों के मामले में प्रयोज्य नहीं है। याची के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन कि एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम की धारा 23 उन्हीं प्रावधानों के साथ, जैसा परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 में हैं, कंपनियों द्वारा किए गए अपराध के साथ संबंधित है और भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूर्वोक्तानुसार अधिकथित विधि की दृष्टि में कंपनी की अनुपस्थिति में इस मामले में याची को अभियुक्त नहीं बनाया जा सकता है, पूर्णत: भ्रामक है।

14. इसके अतिरिक्त, यह वह चरण नहीं है जब केवल इस आधार पर याची के विरुद्ध अभियोजन अभिखंडित किया जा सकता है। मामले का विचारण अभी भी समाप्त होना है और भले ही पुलिस द्वारा

कंपनी के विरुद्ध आरोप–पत्र दाखिल नहीं किया गया है, विचारण न्यायालय अभी भी द॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन शक्ति का प्रयोग कर सकता है और कंपनी के विरुद्ध अग्रसर हो सकता है यदि इसके विरुद्ध अपराध किया गया पाया जाता है। मामले के उस दृष्टिकोण में, केवल इस आधार पर कि पुलिस द्वारा कंपनी के विरुद्ध आरोप–पत्र दाखिल नहीं किया गया है, इस चरण पर याची को उन्मोचित नहीं किया जा सकता है।

15. मामले का एक अन्य पहलू भी है जिस पर मामले के तथ्यों में विचार किए जाने की आवश्यकता है। एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम विशेष प्रावधानों को अंतर्विष्ट करता है और प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम की धारा 22 ने समुचित सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा लिखित में किए गए परिवाद के सिवाए अधिनियम अथवा इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान वर्जित करता है। एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम की धारा 22 का पठन निम्नलिखित है:–

> *"22. **vijkèkk dk lKku-**&dkbZ U;k;ky; dnh; ljdkj }kjk vFkok jkT; ljdkj }kjk blls fufeÙk çkfèkÑr 0;fDr }kjk fyf[kr esa fd, x, ifjokn ds flok, bl vfèkfu;e vFkok blds vèkhu cuk, x, fdlh fu;e ds vèkhu nMuh; fdlh vijkèk dk lKku ugha yxkA**"*

16. वर्तमान मामले में याची के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गयी है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(d) के अधीन शब्द ''परिवाद'' को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया हैं:–

> *^^2.(d) ^^ifjokn** ls bl lafgrk ds vèkhu eftLVªsV }kjk dkjokbZ fd, tkus dh nf"V ls ekSf[kd ;k fyf[kr :i esa mlls fd;k x;k ;g vfHkdFku vfHkizsr gS fd fdlh 0;fDr us] pkgs og Kkr gks ;k vKkr] vijkèk fd;k gS] fdUrq blds vUrxZr iqfyl fjiksVZ ugha gSA***

17. शब्द ''परिवाद'' की परिभाषा दर्शाती है कि पुलिस के समक्ष दर्ज प्राथमिकी दंडाधिकारी को किया गया परिवाद नहीं हो सकता है। **बी॰ मुथुरमन उर्फ बालासुब्रमणियम मुथुरमन एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य, 2009 (3) JCR 261 (Jhr.)** में इस न्यायालय द्वारा इस प्रश्न पर विचार किया गया था जिसमें इस न्यायालय ने विशेष विधि और सामान्य विधि से संबंधित विधि पर चर्चा किया है और अभिनिर्धारित किया है कि विशेष विधान में अंतर्विष्ट प्रावधान निश्चय ही दंड संहिता के अधीन विहित सामान्य दंड के ऊपर अध्यारोही होंगे और दंड संहिता के प्रावधान एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम के प्रावधान अथवा उसमें बनाए गए नियम और विनियमन के उल्लंघन में खनिजों के परिवहन के मामले पर प्रयोज्य नहीं होंगे। इस निर्णय में इस न्यायालय ने इसको भी विचार में लिया है कि एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम की धारा 22 समुचित सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा लिखित में किए गए परिवाद के सिवाए अधिनियम अथवा उसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान वर्जित करती है। न्यायालय ने परिवाद की परिभाषा पर गौर किया, जैसा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(d) में दिया गया है, और अभिनिर्धारित किया कि मामले में दर्ज प्राथमिकी विधि की दृष्टि में अवैध और नास्ति हैं और तद्नुसार, प्राथमिकी अभिखंडित कर दी गयी थी।

18. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि दंडाधिकारी के समक्ष किए गए परिवाद के सिवाए इस अधिनियम अथवा इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान लेने पर एम॰ एम॰ (डी॰ आर॰) अधिनियम के अधीन स्पष्ट वर्जना है। **जीवन कुमार राउत एवं एक अन्य बनाम सी॰ बी॰ आई॰, (2009)7 SCC 526,** में विधि निम्नलिखित रूप में अधिकथित की गयी है:–

> *"26. ;g fofèk dk lfuf'pr fl)kr gS fd ;fn fo'ks"k fofèk çfØ;k vfèkdfFkr djrh gS] lkekU; lfofèk;k ds vèkhu vfèkdfFkr çfØ;k dk vuqlj.k ugha fd;k tk,xk ----------**"*

19. उक्त चर्चा की दृष्टि में याची का अभियोजन, जिसे पुलिस के समक्ष दर्ज प्राथमिकी के आधार पर संस्थापित किया गया है, जारी नहीं रखा जा सकता है और यह याची के विरुद्ध दांडिक अभियोजन अभिखंडित करने लायक सुयोग्य मामला है। मैं पाता हूँ कि इस मामले के तथ्य **जीवन कुमार राउत के मामले (उपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और **बी॰ मुथुरमन (उपर)** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय द्वारा पूर्णत: आच्छादित होते हैं।

20. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, सब डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी सिमडेगा के न्यायालय में लंबित कोलेबीरा पी॰ एस॰ केस सं॰ 43 वर्ष 1999, जी॰ आर॰ सं॰ 284 वर्ष 1999 के तत्सम, में याची के विरुद्ध संपूर्ण दांडिक अभियोजन उसमें पारित दिनांक 14.4.2004/15.4.2004 के आदेश सहित एतद्द्वारा अभिखंडित की जाती है। परिणामस्वरुप, याची को उन्मोचित किया जाता है। तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। अवर न्यायालय अभिलेख को तुरन्त वापस भेजा जाए।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

अशोक कुमार

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (Cr) No. 327 of 2010. Decided on 28th September, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 406/420/120B—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—न्यास का दांडिक भंग, छल एवं षडयंत्र–समन जारी–कर्मचारियों से वसूल की गयी कर्ज राशि बैंक खाता में डाली नहीं गयी–याची ने परिवादी अथवा अन्य कर्मचारियों को कर्ज राशि देने के संबंध में कोई भूमिका नहीं निभायी थी और न ही वह किसी तरीके से समय के पूर्वतर बिंदु पर राशि वसूल करने में सहयोगी था–उसने केवल डाकखाना के रूप में अपने कर्तव्य का पालन किया था–कटौती की गयी राशि पहले ही सहकारी सोसाइटी के खाता में डाल दी गयी थी–यह कहीं नहीं अभिकथित किया गया है कि याची ने किसी सदोष लाभ के लिए अथवा परिवाद अथवा अन्य कर्मचारियों को सदोष हानि के लिए राशि का दुर्विनियोग किया था–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 8 से 10)

निर्णयज विधि.–W.P. (Cr) No. 292 of 2009, Order dated 24.2.2010—Applied.

अधिवक्तागण.–M/s Indrajit Sinha, Sudhansu Kumar Deo, For the Petitioner; G.P.-III, For the Respondent State; M/s K. Roy, R.M. Singh, For the Respondent No.2.

आदेश

याची ने इस आवेदन में C/403 वर्ष 2008 के संबंध में विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 10.2.2009 के आदेश जिसके द्वारा याची और अन्य के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406/420/120B के अधीन संज्ञान लिया गया है और समन जारी किया गया है सहित संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है।

2. मामले के तथ्य ये हैं कि परिवादी ने सेंट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड का कर्मचारी होने के नाते उसमें यह कथन करते हुए परिवाद दाखिल किया कि कोलियरी में कार्यरत कर्मचारियों के लाभ के लिए कर्मचारी साख सहयोग समिति सौंदा डी॰ कोलियरी स्थापित किया गया था जिसका प्रोजेक्ट अधिकारी अध्यक्ष हुआ करता था। पतरातू प्रखंड का पदधारी श्री अशोक कुमार उक्त सहकारी सोसाइटी का प्रभारी

सचिव था जिसके सदस्य परिवादी, गवाह और अन्य कर्मचारी थे और उक्त सहकारी सोसाइटी के माध्यम से सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक द्वारा उनको कर्ज दिया जा रहा था। कर्मचारियों को दिए गए कर्ज की वसूली सदस्यों के मासिक वेतन/मजदूरी से की जानी थी। परिवादी का आगे मामला यह है कि उसने सहकारी सोसाइटी के माध्यम से को-ऑपरेटिव बैंक से 45,000/- रुपया कर्ज लिया और सम्यक क्रम में जनवरी, 1996 से जनवरी, 2001 तक परिवादी के मासिक वेतन से 77,160/- रुपयों की राशि वसूल की गयी थी। इसके अलावा, 45,000/- रुपयों की राशि का भुगतान किया गया था किंतु आगे दिसंबर, 2007 और जनवरी से मार्च, 2008 के लिए वेतन से राशि काटी गयी थी। अब पुनः उसे कर्ज राशि को परिनिर्धारित करने के लिए 45,000/- रुपयों की राशि का भुगतान करने के लिए कहा गया था यद्यपि उसने पहले ही 45,000/- रुपयों के कर्ज के विरुद्ध 1,22,160/- रुपयों की राशि का भुगतान कर दिया था।

3. यह कथन भी किया गया है कि अन्य सदस्यों के मामले भी समरुप हैं और इसलिए वे अभियुक्तगण के पास गए और अपनी शिकायत दर्ज किए किंतु उन्होंने इस संबंध में कुछ भी नहीं किया था बल्कि वे वेतन से राशि की कटौती पर डटे हुए थे यद्यपि परिवादी और गवाहों ने कर्ज राशि चुका दिया था। पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में अभिकथित किया गया है कि याची सहित अभियुक्तगण ने छल और दुर्विनियोग का अपराध किया है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि सौंदा डी॰ कोलियरी के मजदूरों ने सहकारी क्रेडिट सोसाइटी वर्ष 1993 में निर्मित किया था जिसका उद्देश्य हजारीबाग सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक से कर्ज लेकर अपने सदस्यों को धन देना था और कर्ज राशि कर्जदारों के मासिक वेतन/मजदूरी से वसूल की जानी थी। उक्त सहकारी सोसाइटी का प्रमुख कोलियरी का प्रोजेक्ट अधिकारी था जो सोसाइटी का अध्यक्ष था जबकि सोसाइटी का निर्वाचित सदस्य सचिव हुआ करता था।

5. आगे निवेदन किया गया है कि सौंदा डी॰ कोलियरी के प्रबंधन का सरोकार कर्ज राशि परिनिर्धारित करने के लिए संबंधित सदस्यों के मासिक वेतन/मजदूरी से राशि की कटौती करने और आगे उक्त राशि को चेकों के माध्यम से को-ऑपरेटिव क्रेडिट सोसाइटी के सचिव को प्रेषित करने से था। समयक्रम में आयुक्त, उत्तरी छोटानागपुर डिविजन, हजारीबाग ने व्यतिक्रमियों की मजदूरी से 2000/- रुपया प्रतिमाह की कटौती करने की सलाह के साथ सौंदा डी॰ कोलियरी के प्रोजेक्ट अधिकारी को व्यतिक्रमियों की सूची के साथ हजारीबाग सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक को पत्र अग्रसरित किया। उक्त पत्र पाने पर, उनको कर्ज का भुगतान करने के लिए कहते हुए नोटिस बोर्ड पर व्यतिक्रमियों की सूची प्रकाशित की गयी थी, किंतु उन्होंने इस पर ध्यान नहीं दिया था और केवल तब प्रबंधन ने राशि की कटौती करना शुरू किया जैसी सलाह दी गयी थी। इस पर, कर्ज राशि के पुनर्भुगतान के संबंध में कर्जदारों में से कुछ के द्वारा कुछ परिवाद प्राप्त किया गया था जिसे शाखा प्रबंधक, सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक, भुरकुंडा को निर्दिष्ट किया गया था। उसके संबंध में, कोलियरी के प्रबंधन को सूचित किया गया था कि परिवादी सहित व्यतिक्रमियों के विरुद्ध कतिपय राशि बकाया था।

6. आगे निवेदन किया गया है कि याची राज्य सरकार का कर्मचारी था और तब प्रखंड को-ऑपरेटिव विस्तारण अधिकारी, पतरातू, जिला हजारीबाग के रूप में कार्यरत था और दिनांक 7.11.2006 के पत्र सं॰ 1390 के तहत को-ऑपरेटिव सोसाइटीज के संयुक्त रजिस्ट्रार द्वारा उक्त सौंदा

डी॰ कोलियरी का प्रशासक नियुक्त किया गया था। वह न तो सेंट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड का कर्मचारी था और न ही उक्त को–ऑपरेटिव सोसाइटी का पदाधिकारी था। चूँकि सोसाइटी की प्रबंधन कमिटि दिनांक 1.1.2006 के प्रभाव से विघटित कर दी गयी थी, याची को प्रशासक के रूप में नियुक्त किया गया था और उसका सोसाइटी के दैनिक कार्यकलाप से कुछ लेना–देना नहीं था। आगे इंगित किया गया था कि संपूर्ण विवाद्यक तब उद्भूत हुआ जब सौंदा डी॰ कोलियरी के प्रबंधन ने आयुक्त, उत्तरी छोटानागपुर डिविजन हजारीबाग द्वारा जारी दिनांक 16.10.2005 का पत्र सं॰ 11000 प्राप्त किया जिसमें सौंदा डी॰ कोलियरी के प्रोजेक्ट अधिकारी को संबंधित व्यतिक्रमियों के मजदूरी/वेतन से 2000/- रुपया प्रतिमाह की दर पर कर्ज राशि की कटौती करने की सलाह दी गयी थी। सेंट्रल को–ऑपरेटिव बैंक, भुरकुंडा शाखा द्वारा जारी व्यतिक्रमियों की सूची की प्राप्ति पर सौंदा डी॰ कोलियरी के प्रबंधन ने पीस–रेटेड कर्मचारियों के संबंध में दिनांक 29.1.2008 के नोटिस और टाइम रेटेड कर्मचारियों के संबंध में दिनांक 5.3.2008 के नोटिस के तहत व्यतिक्रमियों की सूची प्रकाशित की। तत्पश्चात् सौंदा डी॰ कोलियरी के प्रबंधन ने संबंधित सहकारी सोसाइटी के संबंधित व्यतिक्रमी कर्मचारियों/सदस्यों से उनके मासिक वेतन/मजदूरी से 2000/- रुपया प्रतिमाह की दर पर कर्ज राशि की कटौती करना शुरु किया और इस प्रकार कटौती की गयी राशि हजारीबाग सेंट्रल को–ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, भुरकुंडा के खाता में जमा की जा रही थी। जब कटौती शुरू हुई, व्यतिक्रमी कर्मचारियों ने अपनी शिकायत की कि उन्होंने पहले ही कर्ज राशि का भुगतान कर दिया था और इसलिए आगे कटौती की आवश्यकता नहीं है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि दिनांक 30.6.2004 तक 20% की दर पर ब्याज के साथ वर्ष 1994-2001 की अवधि के लिए 1,65,80,179/- रुपयों का बकाया दर्शाते हुए प्रोजेक्ट अधिकारी, सौंदा डी॰ कोलियरी और सचिव, सहकारी सोसाइटी को प्रमाण पत्र केस सं॰ 3 वर्ष 2007 और दिनांक 2.6.2006 का प्रमाण पत्र नोटिस भी जारी किया गया था और उक्त मामला अभी भी जिला सहकारी अधिकारी–सह–प्रमाण पत्र अधिकारी, हजारीबाग के न्यायालय में लंबित है। आगे अभिलेख पर यह लाना भी आवश्यक है कि पूर्वोक्त आदेशों और कटौती से व्यथित होकर परिवादी और अन्य व्यथितों ने माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष अपने वेतन से 2000/- रुपया प्रतिमाह की कटौती करने से प्रत्यर्थीगण को अवरुद्ध करते हुए समुचित रिट/आदेश अथवा निर्देश जारी करने की प्रार्थना के साथ डब्ल्यू॰ पी॰ सं॰ 2786 वर्ष 2008 दाखिल किया था। रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2786 वर्ष 2008 की प्रति से स्पष्ट होगा कि याची को उक्त सौंदा डी॰ कोलियरी सहकारी सोसाइटी का सचिव कभी भी निर्वाचित अथवा नियुक्त नहीं किया गया था और वह रिट याचिका का पक्ष नहीं था। परिवाद में कहीं नहीं अभिकथित किया गया है कि याची ने समय के किसी बिंदु पर परिवादी अथवा अन्य व्यक्तियों के वेतन से इस प्रकार कटौती की गयी राशि का दुर्विनियोग किया था। बल्कि उसका कर्तव्य प्रशासक के रूप में सोसाइटी के दैनिक कार्यकलाप की देखरेख करना था। यह व्यथित कर्जदारों और संबंधित को–ऑपरेटिव बैंक के बीच लेखा मामला था जिसने सहकारी सोसाइटी के माध्यम से कर्ज दिया था जिसके सदस्य परिवादी और अन्य व्यथित लोग थे। याची के पक्ष में सदोष लाभ का कोई आरोप नहीं लगाया गया था। याची का मामला डब्ल्यू॰ पी॰ (दांडिक) सं॰ 292 वर्ष 2009 में इस न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों और निष्कर्षों से पूरी तरह आच्छादित होता है जिसके द्वारा उक्त परिवाद मामले से उद्भूत होने वाले संज्ञान और कार्यवाही का दिनांक 24.2.2010 के आदेश द्वारा अभिखंडित कर दिया गया है।

7. दूसरी ओर, परिवादी/प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि परिवादी और अन्य व्यथित कर्मचारियों ने पहले ही कटौती शुरू किए जाने के काफी पहले कर्ज राशि चुका दिया था। सोसाइटी के पदधारी ने न्यास का दांडिक भंग किया था, क्योंकि संग्रहित कर्ज

राशि को–ऑपरेटिव बैंक के खाता में जमा नहीं की गयी थी। यद्यपि विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि याची को वर्ष 2006 में उक्त सौंदा डी, कोलियरी का प्रशासक नियुक्त किया गया था, किंतु निवेदन करते हैं कि कटौती उसके कार्यकाल के दौरान की गयी थी और इसलिए उसे उसके दायित्व और उत्तरदायित्व से विमुक्त नहीं किया जा सकता है।

8. दोनों पक्षों को सुनने पर और मामले के अभिलेख और अन्य रिट याचिकाओं में पहले पारित आदेशों का परिशीलन करने के बाद, यह प्रतीत होता है कि परिवादी और अन्य गवाहों को सहकारी सोसाइटी का सदस्य होने के नाते उक्त सहकारी सोसाइटी के माध्यम से सेंट्रल को–ऑपरेटिव बैंक, भुरकुंडा शाखा द्वारा कर्ज दिया गया था और कर्ज राशि कर्जदारों के मासिक वेतन/मजदूरी से वसूल की जानी थी। परिवादी के अनुसार, कतिपय राशियों, जिन्हें उन्होंने सोसाइटी के पास जमा किया था, को कर्ज खाता में सम्यक रूप से जमा नहीं किया गया था। उन्होंने 45,000/- रुपया के विरुद्ध 1,22,160/- रुपयों की कुल राशि का भुगतान किया था और संपूर्ण कर्ज राशि चुका दिया गया था, किंतु तब भी उनके वेतन से कटौती की गयी थी और इस प्रकार कटौती की गयी राशि का दुर्विनियोग किया गया है।

9. मैंने परिवाद का परिशीलन किया है, किंतु मैं यह नहीं पाता हूँ कि याची ने परिवादी अथवा अन्य कर्मचारियों को कर्ज देने के संबंध में कोई भूमिका निभायी थी अथवा वह किसी तरीके से समय के पूर्वतर बिंदु पर राशि वसूल करने में सहयोगी था। उसने केवल डाकखाना के रूप में अपने कर्तव्य का पालन किया था। को–ऑपरेटिव बैंक से पत्र की प्राप्ति पर इसे सेंट्रल कोलफील्ड्स लिमिटेड के प्राधिकारियों को प्रेषित किया गया था और सी॰ सी॰ एल॰ के प्राधिकारियों ने परिवादी और अन्य व्यथित लोगों के वेतन से राशि की कटौती की थी। कटौती की गयी राशि को पहले ही उक्त सहकारी सोसाइटी के खाता में जमा कर दिया गया था। यह कहीं नहीं अभिकथित किया गया है कि याची ने किसी सदोष लाभ के लिए और परिवादी अथवा अन्य कर्मचारियों के सदोष हानि के लिए उक्त राशि का दुर्विनियोग किया है। डब्ल्यू॰ पी॰ (दांडिक) सं॰ 292 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 24.2.2010 के आदेश में माननीय न्यायाधीश आर॰ आर॰ प्रसाद ने छल और न्यास के दांडिक भंग के अवयवों पर विस्तारपूर्वक चर्चा किया है और दिनांक 24.2.2010 के उक्त आदेश में दर्ज संप्रेक्षण और निष्कर्ष वर्तमान याची के मामला को विनिश्चित करने के लिए अत्यन्त प्रासंगिक हैं।

10. मैं पाता हूँ कि माननीय न्यायाधीश आर॰ आर॰ प्रसाद द्वारा किए गए संप्रेक्षण और चर्चा वर्तमान याची के मामले को पूरी तरह आच्छादित करते हैं और इसलिए डब्ल्यू॰ पी॰ (दांडिक) सं॰ 292 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 24.2.2010 के आदेश की दृष्टि में मैं याची के संबंध में इस रिट याचिका को अनुज्ञात करने का इच्छुक हूँ।

परिणामस्वरुप, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और केस सं॰ C/403 वर्ष 2008 से उद्भूत होने वाली संपूर्ण दांडिक कार्यवाही दिनांक 10.2.2009 के आदेश जिसके द्वारा संज्ञान लिया गया है, सहित वर्तमान याची के दांडिक अभियोजन की सीमा तक अभिखंडित की जाती है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

बिहार राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड कर्मचारी महासंघ, राँची

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (PIL) No. 6507 of 2010. Decided on 29th October, 2012.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 215—बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ के कर्मचारियों को वेतन और मजदूरी का भुगतान नहीं किया जाना–सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों/निर्देशों को अर्थवान रूप से और प्रयोजनपूर्वक प्रभाव दिए जाने की आवश्यकता है–सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों/निर्देशों के उपर मौन धारण किए रहना सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों/निर्देशों की जानबूझकर की गयी अवज्ञा के तुल्य है–105 करोड़ रुपयों के अविवादित मुख्य दावा की दृष्टि में बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ को उच्च न्यायालय में 75 करोड़ रुपया जमा करने का निर्देश दिया गया–बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 के अधीन अंतर्राज्यीय विवाद का बहाना बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ को उपलब्ध नहीं होगा–शक्तिवान राज्य एक-दूसरे के विरुद्ध दावा की लड़ाई कर सकते है किंतु गरीब कर्मचारियों की कीमत पर नहीं। (पैराएँ 3 से 5)

अधिवक्तागण.–M/s. H. K. Mehta, M. Patra, P. Mishra, For the Appellant/Petitioner; Mr. Ajit Kumar, For the Res. State of Jharkhand; Mrs. S. P. Roy, For the Res. State of Bihar; Mr. Sachin Kumar, For the Res. B.S.I.D.G.

आदेश

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने काफी पहले दिनांक 9 अगस्त, 2010 को मामलों में समय-समय पर समुचित निर्देश देते हुए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों पर विचार करने का निर्देश इस न्यायालय को दिया और आगे चिकित्सीय उपचार की राशि सहित अंतरिम भुगतान प्रभावित व्यक्तियों को करने पर विचार करने का निर्देश दिया। स्वीकृत रूप से बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ द्वारा 50 करोड़ रुपया, जिसका भुगतान स्वीकृत रूप से वर्ष 2003-2004 में किया गया है, का भुगतान करने के बाद कर्मचारियों को एक पैसा का भी भुगतान नहीं किया गया है जैसा बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है। इस न्यायालय ने भी बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ को यह समझाने का प्रयास किया कि भुगतान की जरूरत कितनी अत्यावश्यक है। याची ने 105 करोड़ प्लस का दावा किया है। बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि झारखंड राज्य भुगतान करने में रूकावट डाल रहा है। यह निवेदन भी किया गया है कि उनके पास कर्मचारियों को भुगतान करने के लिए तरल धन नहीं है। यहाँ यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि दो और रिट याचिकाएँ डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2597 और 2619 वर्ष 2012, हैं जिनमें बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ की संपत्ति की कुर्की के संबंध में विवाद विचाराधीन है। इस न्यायालय ने दिनांक 28 अगस्त, 2012 के आदेश के तहत बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ को अपनी संपत्तियों का विवरण और अन्यत्र पड़े अपने कोष का विवरण देने का निर्देश दिया ताकि यदि न्यायालय कर्मचारियों के मजदूरी और वेतन अथवा अन्य बकायों के भुगतान के आदेश देने के निष्कर्ष पर आता है, दोनों पक्षों को सुनने के बाद न्यायालय द्वारा प्रभावकारी आदेश पारित किया जा सके।

2. बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ के पास तरल धन नहीं है। बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ अभी भी बिहार राज्य सरकार के 100% शेयर वाला चालू संगठन है।

3. उक्त कारणों की दृष्टि में, यह बिहार राज्य के स्वामित्व वाला निगम है और अपने कर्मचारियों की ओर से कंपनी के दायित्व को आगे किसी रूकावट के बिना पूरा करने की आवश्यकता है और इसालिए, इस न्यायालय द्वारा बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ को दिनांक 3 दिसंबर, 2012 तक 75 करोड़ रुपया जमा करने का निर्देश दिया गया है ताकि बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ द्वारा एक या दूसरे बहाने कर्मचारियों के वेतन और मजदूरी का भुगतान करने में विलंब से बचा जा सके। यदि बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ के पास तरल धन नहीं है, वे तुरन्त अपनी संपत्तियों, जो वे बेच सकते हैं को बेचना शुरू कर सकते हैं और यदि वे गरीब कर्मचारियों को वेतन और मजदूरी का भुगतान करने की अवस्था में नहीं है, यह न्यायालय बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ के उच्च श्रेणी के अधिकारियों के वेतन का भुगतान रोकने पर विचार कर सकता है क्योंकि वे गरीब कर्मचारियों की तुलना में बेहतर तरीके से वेतन के बिना अस्तित्वशील रह सकते हैं।

हम यह स्पष्ट कर रहे हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों/निर्देशों को अर्थपूर्ण रूप से और प्रयोजनपूर्वक प्रभाव देने की आवश्यकता है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों/निर्देशों पर मौन धारण किए रहना माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों/आदेशों की जानबूझकर अवज्ञा करने के तुल्य है। प्रत्येक उच्च न्यायालय से माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों/आदेशों का प्रयोजन परिपूर्ण और प्राप्त करने की अपेक्षा की जाती है। अतः, इस आदेश के अननुपालन की स्थिति में यह न्यायालय बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ के जिम्मेदार अधिकारियों के विरुद्ध पृथक अवमान याचिका दर्ज कर सकता है। हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि हमने रिट याची द्वारा किए गए 105/- करोड़ प्लस रुपयों के दावा के विरुद्ध इस न्यायालय के पास 75/- करोड़ रुपया जमा करने का आदेश पारित किया है। यह आदेश 105/- करोड़ प्लस रुपयों की सीमा तक मुख्य दावा की दृष्टि में आवश्यक है जो वर्तमान में बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ के अनुसार भी विवाद में नहीं है।

4. अगर बिहार राज्य की अनुमति की आवश्यकता है, तब भी यह बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ का कर्तव्य है कि वह इस अभिवचन पर कि बिहार राज्य की अनुमति लेना आवश्यक है, अपनी जिम्मेदारी से पीछे न हटे। हम आगे स्पष्ट करते हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों को प्रभाव देने के लिए बिहार राज्य भी समान रूप से जिम्मेदार है और विवाद्यक की गंभीरता को देखते हुए बिहार राज्य के मुख्य सचिव और सचिव के विरुद्ध अवमान कार्यवाही आरंभ करने के लिए समुचित आदेश पारित किया जा सकता है।

5. हम आदेश दे रहे हैं कि बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 के अधीन अंतर्राज्यीय विवाद का बहाना बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ को अपने कर्मचारियों के स्वीकृत दायित्वों के भुगतान से बचने के प्रयोजन से उपलब्ध नहीं होगा और स्वयं वर्ष 2000 के अधिनियम के अधीन प्रभाजन तथा पुनर्प्रभाजन का प्रावधान है जो इसलिए बनाया गया है कि इस प्रकार के बहाना के कारण गरीब व्यक्तियों को पीड़ित नहीं होने दिया जाए और शक्तिवान राज्य एक दूसरे के विरुद्ध अपने दावा की लड़ाई कर सकते हैं किंतु गरीब कर्मचारी की कीमत पर नहीं।

6. इस मामले को दिनांक 3 दिसंबर, 2012 को प्रस्तुत किया जाए।

7. इस आदेश की प्रति याची, झारखंड राज्य बिहार राज्य और बी॰ एस॰ आई॰ डी॰ सी॰ के विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

श्याम चौधरी एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 731 of 2011. Decided on 25th September, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 498A—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 177, 178 एवं 482—क्रूरता–संज्ञान–दहेज की मांग एवं यातना–याचीगण द्वारा अभिकथित रूप से जो कुछ भी प्रकट कृत्य किया गया था वह सब बांका, बिहार में किया गया था जबकि मामला गोड्डा में दर्ज किया गया था यद्यपि परिवादी को गोड्डा में कोई वाद हेतुक प्रोद्भूत नहीं हुआ था–उस न्यायालय द्वारा अपराध का विचारण नहीं किया जा सकता था जहाँ अपराध का कोई भाग नहीं किया गया था–समुचित न्यायालय में परिवाद प्रस्तुत करने के लिए परिवाद वापस लेने की स्वतंत्रता परिवादी को दी गयी। (पैराएँ 8, 9 एवं 10)

निर्णयज विधि.–(2004)8 SCC 100; (2008)11 SCC 103—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Sanjay Kumar, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

आदेश

रजिस्टर्ड डाक के अधीन जारी नोटिस विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के पिता द्वारा प्राप्त किया गया है जिसके साथ, याचीगण के अनुसार, विरोधी पक्षकार सं॰ 2 निवास कर रही है। ऐसी स्थिति में, नोटिस को वैध रूप से तामील किया गया स्वीकार किया जाता है।

2. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

3. यह मामला पी॰ सी॰ आर॰ केस सं॰ 517 वर्ष 2009 (टी॰ आर॰ सं॰ 531 वर्ष 2011) वाले परिवाद मामले की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित दिनांक 16.12.2009 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान लिया गया है, के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है।

4. अभियोजन का मामला यह है कि परिवादी का विवाह गोड्डा में संपन्न किया गया था। विवाहोपरांत वह ग्राम इटवा, पी॰ एस॰ शंभुगंज, जिला बांका, बिहार में अपने ससुराल में रहने लगी। वहाँ अभियुक्तगण ने तुरन्त दहेज मांगना शुरू किया। मांग पूरा करवाने के लिए उसे यातना के अध्यधीन किया जा रहा था। चूँकि उसे यातना के अध्यधीन किया जा रहा था, गोड्डा में पंचायती की गयी थी और परिवादी के पति को गोड्डा आना पड़ा था, जहाँ उसने पंचों के समक्ष क्षमा याचना किया। परिवादी जब अपने ससुराल वापस आयी, उसे अभियुक्तगण ने पुनः दहेज की मांग पूरी नहीं करने के कारण यातना के अध्यधीन करने लगे और अगले दिन उसे घर के बाहर भी निकाल दिया गया था।

5. ऐसे अभिकथन पर, परिवाद मामला पी॰ सी॰ आर॰ सं॰ 517 वर्ष 2009 दर्ज किया गया था। जाँच करने के बाद, न्यायालय ने दिनांक 16.12.2009 के अपने आदेश के तहत संज्ञान लिया जो इस आवेदन में चुनौती के अधीन है।

6. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अपराध गठित करने वाला कोई भी प्रत्यक्ष कृत्य अभिकथित रूप से ग्राम इटवा, पी॰ एस॰ शंभुगंज, जिला बांका, बिहार में किया गया है, जबकि मामला गोड्डा में दर्ज किया गया है और, इसलिए, गोड्डा न्यायालय को अपराध का संज्ञान लेने की अधिकारिता नहीं है क्योंकि परिवाद में किए गए अभिकथन के अनुसार वाद हेतुक कभी भी गोड्डा में प्रोद्भूत नहीं हुआ था, और इस प्रकार, केवल इस आधार पर संज्ञान लेने वाला आदेश **भूरा राम बनाम राजस्थान राज्य 2008 (11) SCC 103,** और **वाई॰ अब्राहम अजिथ बनाम पुलिस इंस्पेक्टर, 2004 (8) SCC 100** में दिए गए निर्णय की दृष्टि में अपास्त किए जाने योग्य है।

7. अभिलेख का परिशीलन करने पर मैं याचीगण के निवेदन में सार पाता हूँ।

8. परिवाद के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि याचीगण द्वारा अभिकथित रूप से जो कुछ भी प्रकट कृत्य किया गया है वह ग्राम इटवा, पी॰ एस॰ शंभुगंज, जिला बांका, बिहार में किए गए हैं और मामला गोड्डा न्यायालय में दर्ज किया गया है यद्यपि परिवादी को गोड्डा में वाद हेतुक प्रोद्भूत नहीं हुआ है, और इसलिए, गोड्डा न्यायालय को अपराध का संज्ञान लेने की अधिकारिता नहीं है।

9. मामले के उस दृष्टिकोण में, परिवाद मामला पी॰ सी॰ आर॰ सं॰ 517 वर्ष 2009 (टी॰ आर॰ सं॰ 531 वर्ष 2011) में पारित दिनांक 16.12.2009 का आदेश उक्त निर्दिष्ट मामलों में दिए गए निर्णयों जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय, जहाँ अपराध किया गया है, की अधिकारिता के अंतर्गत वाद हेतुक उद्भूत होने के कारण मामले का विचारण उस न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता है जहाँ अपराध का कोई भाग नहीं किया गया है, की दृष्टि में एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

10. किंतु, परिवादी विपक्षी पक्षकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 201 में अंतर्विष्ट प्रावधान का अवलंब लेने के लिए स्वतंत्र होगा जिसके अधीन वह उस प्रभाव के पृष्ठांकन के साथ समुचित न्यायालय के समक्ष परिवाद करने के लिए परिवाद वापस किए जाने हेतु न्यायालय के पास जा सकता है। यदि उस प्रावधान का सहारा लिया जाता है, आवश्यक आदेश पारित किए जायें।

11. पूर्वोक्त संप्रेक्षणों के साथ, यह आवेदन निपटाया जाता है।

---

ekuuh; vij'k dekj flg] U;k;efr

शिव प्रसाद ठाकुर उर्फ शिवजी ठाकुर

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C). No. 1521 of 2006. Decided on 21st September, 2012.

लोक मांग वसूली अधिनियम, 1914—धारा 60—कर्ज की वसूली–याची अपने मृत पिता द्वारा लिए गए कर्ज का एक प्रत्याभूतिदाता था–याची को उसके विरुद्ध जारी कुर्की वारन्ट के कारण गिरफ्तार किया गया था–याची ने कर्ज की राशि जमा करने का वचन दिया था–याची के पास धारा 60 के अधीन प्रमाण पत्र अधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष पर्याप्त उपचार है–याची को प्रमाणपत्र अधिकारी के समक्ष अपनी आपत्ति उठाने की स्वतंत्रता दी गयी। (पैरा 6)

निर्णयज विधि.–(2010)8 SCC 110—Relied; (2007)8 SCC 449—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s. Rajeeva Sharma, Sarfaraz Akhtar, For the Petitioner; M/s. Rajesh Kumar Amit Kumar, M. K. Sinha, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. याची ने दिनांक 21.11.2005 के आदेश सहित प्रमाण पत्र कार्यवाही को चुनौती दिया जिसके अनुसरण में याची को ट्रैक्टर, कल्टिवेटर, हुड और ट्रेलर की आपूर्ति करने के लिए कृषि कर्ज के विरुद्ध ब्याज और आनुषंगिक व्यय के साथ 3,30,901.60/- रुपयों की वसूली के लिए दिनांक 8.8.1996 की अध्यपेक्षा के संबंध में प्रमाणपत्र केस सं॰ 105 वर्ष 1996-97 में गिरफ्तार किया गया था।

3. याची का प्रतिवाद यह है कि उसके स्वर्गीय पिता गजाधर ठाकुर ने कृषि प्रयोजन से ट्रैक्टर, ट्रेलर, हुड और कल्टिवेटर खरीदने के लिए अनुदान के लिए अप्रिल, 1991 में आवेदन दिया था जिसके लिए उसने स्वयं को भूमि का स्वामी दर्शाते हुए अनेक दस्तावेजों को दाखिल किया था और बैंक में मार्जिन मनी को जमा किया था। तत्पश्चात, बैंक ने याची के पिता को 1,40,000/- रुपया का कर्ज प्रदान किया था और याची ने भी बैंक के साथ अपने पिता द्वारा निष्पादित कागजातों पर प्रत्याभूतिदाता के रूप में

हस्ताक्षर किया था। डीलर के पास कतिपय ड्राफ्टों को भी जमा करवाया गया था और बाद में याची के पिता ने ट्रैक्टर के महत्वपूर्ण हिस्सों अर्थात् ट्रेलर, कल्टिवेटर और हुड के बिना स्वराज ट्रैक्टर इंजिन प्राप्त किया था। डीलर और बैंक के प्रबंधक के विरुद्ध अपराध का अभिकथन करते हुए परिवाद मामला दाखिल किया गया था जिसे बोरियो पी॰ एस॰ केस सं॰ 188 वर्ष 1992 के रूप में दर्ज किया गया था। पूर्वोक्त बकायों की वसूली के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 3, शाखा प्रबंधक, एस॰ बी॰ आई॰ ने व्यय, प्रभार और ब्याज के साथ 3,30,901.60/- रुपयों की वसूली के लिए सब-डिविजनल प्रमाण पत्र अधिकारी, साहेबगंज के समक्ष प्रमाण पत्र केस सं॰ 105 वर्ष 1996-97 में अध्यपेक्षा दाखिल किया। उक्त अध्यपेक्षा रिट याचिका का परिशिष्ट-17 और प्रति शपथपत्र का परिशिष्ट-ई॰ है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि याची ने यह कथन करते हुए कि दांडिक मामला बोरियो पी॰ एस॰ केस सं॰ 188 वर्ष 1991 लंबित है जिसमें 'माँ चंदा इंडस्ट्रीज' के स्वत्वधारी और एस॰ बी॰ आई॰ के शाखा प्रबंधक के विरुद्ध संज्ञान लिया गया है, प्रमाण पत्र अधिकारी के समक्ष आगे आपत्ति दाखिल किया किंतु उक्त आपत्ति को अस्वीकार कर दिया गया था। याची की ओर से आगे निवेदन किया गया था कि उसके पिता ने भी यह कथन करते हुए कि बैंक ने अध्यपेक्षित न्यायालय शुल्क और आदेशिका शुल्क दाखिल नहीं किया था, प्रमाण पत्र अधिकारी के न्यायालय में याचिका दाखिल किया था। अचानक दिनांक 13.7.1998 को पुलिस कुर्की वारन्ट निष्पादित करने याची के पिता के घर आयी किंतु वह वहाँ उपस्थित नहीं था और पूर्वोक्त तथ्यों के बारे में पता चलने के बाद दिनांक 14.7.1998 को आघात के कारण उसके पिता की मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात्, याची सं॰ 3 ने उसके मृत पिता के स्थान पर वर्तमान याची को प्रतिस्थापित करने के लिए प्रतिस्थापन याचिका दाखिल किया। तत्पश्चात्, दिनांक 23.5.2000 को नोटिस जारी किया गया था। निवेदन किया गया था कि प्रमाण पत्र अधिकारी के समक्ष याची का आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था और बाद में परिशिष्ट 29 के तहत याची के विरुद्ध जमानती वारन्ट जारी करने का आदेश दिया गया था। दिनांक 18.12.2005 को याची को गिरफ्तार किया गया था और उसे अनंतिम रूप से इस शर्त पर जमानत पर निर्मुक्त किया गया था कि वह एक माह के भीतर समस्त बकायों को जमा करेगा। याची का प्रतिवाद था कि अध्यपेक्षा के अनुसरण में प्रमाण पत्र तैयार नहीं किया गया है और प्रमाण पत्र अधिकारी, साहिबगंज द्वारा हस्ताक्षरित नहीं किया गया है और इसके अलावा करार के अधीन बाध्यता को बैंक द्वारा उन्मोचित नहीं किया गया था और संविदा को अंतिम रूप नहीं दिया गया था।

4. प्रत्यर्थी बैंक उपस्थित हुआ है और अपना प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया है जिसमें कथन किया गया है कि याची के पिता को कृषि कर्ज के रूप में आपूर्तिकर्ता के पक्ष में कर्ज के विरुद्ध बैंक ड्राफ्ट जारी किया गया था और उधार लेने वाले ने दिनांक 4.6.1991 को ट्रैक्टर प्राप्त किया था और कुछ त्रुटि के कारण ट्रेलर प्राप्त नहीं किया गया था किंतु कार्यालय अभिलेख के मुताबिक इसे अंततः दिनांक 24.2.1992 को प्राप्त किया गया था। प्रत्यर्थीगण ने इनकार किया है कि आपूर्तिकर्ता ने ट्रेलर और एक्सेसरीज की आपूर्ति नहीं किया है। जब उधार लेने वाला राशि जमा करने में दिलचस्पी लेने में विफल रहा, बैंक ने प्रत्याभूतिदाता और वर्तमान याची के विरुद्ध 3,30,901.60/- रुपयों की बकाया राशि की वसूली के लिए दिनांक 8.8.1996 को प्रमाण पत्र मामला दाखिल किया। उधार लेने वालों पर नोटिस जारी किया गया था जो उपस्थित हुए और स्थगन के लिए याचिका दाखिल किया जिसे प्रमाण पत्र अधिकारी द्वारा उसी दिन अस्वीकार कर दिया गया था। किंतु, उधार लेने वाले ने समय के भीतर लोक मांग वसूली अधिनियम की धारा 9 के मुताबिक आपत्ति याचिका दाखिल नहीं किया था और दिनांक 4.2.1997 को करस्थम वारन्ट (परिशिष्ट-22) जारी किया गया था। किंतु इस बीच, उधार लेने वाले गजाधर ठाकुर की मृत्यु दिनांक 14.7.1998 को हो गयी और उसके विधिक उत्तराधिकारियों, वर्तमान याची, प्रत्याभूतिदाता और किसी राजकिशोर ठाकुर को परिशिष्टों 24 और 25 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था और नोटिस जारी किए गए थे। नोटिस पर विधिक उत्तराधिकारियों ने दिनांक 11.7.2000 को आपत्ति याचिका दाखिल किया। बैंक ने भी दिनांक 5.3.2001 को अपना प्रत्युत्तर दाखिल किया। चूँकि विधिक उत्तराधिकारियों ने मामले की सुनवाई में दिलचस्पी नहीं दिखाया था, विद्वान न्यायालय ने प्रमाण पत्र कर्जदार

की याचिका (परिशिष्ट–28) को अस्वीकार कर दिया और दिनांक 21.11.2005 को जमानती वारंट जारी किया गया था जिसके बाद दिनांक 18.12.2005 को वर्तमान याची को प्रमाण पत्र कर्जदार होने के कारण गिरफ्तार किया गया था और सब–डिविजनल अधिकारी, साहेबगंज के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। दिनांक 18.12.2005 को उसकी गिरफ्तारी के बाद याची को पेश किए जाने के बाद पारित आदेश (परिशिष्ट 30) के संदर्भ में यह निवेदन किया गया था कि प्रमाण पत्र कर्जदार के वचनबंध पर प्रमाण पत्र न्यायालय ने उसको बकाया राशि जमा करने के लिए एक माह का समय दिया था। अपने वचन को पूरा करने के बजाय याची रिट याचिका दाखिल करके इस न्यायालय के समक्ष आया है। रिट आवेदन के पैरा 42 में किये गये निवेदन कि फॉर्म 2 में प्रमाण पत्र तैयार नहीं किया गया है और प्रमाण पत्र अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित नहीं किया गया है; से प्रत्यर्थी ने प्रति शपथ पत्र के पैरा 50 में अपने बयान में इनकार किया है।

5. अत:, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि बैंक जैसे वित्तीय संस्थान के बकाया मांग की वसूली के मामले में उधार लेने वाला कर्ज राशि का पुनर्भुगतान करने में विफल रहा जिस कारण उसे प्रमाण पत्र कार्यवाही में गिरफ्तार किया गया था और उसने एक माह के भीतर बकाया जमा करने का वचन दिया था, किंतु वह ऐसा करने में विफल रहा है। **प्रेस्टिज लाइट्स लिमिटेड बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, (2007)8 SCC पृष्ठ 449,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए आगे निवेदन किया गया है कि याची भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय के समक्ष शुद्ध हृदय से नहीं आया है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे **यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन एवं अन्य, (2010)8 SCC 110,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया और निवेदन किया कि वित्तीय संविधि से संबंधित मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया है कि जब आपत्ति दाखिल करने और आगे अपील करने के उपचार के प्रावधान को अंतर्विष्ट करते हुए बैंक और वित्तीय संस्थानों को देय बकाया की वसूली के लिए विनिर्दिष्ट प्रक्रिया प्रावधानित की गयी है, व्यतिक्रमी उधार लेने वाला/प्रमाण पत्र कर्जदार को ऐसे मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपने न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लेने की अनुमति नहीं है। उक्त निर्णय के पैरा 55 को यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

> *"ijk 55 ;g xHkhj fprk dk ekeyk g fd bl U;k;ky; dh ckj&ckj mn?kk"k.kk d ckotn mPp U;k;ky; MhO vkjO VhO vfèkfu;e vkj ,lO ,O vkjO ,QO ,O bO ,lO vkbO vfèkfu;e d vèkhu lkfofèkd mipkjk dh miyCèkrk dk vun[kk dju vkj mu vkn'kk] ftudk cdk vkj vU; foÙkh; lLFkkuk d viu cdk;k dh olyh dju d vfèkdkj ij xHkhj çfrdy çHkko gkrk g] dk ikfjr dju d fy, vuPNn 226 d vèkhu vfèkdkfjrk dk ç;kx djuk tkjh j[k g, gA ge mEehn vkj fo'okl djr g fd Hkfo"; e mPp U;k;ky; vR;r lrdrk] lkoèkkuh vkj pkdlh d lkFk ,l ekeyk e viu Lofood dk ç;kx djxkA***

6. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध प्रासंगिक सामग्रियों का परिशीलन किया है। ट्रैक्टर, ट्रेलर, कल्टिवेटर और हुड जैसे कृषि उपकरणों की आपूर्ति के विरुद्ध ब्याज और आनुषंगिक व्यय के साथ 3,30,901.60/- रुपयों की वसूली के लिए प्रमाण पत्र अधिकारी के समक्ष प्रत्यर्थी बैंक द्वारा की गयी अध्यपेक्षा के अनुसरण में प्रमाण पत्र कार्यवाही आरंभ की गयी है। अपने पिता की मृत्यु के बाद याची को प्रतिस्थापित किया गया था और तत्पश्चात, उसे नोटिस जारी किया गया था। वह उपस्थित हुआ था और उसकी आपत्ति अस्वीकार कर दी गयी थी। उसे प्रमाण पत्र न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में भाग लेता नहीं पाया गया था, अत: करस्थम वारन्ट जारी किया गया था और उसे गिरफ्तार किया गया था। तत्पश्चात, याची ने प्रमाणपत्र अधिकारी के समक्ष वचन दिया कि वह एक माह के भीतर राशि जमा करेगा जिस पर अस्थायी रूप से वारन्ट वापस ले लिया गया था।

तत्पश्चात्, रिट याची इस न्यायालय के पास आया है। याची ने अभिवाक् किया है कि डीलर और शाखा प्रबंधक के विरुद्ध दांडिक मामला दर्ज किया गया था जो सक्षम न्यायालय में लंबित है। किंतु, याची को संवितरित कर्ज की मात्रा से इनकार नहीं किया गया था। प्रश्नगत कर्ज का भुगतान बैंक और याची के पिता के बीच हुए करार, जिसमें याची प्रत्याभूतिदाता में से एक था, के निबंधनों एवं शर्तों के मुताबिक नहीं किया गया था। पूर्वोक्त बकाया की वसूली के लिए प्रमाण पत्र कार्यवाही आरंभ की गयी थी। प्रमाण पत्र कार्यवाही के क्रम में इस याची ने कर्ज राशि जमा करने का वचन दिया था। कर्ज राशि जमा करवाने के लिए प्रपीड़क कदम उठाए गए थे और याची को उसके विरुद्ध जारी करस्थम वारन्ट के कारण गिरफ्तार किया गया था। यहाँ उपर प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट निर्णय से प्रकट है कि याची के पास प्रमाण पत्र अधिकारी के समक्ष अपनी आपत्ति दाखिल करने के लिए पर्याप्त उपचार था और इसको अस्वीकार किए जाने पर वह लोक मांग वसूली अधिनियम की धारा 60 के अधीन अपीलीय फोरम के पास जा सकता है। चूँकि रिट याचिका में उठाया गया प्रश्न बैंक-वित्तीय संस्थान के बकाया की वसूली से संबंधित है जिसके लिए पी॰ डी॰ आर॰ अधिनियम संपूर्ण प्रक्रिया और अपील का उपचार प्रावधानित करता है, यह न्यायालय **यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन एवं अन्य, (2010)8 SCC 110 (उपर)** में बैंक द्वारा विश्वास द्वारा विश्वास किए गए निर्णय की दृष्टि में वर्तमान मामले में कोई अनुतोष देने का इच्छुक नहीं है। किंतु, याची को प्रमाण पत्र अधिकारी के समक्ष अपनी आपत्ति करने की स्वतंत्रता दी जाती है जो इस पर विचार करेगा और विधि के अनुरूप तार्किक आदेश पारित करेगा और तत्पश्चात् बकाया, यदि हो, की वसूली के लिए कदम उठाने के लिए शीघ्रातिशीघ्र अग्रसर होगा।

7. पूर्वोक्त स्वतंत्रता के साथ यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh; vkjh vkjh çlkn] U;k;efr

प्रफुल्ल कुमार सिंह

cuke

झारखंड राज्य, निगरानी के माध्यम से

Cr. M.P. No. 1867 of 2011. Decided on 25th September, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 467, 468, 469, 471, 120B, 109, 201, 423, 424 एवं 477A सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएँ 13(1)(d) एवं 13(2)—याची ने एस॰ डी॰ ओ॰ के रूप में पदस्थापित रहते हुए सोसाइटी के नाम में जमाबंदी खोलने का आदेश पारित किया था किंतु बाद में जब उसे ज्ञात हुआ कि अवैधता की गयी है, उसने पहले के आदेश को रद्द कर दिया और एल॰ आर॰ डी॰ सी॰ को जाँच करने का निर्देश दिया—छल अथवा कूटरचना का अपराध नहीं किया गया—दांडिक कार्यवाही अभिखंडित।

(पैराएँ 11 से 15)

अधिवक्तागण.—M/s Anil Kumar, H. K. Shikarwar, For the Petitioners; Mr. Shailesh Kumar, For the Vigilance.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और निगरानी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. यह मामला निगरानी पी॰ एस॰ केस सं॰ 26 वर्ष 2000 (विशेष केस सं॰ 13 वर्ष 2000) की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित दिनांक 20.11.2008 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 467, 468, 469, 471, 120B, 109, 201, 423, 424, 477A के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(d) सह-पठित धारा 13(2) के अधीन भी दंडनीय अपराधों का संज्ञान याची के विरुद्ध लिया गया है, के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है।

3. प्राथमिकी से यह प्रतीत होता अभियोजन का मामला यह है कि ग्राम बरगैन, पी॰ एस॰ बरियातू, राँची अवस्थित खाता सं॰ 140 भूखंड सं॰ 1114 से संबंधित 113.5 एकड़ माप वाले भूमि के टुकड़ों को यद्यपि गैरमजरुआ खास भूमि के रूप में दर्ज किया गया है, बीस व्यक्तियों के नाम में 103.84 एकड़ भूमि के संबंध में जमाबंदी खोली गयी थी। बाद में, अपर कलक्टर ने विविध केस सं॰ 19 वर्ष 1992-93 में पारित अपने आदेश के तहत उन व्यक्तियों के नाम में की गयी जमाबंदी रद्द कर दिया।

4. आगे मामला यह है कि 113.5 एकड़ मापवाली उक्त भूमि में से कृष्णाचल लाल गृह निर्माण सहयोग समिति ने भूमि का 7.5 एकड़ वर्ष 1984 में मो॰ सुलेमान, जिसने सादा हुकुमनामा के माध्यम से इसके उपर अपने अधिकार, हक, और हित का दावा किया, से तीन विक्रय विलेखों के माध्यम से खरीदा। भूमि खरीदने के बाद, अपने नाम में जमाबंदी खोलने के लिए तत्कालीन एस॰ डी॰ ओ॰ श्री पी॰ एन॰ राय के समक्ष वर्ष 1985 में आवेदन दाखिल किया गया था जिस प्रार्थना को यह अभिनिर्धारित करते हुए कि आवेदक के नाम में जमाबंदी केवल तब सृजित की जा सकती है जब जमाबंदी पहले विक्रेता के नाम में सृजित की जाय, खारिज कर दिया गया था। ततत्पश्चात् दिनांक 14.7.1986 को गृह निर्माण सहयोग समिति ने अंचलाधिकारी, राँची के समक्ष एक अन्य आवेदन दाखिल किया जिसमें सोसाइटी के नाम में जमाबंदी की वही प्रार्थना की गयी थी। ऐसे आवेदन पर, केस सं॰ 16 वर्ष 1986-87 दर्ज किया गया था और हलका कर्मचारी ने और अंचलाधिकारी ने सोसाइटी के नाम में जमाबंदी खोलने के लिए उसमें अनुशंसा के साथ रिपोर्ट दाखिल किया। तद्नुसार, याची जो उस समय पर एस॰ डी॰ ओ॰, राँची था, ने दिनांक 20.10.1986 का आदेश पारित किया, जिसके द्वारा सोसाइटी के नाम में जमाबंदी खोलने का आदेश दिया गया था।

5. अभियोजन का आगे मामला यह है कि याची को जब सोसाइटी के नाम में जमाबंदी खोलने के लिए आदेश पारित करने में उसके द्वारा की गयी अवैधता की जानकारी हुई उसने दिनांक 27.7.1988 के आदेश के तहत अपना पहले का आदेश रद्द कर दिया और इसी समय पर एल॰ आर॰ डी॰ सी॰ को इस संबंध में जाँच करने का निर्देश दिया गया था।

6. ऐसे अभिकथन पर, इस याची सहित अनेक व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 467, 468, 469, 471, 120B, 109, 201, 423, 424, 477A के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(d) सह-पठित धारा 13(2) के अधीन भी दंडनीय अपराध के लिए निगरानी द्वारा निगरानी पी॰ एस॰ केस॰ सं॰ 26 वर्ष 2000 (विशेष केस सं॰ 13 वर्ष 2000) दर्ज किया गया था। अन्वेषण करने के बाद, जब आरोप पत्र दाखिल किया गया था, पूर्वोक्तानुसार अपराधों का संज्ञान लिया गया था जो इस आवेदन में चुनौती के अधीन है।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार निवेदन करते हैं कि सोसाइटी के नाम में जमाबंदी खोलने के संबंध में याची द्वारा जो भी आदेश पारित किया गया था, वह आदेश अनभिज्ञता में पारित किया गया था क्योंकि उनके समक्ष प्रासंगिक अभिलेखों को प्रस्तुत नहीं किया गया था किंतु ज्योंही उन्हें ज्ञात

हुआ कि उन्होंने गलत आदेश पारित किया है, उन्होंने न केवल अपना पहले का आदेश रद्द कर दिया, बल्कि एल॰ आर॰ डी॰ सी॰, राँची को मामले की जाँच करने का निर्देश देते हुए आदेश भी पारित किया और यह कार्रवाई स्वयं दर्शाती है कि याची ने स्वयं को किसी प्रकार की अवैधता में अंतर्ग्रस्त कभी नहीं किया था। इसके बावजूद न केवल अन्य के साथ याची के विरुद्ध मामला दर्ज किया गया था बल्कि आरोप-पत्र भी दाखिल किया गया था जिस पर अपराध का संज्ञान लिया गया था और इसलिए, केवल इस आधार पर संज्ञान लेता आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है।

8. आगे निवेदन किया गया था कि याची के विरुद्ध किए गए संपूर्ण अभिकथन को सत्य मानने पर भी याची को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (1) (d) सह-पठित धारा 13(2) के अधीन कूटरचना, छल, दुर्विनियोग का कोई अपराध करता नहीं कहा जा सकता है और, इसलिए, याची के विरुद्ध कार्यवाही जारी रखना विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग के तुल्य होगा।

9. इसके विरुद्ध, निगरानी के विद्वान अधिवक्ता श्री शैलेश निवेदन करते हैं कि यदि समस्त अभियुक्तगण के कृत्य को साथ-साथ लिया जाता है, तब कोई भी इस निष्कर्ष पर आएगा कि इस याची ने अन्य अभियुक्तगण के साथ षड्यंत्र करके अपराध किया जैसा अभिकथित किया गया है।

10. आगे निवेदन किया गया था कि समिति के सचिव ने पहले अपने नाम में जमाबंदी सृजित करने के लिए अंचलाधिकारी, काँके अंचल, राँची के समक्ष आवेदन दाखिल किया था, किंतु जब तत्कालीन एस॰ डी॰ ओ॰ द्वारा प्रतिकूल आदेश पारित किया गया था, अंचलाधिकारी, राँची के समक्ष एक अन्य आवेदन दाखिल किया गया था जिसने सोसाईटी के सचिव के नाम में जमाबंदी खोलने की अनुशंसा की थी और उसकी अनुशंसा पर इस याची ने जमाबंदी खोलने के लिए आदेश पारित किया था यद्यपि बाद में जमाबंदी खोलने के उस आदेश को रद्द कर दिया गया था किंतु अन्य अभियुक्तगण द्वारा किए गए कृत्य दर्शाएँगे कि इस याची ने अन्य अभियुक्तगण की मौनानुकूलता के साथ अपराध किया था जैसा अभिकथित किया गया है और तद्द्वारा संज्ञान लेने वाले आदेश का अभिखंडन अपेक्षणीय नहीं है।

11. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, यह स्वीकृत अवस्था है कि यह याची, जो समय के प्रासंगिक बिंदु पर एस॰ डी॰ ओ॰ था, ने सोसाइटी के नाम में जमाबंदी खोलने के लिए आदेश पारित किया था किंतु बाद में जब उसे ज्ञात हुआ कि अवैधता की गयी है, उसने पहले का आदेश रद्द कर दिया और इस मामले में जाँच करने का निर्देश एल॰ आर॰ डी॰ सी॰ को देते हुए आदेश भी पारित किया और यह आदेश दिनांक 27.7.1988 को पारित किया गया था, किंतु इसके बावजूद याची को उस मामले में अभियुक्त बनाया गया था जिस वर्ष 2000 में दर्ज किया गया था, जिसमें पूर्वोक्त अभिकथन के अतिरिक्त याची के विरुद्ध कुछ भी नहीं किया गया था। ऐसी स्थिति में, मैं यह समझने में विफल हूँ कि किस प्रकार याची ने अन्य अभियुक्तगण के साथ मौनानुकूलता में अपराध किया जैसा अभिकथित किया गया है।

12. इसके अतिरिक्त, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 464 के अधीन कूटरचना की दी गयी परिभाषा की दृष्टि में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467, 468, 471, 477 के अधीन अपराध आकृष्ट नहीं होता है क्योंकि याची को सोसाइटी के सचिव के नाम में जमाबंदी खोलने के लिए आदेश पारित करके और तब इसके रद्दकरण का आदेश पारित करके कूटरचना के किसी अपराध को करता हुआ नहीं कहा जा सकता है।

13. आगे यह मेरी समझ के परे है कि किस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध आकृष्ट होता है। अभिकथन को देखते हुए याची को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 423 अथवा 424 के अधीन अपराध करता हुआ कभी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि पूर्वोक्त धाराओं के अधीन अपराध प्रतिफल के झूठे कथन अथवा संपत्ति छुपाने को अंतर्विष्ट करने वाले अंतरण के विलेख के गैरईमानदार अथवा कपटपूर्ण निष्पादन से संबंधित हैं जो अभियोजन का मामला कभी नहीं रहा है।

14. मामले में आगे जाते हुए, मैं भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(d) के अधीन कोई अपराध आकृष्ट होता नहीं पाता हूँ क्योंकि याची के लिए यह अभिकथित कभी नहीं किया गया है कि उसने भ्रष्ट आचरण अथवा अवैध साधन अपना कर धनीय लाभ/बहुमूल्य चीजों के लिए पहले जमाबंदी खोलने का आदेश पारित किया और तब जमाबंदी रद्द करने का आदेश पारित किया और, इसलिए, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(d) सह-पठित धारा 13(2) के अधीन अपराध गठित करने वाले आवश्यक अवयवों की कमी है।

15. इन परिस्थितियों के अधीन, दिनांक 20.11.2008 का संज्ञान लेने वाला आदेश सहित निगरानी पी॰ एस॰ केस सं॰ 26 वर्ष 2000 (विशेष केस सं॰ 13 वर्ष 2000) की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

16. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

पाओलो जारलरियल्लो एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 2210 of 2012. Decided on 29th October, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 467, 468 एवं 471—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 320 एवं 482—छल एवं कूटरचना–संज्ञान–पक्षों के बीच व्यवसायिक संव्यवहार–अभिकथित अपराधों में से कुछ गैरशमनीय है, किंतु पक्षों ने अपना निजी प्रकृति का विवाद सुलझा लिया था पक्षों के बीच जो भी विवाद था वह व्यक्तिगत प्रकृति का था, जो पक्षों के अनुसार सुलझा लिया गया था–ऐसी स्थिति में, संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडन योग्य है–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 7 से 10)

निर्णयज विधि.–(2008)9 SCC 677—Followed.

अधिवक्तागण.–M/s. R. S. Majumdar, Rajesh Kumar, For the Petitioners; A.P.P., For the State; Mr. Z. Ahmad, For the O.P. No. 2.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. सी॰ पी॰ केस सं॰ 2164 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 4.2.2011 के आदेश, जिसके अधीन याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 467, 468, 471 के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान लिया गया है, का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित किया जा रहा है कि पक्षों ने अपना धनीय विवाद सुलझा लिया है।

3. यह प्रतीत होता है कि उसमें यह कथन करते हुए परिवाद दाखिल किया गया था कि याचीगण रेबैन सन ऑप्टिक्स इंडिया लिमिटेड का निदेशकगण होने के नाते सनग्लासेज और फ्रेमों के व्यवसाय में लगे हुए थे जबकि परिवादी को इसके वितरक के रूप में नियुक्त किया गया था। व्यवसाय के क्रम में परिवादी ने प्रतिभूति के रूप में याचीगण की कंपनी को कतिपय चेक दिया था किंतु याचीगण द्वारा उन चेकों का अन्यथा उपयोग किया गया था।

4. ऐसे अभिकथन पर, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467, 468, 471, 420, 406 और 120B के अधीन सी॰ पी॰ केस सं॰ 2164 वर्ष 2009 दर्ज किया गया था जिसमें भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 467, 468, 471 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था।

5. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि समय के क्रम में पक्षों ने अपना धनीय विवाद सुलझा लिया है एवं तद्द्वारा एक अंतर्वर्ती आवेदन, आवेदन सं॰ 1572 वर्ष 2012 दाखिल किया गया है जिसमें कथन किया गया है कि पक्षों ने अपना विवाद सुलझा लिया है और सुलह कर लिया है और उस आधार पर कार्यवाही के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की गयी है क्योंकि याचीगण और परिवादी के बीच जो भी विवाद था, वह निजी प्रकृति का था।

6. विरोधी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता भी स्वीकार करते है कि मामले में सुलह हो गयी है।

7. नि:संदेह, यह सत्य है कि अभिकथित अपराधों में से कुछ गैर शमनीय है किंतु पक्षों ने अपना विवाद, जो निजी प्रकृति का है, सुलझा लिया है और इस प्रकार, **निखिल मर्चेन्ट बनाम केंद्रीय जाँच ब्यूरो एवं एक अन्य, (2008)9 SCC 677,** मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में अभिखंडित किए जाने का दायी है जिसमें अभिकथन यह था कि अभियुक्तगण ने एक-दूसरे के साथ षडयंत्र करके और षड्यंत्र को अग्रसर करने में उन्होंने कूटरचना का अपराध करके कपटपूर्वक आंध्रा बैंक के कोष को विपथित कर दिया था किंतु पक्षों ने समयक्रम में अपना मामला सुलझा लिया था और तब संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए माननीय उच्च न्यायालय के पास गए थे किंतु प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी थी और जब मामला माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:-

> *^^oreku ekey e diuh vkj cd d chp fookn mud chp g, lyg d vkèkkj ij ly>k fy;k x;k g ft ld vèkhu cd d cdk;k dk Hkxrku dj fn;k x;k g vkj cd dk diuh d fo#) vkx dkb nkok gkrk çrhr ugh gkrk gA fdr] ;g rF; cuk jgrk g fd ml lhek ft ldh diuh gdnkj Fkh d ij ØfMV lfoèkkvk dk ykHk yu d fy, dfri; nLrkotk dk vfHkdfFkr :i l lftr fd;k x;k FkkA ble vrxLr fookn e dfri; nkfMd igy d lkFk flfoy okn dk Loj gA*
>
> *bl ekey e ft l ç'u dk mÙkj nu dh vko';drk g ;g g fd D;k fd, x, lyg d vulj.k e nkfMd dk;okgh dk vfHk[kfMr dju dh 'kfDr tk Lor= :i l bl U;k;ky; d ikl g dk ç;kx fd;k tkuk pkfg,A vr%] U;k;ky; u fuEufyf[kr vfHkfuèkkfjr fd;k%*
>
> *^^;gk mij minf'kr ekey dk lex :i l n[ku ij vkj ch0 ,l0 tk'kh ekey] (2003)4 SCC 675, e bl U;k;ky; d fu.k; dk è;ku e j[kr g, vkj diuh rFkk cd d chp lyg gk tku ij vkj cd }kjk nkf[ky okn e nkf[ky lgefr fucèku d [kM 11 d vulkj ge lr"V g fd ;g l;kX; ekeyk g tgk*

*rduhdh ckjhfd;k dk nkfMd dk;okgh d vfHk[kMu d jkLr e vku dh vuefr ugh nh tkuh pkfg, D;kfd gekj nf"Vdk.k e i{kk d chp lyg d ckn bldk tkjh j[kuk fujFkd gkxkA***

8. वर्तमान मामले में पक्षों के बीच जो भी विवाद था, निजी प्रकृति का था जिसे पक्षों के अनुसार सुलझा लिया गया है और पक्षों ने सुलह कर लिया है। ऐसी स्थिति में उक्त निर्दिष्ट मामले में अधिकथित निर्णयाधार की दृष्टि में संज्ञान लेने वाला आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है।

9. तद्नुसार, दिनांक 4.2.2011 का आदेश जिसके अधीन सी॰ पी॰ केस सं॰ 2164 वर्ष 2009 में संज्ञान लिया गया है, एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

10. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

श्रीमती लक्ष्मी शॉ

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr.M.P. No. 728 of 2012. Decided on 29th October, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 145 एवं 482—कार्यवाही आरंभ किया जाना—मामला एकपक्षीय सुनवाई के लिए नियत था—जब याची को अपना साक्ष्य देने से वर्जित किया गया था, उस आदेश को वापस लेने के लिए दाखिल आवेदन कोई कारण दिए बिना अस्वीकार कर दिया गया था—यथार्थतः, वह आदेश गैर-सकारण आदेश है जो विधि की दृष्टि में संपोषणीय नहीं है—आक्षेपित आदेश और पुनरीक्षण आवेदन में पारित आदेश अपास्त किया गया—नया आदेश पारित करने के लिए मामला दंडाधिकारी के पास वापस भेजा गया। (पैराएँ 3 एवं 4)

अधिवक्तागण.—Mr. Mahesh Tiwary, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. P. Lala, For the O.P. Nos. 2 to 4.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और विरोधी पक्षकारों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. प्रथम पक्ष की प्रार्थना पर एम॰ पी॰ केस सं॰ 541 वर्ष 2001 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन कार्यवाही आरंभ की गयी थी। बाद में, उस कार्यवाही को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में संपरिवर्तित कर दिया गया था जिसमें याची-द्वितीय पक्ष ने लिखित कथन दाखिल किया था। लिखित कथन दाखिल किए जाने पर, न्यायालय मामले पर अग्रसर हुआ। किंतु, दिनांक 20.5.2011 को मामला एकपक्षीय सुनवाई के लिए नियत किया गया था और तद्द्वारा याची-द्वितीय पक्ष को अपना साक्ष्य देने से अपवर्जित कर दिया गया था। उस पर, यह अभिवचन करते हुए कि कतिपय कारणों के कारण वह दिनांक 20.5.2011 को उपस्थित नहीं हो सका था, दिनांक 20.5.2011 के आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन दाखिल किया गया था किंतु उस आवेदन को दिनांक 7.12.2011 के

आदेश के तहत कोई कारण दिए बिना अस्वीकार कर दिया गया था। दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 14 वर्ष 2012 में पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष उस आदेश को चुनौती दी गयी थी जिसे यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया गया था कि पारित किया गया आदेश अंतर्वर्ती प्रकृति का है जिसके विरुद्ध पुनरीक्षण नहीं हो सकता है। दोनों आदेश चुनौती के अधीन हैं।

3. पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख का परिशीलन करने पर, यह प्रतीत होता है कि जब दिनांक 20.5.2011 के आदेश के तहत अपना साक्ष्य देने से याची को वर्जित किया गया था, उक्त आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन दाखिल किया गया था किंतु उक्त आवेदन को कोई कारण दिए बिना अस्वीकार कर दिया गया था। यथार्थत:, वह आदेश गैर सकारण आदेश है जो विधि की दृष्टि में संपोषणीय नहीं है।

4. तद्नुसार, दिनांक 7.12.2011 का आदेश और पुनरीक्षण आवेदन में पारित आदेश भी एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। दिनांक 20.5.2011 के आदेश को वापस लेने के लिए दाखिल आवेदन पर नया आदेश पारित करने के लिए मामला विद्वान दंडाधिकारी के पास वापस भेजा जाता है।

5. तद्नुसार, यह आवेदन निपटाया जाता है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

मनोरमा गुप्ता

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.(C) No. 6831 of 2005. Decided on 4th November, 2012.

नगरीय भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) अधिनियम, 1976 (अब नगरीय भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 द्वारा निरसित)–किराया स्वीकार करने और किराया रसीद जारी करने का निर्देश इप्सित करने वाली याचिका–वर्ष 1999 का निरसन अधिनियम झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया है और अधिनियम के अधीन की गयी कार्रवाई 1999 के निरसन अधिनियम की धारा 4 की दृष्टि में उपशमनित हो जाएगी–याची को आवश्यक दस्तावेजों के साथ विस्तृत अभ्यावेदन देने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Sahani, For the Petitioners; J.C. to S.C. (Mines), For the Respondents.

आदेश

याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस रिट याचिका को दाखिल करके नामांतरण केस सं॰ 812R-27 वर्ष 1976-77 में दिनांक 6.1.1978 के नामांतरण आदेश के अनुसरण में प्रश्नगत भूमि के संबंध में किराया स्वीकार करने और याची को किराया रसीद जारी करने के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 3 को आदेश देने वाले समुचित रिट/निर्देश प्रदान करने के लिए प्रार्थना किया है।

2. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने परिशिष्ट-1 को निर्दिष्ट करके इंगित किया कि प्रश्नगत भूमि दिनांक 29.7.1975 को रजिस्टर्ड विक्रय विलेख द्वारा खरीदी गयी थी और तत्पश्चात् दिनांक 6.1.1978 के परिशिष्ट-2 के तहत नामांतरण किया गया था और तद्नुसार संशोधन पर्ची जारी किया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि तत्पश्चात प्रत्यर्थीगण-प्राधिकारीगण ने कोई कारण दिए बिना किराया रसीद जारी करना बंद कर दिया। याची के विद्वान

अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि प्रत्यर्थीगण ने इस मामले में प्रति-शपथपत्र दाखिल किया है और दृष्टिकोण अपनाया है कि चूँकि प्रश्नगत भूमि नगरीय भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) अधिनियम, 1976 की अधिकारिता के अधीन आती थी, अत:, प्रत्यर्थी ने कोई किराया रसीद जारी नहीं किया था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि अब नगरीय भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) अधिनियम, 1976 को नगरीय भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 द्वारा निरसित कर दिया गया है और अब उक्त निरसन अधिनियम, 1999 झारखंड राज्य द्वारा दिनांक 24.1.2011 के संकल्प द्वारा दिनांक 24.1.2001 के प्रभाव से अपनाया गया है। परिणामस्वरुप, यू॰ एल॰ सी॰ के मुख्य अधिनियम के अधीन दिए गए अथवा तात्पर्यित रूप से दिए गए किसी आदेश से संबंधित समस्त कार्यवाही निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 4 की दृष्टि में उपशमनित हो गयी है। याची के विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि प्रश्नगत भूमि अधिनियम के प्रभाव में आने से पहले खरीदी गयी थी।

3. प्रत्यर्थी राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी राज्य सरकार द्वारा दाखिल प्रति शपथ पत्र को निर्दिष्ट करते हुए इंगित किया कि वर्तमान याची के पक्ष में किराया रसीद जारी नहीं की जा सकती थी क्योंकि प्रश्नगत वर्तमान भूमि नगरीय भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) अधिनियम, 1976 के अधीन आच्छादित नहीं थी और उसके संबंध में प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अधिनियम के अधीन जारी अधिसूचना को निर्दिष्ट किया है और इस पर विश्वास किया है जिसे प्रति शपथ पत्र के परिशिष्ट-A के तहत संलग्न किया गया है।

4. पूर्वोक्त परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और इस तथ्य की दृष्टि में कि भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) अधिनियम, 1976 को नगरीय भूमि (अधिकतम सीमा एवं विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 द्वारा निरसित कर दिया गया है और वर्ष 1999 का उक्त निरसन अधिनियम झारखंड राज्य द्वारा दिनांक 24.1.2011 के संकल्प द्वारा दिनांक 24.1.2001 के प्रभाव से अपनाया गया है, उक्त अधिनियम के अधीन की गयी कार्रवाई निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 4 की दृष्टि में, उपशमनित हो जाएगी। यह भी प्रतीत होता है कि तथ्यों और परिस्थितियों के समरुप संवर्ग में इस न्यायालय के पास डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2160 वर्ष 2004 पर विचार करने का अवसर था। उक्त याचिका दिनांक 9.2.2012 के आदेश के तहत कतिपय संप्रेक्षण के साथ निपटायी गयी थी।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त आदेश की प्रति को अभिलेख पर प्रस्तुत किया है और इस पर विश्वास किया है।

6. उक्त अवस्था की दृष्टि में, याची इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से तीन सप्ताह के भीतर प्रत्यर्थी सं॰ 3 के समक्ष आवश्यक दस्तावेजों के साथ विस्तृत आवेदन देगा। जब और जैसे ही प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा अभ्यावेदन प्राप्त किया जाता है, इसे तत्पश्चात दो माह के भीतर विधि के अनुरुप विनिश्चित किया जाएगा।

7. पूर्वोक्त संप्रेक्षण के साथ यह रिट आवेदन निपटाया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

बिहार हाई एरिया लिफ्ट इरिगेशन कॉरपोरेशन (दोनों में)

cuke

झारखंड हिल एरिया लिफ्ट इरिगेशन कॉरपोरेशन (झालको) एवं अन्य (83 में)

झारखंड राज्य एवं अन्य (84 में)

Civil Review No. 83 with 84 of 2011. Decided on 5th November, 2012.

बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000—धारा 85—सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 114—भालको का झालको में संपरिवर्तन–भालको के कर्मचारियों का झालको में

आमेलन–कर्मचारियों के बकायों के संबंध में अनेक विवाद्यकों पर विचार करने के बाद विस्तृत निर्णय पारित किया गया है और बिहार पुनर्गठन अधिनियम के प्रावधानों के संदर्भ में मामला विनिश्चित किया गया है–पुनर्विलोकन का मामला नहीं बनता है–पुनर्विलोकन आवेदन खारिज। (पैराएँ 2 से 5)

अधिवक्तागण.–M/s S.K. Singh, A.K. Pandey, For the Appellant; J.C to A.G., For the Respondents.

आदेश

पुनर्विलोकन याची के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. पुनर्विलोकन याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इस न्यायालय ने झारखंड राज्य के भालको को झालको में संपरिवर्तित करने के निर्णय को ध्यान में लिया और वर्ष 2000 के अधिनियम की धारा 85 के अधीन दिनांक 29 दिसंबर, 2001 को झारखंड राज्य ने निर्णय लिया और भालको द्वारा जो कोई भी नियम एवं विनियमन विरचित किए गए हैं, उन्हें नयी कंपनी झालको द्वारा अपनाया गया है। इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 16 जून, 2011 के निर्णय के पैराग्राफ 8 में यह ध्यान में लिया गया है कि दिनांक 10 मार्च, 2002 की बैठक में भालको को झालको में संपरिवर्तित करने का निर्णय अनुमोदित किया गया है और पैराग्राफ 9 में संप्रेक्षित किया गया है कि 302 आवेदकगण, भालको के कर्मचारीगण, को झालको में आमेलित किया गया था और वे झालको की सेवा में हैं। पुनर्विलोकन याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि जब झालको द्वारा समस्त आस्तियों को अधिग्रहित किया गया है, तब कहाँ से भालको-कर्मचारीगण के बकायों का भुगतान करेगा जैसा आदेश दिनांक 16 जून, 2011 के निर्णय में दिया गया है।

3. हमने पुनर्विलोकन याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया। हमारा सुविचारित मत है कि अनेक विवाद्यकों जिन्हें उठाया गया है, पर विचार करने के बाद विस्तृत आदेश पारित किया गया है और विशेषत: बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 के प्रावधानों के संदर्भ में मामला विनिश्चित किया गया है। किंतु दिनांक 16 जून, 2011 के आदेश से पुनर्विलोकन का मामला नहीं बनता है।

4. किसी अन्य बिंदु पर जोर नहीं दिया गया है।

5. अत:, पुनर्विलोकन आवेदन खारिज किए जाते हैं।

---

ekuuh; Mh ,u iVy] U;k;efr

मेसर्स याराना इंटरप्राइजेज

cuke

भारत संघ एवं अन्य

A.A. No. 06 of 2012. Decided on 9th November, 2012.

माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996—धारा 11—मध्यस्थ की नियुक्ति–जब एक बार प्राधिकारी को आवेदन दिया जाता है और वह किसी मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं कर रहा है, तब उच्च न्यायालय मध्यस्थ नियुक्त कर सकता है–उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया। (पैराएँ 2 एवं 3)

अधिवक्तागण.–M/s. Ananda Sen, K. Panda, For the Petitioner; M/s. Mahesh Tiwari, Ganesh Pathak, R.N. Roy, For the Respondents.

आदेश

याची के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची और प्रत्यर्थीगण के बीच करार हुआ है जिसे आवेदन के मेमो के परिशिष्ट-1 के रूप में संलग्न किया गया है। उक्त करार के खंड-55 का पठन निम्नलिखित है:–

*"55. bl djkj l mnHkr gku oky vFkok fdlh :i e bl Nr vFkok ljkdkj j[ku oky leLr fookn] ç'uk vkj erfHkUurkvk (flok, mud ftud ckj e fu.k; ;gk igy fo'k"kr% çkoèkkfur fd;k x;k g) dk egkçcèkd nf{k.k&io jyo] xkMu jhp] dkydkrk }kjk fu;Dr fdlh 0;fDr d ,dek= eè;LFkrk d fy, fufn"V fd;k tk,xkA ,lh fu;fDr d le; ij ,lh fdlh fu;fDr d çfr vkifÙk ugh gkxh fd fu;Dr 0;fDr ljdkjh lod g] fd ml ,l ekeyk ij fopkj djuk g tk djkj l lcfèkr g vkj fd ,l ljdkjh lod d :i e viu dr0;k d Øe e mlu ç'uxr ekeyk vFkok fookn e l leLr vFkok fdlh ,d d çfr nf"Vdk.k vfHk0;Dr fd;k FkkA ,l eè;LFk dk vfèkfu.k; vfre gkxk vkj djkj d i{kk ij ckè;dkjh gkxkA ;g bl djkj dk fucèku g fd ,l eè;LFk] ftldk ekeyk eyr% fufn"V fd;k x;k g] dk LFkkukrj.k gku vFkok in dk fjDr dju vFkok fdlh dkj.k l ÑR; dju e v{ke gku dh fLFkfr e nf{k.k io jyo dk egkçcèkd ,l iokDr LFkkukrj.k] in fjDr dju vFkok ÑR; dju e v{ke gku d le; ij bl djkj d fucèkuk d vu#i eè;LFk d :i e ÑR; dju d fy, fdlh vU; 0;fDr dk fu;Dr djxk vkj ,lk 0;fDr viu ioorh }kjk NkM x, le; d pj.k l fun'k ij vxlj gku dk gdnkj gkxkA ;g Hkh bl djkj dk fucèku g fd nf{k.k&io jyo d egkçcèkd }kjk fu;Dr 0;fDr l fHkUu dkb 0;fDr eè;LFk d :i e ÑR; ugh djxk vkj ;fn fdlh dkj.k l ;g lHko ugh g] ekeyk eè;LFkrk d fy, fufn"V ugh fd;k tk,xkA iokDr d vè;èkhu] eè;LFke vfèkfu;e] 1940 vFkok fdlh lkfofèkd mikrj.k vFkok bld iuvfèkfu;eu vkj le;≤ ij bld vèkhu cuk, x, fu;ek d çkoèkku ,lh eè;LFkrk ij ykx gkxA eè;LFk i{kk dh lgefr l vfèkfu.k; dju vkj bl çdkf'kr dju dh vofèk le;≤ ij c<k ldrk gA eè;LFk }kjk eè;LFkrk dk LFkku fofuf'pr fd;k tk,xkA***

2. पूर्वोक्त खंड की दृष्टि में, यदि पक्षों के बीच कोई विवाद उद्भूत होता है, तब दक्षिण-पूर्व रेलवे के महाप्रबंधक, कोलकाता द्वारा मध्यस्थ नियुक्त किया जा सकता है और, इसलिए, इस याची द्वारा इस प्राधिकारी को दिनांक 6 मार्च, 2012 को नोटिस दी गयी थी और, चूँकि, वह किसी मध्यस्थ को नियुक्त करने में विफल रहे हैं, दिनांक 17 मई, 2012 को यह मध्यस्थम आवेदन दाखिल किया गया है और **दातार स्विच गियर लि॰ बनाम टाटा फिनांस लिमिटेड, (2000)8 SCC 151,** में दिए गए निर्णय के अनुसरण में जब एक बार इस प्राधिकारी को आवेदन दिया जाता है और वह मध्यस्थ नियुक्त नहीं कर रहा है, तब यह न्यायालय मध्यस्थ नियुक्त कर सकता है।

3. भारत सरकार के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि उन्हें कोई आपत्ति नहीं है यदि इस न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया जाता है और विशेषत: वह न्यायमूर्ति विक्रमादित्य प्रसाद, जो इस न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश हैं का नाम सुझा रहे हैं। याची के अधिवक्ता को इस नियुक्ति पर आपत्ति नहीं है।

4. इस निवेदन की दृष्टि में और पूर्वोक्त खंड को देखते हुए मैं इस न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश मानवीय न्यायमूर्ति विक्रमादित्य प्रसाद को पक्षों के बीच विवादों, जिन्हें इस आवेदन के मेमों के परिशिष्ट 2 में कथित किया गया है, यथासंभव शीघ्र और व्यवहारिक, मुख्यत: संदर्भ पर विचार करने और दोनों पक्षों की उपस्थिति की तिथि से छह माह की अवधि के भीतर विनिश्चित करने के लिए मध्यस्थ के रूप में एतद् द्वारा नियुक्त करता हूँ।

5. पूर्वोक्त संप्रेक्षणों के साथ, यह आवेदन एतद् द्वारा निपटाया जाता है।

ekuuh; vkykd flg] U;k;efr

अरुण कुमार

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 2279 of 2009. Decided on 7th November, 2012.

सेवा विधि–नियुक्ति–सरकारी फार्मेसी संस्थान के प्राचार्य का पद–याची के नाम की अनुशंसा कभी नहीं की गयी थी चूँकि उसे प्राचार्य के पद के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया था–परमादेश रिट केवल तब जारी किया जा सकता है जब याची के पक्ष में विधिक अधिकार हो–याची को प्राचार्य के पद पर नियुक्त होने का अधिकार नहीं है–याचिका खारिज।

(पैराएँ 4 से 8)

निर्णयज विधि.–(1977)4 SCC 145; (2005) 9 SCC 22—Relied on; (1991)3 SCC 47; (2001)1 SCC 380; (2005)10 SCC 144—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Sahni, For the Petitioner; Mr. Sanjoy Piprawall, For the Respondent Nos. 3 & 4.

आदेश

वर्तमान याचिका सरकारी फार्मेसी संस्थान, बरियातू, राँची के प्राचार्य के पद पर याची को नियुक्ति पत्र जारी करने के लिए प्रत्यर्थीगण को आदेश देने वाले परमादेश रिट इप्सित करते हुए दाखिल की गयी है।

2. याची का मामला यह है कि उक्त पद के लिए केवल तीन उम्मीदवारों ने आवेदन दिया था, किंतु, केवल दो उम्मीदवार साक्षात्कार में उपस्थित हुए जिसमें से एक अन्य उम्मीदवार अर्थात् आशा रानी का नाम प्रोफेसर के पद के लिए अनुशंसित किया गया था, अत:, याची एकमात्र उम्मीदवार बना रहा। परिणामस्वरुप, उसका नाम नियुक्ति के लिए अनुशंसित किया जाना चाहिए था और तद्नुसार उसके नाम के लिए नियुक्ति पत्र जारी किया जाना चाहिए था।

3. दूसरी ओर, झारखंड लोक सेवा आयोग के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री पिपरवाल निवेदन करते हैं कि प्राचार्य के पद के लिए आयोग द्वारा याची का नाम कभी अनुशंसित नहीं किया गया था चूँकि प्राचार्य के पद के लिए किसी उम्मीदवार को उपयुक्त नहीं पाया गया था।

4. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पंजाब राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य बनाम मल्कियत सिंह, (2005)9 SCC 22,** मामले में **शंकरसन दास बनाम भारत संघ, (1991)3 SCC 47; अखिल भारतीय एस॰ सी॰ एवं एस॰ टी॰ कर्मचारी संघ बनाम ए॰ आर्थर जीन, (2001)1 SCC 380;** और **उड़ीसा राज्य बनाम भिखारी चरण खूँटिया, (2005)10 SCC 144,** मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व निर्णयों पर विश्वास करते हुए अभिनिर्धारित किया है कि सफल उम्मीदवार नियुक्त किए जाने का अनिवार्य अधिकार अर्जित नहीं करते हैं। वर्तमान मामले में याची का नाम कभी अनुशंसित नहीं किया गया था क्योंकि उसे प्राचार्य के पद के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया था।

5. अत:, याची को प्राचार्य के पद पर नियुक्त होने का अधिकार बिल्कुल नहीं है।

6. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बिहार इस्टर्न गैंजेटिक फिशरमेन को-ऑपरेटिव सोसाइटी लि॰ बनाम सिपाही सिंह, (1977)4 SCC 145,** में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

*^^lokPp U;k;ky; dh mfDr d erkfcd ijekn'k fjV doy rc tkjh fd;k tk ldrk g tc ;kph d i{k e fofèkd vfèkdkj g vkj çkfèkdkjhx.k lkfofèkd ckè;rk mUekfpr dju d fy, ckè; gA***

7. वर्तमान मामले में चूँकि याची के पास नियुक्ति अधिकार नहीं है, अत:, याची के पक्ष में परमादेश रिट जारी नहीं किया जा सकता है।

8. परिणामस्वरुप, यह रिट याचिका विफल होती है और एतद् द्वारा खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

तेजो मियाँ

cuke

रसूल मियाँ एवं अन्य

WP(C) No. 5922 of 2006. Decided on 8th November, 2012.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 8, नियम 1—लिखित कथन–याची-प्रतिवादी को लिखित कथन दाखिल करने से वर्जित किया गया–पक्षों को लिखित कथन दाखिल करने का अवसर देने की आवश्यकता है ताकि उसे गुणागुण पर वाद का प्रतिवाद करने का मौका मिल सके–ऐसा करने से वादी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है–आक्षेपित आदेश अपास्त–500/- रुपये के व्यय के विरुद्ध अभिलेख पर लिखित कथन लाया जाए।

(पैराएँ 2 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. B.K. Jha, For the Petitioner; Mr. P.C. Sinha, For the Opp. Party.

आदेश

याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान याचिका दाखिल करके टी॰ एस॰ सं॰ 37/97 में विद्वान द्वितीय अपर मुंसिफ, गिरीडीह द्वारा पारित दिनांक 28.6.2006 के आदेश को अभिखंडित और अपास्त करने के लिए प्रार्थना किया है जिसके द्वारा याची को दिनांक 10.6.99 के आदेश जिसके द्वारा याची–प्रतिवादी को लिखित कथन दाखिल करने से अपवर्जित कर दिया गया है को वापस लेने की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी है।

2. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए और आक्षेपित आदेश का परिशीलन किया गया। अभिलेख के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची–प्रतिवादी ने दिनांक 12.3.1999 को लिखित कथन दाखिल किया किंतु अवर न्यायालय द्वारा याचिका निपटाते हुए उक्त तथ्य पर समुचित रूप से विचार नहीं किया गया था। इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि अवर न्यायालय इस तथ्य का अधिमूल्यन करने में विफल रहा कि पक्षों को लिखित कथन दाखिल करने का अवसर देने की आवश्यकता है ताकि उसे गुणागुण पर वाद का प्रतिवाद करने का अवसर मिल सके। आगे प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने हक वाद सं॰ 37/1997 के संस्थापन के बाद दिनांक 12.3.99 को लिखित कथन दाखिल किए जाने के तथ्य पर विचार किए बिना आदेश पारित किया है।

3. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस याचिका में की गयी प्रार्थना का विरोध किया है और कथन किया है कि अवर न्यायालय ने दिनांक 10.6.1999 के अपने पूर्व आदेश को वापस लेने के लिए याची–प्रतिवादी द्वारा दिए गए आवेदन को अस्वीकार करते हुए कोई गलती नहीं किया है।

4. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि याची–प्रतिवादी द्वारा दाखिल लिखित कथन को अभिलेख पर लेने की आवश्यकता है ताकि उसे वाद का प्रतिवाद करते हुए अवर न्यायालय के समक्ष अपना मामला रखने का युक्तियुक्त अवसर मिल सके। ऐसा किए जाने से वादी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है क्योंकि वादी को लिखित कथन में दिए गए बयान का खंडन करने के लिए प्रत्युत्तर दाखिल करने का अवसर होगा।

5. उक्त अवस्था की दृष्टि में, टी॰ एस॰ सं॰ 37/97 में विद्वान द्वितीय अपर मुंसिफ, गिरीडीह द्वारा पारित दिनांक 28.6.2006 के आक्षेपित आदेश को अभिखंडित और अपास्त किया जाता है। याची–प्रतिवादी

द्वारा दाखिल लिखित कथन को 500/- रुपये के व्यय के साथ जमा करने पर अभिलेख पर लिए जाने का आदेश दिया जाता है।

6. उक्त संप्रेक्षण और निर्देश के साथ यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr ;k] e[; U;k;kèkh'k ,o t ;k jk;] U;k;efr

बिहार राज्य एवं एक अन्य

cuke

सत्येन्द्र कुमार एवं अन्य

L.P.A. No. 100 of 2012. Decided on 5th November, 2012.

सेवा विधि–विभागीय कार्यवाही–जाँच अधिकारी ने याची को उसके विरुद्ध लगाए गए समस्त आरोपों से विमुक्त किया–एकल न्यायाधीश ने दंड के आदेश को इस आधार पर अपास्त किया कि अनुशासनिक प्राधिकारी को जाँच अधिकारी के निष्कर्ष के साथ असहमत होने की शक्ति है किंतु केवल कारण देने के बाद जो नहीं किया गया था–सकारण आदेश द्वारा निर्दोष होने के निष्कर्ष को अस्वीकार किया जा सकता था–आक्षेपित आदेश अभिपुष्ट–अपील खारिज। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–G.A. of Bihar, For the Appellants; JC to G.P. II, For the Respondents.

आदेश

<u>आई॰ ए॰ सं॰ 446 वर्ष 2012</u>

अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता और झारखंड राज्य के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

2. विलंब माफ करने के लिए आवेदन में कथित कारण की दृष्टि में अपील दाखिल करने में विलंब को माफ किया जाता है।

3. तद्नुसार, आई॰ ए॰ सं॰ 446 वर्ष 2012 अनुज्ञात किया जाता है।

<u>एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 100 वर्ष 2012</u>

4. मामले के गुणागुण पर पक्षों के विद्वान अधिवक्ता सुने गए।

5. विद्वान एकल न्यायाधीश ने पाया कि जाँच अधिकारी ने जाँच में याची को उसके विरुद्ध लगाए गए समस्त आरोपों से विमुक्त कर दिया। किंतु, बिहार राज्य आरोप सं॰ 4, 6, 11, 12, 13, 14, 15 और 17 पर जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्ष से असहमत हुआ और सीधे तौर पर याची को उक्त आरोपों का दोषी अभिनिर्धारित किया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने अनुशासनिक कार्यवाही में पारित दंड के आदेश को इस आधार पर अपास्त कर दिया है कि अनुशासनिक प्राधिकारी के पास जाँच अधिकारी के निष्कर्षों के साथ असहमत होने की शक्ति है किंतु वह ऐसा केवल इसके लिए कारण देने के बाद कर सकता है किंतु उन्होंने परिशिष्ट–17, अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश, में ऐसा कारण नहीं दिया है।

6. दिनांक 5.12.2000 के आदेश, परिशिष्ट 17, बिहार राज्य द्वारा पारित आदेश, का परिशीलन करने पर हमारा सुविचारित मत है कि उक्त निर्दिष्ट आरोपों के लिए याची को निर्दोष अभिनिर्धारित करने का निष्कर्ष अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा किसी सकारण आदेश द्वारा इसे अस्वीकार नहीं करके अनदेखा किया गया है।

7. उक्त कारणों की दृष्टि में, आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। अतः, एल॰ पी॰ ए॰ गुणागुणरहित होने के कारण खारिज किया जाता है। परिणामस्वरुप, स्थगन याचिका आई॰ ए॰ सं॰ 465 वर्ष 2012 भी खारिज किया जाता है।